U.P. Series

इतिहास

प्रथम एवं द्वितीय प्रश्न-पत्र

पाठ्यपुस्तक का संपूर्ण हल

कक्षा-11

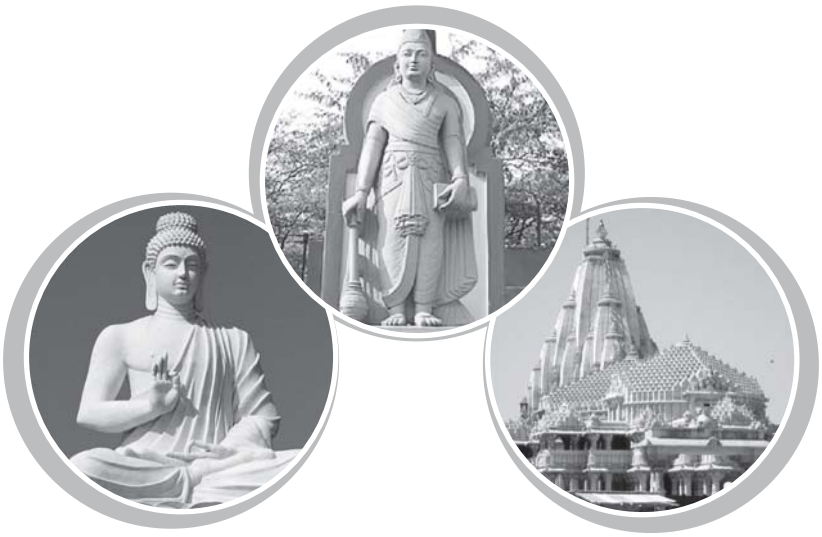

इकाई-1

1 भारतीय इतिहास जानने के साधन (Sources of Ancient Indian History)

अभ्यास

निम्नलिखित तिथियों के ऐतिहासिक महत्व का उल्लेख कीजिए–

1. 670 ई० 2. 399 ई० 3. 629 ई० 4. आठवीं शताब्दी।

उ०– उत्तर के लिए पाठ्यपुस्तक के पृष्ठ संख्या– 16 पर तिथि सार का अवलोकन करें।

सत्य या असत्य बताइए–

उ०– प्रश्नोत्तर के लिए पाठ्यपुस्तक के पृष्ठ संख्या– 16 का अवलोकन कीजिए।

बहुविकल्पीय प्रश्न

उ०– प्रश्नोत्तर के लिए पाठ्यपुस्तक के पृष्ठ संख्या–17 का अवलोकन कीजिए।

अतिलघु उत्तरीय प्रश्न

उ०– प्रश्नोत्तर के लिए पाठ्यपुस्तक के पृष्ठ संख्या– 17 व 18 का अवलोकन कीजिए।

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. वैदिक साहित्य के प्रमुख ग्रन्थों का वर्णन कीजिए।

उ०– वैदिक साहित्य के अन्तर्गत वेद, ब्राह्मण, पुराण, स्मृति साहित्य, महाकाव्य व उपनिषद आदि ग्रन्थ आते हैं।
वैदिक साहित्य के प्रमुख ग्रन्थों का वर्णन निम्न है–

(i) **वेद–** धर्मग्रन्थों में वेदों का स्थान सर्वोपरि है। ये चार हैं–ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद, अथर्ववेद।

(ii) **ब्राह्मण–** इनकी रचना वेदों के कर्मकाण्डों व विधि विधानों को समझाने के लिए की गई है। प्रत्येक वेद के अपने ब्राह्मण ग्रन्थ हैं; जैसे– ऋग्वेद के लिए ऐतरेय तथा कौषीतकी, सामवेद के लिए पंचविश, यजुर्वेद के लिए तैत्तिरीय एवं शतपथ, अथर्ववेद के लिए गोपथ आदि।

(iii) **आरण्यक–** अरण्य (वन) शब्द से आरण्यक की उत्पत्ति हुई है। इन ग्रन्थों से आत्मा, ईश्वर, सृष्टि व मनुष्य संबंधी दार्शनिक विचार मिलते हैं।

(iv) **उपनिषद–** उपनिषद ब्राह्मण ग्रन्थों में उपनिषद अन्तिम भाग हैं। इनमें मुख्य उपनिषद हैं– बृहदारण्यक व छान्दोग्य।

(v) **स्मृति साहित्य–** स्मृतियों में मनुष्य के सम्पूर्ण जीवन के विविध कार्यों के नियमों एवं निषेधों का उल्लेख मिलता है।

(vi) **महाकाव्य–** वैदिक साहित्य में वेदों के बाद महाकाव्यों में रामायण एवं महाभारत का विशेष स्थान है।

(vii) **पुराण–** पुराणों की संख्या– 18 है। इनमें ऐतिहासिक कथाओं का क्रमवार विवरण है। इनके रचयिता लोमहर्ष व उसके पुत्र उग्रश्रवा माने जाते हैं।

2. ऋग्वेद के विषय में आप क्या जानते हैं?

उ०– ऋग्वेद, आर्यों का प्राचीनतम ग्रन्थ है। इसमें 1028 सूक्त है, जिनमें देवताओं के प्रति स्तुति की गई हैं। यह प्रथम वेद माना जाता है।

3. भारतीय इतिहास में बौद्ध साहित्य के योगदान का वर्णन कीजिए।

उ०– भारतीय इतिहास में बौद्ध साहित्य का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। बौद्ध साहित्य पालि, बौद्ध-संस्कृत एवं विशुद्ध संस्कृत भाषाओं में मिलता है ब्राह्मण ग्रन्थों की तरह ही इन ग्रन्थों से भी प्राचीन इतिहास के सम्बन्ध में बहुमूल्य जानकारी प्राप्त होती है।
बौद्ध ग्रन्थों में निम्नलिखित साहित्य महत्वपूर्ण हैं–

(i) **त्रिपिटक–** त्रिपिटक तीन हैं– **विनय पिटक, सुत्त पिटक** तथा **अभिधम्म पिटक।** विनय पिटक में बौद्ध संगठन के नियमों का उल्लेख किया गया है। सुत्त पिटक में महात्मा बुद्ध के उपदेशों का सार है। अभिधम्म पिटक को 7 भागों में विभक्त किया गया है। पिटकों से महात्मा बुद्ध के समकालीन शासकों एवं तत्कालीन भारत की राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक और आर्थिक दशा की जानकारी प्राप्त होती है।

(ii) **जातक कथाएँ–** जातकों की संख्या 547 अथवा 549 बताई जाती है। इनमें बुद्ध के पूर्वजन्मों की कहानियों का विवरण है।

इनसे बुद्धकालीन और महात्मा बुद्ध के बाद के समय की आर्थिक, सांस्कृतिक एवं सामाजिक दशा की विस्तृत जानकारी प्राप्त होती है।

(iii) बौद्ध ग्रन्थ– बौद्ध गन्थों में 'महावंश' एवं 'दीपवंश' नामक पालि ग्रन्थ में मौर्यकाल की जानकारी मिलती है। इनमें कथावस्तु, दिव्यावदान, बुद्धचरित आदि महत्वपूर्ण ग्रन्थ हैं, जिनसे हमें ऐतिहासिक जानकारी प्राप्त होती है।

4. निम्नलिखित ग्रन्थों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए–

उ०– (क) अर्थशास्त्र (ख) राजतरंगिणी (ग) हर्षचरित

(क) अर्थशास्त्र– अर्थशास्त्र कौटिल्य द्वारा लिखा गया महत्वपूर्ण ग्रन्थ है जिसकी रचना चौथी शताब्दी में हुई। अर्थशास्त्र राजनीति पर लिखा गया सबसे महत्वपूर्ण ग्रंथ है।

(ख) राजतरंगिणी– ऐतिहासिक ग्रन्थों में राजतंरगिणी का स्थान सर्वोच्च है। इस ग्रन्थ में प्राचीन समय से बारहवीं सदी तक के कश्मीर का इतिहास विशद रूप से लिखा गया है।

(ग) हर्षचरित– हर्षचरित कान्यकुब्ज के सम्राट हर्षवर्धन का जीवन-चरित्र है। जो महाकवि बाण द्वारा लिख गया है। हर्षचरित न केवल सम्राट का चरित्र-चित्रण का वर्णन करता है बल्कि सातवीं सदी के भारत के सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक एवं धार्मिक जीवन के बारे में भी बताता है।

5. जैन साहित्य से प्राप्त ऐतिहासिक जानकारी पर टिप्पणी कीजिए।

उ०– बौद्ध साहित्य के ही समान जैन साहित्य से भी कई ऐतिहासिक जानकारी प्राप्त होती हैं। बहुत से जैन विद्धानों तथा मुनियों ने जैन धर्म ग्रन्थों पर संस्कृत भाषा में कई टीकाएँ एवं व्याख्या ग्रन्थ लिखे हैं, जिनमें हमे तत्कालीन सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक व राजनीतिक जीवन की बहुत-सी जानकारियाँ मिलती हैं। 'भद्रबाहुचरित' व परिशिष्टपर्वन से चन्द्रगुप्त मौर्य के जीवन से संबंधित ऐतिहासिक जानकारी प्राप्त होती हैं। 'भगवतीसूत्र' में महावीर स्वामी के जीवन से जुड़ी कई ऐतिहासिक जानकारी प्राप्त होती हैं।

6. प्राचीन भारत आने वाले किन्हीं तीन विदेशी यात्रियों व उनके द्वारा लिखित कृतियों पर प्रकाश डालिए।

उ०– चीनी यात्री युवानच्वांग या ह्वेनसांग के ग्रन्थ 'सि-यू-की' से भारत के समकालीन इतिहास की जानकारी मिलती है। तिब्बत से 'लामा तारानाथ'12 वीं सदी में भारत आए इनके द्वारा लिखे गए 'कंग्युर' व तंग्युर' ने हमें शक कुषाण, पार्थियन आदि विदेशी आक्रमणकारियों के विषय में पता चलता है। महमूद गजनवी के साथ भारत आए 'अलबरूनी' की पुस्तक 'तहकीक-ए-हिन्द' में समकालीन समाज धर्म, रीति-रिवाज, राजनीति आदि का सूक्ष्म व वस्तुनिष्ठ विवरण मिलता है।

7. भारतीय इतिहास जानने के पुरातात्विक स्त्रोतों पर टिप्पणी कीजिए।

उ०– भारतीय इतिहास जानने के पुरातात्विक स्त्रोत निम्न हैं–

(i) उत्खनन से प्राप्त अवशेष, औजार, उपकरण एवं मृदभाण्ड– पुरापाषाण काल का मानव स्थूल हाथ-कुल्हाड़ी का प्रयोग कर जानवरों का शिकार करता था। पुरापाषाण काल के पत्थर, अस्थि, उपकरण एवं अस्थि निर्मित मूर्तियों में सांस्कृतिक विकास के चिह्न देखे जा सकते हैं।

(ii) सिक्के– सिक्कों से राजाओं के नाम, वंश, परंपरा, धर्म एवं राजचिह्नों और गौरवपूर्ण कृत्यों का ज्ञान प्राप्त होता है।

(iii) अभिलेख– अभिलेखों के अन्तर्गत शिलालेख, स्तम्भलेख, गुहालेख, ताम्रपत्र, स्मारक आदि आते हैं।

(iv) मूर्तियाँ– पुरातात्विक उत्खननों से अनेक प्रकार की कलाकृतियाँ, मूतियाँ, टेराकोटा की कलाकृतियाँ, मिट्टी के बर्तन आदि प्राप्त हुए।

(v) स्मारक तथा भवन–प्राचीनकाल के भवन, मंदिर, एवं भगनावशेष आदि से हमें धार्मिक और सांस्कृतिक जानकारियों के स्त्रोत मिलते हैं।

8. फाह्यान कौन था? वह भारत कब आया था?

उ०– फाह्यान एक चीनी यात्री था जो गुप्त सम्राट चन्द्रगुप्त द्वितीय के समय भारत आया था।

9. अर्थशास्त्र के विषय में आप क्या जानते हैं?

उ०– अर्थशास्त्र कौटिल्य द्वारा चौथी शताब्दी ई० पू० लिखा गया था। अर्थशास्त्र राजनीति पर लिखा उनका सर्वाधिक महत्वपूर्ण ग्रन्थ है। यह चन्द्रगुप्त मौर्य के शासन एवं प्रशासन को समझने का मुख्य स्त्रोत है।

10. महाभारत के विषय में आप क्या समझते हैं?

उ०– 'महाभारत' एक प्राचीन महाकाव्य है, जिसमें ईरानियों, शक, यवन, हूण आदि जातियों के उल्लेख मिलते हैं। इस महाकाव्य से तत्कालीन समाज की धार्मिक, सामाजिक एवं राजनीतिक दशा का ज्ञान होता है।

विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

1. प्राचीन भारतीय इतिहास के अध्ययन हेतु साहित्यिक स्रोतों का उल्लेख कीजिए।

उ०– प्राचीन भारतीय इतिहास के अध्ययन हेतु साहित्यिक स्रोतों– प्राचीन भारतीय इतिहास के स्रोतों में साहित्यिक स्रोतों का सर्वाधिक महत्व है। इसीलिए यह कहा जाता है कि भारतीय इतिहास जानने के लिए हमें मुख्यत: साहित्यिक साधनों पर ही निर्भर रहना पड़ता है। भारत के प्राचीन विद्वानों द्वारा रचित विपुल धार्मिक, अनैतिहासिक, समसामयिक एवं ऐतिहासिक साहित्य भी, इस तथ्य के प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। संक्षेप में इन साहित्यिक स्रोतों का परिचय निम्नलिखित है–

(i) धार्मिक साहित्य– इस साहित्य के अन्तर्गत वैदिक, बौद्ध तथा जैन ग्रन्थों को सम्मिलित किया गया है। इनका संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है–

(क) वैदिक ग्रन्थ– (अ) वेद– प्राचीन वैदिक साहित्य में वेदों को सर्वाधिक महत्व प्राप्त है। वेदों में ज्ञान के अपार भण्डार समाहित हैं। ये आर्यों के प्राचीनतम ग्रन्थ हैं। इनमें ऋग्वेद सबसे प्राचीन ग्रन्थ है। अन्य तीन वेद– यजुर्वेद, सामवेद तथा अथर्ववेद हैं। वेदों से हमें आर्यों के राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक एवं धार्मिक जीवन के सम्बन्ध में विस्तृत जानकारी मिलती है। वेदों के सम्बन्ध में डॉ० राधाकृष्णन् ने लिखा है, ''प्राचीनकाल की कल्पना में कुछ सर्वाधिक रोचक है, उसकी पर्याप्त जानकारी वेदों से होती है।''

(ब) ब्राह्मण, आरण्यक, वेदांग तथा उपनिषद ग्रन्थ– प्रत्येक वेद का अपना अलग ब्राह्मण ग्रन्थ है। जैसे ऋग्वेद का ऐतरेय तथा कौषीतकी, ब्राह्मण यजुर्वेद का शतपथ ब्राह्मण, सामवेद का पंचविश ब्राह्मण तथा अथर्ववेद का गोपथ ब्राह्मण हैं। इनमें राजा परीक्षित से लेकर बिम्बिसार तक का इतिहास वर्णित है। इनके अतिरिक्त तैत्तरीय, सांख्यायन, ऐतरेय, मैत्रायिणी, तत्वकार तथा माध्यन्विन आरण्यकों से भी विपुल जानकारी मिलती है। आरण्यक ग्रन्थों के बाद उपनिषद भारतीयों की विद्वता का परिचय देते हैं। इनमें केन, प्रश्न, मुण्डक, कठ, माण्डूक्य, ऐतरेय, तैत्तिरीय, श्वेताश्वतर, बृहदरण्यक, कौषतिकी तथा छान्दोग्य उपनिषद अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं।

वेदांग (शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द और ज्योतिष), स्मृतियाँ (मनु, विष्णु, नारद, बृहस्पति, पराशर, याज्ञवल्क्य) भी विभिन्न कालों के प्राचीन सांस्कृतिक और राजनीतिक इतिहास की जानकारी प्रदान करने के महत्वपूर्ण साधन हैं।

(स) पुराण– वैदिक ग्रन्थों में पुराण विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। पुराणों की संख्या 18 है, जिनमें विष्णु पुराण, वायु पुराण, ब्रह्म पुराण, अग्नि पुराण तथा गरुड़ पुराण प्रमुख हैं। इनमें प्राचीन आख्यान और इतिहास का विशद् वर्णन मिलता है। डॉ० ए०वी० स्मिथ के अनुसार, ''इन पुराणों में मौर्य, आन्ध्र, शिशुनाग और गुप्त आदि राजवंशों का विस्तृत विवरण मिलता है।''

(द) सूत्र साहित्य तथा स्मृतियाँ– सूत्र साहित्य को तीन भागों में विभक्त किया गया है– (1) कल्पसूत्र, (2) गृहसूत्र, (3) धर्मसूत्र। इनके अन्तर्गत यज्ञ सम्बन्धी विधि-विधानों, गृह कर्मकाण्डों, राजनीति, विधि तथा व्यवहार के विभिन्न पक्षों से संबंधित जानकारी प्रदान की गई है। स्मृतियों में राजा मनु द्वारा रचित मनुस्मृति का विशिष्ट स्थान है। इसके अतिरिक्त नारद स्मृति, विष्णु स्मृति एवं याज्ञवल्क्य स्मृति के नाम भी उल्लेखनीय हैं। स्मृतियों से हमें तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था, नियमों, प्रथाओं, रीति-रिवाजों आदि के संबंध में महत्वपूर्ण जानकारी प्राप्त होती है।

(य) रामायण तथा महाभारत– ये दोनों महाकाव्य भी ऐतिहासिक महत्व के ग्रन्थ हैं। इनमें उत्तर वैदिक काल के बाद के राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक तथा धार्मिक जीवन का विस्तृत वर्णन संकलित है।

(ख) बौद्ध ग्रन्थ– बौद्ध ग्रन्थों में निम्नलिखित महत्वपूर्ण हैं–

(अ) त्रिपिटक– ये तीन हैं– विनय पिटक, सुत्त पिटक तथा अभिधम्म पिटक। विनय पिटक में बौद्ध संगठन के नियमों का उल्लेख किया गया है तथा सुत्त पिटक में महात्मा बुद्ध के उपदेशों का सार है। अधिधम्म पिटक 7 भागों में विभक्त हैं, जिनमें बौद्ध धर्म से संबंधित तथ्यों का तार्किक विवेचन प्राप्त होता है। इन पिटकों से महात्मा बुद्ध के समकालीन शासकों एवं तत्कालीन भारत की राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक और आर्थिक दशा की जानकारी प्राप्त होती है।

(ब) जातक कथाएँ– जातकों की संख्या 547 अथवा 549 बताई जाती है। इनमें बुद्ध के पूर्वजन्मों की कहानियों का विवरण है। इनसे बुद्धकालीन और महात्मा बुद्ध के बाद के समय की सांस्कृतिक एवं सामाजिक दशा की विस्तृत जानकारी मिलती है। डॉ० विण्टरनिट्ज के कथानानुसार, ''जातक कथाओं का महत्व अमूल्य है। वह केवल इसलिए नहीं है कि वे साहित्य और कला के अंश हैं अपितु उनका भगवती सूत्र तीसरी शताब्दी ई० पू० की भारतीय सभ्यता का दिग्दर्शन कराने में महत्वपूर्ण स्थान रखता है।

(स) पालि व संस्कृत भाषा के बौद्ध ग्रन्थ– बौद्ध ग्रन्थों में दीपवंश और महावंश महाकाव्य का भी अपना विशिष्ट महत्व है। इनमें अनेक शासकों के शासन से संबंधित घटनाओं का विवरण है। एक अन्य ग्रन्थ मिलिन्दपन्हौं, राजा मिनाण्डर तथा बौद्धभिक्षु नागसेन के वार्तालाप पर प्रकाश डालता है। इसके अतिरिक्त दिव्यावदान, ललित-विस्तर, मंजुश्रीमूलकल्प, बुद्ध-चरित, लंकावतार आदि बौद्ध ग्रन्थ भी भारतीय इतिहास की जानकारी प्रदान करने के महत्वपूर्ण स्रोत हैं।

(ग) जैन ग्रन्थ– जैन ग्रन्थों से भी अनेक शासकों के काल से संबंधित ऐतिहासिक और सामाजिक घटनाओं पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। जैन ग्रन्थों में जैन आगम सूत्र, जैन पुराण, कथा कोष, भद्रबाहुचरित, परिशिष्टपर्वन (हेमचन्द्र रचित) आदि ग्रन्थ विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। परिशिष्टपर्वन और भद्रबाहुचरित में चन्द्रगुप्त मौर्य के विषय में अत्यंत महत्वपूर्ण जानकारी प्राप्त होती है।

(ii) अनैतिहासिक साहित्य– प्राचीन काल में अनेक अनैतिहासिक ग्रन्थों की रचना की गई है। इन ग्रन्थों में तत्कालीन राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक दशाओं का विशद ज्ञान प्राप्त होता है।

इनमें सर्वाधिक महत्वपूर्ण ग्रन्थ कौटिल्य द्वारा रचित अर्थशास्त्र है, जो राजनीतिशास्त्र की सर्वोत्तम कृति है। दूसरा महत्वपूर्ण ग्रन्थ पाणिनी कृत अष्टाध्यायी है। पंतजलि ने भी अपने महाभाष्य में मौर्य वंश के काल की दशाओं का वर्णन किया है। गार्गी संहिता में भारत पर यवनों के आक्रमण का विवरण मिलता है। इसी प्रकार, महाकवि कालिदास ने अपने ग्रन्थों 'अभिज्ञानशाकुन्तलम' तथा 'मालविकाग्निमित्रम' में गुप्तकालीन संस्कृति और पुष्यमित्र शुंग व यवनों के मध्य हुए युद्ध पर प्रकाश डाला है। भास ने स्वप्नावासवदत्ता की रचना की, जिसमें गुप्तकाल की घटनाओं का विवरण है।

गुप्तकाल में विशाखदत्त ने 'मुद्राराक्षस' तथा 'देवीचन्द्रगुप्तम' नामक नाटकों की रचना की। इनमें क्रमश: मौर्य वंश की स्थापना, नन्द वंश का पतन तथा रामगुप्त व उसकी पत्नी ध्रुवदेवी के जीवन का वर्णन है। सातवीं शताब्दी में राजा हर्ष ने 'नागानन्द', 'रत्नावली' तथा 'प्रियदर्शिका' नामक ग्रन्थों की रचना की। इसी काल में महाकवि बाणभटट ने 'हर्षचरित' लिखा। इन ग्रन्थों से राजा हर्ष के शासनकाल की विस्तृत जानकारी प्राप्त होती है।

विल्हण द्वारा रचित 'विक्रमांकदेव' चरित में चालुक्य वंश के इतिहास पर प्रकाश डाला गया है। 'गौड़बहो' में, जिसकी रचना वाकपतिराज ने की थी, कन्नौज के राजा यशोवर्मन की विजयों का वर्णन है। 'नवसहसांक चरित' की रचना परिमल गुप्त ने की थी। इस ग्रन्थ में परमार वंश की घटनाओं का पर्याप्त उल्लेख किया गया है। चन्द्रप्रभु सूरि कृत 'प्रेमावक चरित' 'गंगादेवी कृत 'कम्पराय-चरित' सोमेश्वर लिखित 'चतुर्विशति प्रबन्ध', बल्लाल कृत 'भोजप्रबन्ध', जयसिंह सूरि कृत 'हम्मीर महाकाव्य', गंगाधर पण्डित कृत 'मण्डलीक महाकाव्य' रजनाथ लिखित 'मूसकावंशम' आदि इतिवृत्तात्मक ग्रन्थ हैं। जिनसे प्राचीलकाल समाज और संस्कृति पर सम्यक प्रकाश पड़ता है। इसी युग में चन्दरबरदाई कृत पृथ्वीराज रासो, कुमारपाल चरित, जगनिक कृत परमाल रासो आदि महत्वपूर्ण ग्रन्थों की रचना भी की गई जिनसे राजपूत काल की अनेक ऐतिहासिक घटनाओं की जानकारी उपलब्ध होती है।

(iii) ऐतिहासिक ग्रन्थ– बारहवीं शताब्दी में कल्हण ने 'राजतरंगिणी' नामक ग्रन्थ लिखा, जिसमें कश्मीर के शासकों का वर्णन है। राजतरंगिणी को ही भारत का पहला ऐतिहासिक ग्रन्थ माना जाता है। इसके बाद मध्य युग में असंख्य ऐतिहासिक ग्रन्थों की रचना हुई, जिनमें फारसी भाषा के ग्रन्थ ऐतिहासिक दृष्टि से प्रामाणिक तथा महत्वूपर्ण हैं। इन ग्रन्थों में समकालीन राजनीतिक तथा सांस्कृतिक इतिहास को लिपिबद्ध किया गया है।

2. भारतीय इतिहास को जानने के साहित्यिक एवं पुरातात्विक स्त्रोतों का उल्लेख कीजिए।

उ०– भारतीय इतिहास को जानने के साहित्यिक स्त्रोत– इसके लिए विस्तृत उत्तरीय प्रश्न संख्या–1 के उत्तर का अवलोकन करें।

भारतीय इतिहास को जानने के पुरातात्विक स्त्रोत– पुरातत्व अंग्रेजी भाषा के शब्द आर्कियोलॉजी का हिन्दी रूपान्तर है, जिसका अर्थ है, प्राचीन वस्तुओं का विज्ञान। यद्यपि इतिहास के क्षेत्र में पुरातत्व का अर्थ हमारे सामान्य अर्थ की अपेक्षा अधिक विस्तृत है, परन्तु शाब्दिक दृष्टि से कहा जा सकता है कि पुरातत्व प्राचीन मानव के क्रिया-कलापों के अवशेषों के ज्ञान की एक शाखा है। इस प्रकार पुरातत्व का सम्बन्ध मानव समाज के प्रारम्भिक अध्ययन से है। डॉ० विबासी के अनुसार, ''पुरातत्व मानव ज्ञान की वह शाखा है, जिसने पृथ्वी के नीचे दबी, खण्डहरों में सिमटी प्राचीन मानव संस्कृति के अवशेषों को उखाड़ कर विश्वसनीय सामग्री प्रस्तुत की है।''

पुरातत्व के क्षेत्र में प्राचीन अवशेष, अस्त्र-शस्त्र, भवन, मृदभाण्ड, उपकरण अभिलेख तथा उत्खनन से प्राप्त विभिन्न प्रकार की सामग्री आते हैं।

प्राचीन काल में अनेक शासकों ने दुर्ग, भवन, मन्दिर, स्तूप एव शिलालेख आदि का निर्माण कराया था, जो आज भी ऐतिहासिक दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं। इसके अन्तर्गत विशेषत: अभिलेखों के ऐतिहासिक महत्व पर प्रकाश डालते हुए फ्लीट ने लिखा है, ''अभिलेखों से हमें बिना किसी कठिनाई के तिथियों को निश्चित करने तथा भारत के इतिहास को एकरूपता प्रदान करने में सहायता मिलती है।'' प्राचीन शिलालेखों, स्तम्भ लेखों, ताम्रपत्रों, सिक्कों आदि पर जिन तिथियों, शासकों के नामों और कार्यों आदि का उल्लेख किया गया है, उन तिथियों, नामों आदि का उल्लेख प्राचीन साहित्य में भी मिलता है। अत: तथ्यों के संबंध में साहित्यिक स्त्रोतों व पुरातात्विक साक्ष्यों की यह साम्यता, विभिन्न घटनाओं से संबंधित तथ्यों के प्रमाणीकरण में बहुत सहायक सिद्ध हुई है। इसीलिए पुरातात्विक एवं साहित्यिक साक्ष्यों को प्राचीन भारतीय इतिहास के स्त्रोतों के रूप में एक-दूसरे का पूरक माना जाता है। वस्तुत: पुरातत्व सम्बधी सामग्री प्राचीन भारत के इतिहास के निर्माण में विशेष रूप से सहायक सिद्ध हुई है। पुरातत्व सम्बन्धी स्त्रोतों का विवरण अग्रलिखित है–

(i) **अभिलेख–** अभिलेखों के अन्तर्गत शिलालेख, स्तम्भलेख, गुहालेख, ताम्रपत्र, प्रशस्तियाँ, दानपत्र तथा स्मारक आते हैं। मौर्य युग के प्रतापी और धर्मनिष्ठ सम्राट अशोक के निर्मित अभिलेखों का ऐतिहासिक दृष्टि से विशेष महत्व है। अशोक के अभिलेखों से उसके साम्राज्य विस्तार, धर्म-प्रचार तथा शासन-प्रबन्ध का विस्तृत ज्ञान प्राप्त होता है। अशोक के 14 शिलालेख, 2 लघु शिलालेख तथा 3 गुहालेख मौर्य युग के सम्बन्ध में महत्वपूर्ण जानकारी प्रदान करते हैं। अशोक के बाद अभिलेखों में इण्डो-यूनानी हेलिओडोरस का विदिशा स्तम्भ लेख; पुष्यमित्र शुंग का अयोध्या अभिलेख, इलाहाबाद का स्तम्भ अभिलेख, एहोल का प्रशस्ति, खारवेल का हाथीगुम्फा शिलालेख, कुमारगुप्त प्रथम का कर्मदण्डा अभिलेख, रूद्रदामन का जूनागढ़ शिलालेख, चन्द्र का महरौली लौहस्तम्भ लेख तथा स्कन्दगुप्त का भिटारी या भीतरी स्तम्भ अभिलेख ऐतिहासिक दृष्टि से विशेष महत्वपूर्ण हैं। इनसे तत्कालीन राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक और धार्मिक दशाओं का ज्ञान प्राप्त होता है। फ्लीट के अनुसार, ''भारत के अन्वेषण के लिए हमें अभिलेखों का सहारा लेना पड़ता है। इनके बिना कोई निश्चित तिथि तथा एकरूपता स्थापित नहीं की जा सकती।

विदेशी अभिलेखों के अन्तर्गत एशिया माइनर स्थित 'बोगजकोई' के अभिलेख में वैदिक कालीन आर्यों का उल्लेख मिलता है। इसी प्रकार, पर्सीपोलस तथा नक्शे रुस्तम (ईरान) के अभिलेखों से प्राचीन भारत व ईरान के सम्बन्धों पर व्यापक प्रकाश डालता है।

(ii) **मठ, मन्दिर तथा स्तूप–** इनका सांस्कृतिक दृष्टि से बहुत महत्व है। सारनाथ, साँची के स्तूप, अजन्ता-एलोरा गुफाओं की चित्रकारी, बौद्ध मूतियाँ, गुप्तकाल के मन्दिर तथा खजुराहों के मन्दिर से प्राचीन काल की सांस्कृतिक और धार्मिक स्थिति की जानकारी मिलती है।

(iii) **मुद्राएँ और सिक्के–** मुद्राओं में सिन्धु घाटी एवं गुप्तकालीन मुद्राएँ तथा यूनानी, कुषाण, गुप्त सम्राटों के असंख्य सिक्के सर्वाधिक महत्वपूर्ण हैं। इनसे तत्कालीन शासकों के धर्मों, भारत तथा विदेशों के मध्य व्यापारिक सम्बन्धों आदि पर व्यापक प्रकाश डालता है।

(iv) **अन्य पुरातत्व सामग्री–** फर्ग्यूसन तथा कर्निघम आदि ने अनेक स्थानों की खुदाई कराकर बहुमूल्य ऐतिहासिक सामग्री प्राप्त की है। मोहनजोदड़ों, हड़प्पा, रोपड़, लोथल, कालीबंगा, मथुरा, पाटलिपुत्र, नालन्दा, राजगिरी, भरहूत, कोसम लक्ष्मणेश्वर अगदी, वनवासी, तक्षशिला, साँची, सारनाथ आदि के उत्खनन से प्राप्त ये वस्तुएँ भारत के सांस्कृतिक इतिहास पर विस्तृत प्रकाश डालती है।

3. प्राचीन भारतीय इतिहास को जानने के विदेशी स्त्रोतों का विवरण दीजिए।

उ०– **विदेशी यात्रियों तथा लेखकों के वितरण–** भारत के इतिहास की महत्वपूर्ण घटनाओं की जानकारी प्रदान करने में विदेशी यात्रियों तथा लेखकों का सर्वाधिक योगदान रहा है। मौर्यकाल, शुंग वंश, कुषाण, गुप्त राजाओं और वर्धन वंश के इतिहास की महत्वपूर्ण जानकारी विदेशी यात्रियों के विवरण के आधार पर ही प्राप्त हुई है। चीनी यात्रियों का तो इस क्षेत्र में विशेष योगदान रहा है।

प्राचीन काल में अनेक विदेशी यात्री और विद्वान भारत आए और उन्होंने अपने यात्रा सम्बन्धी विवरणों को लिपिबद्ध किया। उनके यात्रा विवरणों से तत्कालीन भारत की राजनीतिक, सामाजिक आर्थिक, धार्मिक तथा सांस्कृतिक दशा का विस्तृत ज्ञान प्राप्त होता है। विदेशी विवरणों के महत्व पर प्रकाश डालते हुए **डॉ० रमाशंकर त्रिपाठी** ने लिखा है, ''इनसे भारतीय तिथि के अशान्त सागर में समसामयिकता स्थापित करने में सहायता मिलती है। विदेशी यात्रियों के विवरण इस प्रकार हैं–

(i) **ईरानी लेखक–** सिकन्दर के आक्रमण से पूर्व आए ईरानी सम्राट डेरियस द्वारा भेजे गए स्काईलैक्स नामक यूनानी सैनिक ने भारतवर्ष के विषय में अत्यन्त रोचक विवरण दिया है। इसके बाद हैकेटियस, हैरोडोटस (हिस्टोरिका का लेखक), मिलेटस तथा टैसियस आदि लेखकों के विवरण भी ऐतिहासिक दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण हैं।

(ii) **यूनानी लेखक–** सिकन्दर के समकालीन तथा बाद के लेखकों में ऐरिस्टोब्यूलस (युद्ध के इतिहास का लेखक) एरियन, जस्टिन, स्ट्रेबो, प्लूटार्क, टालेमी (ज्योग्राफी), कर्टियस, प्लिनी (नेचुरल हिस्ट्री) निआर्कस, ओनोसिक्रिटस, पैट्रोक्लीज तथा यूनेनीज आदि यूनानी यात्रियों के विवरण अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

यूनानी राजदूत मेगस्थनीज की 'इण्डिका' यूनानी ग्रन्थों के अन्तर्गत एक महत्वपूर्ण ऐतिहासिक ग्रन्थ है। इसमें चन्द्रगुप्त मौर्य की शासन व्यवस्था का विस्तृत विवरण उपलब्ध होता है।

(iii) **चीनी यात्री तथा लेखक–** प्राचीन भारतीय इतिहास के स्त्रोतों के रूप में चीन से भारत आए यात्रियों और लेखकों के विवरण अत्यधिक स्पष्ट, वास्तविक और विश्वसनीय माने जाते हैं। चीन से भारत आए यात्रियों और लेखकों के वृतान्तों की एक अन्य विशेषता यह भी है कि इनमें तिथि के कालक्रम का विशेष ध्यान रखा गया है। चीन से भारत आए प्रमुख यात्रियों एवं लेखकों का विवरण निम्नानुसार है–

(क) सुमाशीन– सुमाशीन या शु-मा-च्यान चीनी इतिहासकार था। इसने प्रथम शताब्दी ई० पू० में भारतीय इतिहास सम्बन्धी जानकारी को अपने ग्रन्थ में संगृहीत किया था।

(ख) **फाह्यान–** यह 399 ई० में भारत आया था तथा लगभग पन्द्रह वर्ष तक भारत में रहा था। उसके विवरणों से तत्कालीन भारतीय इतिहास की विशद एवं सुंस्पष्ट जानकारी उपलब्ध होती है।

(ग) **ह्वेनसांग–** यह लगभग 629 ई० में भारत आया था इसने 16 वर्षों तक भारत के विभिन्न मठों, विहारों, तीर्थस्थानों तथा विश्वविद्यालयों (नालन्दा आदि) का भ्रमण किया था एवं गहनता से उसके इतिहास का अध्ययन किया था। ह्वेनसांग द्वारा प्रस्तुत किया गया विवरण हर्षकालीन इतिहास के अध्ययन के लिए बहुत उपयोगी है।

(घ) **इत्सिंग–** यह 670 ई० के लगभग भारत आया था। इसने भारत की धार्मिक और आर्थिक दशा का व्यापक विवरण प्रस्तुत किया है।

(iv) **तिब्बती लेखक–** तिब्बती लेखकों में बौद्ध लामा तारानाथ का विवरण ऐतिहासिक महत्व रखता है। इन्होंने अपनी पुस्तकों 'कंग्युर' तथा 'तंग्युर' में मौर्यकाल तथा उसके बाद की घटनाओं का वर्णन किया है।

(v) **मुस्लिम लेखक–** इब्न खुर्दबा (नवीं शताब्दी) नामक अरब लेखक ने भारतीय समाज और व्यापारिक मार्गों का उल्लेख अपनी पुस्तक 'किताबुल मसालिक उल मुमालिक' में किया है। मुस्लिम इतिहासकार अबूरेहान अलबरूनी ने अपनी पुस्तक तहकीक-ए-हिन्द में ग्यारहवीं शताब्दी के भारत की दशा पर विस्तृत प्रकाश डाला है। इसके बाद अलउतबी (तारीख-ए-यामिनी अथवा किताबुल-यामीनी), मीर मुहम्मद मासूम (तारीख-ए-सिन्ध), अलबिलादुरी, सुलेमान (सिलसिला उत्तावारीख) अलमसूदी (गुरुजुला-जहाब), मिनहाज-उस-सिराज(तबकात-ए-नासिरीहसन निजामी (ताजुल-मासिर), जियाउददीन बरनी (तारीख-ए-फिरोजशाही), शम्सेसिराज अफीक (तारीख-ए-फिरोजशाही), निजामुददीन अहमद (तबकात-ए-अकबरी) फरिश्ता (तारीख -ए-फरिश्ता), हसामी(फुतूह उस सलान्तीन), यहिया बिन अहमद (तारीख-ए-मुबारकशाही) अहमद यादगार (तारीख-ए-सलातीन-ए-अफगाना), अमीर खुसरो (किरात-उस-सादेन, मिफ्ता-उल-फुतूह, नूहे सिपेहर, खजान-उल फुतूह, तुगलक नामा) आदि के विवरण भी ऐतिहासिक दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं। मध्यकाल में अब्दुर्रज्जाक, इनिकोलोकोण्टी, लुडविगो डी बारथेमा (1502-08 ई), पेइज (1509-29 ई०) और नूनिज ने अपने यात्रा संस्मरणों में विजयनगर साम्राज्य का बहुत ही सुन्दर वर्णन किया है। इब्नबतूता का विवरण (रेहला) भी ऐतिहासिक दृष्टि से कम महत्वपूर्ण नहीं है।

उपर्युक्त विवरण के आधार पर यह स्पष्ट होता है कि प्राचीन भारतीय इतिहास जानने के लिए ऐतिहासिक स्रोतों का अभाव नहीं है। विभिन्न साहित्यिक तथा पुरातात्विक साधनों से प्राचीन भारतीय इतिहास पर व्यापक प्रकाश पड़ता है। आज भी पुरातत्व विभाग के द्वारा ऐतिहासिक स्थलों का उत्खनन जारी है।

उत्खनन (खुदाई कार्य) में प्राप्त सामग्री प्राचीन भारत का स्पष्ट चित्र प्रस्तुत करने में सहायक हो रही है। वस्तुत: कुछ विदेशी विद्वानों और इतिहासकारों का यह मत कि प्राचीन भारतीयों में इतिहास लेखन की क्षमता का अभाव था और प्राचीन भारतीयों में इतिहास लेखन की क्षमता का अभाव था और प्राचीन भारतीय इतिहास 'अन्धकार युग' का नितान्त असत्य है। निस्सन्देह ऐसा लगता है कि इन विद्वानों और इतिहासकारों ने भारतीय ऐतिहासिक स्रोतों का गहन अध्ययन तथा मनन नहीं किया हैं।

4. सिक्कों का इतिहास निर्माण में क्या महत्व है?

उ०– प्राचीन भारतीय इतिहास की जानकारी प्राप्त करने में सिक्कों का विशेष महत्व है। सिक्कों से राजाओं के नाम, वंश-परम्परा धर्म एवं राजचिन्ह और गौरवपूर्ण कृत्यों का ज्ञान प्राप्त होता है। भारतीय इतिहास की प्राचीनतम मुद्राएँ आहत मुद्राएँ हैं जिन पर कोई लेख नहीं मिलते हैं। समुद्रगुप्त को कुछ सिक्कों पर वीणा वादन करते दिखाया है जो उसकी संगीत में रूचि प्रकट करता है सिक्कों से ही हमें ज्ञात होता है कि कुमारगुप्त का राजचिह्न गरुड़ न होकर मयूर था।

सिक्कों में धात्विक शुद्धता के आधार पर राज्य की आर्थिक स्थिति का ज्ञान किया जा सकता है। विदेशों के सिक्के यहाँ प्राप्त होने एवं प्राचीन भारतीय नरेशों के सिक्कों के विदेशों में प्राप्त होने से उन देशों के साथ हमारे व्यापारिक संबंधों की पुष्टि होती है। सिक्कों के अन्तर्गत यूनानी, गुप्तकालीन और कुषाणकालीन सिक्के सर्वाधिक महत्वपूर्ण हैं। सिक्के इतिहास निर्माण करते हैं क्योंकि इनसे हमें तत्कालीन शासकों, धर्म, भारत तथा विदेशों के संबंध आदि की जानकारी प्राप्त होती है इस दृष्टि से सिक्के अत्यंत महत्वूपर्ण हैं।

5. विदेशी लेखकों व यात्रियों के विवरणों से हमें प्राचीन भारत को जानने में क्या सहायता मिलती है?

उ०– उत्तर के लिए विस्तृत उत्तरीय प्रश्न संख्या– 3 के उत्तर का अवलोकन करें।

6. भारतीय इतिहास के साधनों की समीक्षा कीजिए।

उ०– उत्तर के लिए विस्तृत उत्तरीय प्रश्न संख्या– 1, 2 व 3 के उतर का अवलोकन कीजिए।

7. प्राचीन भारतीय इतिहास के अध्ययन के लिए सिक्कों के महत्व का वर्णन करें।

उ०– उत्तर के लिए विस्तृत उत्तरीय प्रश्न संख्या– 4 के उत्तर का अवलोकन करें।

8. प्राचीन भारतीय इतिहास के मुख्य स्त्रोतों का वर्णन कीजिए।

उ०– उत्तर के लिए विस्तृत उत्तरीय प्रश्न संख्या– 1, 2 व 3 के उत्तर का अवलोकन करें।

2

भारतीय एकता के आधारभूत सिद्धान्त
(Basic Principles of Unity of India)

अभ्यास

निम्नलिखित तिथियों के ऐतिहासिक महत्व का उल्लेख कीजिए–

1. सन् 1958
2. सन् 1961
3. सन् 1965
4. सन् 1968
5. सन् 1970
6. सन् 1976
7. सन् 1976
8. सन् 1980
9. सन् 1986
10. सन् 1991
11. सन् 2005

उ०– उत्तर के लिए पाठ्यपुस्तक के पृष्ठ संख्या– 23 पर तिथि सार का अवलोकन करें।

सत्य या असत्य बताइए–

उ०– प्रश्नोत्तर के लिए पाठ्यपुस्तक के पृष्ठ संख्या– 24 का अवलोकन कीजिए।

बहुविकल्पीय प्रश्न

उ०– प्रश्नोत्तर के लिए पाठ्यपुस्तक के पृष्ठ संख्या– 24 का अवलोकन कीजिए।

अतिलघु उत्तरीय प्रश्न

उ०– प्रश्नोत्तर के लिए पाठ्यपुस्तक के पृष्ठ संख्या– 24 का अवलोकन कीजिए।

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. भारत की एकता के आधारभूत सिद्धान्त क्या हैं?

उ०– भारतीय एकता के आधारभूत सिद्धान्त निम्नलिखित हैं–

(i) राजनीतिक एकता– सम्पूर्ण देश राजनीतिक दृष्टि से एक इकाई है तथा देश के सभी प्रान्त या राज्य एक ही संविधान की सम्प्रभुता को स्वीकार करते हैं।

(ii) सामाजिक एकता–समाज के किसी वर्ग-विशेष या जाति-विशेष को विशिष्ट महत्व या दर्जा प्राप्त नहीं है। सभी जातियों और वर्गों के व्यक्ति एक समान हैं।

(iii) धार्मिक एकता–देश के सभी धर्मों को समान महत्व प्रदान किया जाता है। भारतीय संविधान में किसी धर्म-विशेष को अनावश्यक महत्व नहीं दिया गया है और देश को एक धर्म-निरपेक्ष राष्ट्र घोषित किया गया है।

(iv) सांस्कृतिक एकता–संविधान में भाषा, लिंग, सम्प्रदाय आदि के आधार पर लोगों के साथ किसी प्रकार का भेदभाव नहीं किया गया है। राष्ट्रभाषा हिन्दी के साथ ही सभी प्रान्तीय भाषाओं को भी समान रूप से महत्व दिया गया है।

2. भारत में सभी धर्मों का मूल उद्देश्य क्या है?

उ०– भारत के अनेक धार्मिक सम्प्रदायों के दार्शनिक और नैतिक सिद्धान्तों में मूलभूत एकता है। भारत के सभी धर्मों के मूल सिद्धान्तों में एकरूपता, विभिन्न धर्मों में प्रचलित प्रथाओं में समानता तथा आन्तरिक समन्वय की भावना देश की धार्मिक एकता को प्रकट करती है।

3. भारत की मौलिक एकता के विषय में आप क्या समझते हैं?

उ०– मौलिक एकता के निम्नलिखित शीर्षक हैं जैसे– भारत की मौलिक एकता का आभास हमें इससे ही हो जाता है कि इसका नाम भारत वर्ष अथवा भारत की भूमि, महाकाव्यों एवं पुराणों में इस पूरे भारतवर्ष को दिया गया है तथा इसके निवासियों को भारत की सन्तति अथवा भारत के वंशज कहा गया है।

4. भारत की समन्वय शक्ति पर प्रकाश डालिए?

उ०– भारतीय संस्कृति की सजीवता और सक्रियता का रहस्य उसकी समन्वय शक्ति में निहित है। **प्रो० डाडवेल** के कथनानुसार भारतीय संस्कृति महासमुद्र के समान है जिसमें अनेक नदियाँ आकर विलीन होती रही हैं। भारतीय संस्कृति की यह गृहणशीलता तथा समन्वय की प्रवृत्ति आज संसार के लिए वरदान है।

5. भारत की भौगोलिक विभिन्नता व एकता पर टिप्पणी कीजिए?

उ०– भारत एक विशाल देश है इसलिए यहाँ व्यापक रूप से भौगोलिक विभिन्नता पाई जाती है। भारत में कहीं पर हिमालय की उच्च पर्वतश्रेणियाँ तो कहीं बड़े मरूस्थल तो कहीं पर भारत में अनेक रंग रूप के निवासी पाए जाते हैं। भारत नि:सन्देह एक भौगोलिक ईकाई है। भारतीयों को प्राचीन काल से ही भौगोलिक एकता का ज्ञान है, जिस समय से आर्य सभ्यता सारे देश में फैल गई।

6. भारतीय संस्कृति की विशेषताओं पर टिप्पणी कीजिए?

उ०– भारत की विभिन्नताओं में ही उसकी एकता निहित है। भारतीय संस्कृति की प्रमुख विशेषताएँ हैं–

(1) आध्यात्मिकता और धर्मप्रधानता, (2) प्राचीनता और समन्वय शक्ति

भारतीय संस्कृति महासमुद्र के समान है जिसमें अनेक नदियाँ आकर विलीन होती रही हैं। आज विश्व में अनेक प्रकार की विचारधाराओं, आदर्शों तथा संस्कृतियों का संघर्ष चल रहा है इसके सफल समन्वय द्वारा ही एक विश्व समाज का निर्माण किया जा सकता है।

7. भारत में व्याप्त धार्मिक एकता पर टिप्पणी कीजिए?

उ०– भारत में व्याप्त धार्मिक एकता का मुख्य उदाहरण है। भारत के प्राचीन धर्मग्रन्थ, जैसे– वेद, पुराण, गीता आदि की सर्वत्र पूजा होती रही है, मन्दिर व धर्मस्थल प्राचीन समय से सम्पूर्ण देश में समान रूप से स्थापित किए जाते रहे हैं।

विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

1. भारतीय संस्कृति की विशेषताओं का विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिए?

उ०– विभिन्नताओं में एकता– भारत को विभिन्नताओं का देश कहा जाता है। विशाल देश होने के कारण भारत में अनेक प्रकार की प्राकृतिक भौगोलिक एवं सामाजिक विविधता देखने को मिलती है एकता का मूल स्रोत 'भारतीय संस्कृति' है। विभिन्नता में एकता भारतीय संस्कृति का मूल मंत्र रहा है।

प० जवाहरलाल नेहरू के अनुसार– ''जब से सभ्यता का सूर्य उदित हुआ है, तभी से भारत के मस्तिष्क पर एकता की भावना ने अधिकार कर लिया है। यह मौलिक एकता किसी भी प्रकार बाहर से थोपी गई वस्तु नहीं है यह आन्तरिक एकता भारत की आत्मा में समाई हुई है।

(i) भौगोलिक विभिन्नता में एकता– भारत एक विशाल देश है, भारत में हिमालय के समान उच्च पर्वतश्रेणियाँ हैं और दक्षिण के पठार जैसा भाग भी है कहीं भरे उपजाऊ मैदान तो कहीं बड़े-बड़े मरूस्थल हैं भारत में कहीं अत्यधिक उष्ण जलवायु तो कहीं अत्यधिक शीत जलवायु पाई जाती है। कहीं पर वर्षा का वितरण असमान है, तो कहीं पर जनसंख्या सघन तो कहीं विरल। विशाल देश होने के कारण भारत में अनेक रंग रूप के निवासी भी पाए जाते हैं। सिन्धु और गंगा के मैदानी भागों में बहुत अच्छी कृषि होती है। अनेक विभिन्नताओं के होते हुए भी भारत में भौगोलिक और मौलिक एकता है।

आर०सी० मजूमदार के अनुसार– ''भारत की भौगोलिक एकता का आभास हमें इससे ही हो जाता है कि इसका नाम भारतवर्ष अथवा भारत की भूमि महाकाव्यों एवं पुराणों में इस सम्पूर्ण देश को दिया गया है तथा इसके निवासियों को भारत की सन्तति अथवा वंशज कहा गया है।''

(ii) राजनीतिक विभिन्नता में एकता–प्राचीलकाल से ही इस भूखण्ड को दिया गया नाम भारतवर्ष यह सिद्ध करता है कि भारतवर्ष एक देश है यहाँ के निवासियों को 'भारत सन्तति' कहकर भारतीय धर्मग्रन्थों में सम्बोधित किया गया है।

प्राचीनकाल से लेकर आधुनिक काल तक सभी शासकों का उद्देश्य भारत को राजनीतिक एकता के सूत्र में बाँधना रहा है। प्राचीनकाल में चन्द्रगुप्त मौर्य, समुद्रगुप्त आदि सम्राटों ने चक्रवर्ती सम्राट बनने का प्रयत्न करके समस्त शासकों को अपने अधीन रखकर देश में राजनीतिक एकता स्थापित की। इसी प्रकार, मध्यकाल में अलाउद्दीन खिलजी और अकबर जैसे शासकों ने सम्पूर्ण भारत को एकता के सूत्र में बाँधने का सफल प्रयास किया और इसके बाद अंग्रेजों ने भारत को एक राजनीतिक इकाई के रूप में संगठित करने में पूर्ण सफलता प्राप्त की।

(iii) जातिगत विभिन्नता में एकता– भारत में अनेक जातियाँ निवास करती हैं। प्राचील काल में आर्य, द्रविड शबर, पुलिन्द तथा मंगोल जातियों ने भारत को अपना निवास-स्थान बनाया। फिर यवन, हूण, शक, पल्लव आदि जातियाँ भारत में आई। मध्यकाल में अरब, तुर्क पठान और पन्द्रहवीं शताब्दी में यूरोपीय जातियों ने भारत में प्रवेश किया। इस प्रकार भारत विभिन्न जातियों का अजायबघर बन गया। दीर्घकाल तक एक साथ रहने के कारण इन विभिन्न जातियों के मध्य सांस्कृतिक सामंजस्य हुआ, फलस्वरूप एक मिली-जुली संस्कृति का अंकुर फूटा, जो कालान्तर में पल्लवित होकर एक विशाल वृक्ष बन गया। यही विशाल वृक्ष जातिगत अनेकता में एकता का प्रतीक बन गया।

(iv) आर्थिक विभिन्नता में एकता– भारत में अनेक प्रकार की आर्थिक विषमताएँ दृष्टिगोचर होती हैं। यहाँ कुछ व्यक्ति अत्यधिक धनी हैं तो कुछ व्यक्ति अत्यन्त निर्धन। व्यवसाय, व्यापार, वाणिज्य, उद्योग आदि की दृष्टि से भी यहाँ अनेक प्रकार की विविधताएँ दृष्टिगोचर होती हैं। परन्तु फिर भी सूक्ष्म दृष्टि से अवलोकन करने पर विदित होता है कि इस आर्थिक विभिन्नता में भी एकता निहित है। भारत एक कृषिप्रधान देश है। यहाँ की 70 प्रतिशत जनता कृषि करती है। अत: अधिकांश जनता की आर्थिक समस्याएँ एकसमान हैं और उनके आर्थिक जीवन-स्तर में भी पर्याप्त समानता मिलती है।

(v) धार्मिक विभिन्नता में एकता– भारत विभिन्न धर्मों का संग्रहालय कहा जाता है। भारत में हिन्दू, जैन, इस्लाम, पारसी,

सिक्ख आदि धर्म विद्यमान हैं। प्रत्येक धर्म की अनेक शाखाएँ और सम्प्रदाय भी हैं, लेकिन इसके उपरान्त भी भारत में धार्मिक एवं मौलिक एकता विद्यमान रही है। इसके प्रमुख कारण निम्नलिखित हैं—

(क) समस्त धर्मों के मूल सिद्धान्त लगभग एक समान हैं। देश के समस्त धर्म पवित्र आचरण पर विशेष बल देते हैं।

(ख) विभिन्न धर्मों की प्रचलित प्रथाओं में भी काफी समानता पायी जाती है।

(ग) समस्त धर्मों में आन्तरिक समन्वय की भावना पाई जाती है।

(घ) समस्त धर्म मानव कल्याण को महत्व देते हुए मनुष्यों को समान समझने का उपदेश भी देते हैं।

(vi) सांस्कृतिक विभिन्नता में एकता– भारत में अनेक सांस्कृतिक विभिन्नताएँ भी दिखाई देती है। भारत में लगभग 200 भाषाएँ प्रचलित हैं, जिनमें केवल 22 भाषाओं को संवैधानिक मान्यता प्राप्त है। लेकिन उत्तर भारत की हिन्दी, मराठी, सिन्धी, पंजाबी, बंगला, असमिया आदि सभी भाषाओं का उदगम आर्यों की संस्कृत भाषा का ही अंग है। इन समस्त भाषाओं की लिपियाँ भी भिन्न-भिन्न हैं। विभिन्न धर्मवलम्बियों व जातियों के होने पर भी भारत की संस्कृति विविध सम्प्रदायों तथा जातियों के आचार-विचार, विश्वास और आध्यात्मिक साधना का समन्वय है। यह संस्कृति वैदिक, बौद्ध, जैन, हिन्दू, मुस्लिम और आधुनिक संस्कृतियों के सम्मिश्रण से बनी है।

इन विभिन्नताओं के होते हुए भी भारत में एक अटूट सांस्कृतिक एकता पायी जाती है क्योंकि—

(क) इस देश की सभी भाषाएँ संस्कृत, द्रविड आदि प्राचीन भाषाओं से ही बनी है।

(ख) भारत की सभी कलाओं पर आध्यात्मिकता की छाप है।

(ग) यहाँ की वेशभूषा और खान-पान आदि में भी एक विचित्र प्रकार की एकता दृष्टिगोचर होती है।

(घ) समाज का निर्माण इतने उच्च आदर्शों को लेकर हुआ है कि समाज में आपसी सम्बन्ध परिवार के सदस्यों की भाँति सहयोग व स्नेह की भावना पर आधारित है। भारतीय समाज की विविधता में एकता विश्व में एक अनोखा उदाहरण है।

उपर्युक्त विवरण के आधार पर स्पष्ट होता है कि भारत कही विभिन्नताओं में एक आधारभूत मौलिक एकता निहित है जो अनेक प्रकार की विभिन्नताओं के होते हुए भी कभी समाप्त नहीं हो सकती है। प्राचीन काल से ही भारत में इस प्रकार की 'अनेकता में एकता' विद्यमान रही है। अत: यह कहना कि भारतवर्ष में वशं, वर्ण, भाषा, वेशभूषा व रीति-रिवाज सम्बन्धी अनेक विभिन्नताओं में भी एक स्थायी एकता परिलक्षित होती है। निश्चित रूप से भारत की मौलिक एकता भारतीय संस्कृति की विशेषता है।

2. भारत की भौगालिक एकता भारतीय संस्कृति की मुख्य विशेषता है। स्पष्ट कीजिए।

उ०– उत्तर के लिए विस्तृत उत्तरीय प्रश्न संख्या— 1 के उत्तर अवलोकन करें।

3. भारत की आधारभूत एकता को स्पष्ट कीजिए।

उ०– भारत की आधारभूत एकता– गहनता और गम्भीरता से विचार करने पर हमें ज्ञात होगा कि उपर्युक्त वर्णित विभिन्नताओं के होते हुए भी भारत में एक आधारभूत एकता विद्यमान है। भारतीय सांस्कृतिक एकता भी वास्तविक सार्वभौमिकता पर ही आधारित है। यह अखण्ड एकता भारत के क्रमबद्ध इतिहास के अध्ययन से प्रत्येक क्षेत्र में दिखाई देती है, यह तथ्य निम्नलिखित विवरण से स्पष्ट हो जाएगा।

(i) भौगोलिक एकता– भारत की भौगोलिक एकता को विष्णु पुराण से उद्धृत श्लोक द्वारा समझ जा सकता है—

उत्तरंयत् समुद्रस्य हिमाद्रेश्चैव दक्षिणम् ।
वर्ष तद भारत नाम भारती यत्र सन्ततिः॥

अर्थात् समुद्र के उत्तर में तथा हिमालय के दक्षिण में जो देश स्थित है वह भारत नाम का खण्ड है, जहाँ राजा भरत के वंशज रहते हैं। भौगोलिक दृष्टि से भारत की व्याख्या एक देश के रूप में की जा सकती है क्योंकि स्वयं प्रकृति ने भारत को निश्चित प्राकृतिक सीमाएँ प्रदान की हैं।

भारत की भौगोलिक एकता के विषय में सर हर्बर्ट रिजले ने लिखा है, ''भारत ने दर्शक को भौतिक क्षेत्र में और सामाजिक रूप में भाषा, आचार और धर्म की जो विविधता दिखाई देती है, उसकी तह में हिमालय से कन्याकुमारी तक एक आन्तरिक एकता है।

प्राचीनकाल से ही भारत के विभिन्न पर्वतों एवं नदियों का उल्लेख कर धार्मिक ग्रन्थों ने भारत की एकता को बल दिया। एक प्राचीन श्लोक की समस्त नदियों का नाम वर्णित है। एक अन्य श्लोक में भारत की अखण्डता, एकता का प्रतिपादन किया गया है। भारत के बुद्धिजीवियों और धार्मिक नेताओं ने भी भारत की इस भौगोलिक एकता को स्वीकार किया है।

आर० सी० मजूमदार इस संबंध में लिखते है, ''भारत की मौलिक एकता का आभास हमें इससे ही हो जाता है कि इसका नाम भारतवर्ष अथवा भारत की भूमि, महाकाव्यों एवं पुराणों में इस सम्पूर्ण देश को दिया गया है तथा इसके निवासियों को भारत की सन्तति अथवा भरत के वंशज कहा गया है।

स्मिथ जैसे आलोचक इतिहासकार ने भी यह माना है, ''भारत नि:सन्देह एक स्वतंत्र भौगोलिक इकाई है, जिसका एक नाम होना सर्वथा ठीक ही है।'' सभी भूगोल विशारद यह मानते है कि अनेकानेक भौगोलिक विषमताओं के होते हुए भी अनेक लक्षण भारत को अन्य समीपवर्ती देशों से स्पष्टतया विभक्त कर देते हैं। भारतीयों को प्राचीनकाल से ही इस भौगोलिक एकता का ज्ञान है। जिस समय से आर्य सभ्यता सारे देश में फैल गई, तब से इस भौगोलिक एकता के ज्ञान के चिह्न हमारे धार्मिक और लौकिक साहित्य में मिलते हैं।

(ii) राजनीतिक एकता– कुछ विद्वानों का मत है कि यह देश केवल अंग्रेजी शासन के अर्न्तगत ही एक सूत्र में बँध सका, इससे पूर्व नहीं। यह कथन ऐतिहासिक दृष्टि से सही नहीं है।

प्राचीनकाल से ही इस भूखण्ड को दिया गया 'भारतवर्ष' नाम यह सिद्ध करता है कि भारतवर्ष एक देश है। यहाँ के निवासियों को 'भारत सन्तति' कहकर भारतीय धर्मग्रन्थों मे सम्बोधित किया गया है।

यद्यपि प्राचीनकाल में देश की विशालता और यातायात के सुगम साधनों के अभाव में पूर्ण राजनीतिक एकता स्थापित नहीं हो सकी, परन्तु प्राचीन भारतवासी देश में राजनीतिक एकता और केन्द्रीकरण के आदर्श एवं संस्थाओं से भली-भाँति परिचित थे।

सम्राटों ने दिग्विजय की नीति के द्वारा इस देश पर एकछत्र साम्राज्य स्थापित करने का प्रयास किया। मध्य युग में भी अलाउद्दीन खिलजी, अकबर और औरंगजेब तथा मराठा के पेशवाओं ने भी भारत को राजनीतिक दृष्टि से एक किया। उन्होंने सारे साम्राज्य का शासन संचालन केन्द्र से किया। मुगलों के समय में एक-सी शासन व्यवस्था, एक-से कानून, एक ही राजभाषा थी। आधुनिक युग में ब्रिटिश शासन के अन्तर्गत यह राजनीतिक एकता अधिक दृढ़ हो गई। इसी एकता और राष्ट्रीय भावना के आधार पर विभिन्न प्रान्तों के निवासियों ने संगठित होकर देश के राष्ट्रीय आन्दोलनों में सक्रिय भाग लिया। स्वतंत्रता की प्राप्ति के बाद तो एक-सी शासन व्यवस्था, कानून और संविधान के द्वारा यह राजनीतिक एकता और भी अधिक सुदृढ़ कर दी गई है।

(iii) सांस्कृतिक एकता–अनेक धर्मों के मानने वालों व जातियों के होने पर भी भारत की सांस्कृतिक एकता प्राचीलकाल से रही है। भारतीय संस्कृति विविध सम्प्रदायों तथा जातियों के आचार-विचार, विश्वास और आध्यात्मिक साधन का समन्वय है। यह संस्कृति वैदिक, बौद्ध, जैन, हिन्दू, मुस्लिम और आधुनिक संस्कृतियों के सम्मिश्रण से बनी है।

इस संबंध में मत व्यक्त करते हुए हुमायूँ कबीर ने लिखा है— ''भारतीय संस्कृति की कहानी एकता, साधनों का समन्वय तथा प्राचीन परम्पराओं से पूर्ण संयोग की उन्नति की कहानी है। यह प्राचीलकाल से अब तक निरन्तर चली आ रही है। भारतीय लोग भारत को सार्वभौमिक सत्ता के रूप में देखते हैं। जिस प्रकार मन्दिर का बाहरी रूप ही दर्शक से श्रद्धा उत्पन्न कर देता है, चाहे उसके अन्दर कोई भी प्रतिमा स्थापित न हो, उसी प्रकार अनेक विभिन्नताओं के होते हुए भी भारत की एकता भारतीयों को सदैव ही अपनी ओर आकर्षित करती आई है।''भारत के समस्त भाषाओं के साहित्य में आधारभूत एकता स्पष्ट से प्रदर्शित होती है। भाषायी एकता के विषय में प्रसिद्ध विद्वान मेहचन्द महाजन का कथन है, ''भारत मे रहने वाले सभी लोगों की संस्कृति एक समान विरासत रही है। विद्वान इसी के माध्यम से अपने विचारों का आदान-प्रदान करते थे।'' भारत में सांस्कृतिक विचारों का आदान-प्रदान संस्कृत भाषा के माध्यम से ही हुआ। यद्यपि प्रारम्भिक जैव व बौद्ध मतावलम्बियों ने क्रमश: प्राकृत और पालि भाषा को अपने उपदेशों का मुख्य माध्यम बनाया था, लेकिन प्रसार की दृष्टि से बाद में उन्हें भी संस्कृत भाषा को अपनाना पड़ा। राजनीतिक शासन-तन्त्र में भी संस्कृत भाषा का प्रयोग होता था। अत: यह अन्तरप्रान्तीय उपयोग की भाषा थी। देश की विविध भाषाओं हिन्दी, मराठी, गुजराती, बंगला, पंजाबी आदि का मूल सोत्र संस्कृत ही रहा है। दक्षिण की तमिल, तेलुगु, मलयालम, कन्नड़ भाषाओं पर भी संस्कृत का अधिक प्रभाव है। इस प्रकार संस्कृत ने प्रान्त, जाति सम्प्रदाय और बोली आदि का अतिक्रमण कर भारतीयों को एक सांस्कृतिक सूत्र में बाँधने में महान योगदान दिया।

(iv) धार्मिक एकता– भारतीय धर्मग्रन्थों का प्रचार व प्रसार सदैव से ही उत्तर से दक्षिण की ओर रहा है। यही भारतीय धार्मिक एकता का मुख्य उदाहरण है। भारत के प्राचीन धर्मग्रन्थों— वेद, पुराण, गीता आदि की सर्वत्र पूजा होती है। मन्दिर व धर्मस्थल प्राचीन सम्पूर्ण देश में समान रूप से स्थापित किए जाते रहे हैं।

रामायण और महाभारत को जिस प्रकार उत्तर भारत में श्रद्धा की दृष्टि से देखा जाता है, उसी प्रकार तमिल और तेलुगु भाषा-भाषी क्षेत्रों में भी उन्हें उतना ही सम्मान प्राप्त है। भारत के अनेक धार्मिक सम्प्रदायों के दार्शनिक और नैतिक सिद्धान्तों में मूलभूत एकता है। एकेश्वरवाद, आत्मा का अमरत्व, कर्म, पुर्नजन्म, मोक्ष, निवाण, भक्ति, योग, बोधिसत्व और तीर्थंकर आदि प्राय: सभी धर्मों की निधि है। धार्मिक कर्मकाण्ड और संस्कारों में भी कुछ समानता है। हजारो वर्षों से समान रूप से प्रवाहित होने वाले धर्म एवं सस्कृति की धारा भारत तथा चीन के अतिरिक्त संसार में कही और नहीं देखी जा सकती। इस प्रकार भारत के सभी धर्मों के मूल सिद्धान्तों में एकरूपता, विभिन्न धर्मों में प्रचलित प्रथाओं में समानता तथा आन्तरिक समन्वय की भावना देश की धार्मिक एकता को प्रकट करती है। धार्मिक सहिष्णुता हिन्दू धर्म की प्रमुख विशेषता

है, इसके कारण ही बाहर के देशों से आने वाले धर्मों को हिन्दू धर्म स्वयं में आत्मसात करने में सफल हो सका। आज भी हिन्दू धर्म की विशाल उदारता में आस्तिक, नास्तिक, मूर्तिपूजक, निराकार ब्रह्म के उपासक, वैदिक ग्रन्थों के अनुयायी, जैनी, बौद्ध, गुरुद्वारा साहिब, अवेस्ता, कुरान आदि पर आस्था रखने वाले धर्मावलम्बियों को सँभालने की शक्ति है। इस प्रकार की उदार हृदयता विश्व में अन्यत्र दुर्लभ है। जब-जब हिन्दू धर्म पर कोई संकट आया, धर्म-सुधार द्वारा हिन्दू धर्म ने अपने को जीवित बनाए रखा।

4. ''भारतीय संस्कृति एक मिश्रित संस्कृति है।'' इस कथन की विवेचना कीजिए।

उ०– उत्तर के लिए विस्तृत उत्तरीय प्रश्न संख्या–1 के उत्तर का अवलोकन करें।

5. भारत की मौलिक एकता उसकी विभिन्नताओं में निहित है। इस कथन की समीक्षा कीजिए।

उ०– उत्तर के लिए विस्तृत उत्तरीय प्रश्न संख्या–1 के उत्तर का अवलोकन करें।

6. भारतीय संस्कृति की मूलभूत विशेषताओं का वर्णन कीजिए।

उ०– भारतीय संस्कृति की विशेषताएँ– पाश्चात्य इतिहासकारों के अनुसार सांस्कृतिक विभिन्नताओं के कारण भारत को एक राष्ट्र कहना तर्कसंगत नहीं होगा। पश्चिमी इतिहासकार सर जान सीले के अनुसार ''भारतवर्ष विभिन्न भाषाओं, धर्मों, वर्णों, रीति-रिवाजों व जातियों का अजायबघर मात्र हैं।''परन्तु वास्तव में ऐसा नहीं है। भारत की विभिन्नताओं में ही उसकी एकता निहित है। भारतीय संस्कृति की विशेषताएँ निम्नलिखित हैं–

(i) आध्यात्मिकता और धर्मप्रधानता– भारतीय संस्कृति त्यागपरक है। इसका विकास तपोवनों एवं आश्रमों में हुआ है, अत: इसके चिन्तन पर आध्यात्मिकता की स्पष्ट छाप दिखाई पड़ती है। नाशवान पार्थिव शरीर की अपेक्षा आत्मा की अमरता तथा सर्वव्यापकता भारतीय दार्शनिक चिन्तन का विषय रहा है। भारतीय संस्कृति का मूल मंत्र है– सर्वे भवन्तु सुखिन:।
भारतीय विचारकों ने मानव-जीवन के चार पुरुषार्थों की कल्पना की है– धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। इनमें मोक्ष अन्तिम लक्ष्य है और अन्य तीन पुरुषार्थों में कर्म का प्रधान स्थान है। कतिपय पाश्चात्य विद्वानों ने भारतीय संस्कृति की धर्म-प्रधानता की आलोचना की है। उनका मत है कि भारतीय लोग धर्म में इतना खोए रहे है कि उन्होंने इस लोक के जीवन और समस्याओं की उपेक्षा की। जबकि ध्यान से देखने पर यह आलोचना निराधार प्रतीत होगी। चारों पुरुषार्थों में धर्म को प्रधान मानने पर भी अर्थ और काम की उपेक्षा नहीं की गई है। महाभारत का कथन है– जीवन में अर्थ और काम का इस प्रकार सेवन करो कि धर्म का उल्लंघन न हो। इस निर्देश द्वारा भारतीय संस्कृति ने जीवन के आध्यात्मिक और भौतिक पक्षों के बीच समन्वय स्थापित किया है, जो व्यक्तित्व के सर्वांगीण विकास के लिए आवश्यक है।

(ii) प्राचीनता– भारतीय संस्कृति का संसार की प्राचीनतम संस्कृतियों में प्रमुख स्थान है। हड़प्पा, मोहनजोदड़ो, लोथल आदि स्थानों में हुई खुदाई ने हमारे सामने जिस सभ्यता की झाँकी प्रस्तुत की है। उस सभ्यता का प्राचीन विश्व की मिस्र, सुमेर, बेबीलोन आदि नदी घाटी सभ्यताओं से सम्पर्क था। अधिकांश इतिहासकार इस सभ्यता का काल 3250 ई० पू० तक निश्चित करते हैं। इस तरह भारतीय सभ्यता का ज्ञात इतिहास इसे 5000 वर्ष से भी अधिक प्राचीन सिद्ध करता है।

(iii) समन्वय शक्ति– बाहरी तत्वों के साथ समन्वय की क्षमता तथा समयानुकूल परिवर्तन भारतीय संस्कृति के महत्वपूर्ण गुण है। इन्हीं गुणों ने इसे व्यापकता प्रदान की है। भारतीय संस्कृति की सजीवता और सक्रियता का रहस्य उसकी समन्वय शक्ति में निहित है। भारत में समय-समय पर अनेक विदेशी आक्रमणकारी यूनानी, शक, पल्लव, कुषाण, हूण आदि आए और उन्होंने यहाँ अपना राजनीतिक प्रभुत्व भी स्थापित किया। तथापि भारत ने इन विदेशियों पर सांस्कृतिक विजय प्राप्त की और उन्हें सदा के लिए अपनी ही गोद में समा लिया। महाभारत तथा मनुस्मृति के अध्ययन से विदित होता है कि भारतीय आचार्यों ने किस प्रकार अपनी सामाजिक व्यवस्था के नियमों को ढीला कर इन विदेशी लोगों को अपने समाज में स्थान दिया। मिलिन्द नामक यवन (ग्रीक) राजा ने बौद्ध मत ग्रहण कर लिया। यवनों की तरह शक, कुषाण, और हूणों का भी भारतीयकरण हो गया। शकों के दो राजवंश दक्षिण भारत में तथा दो उत्तर भारत में स्थापित हुए। दक्षिण में शकों ने वैदिक धर्म और उत्तर में शकों ने बौद्ध धर्म ग्रहण कर लिया। मन्दसौर के शिलालेख में हूण राजा मिहिरकुल के शैव मत का अनुयायी होने का उल्लेख मिलता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि हूणों तक इस देश में आने वाली सभी जातियाँ भारतीय संस्कृति में उसकी सहिष्णुतामय ग्राह्य क्षमता के कारण पूर्णतया समा गई। भारत में आकर इस्लाम का रूप भी बहुत बदल गया। आज विश्व में अनेक प्रकार की विचारधाराओं, आदर्शों तथा संस्कृतियों का संघर्ष चल रहा है। इनके सफल समन्वय द्वारा ही एक विश्व समाज का निर्माण किया जा सकता है। विश्व के समक्ष उपस्थित इस कठिन कार्य में समन्वयात्मक भारतीय संस्कृति निश्चय ही सही मार्ग दिखा सकती है।

3 सिन्धु घाटी सभ्यता (Indus Valley Civilization)

अभ्यास

निम्नलिखित तिथियों के ऐतिहासिक महत्व का उल्लेख कीजिए–

1. 1826 ई०	2. 1831 ई०	3. 1853 ई०	4. 1856 ई०
5. 1857 ई०	6. 1920 ई०	7. 1921 ई०	8. 1922 ई०
9. 1924 ई०	10. 1931 ई०	11. 1953 ई०	12. 1955 ई०
13. 1957 ई०	14. 1960-61 ई०	15. 1962 ई०	16. 1964 ई०
17. 1973 ई०			

उ०– उत्तर के लिए पाठ्यपुस्तक के पृष्ठ संख्या– 36 पर तिथि सार का अवलोकन करें।

सत्य या असत्य बताइए–

उ०– प्रश्नोत्तर के लिए पाठ्यपुस्तक के पृष्ठ संख्या– 37 का अवलोकन कीजिए।

बहुविकल्पीय प्रश्न

उ०– प्रश्नोत्तर के लिए पाठ्यपुस्तक के पृष्ठ संख्या– 37 का अवलोकन कीजिए।

अतिलघु उत्तरीय प्रश्न

उ०– प्रश्नोत्तर के लिए पाठ्यपुस्तक के पृष्ठ संख्या– 37 व 38 का अवलोकन कीजिए।

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. सिन्धु घाटी सभ्यता की नगर योजना पर टिप्पणी कीजिए।

उ०– सिन्धु घाटी सभ्यता की नगर योजना– मोहनजोदड़ों और हड़प्पा आदि नगर के अवशेषों के आधार पर यह ज्ञात होता है कि इस सभ्यता के निर्माता नगर और भवन के निर्माण कला में बहुत निपुण थे। सैन्धव सभ्यता के समय के नगरों का निर्माण सुनिश्चित योजना के अनुसार बनाए गए थे। नगरों में छोटी-बड़ी सड़कें बनी थीं जो एक दूसरे को समकोण पर काटती थीं। सड़कों के दोनो किनारों पर सुन्दर भवन बने हुए थे। सिन्धु घाटी सभ्यता के समय नगर और भवन निर्माण के साथ-साथ सार्वजनिक भवन एवं विशाल स्नानागार का भी निर्माण किया गया।

2. सिन्धु घाटी सभ्यता के धार्मिक जीवन पर प्रकाश डालिए।

उ०– सिन्धु घाटी सभ्यता के निवासी मूर्तिपूजक थे। मातृदेवी उनकी आराध्य देवी थी। वे पशुपति (शिव) की पूजा करते थे। वे विभिन्न प्राकृतिक शक्तियों जैसे सूर्य, अग्नि, जल आदि की उपासना भी करते थे। वृक्षों में पीपल की पूजा की जाती थी। पशु-पक्षियों की पूजा का भी प्रचलन था। अनेक मुहरों पर कूबड़ वाले साँड की आकृति अंकित है। जिससे यह अनुमान लगाया जाता है कि सिन्धुवासी इसे बहुत पवित्र मानते थे। इनके धार्मिक जीवन में पुरोहितों तथा योगियों का विशेष महत्व था। सिन्धु सभ्यता के निवासी पुनर्जन्म में भी विश्वास करते थे।

3. सिन्धु घाटी सभ्यता के दो प्रमुख केन्द्रों का परिचय दीजिए।

उ०– सिन्धु घाटी सभ्यता के दो प्रमुख केन्द्र हैं। हड़प्पा और मोहनजोदड़ो।

हड़प्पा– यह स्थान साहिवाल जिले (वर्तमान पाकिस्तान) में लाहौर तथा मुल्तान के बीच स्थित है। इसकी खुदाई 1921 ई० में दयाराम साहनी तथा माधवस्वरूप वत्स ने कराई थी। हड़प्पा से प्राप्त विशिष्ट अवशेषों में मृदभाण्ड, ताँबे और काँसे के उपकरण पकाई हुई ईंटों की आकृतियाँ तथा छोटी-बड़ी मोहरें शामिल हैं।

मोहनजोदड़ो– मोहनजोदड़ों की खोज 1922 ई० में राखालदास बनर्जी ने की थी। मोहनजोदड़ो (पाकिस्तान) के लरकाना जिले में हैं। जहाँ पर दो प्रमुख टीले मिले-दुर्ग टीला एवं नगर टीला-दुर्ग टीले के महत्वपूर्ण भवन है विशाल स्नानागार, अन्नागार एवं सभाभवन आदि और नगर टीला में नगर-निर्माण योजना भवन, मृदभाण्ड, मोहरें तथा अन्य कलाकृतियाँ आदि।

4. सिन्धु घाटी के निवासियों के मनोरंजन के साधनों का उल्लेख कीजिए।

उ०– सिन्धु घाटी के निवासियों को अमोद-प्रमोद से विशेष अनुराग था वे विभिन्न प्रकार के खेलों को अत्यधिक महत्व देते थे वे मुर्गों तथा अन्य पशुओं को लड़ाकर अपना मनोरंजन करते थे। इसके अतिरिक्त उस समय आखेट मछली पकड़ना, पशुओं के युद्ध, नृत्य व गायन तथा शतरंज आदि सिन्धुवासियों के मनोरंजन मुख्य साधन थे।

5. सिन्धु घाटी सभ्यता से प्राप्त विशाल स्नानागार की विशेषताएँ बताइए।

उ०– मोहनजोदड़ो की खुदाई में एक विशाल स्नानागार के अवशेष प्राप्त हुए हैं। यह बड़े चौकोर दालान में स्थित है। इसकी लम्बाई, चौड़ाई, और गहराई क्रमश: 30 फुट, 23 फुट और 8 फुट है। इस महत्वपूर्ण विशाल स्नानागार के चारों ओर कमरे और बरामदे भी बने हुए है इसमें प्रवेश के लिए सीढ़ियाँ भी बनी हुई हैं। इसमें पानी भरने और निकलने की उचित व्यवस्था है। स्नानागार के निकट एक कुआँ और एक हम्माम भी बना हुआ है जिसमें गर्म जल की व्यवस्था होती होगी। धार्मिक उत्सवों के अवसर पर विशाल स्नानागार का उपयोग किया जाता होगा।

6. हड़प्पा संस्कृति का आर्थिक पक्ष बताइए।

उ०– व्यापार हड़प्पावासियों की महत्वपूर्ण आर्थिक गतिविधि थी। व्यापार की मुख्य वस्तुएँ थीं– टिन, ताँबा, सोना, इमारती लकड़ी, चाँदी और बहुमूल्य पत्थर। हड़प्पा सभ्यता के लोग व्यापार के लिए मानक बाटों और पैमानों का प्रयोग करते थे।

7. हड़प्पा सभ्यता की दो प्रमुख विशेषताओं का उल्लेख कीजिए।

उ०– हड़प्पा सभ्यता की दो प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं–

(i) सार्वजनिक भवन– हड़प्पा में कुछ विशाल भवनों के अवशेष मिले हैं। ये भवन सार्वजनिक तथा राजकीय प्रतीत होते हैं। भवन में अनेक कमरे, बरामदे तथा स्नानागार हैं। इस भवन का उपयोग सार्वजनिक सभाभवन अथवा नगर संघ के कार्यालय के रूप में किया जाता था।

(ii) गृह निर्माण– इस सभ्यता में भवन निर्माण कला शिखर पर थी। भवन निर्माण कला की सभी विशेषताएँ– भव्यता, सरलता, विशालता, सहजता, आकर्षक, सुन्दरता, विविधता तथा उपयोगिता पूर्णत: दर्शनीय थीं।

8. सिन्धु सभ्यता की राजनीतिक व्यवस्था एवं प्रशासन का क्या स्वरूप था?

उ०– सिन्धु सभ्यता की राजनीतिक व्यवस्था एवं प्रशासन शान्तिपूर्ण राजनीतिक स्वरूप होने के कारण तत्कालीन निवासियों का जीवन सुख-समृद्धि से परिपूर्ण था।

मैके के अनुसार– मोहनजोदड़ो में एक प्रतिनिधि शासक शासन करता था।

ह्वीलर के अनुसार– मोहनजोदड़ो की शासन व्यवस्था धर्म गुरुओं और पुरोहितों के हाथों में केन्द्रित थी, जो जन-प्रतिनिधियों के रूप में कार्य करते थे।

9. सिन्धु सभ्यता की लिपि के बारे में आप क्या जानते हैं?

उ०– सिन्धु सभ्यता की खुदाई से प्राप्त हुई वस्तुओं से इस बात की जानकारी मिलती है कि सिंधु वासियों को लिखने का ज्ञान था दुर्भाग्यवश अभी तक सिन्धु लिपि को पढ़ा नहीं जा सकता। यह लिपि दाहिनी से बाईं ओर लिखी जाती थी। यह लिपि भाव-चित्रात्मक हैं। विद्वानों के अनुसार यह लिपि सुमेरिया और मिस्र की लिपियों की तुलना में अधिक उन्नत और परिष्कृत थी

10. हड़प्पा सभ्यता के पतन के दो कारणों का उल्लेख कीजिए।

उ०– हड़प्पा सभ्यता के पतन के निम्नलिखित कारण हैं–

(i) सिन्धु नदी की भयंकर बाढ़ के कारण यह सभ्यता जलप्लावित हो गई होगी तथा उसके अवशेषों पर बालू तथा मिटटी की तहें जम गई।

(ii) आर्यों तथा सिन्धुवासियों के मध्य भीषण युद्ध हुआ होगा, जिससे सिन्धुवासियों की पराजय हुई तथा इस सभ्यता का नाश हो गया।

(iii) सिन्धु प्रदेश में होने वाले जलवायु परिवर्तन के कारण इस सभ्यता का विनाश हो गया।

11. हड़प्पा संस्कृति का आर्थिक पक्ष बताइए।

उ०– सिन्धु घाटी सभ्यता के कलात्मक उदाहरण निम्न हैं–

(i) मूर्तिकला–सिन्धु निवासी मूर्तियाँ बनाने में बहुत कुशल थे जिसमें काँसे की बनी नर्तकी की मूर्ति विशेष उल्लेखनीय है, जिससे नर्तकी को कमर पर हाथ रखे त्रिभंगी मुद्रा में प्रदर्शित किया गया।

(ii) मोहर निर्माण कला– मोहरें सिन्धु सभ्यता की सर्वोत्तम कलाकृति है। इन मोहरों में सबसे प्रसिद्ध एवं प्रभावशाली पशुपति मोहर तथा वृषभ मोहर है।

(iii) लघु मृणमूर्तियाँ– मिट्टी को पकाकर बनाई जाने वाली लघुमृणमूर्तियों में नर, नारी, पक्षी, कुत्ते, भेड़, गाय, बैल, बन्दरों की मूर्तियाँ प्रमुख हैं।

(iv) लेखनकला– सिन्धु निवासी लेखन कला से भी परिचित थे तथा उनके अक्षर संकेतात्मक एवं चित्रप्रधान थे।

12. सिन्धु घाटी सभ्यता के लोगों की कलाप्रियता के चार उदाहरण बताइए।

उ०– सिन्धु घाटी की सभ्यता की चार कलात्मक विशेषताओं का विवरण निम्नलिखित हैं–

(i) वास्तुकला– हड़प्पा तथा मोहनजोदड़ों की वास्तुकला, नगर नियोजन तथा निर्माण कौशल सिन्धु सभ्यता के निर्माताओं की

महान उपलब्धियों का परिचायक है। नियोजित आधार पर बने विशाल भवनों, स्नानागार, भण्डारागार आदि के अवशेषों से उनकी स्थापत्य कला के क्षेत्र की प्रगति का पता चलता है।

(ii) मूर्तिकला– मूर्तिकला की विशिष्टता का ज्ञान कराने वाली पाषाण, ताम्र, मृण्मयी तथा मिटटी की असंख्य मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं। सिन्धु सभ्यता के अन्तर्गत मूर्तिकला की चार शैलियाँ प्रचलित थीं– (क) धातुओं को गर्म करके साँचों में ढालकर, (ख) ठप्पा लगाकर, (ग) मिट्टी की मूर्तियों को आग में तपाकर तथा (घ) छेनी द्वारा पत्थर का तक्षण करके। मोहनजोदड़ो से प्राप्त कांस्य नर्तकी, खड़िया मिट्टी की ध्यानमग्न योगी की मूर्ति तथा पत्थर की बनी शिरविहीन मूर्ति सैन्धव मूर्तिकला के सुन्दर उदाहरण हैं।

(iii) धातु निर्माण कला– सैन्धव लोग विविध धातुओं को गलाने, ढालने, काटने, मोड़ने तथा चिकना करने में दक्ष थे। उनकी धातुकलाकृतियों के ज्वलन्त उदाहरण खुदाई से मिले बकरी ,बत्तख, नर्तकियों के खिलौने, ताँबे के बने कूबड़दार बैल, सीसे की तश्तरी तथा सोने ,चाँदी ,हाथीदाँत और सीप के बने आभूषण हैं।

(iv) गुरिया (मनके) निर्माण कला– सिन्धु घाटी सभ्यता के अनेक केन्द्रों से सोनें, चाँदी, मिटटी, पाषाण, हाथीदाँत, सीसे घोघें आदि की गुरियाओं की प्राप्ति हुई। इन पर विभिन्न रंगों की पच्चीकारी तथा चमकदार पॉलिश की गई है। इन्हें देखकर ऐसा लगता है कि सिन्धुवासी गुरिया निर्माण कला में प्रवीण थे।

13. सैंधव कला की दो प्रमुख मूर्तियों का उल्लेख कीजिए।

उ०– सैधव कला की दो प्रमुख मूर्तियाँ हैं– सुन्दर साँड की मूर्ति जिससे उस समय पशु पूजा किए जाने का अनुमान किया जाता है और दूसरी नर्तकियों की काँसे की मूर्ति।

14. सिन्धु सभ्यता के निवासियों के धार्मिक जीवन पर प्रकाश डालिए।

उ०– उत्तर के लिए लघुउत्तरीय प्रश्न संख्या– 2 के उत्तर का अवलोकन कीजिए।

15. सिन्धु घाटी सभ्यता के दो प्रमुख स्थलों का परिचय दीजिए।

उ०– सिन्धु घाटी सभ्यता के दो प्रमुख स्थल निम्नलिखित हैं–

(i) मोहनजोदड़ो (पाकिस्तान– सिन्ध प्रान्त, लरकाना जनपद)

(ii) हड़प्पा (पाकिस्तान– मॉण्टगोमरी जनपद)

16. सिन्धु घाटी के निवासियों के दो प्रमुख देवताओं का संक्षिप्त विवरण दीजिए।

उ०– सिन्धु घाटी के निवासी मातृदेवी और पशुपति (शिवजी) की उपासना करते थे। मातृदेवी की अनेक छोटी-छोटी मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं जो माता अम्बा, काली तथा कराली की प्रतीक है। सैन्धव सभ्यता से अनेक ऐसे पत्थर भी प्राप्त हुए जो शिवलिंग के समान होने के कारण शिव-पूजा के परिचायक हैं।

17. सिन्धु सभ्यता के किन्हीं दो प्रमुख नगरों के नाम लिखिए।

उ०– उत्तर के लिए लघुउत्तरीय प्रश्न संख्या– 3 के उत्तर का अवलोकन करें।

18. हड़प्पा सभ्यता के विदेश व्यापार के सम्बन्ध में आप क्या जानते हैं?

उ०– मोहनजोदड़ों और हड़प्पा में हुए उत्खनन से ऐसी अनेक वस्तुएँ प्राप्त हुई है जो अन्य स्थलों से क्रय करके मँगाई जाती रही होंगी। सिन्धु निवासी सोना, चाँदी, टिन व सीसा ईरान तथा अफगानिस्तान से आयात करते थे। आभूषणों आदि में प्रयुक्त होने वाले बहुमूल्य पत्थरों का आयात बदख्शां से होता था। सिन्धु घाटी में सीपी, शंख, समुद्रफिन तथा मोती की आपूर्ति काठियावाड़ के समुद्री क्षेत्र से होती थी साथ ही राजपूताने (खेतड़ी) से ताँबा मँगाया जाता था।

विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

1. सिन्धु घाटी सभ्यता की प्रमुख विशेषताओं का वर्णन कीजिए।

उ०– सिन्धु घाटी सभ्यता की विशेषताएँ– सिन्धु घाटी की विशेषताओं का वर्णन निम्नलिखित शीर्षकों के अन्तर्गत किया जा सकता है–

(i) उच्चकोटि की नगरीय सभ्यता– सिन्धु घाटी सभ्यता एक नगर प्रधान सभ्यता थी। इसमें नागरिक जीवन के बहुमुखी विकास तथा उन्नति के समस्त उपकरण एवं प्रकरण उपलब्ध थे। **जॉन मार्शल के अनुसार–** ''सैन्धव घाटी का साधारण नागरिक जिस मात्रा में सुविधा तथा विलास का उपयोग करता था, उसकी तुलना तत्कालीन सभ्य संसार के अन्य भागों से नहीं की जा सकती। विशाल, सुनियोजित, साफ-सुथरे तथा नियोजित नगर ऐसी विशेषताएँ हैं, जिनका प्रयोग सिन्धु सभ्यता के नगर नियोजन के विषय में करने में इतिहासकार को तनिक भी संकोच नहीं होता है। सिन्धु सभ्यता के लोगों का रहन-सहन उनके श्रेष्ठ मानव-जीवन का प्रतीक है। उनके उद्योग-धन्धे, व्यापार वाणिज्य तथा बाहरी लोगों से सम्बन्ध सिन्धु घाटी सभ्यता की नियोजित आर्थिक व्यवस्था का परिणाम थे।''

पिक्चर लगाये (सैन्धव नगरों में नाली व्यवस्था, मोहनजोदड़ो)

नगर योजना– इस सभ्यता की एक अनूठी विशेषता सुनियोजित नगरों का निर्माण है। प्रत्येक नगर के पश्चिम में ईंटों से बने एक ऊँचे चबूतरे पर 'गढ़ी' या 'दुर्ग' का भाग बना मिलता है और इसके पूर्व में अपेक्षाकृत नीचे धरातल पर 'नगर भाग' प्राप्त होता है, जो जनसामान्य द्वारा निवसित होता था। गढ़ी में सम्भवतया शासक अथवा मुख्य पुरोहित का निवास होता था। नगर में चौड़ी-चौड़ी सड़कें पूर्व से पश्चिम एवं उत्तर से दक्षिण दिशा की ओर थीं जो प्राय: एक दूसरे को समकोण पर काटती थीं। मोहनजोदड़ों, हड़प्पा, चहूँदड़ो, कालीबंगा, लोथल, सुरकोतड़ा और बनवाली आदि नगरों के अवशेषों के आधार पर यह ज्ञात होता है कि इस सभ्यता के निर्माता नगर और भवन-निर्माण कला में बहुत कुशल थे। सैन्धव सभ्यता के नगर एक सुनिश्चित योजना के अनुसार बसाए गए थे। प्रमुख सड़कों से गलियाँ निकलती थीं, जो एक मीटर से दो मीटर तक चौड़ी थीं। मोहनजोदड़ों में एक 11 मीटर चौड़ी सड़क भी थी, जो सम्भवत: प्रमुख मार्ग रहा होगा। नगर की सभी सड़कें इस प्रमुख मार्ग से मिलती थीं। सड़कें प्रमुख तथा कच्ची थीं। केवल एक ऐसा उदाहरण मिलता है, जिसमें सड़क को पक्का करने का प्रयत्न किया गया प्रतीत होता है। कच्ची सड़कें होने के बाद भी सफाई का पूर्ण ध्यान रखा जाता था। मोहनजोदड़ों में एक सड़क के दोनों ओर कुछ चबूतरे बने हुए मिले हैं। अनुमान है कि चबूतरों पर दुकानें लगाई जाती थीं। दो सड़कों के मिलने वाले स्थल पर भोजनालय बने होते थे। मोहनजोदड़ों में इसके अवशेष प्राप्त हुए हैं। सड़क के किनारे पर नालियाँ होती थीं, जो पक्की एवं ढकी थीं।

इन नालियों के द्वारा गन्दा पानी नगर के बाहर पहुँचाया जाता था। इन नालियों में थोड़ी दूर पर शोषक कूप भी थे। ताकि कूड़े से पानी का बहाव रुक न सके। इस नगरीय सरकार के प्राधिकार अवश्य ही इतने सुदृढ़ रहे होंगे कि यह नगर नियोजन के उपनियमों का पालन करवा सकें।

(ii) सार्वजनिक भवन– मोहनजोदड़ों, हडप्पा तथा चहूँदड़ों में कुछ विशाल भवनों के अवशेष मिले हैं। ये भवन सार्वजनिक तथा राजकीय भवन प्रतीत होते हैं। मोहनजोदड़ो में मिली गढ़ी 10 मीटर से लेकर 20 मीटर तक की एक कृत्रिम पहाड़ी पर बनी है। बाढ़ की रक्षा के लिए इसके चारों ओर 21 मीटर चौड़ा बाँध बनाया गया था। इस गढ़ी में भी अनेक द्वार तथा मीनारें बनी हुई थीं। मोहनजोदड़ो की गढ़ी में एक विशाल भवन के अवशेष मिले हैं। इस भवन की लम्बाई 70 मीटर और चौडाई 24 मीटर है। इसकी बाहरी दीवार 2 मीटर चौड़ी भीतर का बरामदा 10×10 मीटर वर्गाकार है। भवन में अनेक कमरे, स्नानागार तथा बरामदे हैं। हड़प्पा में नदी के तट पर बनी गढ़ी 15 फुट ($4\frac{1}{2}$) ऊँची, 415 मीटर लम्बी तथा 165 मीटर चौड़ी है। इसकी बाहरी दीवार में अनेक द्वार थे तथा इसके ऊपर अनेक मीनारें बनी हुई थीं। इसके दक्षिणी कोने में आवागमन के लिए सीढ़ियाँ बनाई गई थीं। इसके अतिरिक्त एक अन्य विशाल भवन भी मिला है। इसकी लम्बाई 70 मीटर और चौड़ाई 24 मीटर है तथा इसकी दीवार डेढ़ मीटर चौड़ी है। इसमे दो विशाल आँगन, अनेक कक्ष तथा भण्डारागार थे। मोहनजोदड़ो का एक अन्य विशाल भवन वर्गाकार आकृति का है तथा इसका क्षेत्रफल 71× 71 मीटर है। इस भवन में विशाल प्रांगण है, जो बीस स्तम्भों पर टिका हुआ था। इस प्रांगण के चारों ओर अनेक स्थानों पर कुर्सियों के आकार की चौकियाँ बनी हुई हैं। हड़प्पा से एक भण्डारगार (गोदाम) के भग्नावशेष मिले हैं। इस विशाल भण्डारगार में बारह-बारह दीवारों के दो समूह हैं एक पूर्व की ओर तथा दूसरा पश्चिम की ओर । इन दोनों के बीच लगभग पाँच मीटर का अन्तर है। प्रत्येक भण्डारागार का मुख नदी की ओर है। इन भण्डारागारों के निकट कर्मचारियों और चौकीदारों के रहने के लिए छोटे-छोटे मकान बने हुए हैं। भण्डारागार से लगभग 85 मीटर दूरी पर दक्षिण दिशा में अनेक गोलाकार चबूतरे बने हुए हैं। तथा प्रत्येक चबूतरे का व्यास साढ़े तीन मीटर के लगभग है। इस चबूतरे के बीच में एक छेद बना हुआ है। जिसका प्रयोग सम्भवत: अनाज पीसने के लिए किया जाता था। मैके इस विशाल भवन को व्यापारिक मण्डी व जॉन मार्शल 'धार्मिक स्थल' मानते हैं ऐसी मान्यता भी है कि इस भवन का उपयोग सार्वजनिक सभाभवन अथवा नगर संघ कार्यालय के रूप में किया जाता होगा।

(iii) विशाल स्नानागार– यह मोहनजोदड़ों की सबसे महत्वपूर्ण इमारत है। यह स्नानागार 39 फीट लम्बा 23 फीट चौड़ा है और 8 फीट गहरा है। इस स्नानागार में जाने के लिए दक्षिण और उत्तर की ओर ईंटों की सीढ़ियाँ बनी हुई है। इस स्नानागार की दीवारे और फर्श और दीवारों को जिप्सम से जोड़ा गया है। स्नानागार के दक्षिण-पश्चिमी कोने में ही एक महत्वपूर्ण नाली थी जिसके द्वारा पानी के निकास की व्यवस्था थी। स्नानागार के पूर्व की एक कुआँ मिला है, जो पानी की पूर्ति का मुख्य स्रोत था। स्नानकुण्ड के पानी को बाहर निकालने की भी समुचित व्यवस्था की गई थी। स्नानकुण्ड के चारों ओर अनेक चबूतरे बने हुए हैं। जिन पर बैठकर स्नान किया जाता था। जलाशय के चारों ओर बरामदे थे तथा इनके पीछे कमरे थे। कुछ इतिहासकारों का मत है कि समभवत: इन कमरो में गर्म पानी करने की व्यवस्था की गई थी, किन्तु मैके के अनुसार ''यह स्थान पुरोहितों के स्नान करने के लिए था, जबकि मुख्य जलाशय सार्वजनिक प्रयोग के लिए था। सम्पूर्ण भवन का सम्बन्ध किसी धार्मिक कृत्य से लगाया जाता है।

(iv) गृह निर्माण– सिन्धु घाटी से प्राप्त भवनों के अवशेषों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि इस सभ्यता में भवन

निर्माण कला शिखर पर थी। भवन निर्माण कला की सभी विशेषताएँ— भव्यता, सरलता , विशालता, सहजता आकर्षण, सुन्दरता, विविधता तथा उपयोगिता आदि पूर्णत: दर्शनीय थीं। सैन्धव सभ्यता के नगरों में आवासीय गृह (मकान) सड़क के दोनों ओर एक सुनियोजित प्रणाली के आधार पर बनाए जाते हैं। मकानों में प्रकाश तथा हवा के आवागमन का पूरा-पूरा ध्यान रखा जाता था। मकान आवश्यकतानुसार छोटे तथा बड़े होते थे। सबसे छोटा मकान 30 फुट लम्बा (9 मीटर) तथा 27 फुट (8.5 मीटर) चौड़ा होता था। बड़े भवन 26×30 मीटर के भूक्षेत्र में बनाए जाते थे। बड़े भवनों में अधिकतम 30 कमरे तथा छोटे मकानों में चार या पाँच कमरे होते थे। मोहनजोदड़ो के भवन पकाई हुई ईंटों से बनाए गए हैं। छोटी ईंटे 1½ इंच तथा बड़ी ईंट 20½×10½×3½ इंच की थीं। ईंटें गहरे लाल रंग की थीं। ईंटों को इतनी अच्छी तरह पकाया जाता था कि आज तक उनकी मजबूती में कोई विशेष अन्तर नहीं आया है वैसे तो ईंटों पर कोई चिह्न या मार्क नहीं बनाया जाता था, परन्तु कुछ ईंटों पर कुत्ते के पैर तथा कौए के पंजों के निशान हैं।

मकान बनाते समय ईंटों को मिट्टी के गारे से जोड़ा जाता था, किन्तु कुछ स्थानों पर चूने के प्रयोग के प्रमाण भी मिले हैं। कुछ मकानों की दीवारें आज भी 25 (8 मीटर) से 30 फुट (9 मीटर) की ऊँचाई तक खड़ी हुई हैं। इससे स्पष्ट होता है कि मकान कई मंजिलों के होते थे। इन भवनों की नींव गहरी, चौड़ी तथा मजबूत होती थी। मोहनजोदड़ो के मकानों की दीवारें काफी मोटी हैं तथा उनमें कड़ियाँ पाटने के चिह्न भी प्राप्त हुए हैं। इस बात के प्रमाण भी मिले हैं कि सुरक्षा की दृष्टि से छतों के चारों ओर उठी हुई चहारदीवारी बनाई जाती थी। इन छतों से बरसाती पानी निकालने के लिए नालियाँ भी बनाई जाती थीं, जो प्राय: मकान के अन्दर होती थीं। अवशेषों से पता चलता है कि सीढ़ियाँ कुछ संकरी हैं तथा इनका प्रत्येक पथ लगभग सवा फुट चौड़ा है।

हड़प्पा और मोहनजोदड़ो के मकानों के भीतरी कमरों का मुख्य प्रवेश द्वार अपेक्षाकृत अधिक बड़ा है। मोहनजोदड़ो से शंखों तथा हड्डियों की खूँटियाँ व सिटकनियाँ प्राप्त हुई हैं। इन्हें देखकर यह अनुमान लगाया जा सकता है कि इनका प्रयोग कपड़े टाँगने तथा दरवाजों को बन्द करने में किया जाता होगा। सिन्धु घाटी के उत्खनन से मिली कुछ मुद्राओं पर चौकियों के चिह्न पाए गए हैं। इससे पता चलता है कि सैन्धव निवासी बैठने के लिए चौकी तथा कुर्सी जैसी आकृति वाली किसी वस्तु का प्रयोग करते थे। सिन्धु सभ्यता के मकानों के अधिकांश दरवाजे तथा खिड़कियाँ सड़कों की ओर न होकर गलियों में खुलते थे। दरवाजों के सामने एक दीवार बना दी जाती थी, जो शायद आवरण मात्र होती थी दरवाजों को बनाने के लिए लकड़ी की चौखट व किवाड़ों का प्रयोग होता था।

(v) सुरक्षा सम्बन्धी निर्माण कार्य–हड़प्पा व मोहनजोदड़ो से प्राप्त अवशेषों से यह ज्ञात होता है कि सिन्धु सभ्यता के निवासी अपने नगरों की सुरक्षा को लेकर सतर्क रहते थे व सुरक्षा के पर्याप्त उपाय भी करते थे। जैसे कि मोहनजोदड़ों व हड़प्पा नगरों के चारो ओर एक चहारदीवारी बनी हुई थी जिसका उद्देश्य सम्भवत: आक्रमणकारियों से नगर की रक्षा करना था।

2. सिन्धु घाटी सभ्यता की कला तथा धर्म के विषय में आप क्या जानते हैं? वर्णन कीजिए।

उ०– सिन्धु घाटी सभ्यता की कला– (i) मूर्तिकला– सिन्धु निवासी मूर्तिया बनाने में कुशल थे। सिन्धु सभ्यता में प्राप्त धार्मिक मूर्तियों में देवी-देवताओं, उपासिकाओं आदि की मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं। उस समय की धातु, पाषाण एवं मिट्टी बहुसंख्यक उत्खनन से प्राप्त हुई हैं। यहाँ की उल्लेखनीय मूर्ति काँसे की नर्तकी है, जिसमें नर्तकी को कमर पर हाथ रखे त्रिभंगी मुद्रा में प्रदर्शित किया गया है।

(ii) मोहर निर्माण कला– मोहरें सिन्धु सभ्यता की सर्वोत्तम कलाकृति है। इस सभ्यता की सबसे प्रसिद्ध एवं प्रभावशाली पशुपति मोहर तथा वृषभ मोहर हैं। विभिन्न धातुओं से बनी अब तक लगभग 2000 वर्गाकार मोहरें प्राप्त हुई हैं। मोहर निर्माण में सेलखड़ी का प्रयोग सर्वाधिक देखने को मिलता है। अधिकांश मोहरों पर लेख व पशु की आकृतियाँ अंकित हैं।

(iii) संगीत एवं नृत्यकला– संगीत संबंधी अनेक उपकरण (तबला, ढोल इत्यादि) भी खुदाई से प्राप्त हुए हैं। नृत्य की मुद्रा में स्त्री की धातु की मूर्ति इस बात की परिचायक है कि वे नृत्य कला में रूचि रखते थे।

(iv) लघु मृणमूर्तियाँ– मिट्टी को पकाकर बनाई जाने वाली लघु मृणमूर्तियों में नर, नारी, पक्षी, कुत्ते, भेड़, गाय बैल, बन्दरों आदि की मूर्तियाँ प्रमुख हैं।

(v) लेखन कला एवं लिपि– सिन्धु सभ्यता की खुदाई से प्राप्त वस्तुओं से ज्ञात होता है कि सिन्धुवासियों को लिखने की कला का ज्ञान था। दुर्भाग्यवश अभी तक सिन्धु लिपि को पढ़ा नहीं जा सकता है। यद्यपि अभी तक 2467 लिखित वस्तुएँ (1398 मोहनजोदड़ो से, 891 हड़प्पा से तथा शेष अन्य स्थानों से) प्राप्त हो चुकी है। अनुमानत: यह लिपि दाईं से बाईं ओर लिखी जाती थी। परन्तु कहीं-कहीं पर बाईं से दाईं ओर को भी लिखा गया है। यह लिपि भाव-चित्रात्मक है। इस लिपि को बाउसट्रोमेन्द्रक लिपि कहा जाता है। विद्वानों की मान्यता है कि यह लिपि सुमेरिया और मिस्र की लिपियों की तुलना में अधिक उन्नत और परिष्कृत थीं।

(vi) **मुद्रा निर्माण–** सिन्धु सभ्यता से प्राप्त मुद्राओं के निरीक्षण करने पर ज्ञात होता है कि इस सभ्यता के निवासी मुद्राओं को ढालने व इन पर विभिन्न आकृतियाँ अंकित करने में प्रवीण थे।

(vii) **पाषण कला–** सिन्धु घाटी में मिली पाषाण कलाकृतियों में छेनी द्वारा अत्यधिक बारीक काम किया गया है। जुड़ी हुई मूर्तियों से पता चलता है कि सिन्धु कलाकारों को ऐसे मिश्रण का ज्ञान था जो पत्थरों को जोड़ सकता था।

(viii) **धातु निर्माण कला–** इस बात के साक्ष्य भी मिले है कि सिन्धु सभ्यता निवासियों को सोना, चाँदी, ताँबा, पीतल, कांसा आदि धातुओं का ज्ञान था। धातु से बनी बकरी, बत्तख, ताँबें से बने कूबड़दार बैल, सीप की तश्तरी, सोने, चाँदी के आभूषण इसका प्रमाण हैं।

धार्मिक जीवन–

(i) **मातृपूजा–** हड़प्पा, मोहनजोदड़ों एवं चहूँदड़ों से विपुल मात्रा में मिट्टी की बनी हुई नारी मूर्तियाँ मिली हैं, जिन्हें पूजा के लिए निर्मित मातृदेवी की मूर्तियाँ माना गया है। नारी की एक मूर्ति के गर्भ से वृक्ष निकलता हुआ दिखाया गया है। यह वानस्पतिक जगत के सृष्टिकरण का प्रतीक है। कुछ मूर्तियों पर धुएँ के निशान है। जिनसे यह प्रतीत होता है कि मूर्ति की उपासना के लिए दीप या धूप जलाई जाती होगी। एक मूर्ति अर्द्धनग्न स्त्री को चित्रित करती है जिसके सिर पर टोपी व गले मे हार है। सिन्धुवासी मातृदेवी को सम्पूर्ण लोक की जननी एवं पोषिका मानते थे।

(ii) **लिंग तथा योनि की उपासना–** उत्खनन में बहुसंख्या मे शिवलिंग आकार के पत्थर प्राप्त हुए हैं, जिनकी उपासना की जाती थीं। इसके अतिरिक्त हड़प्पा और मोहनजोदड़ों से बहुसंख्या में चीनी-मिट्टी अथवा सीप के बने छल्ले प्राप्त हुए हैं। अधिकांश विद्वानों के अनुसार ये छल्ले ही योनियाँ हैं, जिनकी पूजा सिन्धुवासी जनन शक्ति के कारण करते होंगे।

(iii) **सूर्य पूजा–** सैन्धव क्षेत्र में हुए उत्खनन से प्राप्त अनेक मोहरों पर स्वास्तिक तथा चक्र चिह्न अंकित मिले हैं तथा अग्निशालाओं के भी प्रमाण मिलते हैं, जिससे पुरातत्ववेत्ता अनुमान लगाते हैं कि सिन्धुवासी सूर्य और अग्नि की उपासना करते थे।

(iv) **पुरुष देवता (शिव) की उपासना–** हड़प्पा की खुदाई में एक ऐसी मूर्ति मिली है जिससे शिव उपासना के विषय में ज्ञात होता है उस पुरुष देवता की मूर्ति में तीन मुख व तीन नेत्र हैं। वह योगासन की मुद्रा में नीची चौकी पर बैठा हुआ है तथा उसके बाईं ओर गैंडा तथा दाईं ओर बाघ व हाथी खड़े हैं। इस देवता पुरुष के भी दो सींग दिखाए गए हैं।

(v) **वृक्ष उपासना–** सिन्धुवासियों की मुद्राओं पर टहनियाँ अंकित मिली है। इस संबधं में मार्शल महोदय का विचार है कि ये टहनियाँ पीपल की हैं। वास्तव में पीपल सिन्धुवासियों का पवित्रतम वृक्ष था। इसके अलावा महुआ, तुलसी, नीम, बबूल, खजूर आदि वृक्षों की गणना पवित्र वृक्षों में की जाती है। इनसे अनुमान किया जाता है कि ये वृक्षों की उपासना किया करते थे।

(vi) **पशु पूजा–** सिन्धु सभ्यताकालीन अनेक मुद्राओं पर बैल, भैंस आदि पशुओं के चित्र मिलते हैं, जिनसे उस समय पशु पूजा किए जाने का अनुमान किया जाता है।

(vii) **जल पूजा–** हमें ऐसा प्रतीत होता है कि सिन्धु निवासी किसी-न-किसी रूप में जल की पूजा करते थे। आज भी भारत के अनेक कुण्डों, सरोवरों तथा गंगा-यमुना के जल को पवित्र मानकर उसकी पूजा की जाती है। मोहनजोदड़ो का विशाल स्नानागार, अन्य छोटे स्नानागार तथा सैन्धव निवासियों द्वारा जल प्रयोग के लिए कुओं की व्यवस्था इस बात का प्रमाण है कि सिन्धु सभ्यता के धार्मिक जीवन में जल का प्रमुख स्थान था। कुछ विद्वानों का मत है कि मोहनजोदड़ो का विशाल स्नानागार जल देवता का मन्दिर था तथा नगर निवासी विभिन्न धार्मिक पर्वों पर यहाँ सामूहिक स्नान करते थे।

(viii) **पशु-पक्षी तथा नाग पूजा–** मोहनजोदड़ों से प्राप्त एक ताम्रपत्र पर कूबड़ निकले हुए बैल का चित्र अंकित हैं। इसके अतिरिक्त बैल रूप के अनेक खिलौने भी प्राप्त हुए हैं। कई मुद्राओं पर भी बैल का चित्र अंकित हैं। एक मुद्रा पर मानव आकृति के कन्धों पर किसी पशु का चित्र बना हुआ है। बैल के चित्रों के अतिरिक्त अन्य पशुओं के रेखांकित चित्र भी मिले हैं। इनमें भैंसा, बाघ, भेड़, बकरी, गैंडा, हिरन, ऊँट, घड़ियाल, मछली, बिल्ली, कुत्ता, मोर, तोता तथा मुर्गे आदि के चित्र हैं। एक मुद्रा पर नाग की पूजा करते हुए मनुष्य का चित्र मिला है। पशु-पक्षियों के उपर्युक्त चिह्नों के अंकन की प्राप्ति के अतिरिक्त परम-पुरुष के आस-पास भी पशु-पक्षियों का चित्रण हैं। ये सब साक्ष्य प्रमाणित करते हैं कि सिन्धु सभ्यता के विस्तृत प्रदेशों में पशु-पक्षी तथा नाग पूजा का प्रचलन था। यहाँ पर यह तथ्य भी उल्लेखनीय है कि जिन अनेक पशु-पक्षियों आदि के चित्र मिले हैं, उन सभी की उपासना सिन्धु निवासी नहीं करते थें। इन चित्रों में बहुत से ऐसे पशु-पक्षी भी थे, जो उनके मनोविनोद, बाल शिक्षा और चित्रकला के साधन रहे होंगे।

3. सिन्धु घाटी सभ्यता में नगर नियोजन की प्रमुख विशेषताओं का वर्णन कीजिए।

उ०– उत्तर के लिए विस्तृत उत्तरीय प्रश्न संख्या– 1 के उत्तर का अवलोकन करें।

4. हड़प्पा संस्कृति के कला पक्ष पर प्रकाश डालिए।

उ०– उत्तर के लिए विस्तृत उत्तरीय प्रश्न संख्या– 2 के उत्तर का अवलोकन करें।

5. ''सिन्धु घाटी एक सुविकसित नगर सभ्यता थी।'' इस कथन की विवेचना कीजिए।

उ०– उत्तर के लिए विस्तृत उत्तरीय प्रश्न संख्या– 1 के उत्तर का अवलोकन करें।

6. सिन्धु घाटी सभ्यता का वर्णन तत्कालीन समाज, धर्म व कला की दृष्टि से कीजिए।

उ०– सिन्धु घाटी सभ्यता का सामाजिक जीवन–

(i) सामाजिक संगठन– मोहनजोदड़ो सहित सिन्धु सभ्यता के विभिन्न स्थलों के भग्नावशेष बताते हैं कि यहाँ के लोग विलासितापूर्ण जीवन जीते थे। उल्लेखनीय है कि हड़प्पा की खुदाई में छोटे–बड़े मकान सभी साथ मिलते हैं तथा सभी लोग परस्पर मेल–मिलाप से रहते थे।

पुरातात्विक साक्ष्यों के आधार पर भिन्न–भिन्न वर्ग के लोगों का अस्तित्व स्वीकारा जाता है। उनका सामाजिक स्तर एकसमान नहीं था। कुछ लोग उच्चवर्ग के थे, तो अधिकांश साधारण एवं निम्नवर्ग के थे। शिल्पकारों में कुम्भकार का विशेष महत्व रहा होगा। किन्तु कृषकों एवं श्रमिकों की ही अधिक संख्या रही होगी। पुरोहित वर्ग की उपस्थिति का सहज ही अनुमान लगाया जाता है।

सैन्धव समाज के संगठन का आधार कार्यकुशलता था। विद्वानों का अनुमान है कि सैन्धव समाज चार वर्गों में विभक्त था। पहले वर्ग के अन्तर्गत विद्वान या बौद्धिक वर्ग आता था। इस वर्ग में पुरोहित, ज्योतिषी, वैद्य आदि को रखा गया था। वैदिक सभ्यता में यह वर्ग ब्राह्मण वर्ग था। दूसरा वर्ग यौद्धा वर्ग का था। इस वर्ग के अन्तर्गत राज्य के उच्च पदाधिकारी, कर्मचारी, सैनिक तथा यौद्धा सम्मिलित थे। वैदिक सभ्यता में यह वर्ग क्षत्रिय वर्ग के रूप में अवस्थित था। तीसरा वर्ग व्यापारी या व्यवसायी वर्ग का था। इस वर्ग में व्यवसायी व उद्योगपति आते थे। इस काल में व्यापारियों का प्रमुख एवं प्रभावशाली स्थान रहा होगा। चौथा वर्ग श्रमजीवी वर्ग था, जो शारीरिक श्रम व हस्तकौशल से अपनी जीविका चलाते थे।

(ii) स्त्रियों की दशा– ठोस साक्ष्यों के अभाव में समाज में नारी के स्थान पर समुचित प्रकाश डालना सम्भव नहीं है। विद्वानों का अनुमान है कि सैन्धव समाज में नारी का महत्वपूर्ण स्थान था। इस सभ्यता में भारी संख्या में नारी मूर्तियाँ मिली हैं। जिससे मातृ–सत्तात्मक परिवार की संकल्पना मजबूत होती है। इस स्थिति मे स्त्रियों की समाज एवं परिवार में उच्च स्थिति का अनुमान लगाया जा सकता है।

(iii) भोजन– उत्खनन से प्राप्त सामग्री से ज्ञात होता है कि सैन्धव जनों के भोजन में गेहूँ, जौ, दूध, मांस आदि शामिल थे। अब मान लिया जाता है कि उनकी खाद्य–सामग्री में चावल भी शामिल थे। कुछ ऐसी मुद्राएँ प्राप्त हुई हैं जिन पर मछली पकड़ने व शिकार करने के चिह्न थे। जिनसे यह प्रमाणित होता है कि वे भेड़, बकरी, सुअर, मुर्गा, बतख, कछुआ, घड़ियाल तथा मछली के मांस का सेवन करते थे।

(iv) वेशभूषा व आभूषण– जहाँ तक सिन्धु घाटी के लोगों के वस्त्रों तथा पहनावे का प्रश्न है, उपलब्ध मूर्तियों तथा मुद्राओं आदि पर अंकित चित्रों से कोई विशेष ज्ञान प्राप्त नहीं होता है अनेक मूर्तियों पर स्त्री–पुरुष के वस्त्रहीन चित्र भी मिले हैं। यदि वस्त्र है भी तो उनसे मात्र आधा शरीर ही ढका होता है। स्त्रियों की मृणमूर्तियों से उनकी वेशभूषा की जानकारी मिलती है। इन मूर्तियों में उनके शरीर का ऊपरी भाग नग्न है, मौहरों पर उनके कटिप्रदेश पर पतला सा वस्त्र दिखाया गया है। कुछ मूर्तियों में पुरुषों के ऊपर शाल जैसा वस्त्र ओढ़े हुए दिखाया गया है, जो बाएँ कन्धे को ढकते हुए दाहिनी काँख से नीचे निकाला जाता है। सामान्यत: सूती वस्त्र पहने जाते थे। वस्त्रों का प्रयोग तो किया जाता था, किन्तु ऊनी वस्त्रों के प्रयोग का प्रमाण नहीं मिला है।

सिन्धु सभ्यता के निवासियों को आभूषणों का अत्यधिक शौक था। धनाढ्य और निर्धन स्त्री–पुरुष दोनों ही आभूषणों से स्वयं को अलंकृत करते थे। आभूषणों के बनाने में सोने, चाँदी, ताँबा, हाथी दाँत तथा विविध एवं बहुमूल्य पत्थरों का प्रयोग होता था। अँगूठियाँ, कड़े, कंगन, कण्ठहार, कुण्डल आदि आभूषण स्त्री व पुरुष दोनों ही धारण करते थे, जबकि स्त्रियाँ चूड़ियाँ, कर्णफूल, हँसली, भुजबन्द, करधनी आदि का प्रयोग करती थीं। कमर के नीचे के भाग को ढकने के लिए पुरुष व स्त्रियाँ लुंगी जैसा वस्त्र भी धारण करते थे। स्त्रियाँ सिर पर एक विशेष प्रकार का वस्त्र धारण करती थीं, जो सिर के पीछे की ओर उड़ता रहता था।

सिन्धु सभ्यता के निवासी आभूषणप्रिय थे। सभी वर्गों के स्त्री–पुरुष आभूषण धारण करते थे। आभूषणों की आकृति आकर्षक तथा कलात्मक होती थी और वे साधारण एवं बहुमूल्य धातुओं से बनाए जाते थे। कुछ आभूषण ऐसे थे, जो स्त्री–पुरुष समान रूप से पहनते थे तथा कुछ ऐसे थे, जो केवल स्त्रियाँ अथवा केवल पुरुष ही पहनते थे। नथनी, करधनी, भुजबन्ध, लौंग, नाक की बालियाँ, अँगूठी, पैरों की पायल तथा बालियाँ स्त्रियाँ ही पहनती थीं। हार, लौंग, बालों की पिन, कंगन और मुद्रिका आदि स्त्रियों के अन्य आभूषण थे। निर्धन तथा निम्न वर्ग के लोग अस्थि, ताम्र, घोंघो, सीपियों तथा पकाई गई मिटटी से बने आभूषणों को पहनते थे। धनी व्यक्ति अपने आभूषण सोने चाँदी, मणियों, जवाहरात, हाथीदाँत आदि से बनवाते थे।

(v) **शृंगार के साधन–** सिन्धु सभ्यता के उत्खनन से प्राप्त अनेक वस्तुएँ उनकी शृंगारप्रियता तथा शृंगार प्रसाधनों के उपयोग से अवगत कराती हैं। मातृदेवी की मूर्ति, अनेक रेखांकित चित्र तथा मुद्राओं पर उत्कीर्ण मानव मुद्राएँ इस तथ्य की पुष्टि करती हैं कि उनकी शृंगारप्रियता में मौलिकता तथा विविधता थी। उत्खनन में शीशा और कंघे मिले हैं, जो इस बात का प्रमाण है कि वे बालों में तेलादि लगाकर उन्हें काढ़ते थे। सिन्धु घाटी के पुरुष दाढ़ी-मूँछ रखते थे तथा कुछ लोग उन्हें मुँडवाते भी थे। कुछ पुरुष लम्बे केश रखते थे तथा इन्हें सिर के पीछे काढ़कर जूड़ा भी बनाते थे। स्त्रियाँ प्राय: लम्बे केश रखती थी तथा सिर के बीचोबीच माँग बनाती थीं। वे अनेक प्रकार के केश विन्यास जानती थीं तथा चोटियाँ, लट व जूड़े बनाती थीं। हड़प्पा से एक बोतल मिली है, जिसमें काजल रखा जाता होगा। इस बात के भी प्रमाण मिले हैं कि स्त्रियाँ मुख व होंठ भी रँगा करती थीं।

(vi) **विविध घरेलू उपकरण तथा वस्तुएँ–** सिन्धु घाटी की खुदाई से प्राप्त अवशेषों में विविध प्रकार के घरेलू उपकरण तथा वस्तुएँ भी प्राप्त हुई है। इनमें दैनिक जीवन में प्रयुक्त होने वाली वस्तुएँ भी सम्मिलित है; जैसे— पकाई हुई मिटटी तथा धातु के घड़े, थाली, कटोरियाँ, तश्तरियाँ, कलश, चम्मच, गिलास आदि। इन उपकरणों तथा वस्तुओं को देखकर पता चलता है कि इस काल में सामान रखने के लिए टोकरियों का प्रयोग किया जाता था। जमीन पर बिछाने के लिए चटाई, बैठने के लिए तिपाई, कुर्सी आदि का प्रयोग होता था। लेटने तथा शयन करने के लिए पलंग तथा खाट का प्रयोग होता था। इन सभी उपकरणों के चित्र विभिन्न मुद्राओं पर अंकित हैं। घरेलू बर्तनों की एक महत्वपूर्ण विशेषता यह थी कि मिटटी के बर्तन काले, लाल, कत्थई तथा पीले रंगों द्वारा रँगे जाते थे तथा उन पर चित्रकारी की जाती थी। बिन्दुओं के माध्यम से विभिन्न पशु-पक्षी तथा वृक्ष आदि के रेखाचित्र बनाए जाते थे। इन बर्तनों की पालिश इतनी चमकदार होती थी कि वे आज भी चीनी मिटटी के बर्तनों जैसी चमक लिए हुए हैं। हड़प्पा के बर्तनों पर अनेक लेख भी अंकित हैं। रात्रि में प्रकाश व्यवस्था का समुचित प्रबन्ध किया जाता था। तथा सादे और अलंकृत दीपक प्रयोग में लाए जाते थे। घरेलु सामग्री में सूत कातने की तकली, सुई, हाथीदाँत के बड़े कंघे, हँसिया, चाकू, कुल्हाड़ी, कांसे व ताँबे के उस्तरे, मछली पकड़ने के काँटे, आरी, छुरी आदि मिले हैं।

मोहनजोदड़ो से शिलाजीत तथा समुद्रफेन भी प्राप्त हुआ है, जिनसे पता चलता है कि सिन्धु घाटी के लोगों को अनेक औषधियों का भी ज्ञान था। वैद्य तथा चिकित्सकों द्वारा औषधि के साथ-साथ जादू-टोने द्वारा भी उपचार करने के प्रमाण मिले हैं। स्वास्थ्य रक्षा के लिए अनेक प्रकार के ताबीज पहनने की भी प्रथा थी। उत्खनन में मिले ताबीजों पर मातृदेवी, पशु तथा पक्षियों के चित्र अंकित हैं।

(vii) **शिक्षा तथा अन्य विषयों का ज्ञान–** प्रचुर संख्या में खिलौनों की प्राप्ति भी यह प्रमाणित करती है कि बालकों को शिक्षा देने में वे प्रयुक्त किए जाते थे। विद्वानों का अनुमान है कि उस समय नृत्य और आखेट की शिक्षा भी दी जाती थी। कुछ ऐसे प्रमाण भी मिले हैं, जिनसे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि उस समय लेखन के लिए लकड़ी की तख्तियों का प्रयोग होता था तथा जानवरों के चर्मपत्र तथा वृक्षपत्रों का भी प्रयोग होता था।

अनेक बाँधों का निर्माण तथा अन्नागारों का अवस्थित होना भी यह सिद्ध करता है कि उन्हें विभिन्न ऋतुओं का ज्ञान था। इससे यह भी अनुमान लगाया जा सकता है कि उन्हें ज्योतिष विद्या का प्रारम्भिक ज्ञान था।

अत: निश्चित है कि सिन्धु घाटी के निवासियों को जीवन के विविध पक्षों के विकास में दक्षता और प्रवीनता प्राप्त थी। माप-तौल का निर्धारण, नाप का ज्ञान, तौलने-मापने के उपकरणों की दशमलव प्रणाली इस बात का प्रमाण है कि उन्हें गणित का अच्छा ज्ञान था। नगर नियोजन तथा विविध प्रकार के विशाल निर्माण उनके तकनीकी ज्ञान का प्रमाण हैं। इस आधार पर यह भी अनुमान लगाया जा सकता है कि उन्हें ज्यामिति का ज्ञान था।

(viii) **मनोरंजन के साधन–** सिन्धु सभ्यता के उत्खनन से प्राप्त वस्तुओं से यह प्रमाणित होता है कि वहाँ के निवासियों को आमोद-प्रमोद से विशेष अनुराग था। सिन्धु सभ्यता क्षेत्र के उत्खनन से ऐसी अनेक मुद्राएँ मिली हैं, जिन पर ढोल, वीणा, तुरही तथा नर्तकी के चित्र अंकित हैं। एक मुद्रा पर दो लड़ते हुए मुर्गों का चित्र बना हुआ है।

हड़प्पा से मिली एक मुद्रा पर शारीरिक व्यायाम करते हुए एक मनुष्य का चित्र अंकित है। मोहनजोदड़ो से अनेक प्रकार के ताँबे, पत्थर और मिट्टी के खिलौने भी मिले हैं। खुदाई में संगमरमर, अन्य विविध पाषाणों तथा सीपों की गोलियाँ भी मिली हैं, साथ ही मिट्टी की गोलियाँ भी उपलब्ध हुई हैं। इससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि उस समय गोलियों का खेल काफी प्रचलित था। अनेक चित्रों में सिंह तथा अन्य पशुओं के शिकार का चित्रण है। नर्तकी, गुड़ियों तथा विविध खिलौनों की मूर्तियाँ भी मिली हैं। ये सभी इस बात का प्रमाण है कि सिन्धु सभ्यता के मनोरंजन के साधन विविध तथा सुरुचिपूर्ण थे। उन्हें आमोद-प्रमोद से विशेष अनुराग था तथा वे विभिन्न प्रकार के खेलों को अत्यधिक महत्व देते थे । उन्हें शतरंज से मिलते-जुलते खेल का भी ज्ञान था। वे मुर्गों तथा अन्य पशुओं को लड़ाकर भी अपना मनोरंजन करते थे। इसके अतिरिक्त मछली पकड़ना, शिकार खेलना तथा तैराकी उनके आमोद-प्रमोद के साधन थे। वे शारीरिक व्यायाम भी करते थे। उन्हें नृत्य से भी लगाव था। सैन्धव लोग द्यूत विद्या के धनी थे और यह उनके मनोरंजन का प्रमुख साधन थी।

(ix) सैन्धव लिपि–सिन्धु घाटी सभ्यता के अनेक लेख तो प्राप्त हुए हैं, परन्तु सिन्धु लिपि अभी तक भी पढ़ी नहीं जा सकी है। जर्मन विद्वान बैडरिक ह्राजने के अनुसार सैन्धव लिपि हिट्टाइट लिपि का प्रतिरूप है, किन्तु अलब्राइट इस मत का खण्डन करते है। हण्टर तथा लैंगडन सिन्धु लिपि को ब्राह्मी लिपि का प्रतिरूप मानते हैं, किन्तु कुछ अक्षरों की समानता से ऐसा मानना तर्कसंगत नहीं है। मैरिग्गो का मत है कि सिन्धु घाटी की लिपि में शाब्दिक विचारों की अभिव्यक्ति के लिए विचार अक्षरों को प्रयोग किया गया है। अभी तक विद्वान इस बात पर एकमत नहीं हो पाए हैं कि यह लिपि किस ओर से किस ओर को लिखी जाती थी। सिन्धु लिपि चित्रप्रधान है तथा कहीं-कहीं पर इसमें वर्ण संकेतों का भी प्रयोग किया गया है। सन् 1960 से लेकर सन् 2009 तक के वर्षों में अनेक भाषाविदों, इतिहासकारों और पुरातत्ववेत्ताओं ने सैन्धव लिपि को पढ़ने का प्रयास किया है, किन्तु इस दिशा में सभी असफल रहे हैं।

सिन्धु घाटी सभ्यता का धर्म की दृष्टि से वर्णन– इसके लिए विस्तृत उत्तरीय प्रश्न संख्या– 2 के उत्तर का अवलोकन करें।

सिन्धु घाटी सभ्यता का कला की दृष्टि से वर्णन– इसके लिए विस्तृत उत्तरीय प्रश्न संख्या– 2 के उत्तर का अवलोकन करें।

7. सिन्धु घाटी सभ्यता के उद्भव एवं विस्तार पर प्रकाश डालिए।

उ०– सिन्धु घाटी की सभ्यता के काल और विस्तार के विषय में विद्वानों में पर्याप्त मतभेद हैं। कुछ विद्वानों का मत है कि सिन्धु सभ्यता भारत की ही नहीं, वरन् विश्व की प्राचीनतम सभ्यता है। डॉ० जॉन मार्शल के अनुसार, सिन्धु सभ्यता 3250 ईसा पूर्व से 2750 ईसा पूर्व से भी प्राचीन सभ्यता है। अर्नेस्ट मैके इसे 2800 ईसा पूर्व से 2500 ईसा पूर्व, माधवस्वरूप वत्स 3500 ईसा पूर्व से 2700 ईसा पूर्व, राजबली पाण्डेय 4000 ईसा पूर्व, अलब्राइट 1750 ईसा पूर्व तथा आल्विन 2150 ईसा पूर्व से 1750 ईसा पूर्व पुरानी सभ्यता बताते हैं। इन सभी मतों का विश्लेषण करके व्हीलर ने सिन्धु सभ्यता का काल 2500 ईसा पूर्व से 1500 ईसा पूर्व निर्धारित किया। डॉ० संकालिया ने भी व्हीलर के मत की पुष्टि की है। सिन्धु सभ्यता के काल पर विवाद न करते हुए डॉ० राधाकुमुद मुखर्जी ने लिखा है, ''सिन्धु घाटी की सभ्यता विश्व की सबसे प्राचीन सभ्यता है।''

सिन्धु सभ्यता के विस्तार के विषय में डॉ० काशीराम दीक्षित ने लिखा है, ''यह सभ्यता केवल एक-दो नगरों तक ही सीमित नहीं थी, बल्कि यह राजपूताना, काठियावाड़ पंजाब तथा पश्चिमोत्तर सीमान्त प्रान्त तक विस्तृत थी।'' गार्डन चाइल्ड के अनुसार, ''सिन्धु सभ्यता का विस्तार प्राचीन मेसोपोटामिया, मिस्र एवं फारस की सभ्यताओं के क्षेत्रों से बहुत अधिक विस्तृत था।'' उत्तर में मांडा (जम्मू कश्मीर) से लेकर दक्षिण में दाइमाबाद (उत्तरी महाराष्ट्र) तथा पश्चिम में बलूचिस्तान से लेकर पूर्व में मेरठ (उत्तर प्रदेश) के आलमगीरपुर तक इस सभ्यता का विस्तार था। विश्व की कोई भी प्राचीन सभ्यता, इतने विस्तृत क्षेत्र में फैली हुई नहीं थी।

8. सिन्धु सभ्यता के पतन के कारणों पर प्रकाश डालिए।

उ०– सिन्धु सभ्यता के विनाश को लेकर विद्वानों में गहरे मतभेद है। इतिहासकारों एवं पुरातत्ववेत्ताओं में अब इस विषय पर आम सहमति है कि इतने विशाल और विभिन्न प्रकार के भौगोलिक क्षेत्र में फैली तथा अनेक महत्वपूर्ण नगरों वाली सिन्धु सभ्यता का पतन किसी एक आकस्मिक घटना विशेष के कारण नहीं हुआ, बल्कि विभिन्न कारणों के संयोग से इसका विनाश हुआ। विभिन्न विद्वानों ने सिन्धु-सरस्वती सभ्यता के अन्त के विषय में अनुमान द्वारा तर्क प्रस्तुत किए हैं, जिनका वर्णन इस प्रकार है—

(i) बाढ़ एवं भूकम्प– मार्शल, एम० आर० साहनी, रेइक्स इत्यादि विद्वानों का मत है कि सिन्धु सभ्यता के विनाश का प्रमुख कारण बाढ़ में डूबना अथवा शक्तिशाली भूकम्प रहा होगा।

(ii) जलवायु परिवर्तन– आरेल स्टीन व अमलानन्द घोष आदि विद्वानों का मत है कि जलवायु परिवर्तन एवं अनावृष्टि के कारण सिन्धु सभ्यता का विनाश हुआ।

(iii) बाह्य-आक्रमण– गार्डन चाइल्ड ने 1934 ई० में सम्भावना व्यक्त की थी कि सिन्धु सभ्यता के पतन के लिए आर्यों का आक्रमण उत्तरदायी है। अनेक इतिहासकार भी सिन्धु सभ्यता के विनाश का एक प्रमुख कारण बाह्य आक्रमण मानते हैं। यद्यपि निश्चित रूप से ऐसा स्वीकार करना कठिन है कि आर्यों ने सिन्धुवासियों पर आक्रमण किया था, किन्तु उत्खनन में विशाल संख्या में प्राप्त कंकालो, जिनमें से कुछ पर पैने हथियारों द्वारा किए गए घावों के निशान भी हैं, से प्रतीत होता है कि सम्भवत: बाह्य आक्रमण के कारण ही इस सभ्यता का पतन हुआ चाहे यह आक्रमण आर्यों अथवा किसी अन्य जाति का रहा हो।

उपर्युक्त सभी कारणों अथवा इनमें से किसी एक विशिष्ट कारण से ही सम्भवत: सिन्धु सभ्यता का अन्त हुआ। यद्यपि सिन्धु सभ्यता का पूर्णत: विनाश हो गया। किन्तु सिन्धु संस्कृति पूर्णरूप से नष्ट नहीं हुई। सिन्धु संस्कृति ने आर्यों की संस्कृति को अनेक क्षेत्रों में प्रभावित किया। अत: हम कह सकते है कि सिन्धु सभ्यता का सर्वाधिक महत्व इस तथ्य में निहित है कि इस सभ्यता ने भारत में, विश्व की प्राचीनतम सभ्यताओं में से एक होने का गौरव प्राप्त किया।

9. हड़प्पा सभ्यता के सामाजिक एवं आर्थिक जीवन का वर्णन कीजिए।

उ०– सामाजिक जीवन– इसके लिए विस्तृत उत्तरीय प्रश्न संख्या–6 के उत्तर का अवलोकन करें।

आर्थिक जीवन–

(i) **कृषि–** सिन्धु घाटी के निवासियों का प्रमुख व्यवसाय कृषि था। खुदाई में गेहूँ तथा जौ के अवशेष प्राप्त हुए हैं जिससे सिद्ध होता है कि यह गेहूँ, जौ, तिल, कपास, चावल, मटर आदि की कृषि किया करते थे। फलों के चित्रों के आधार पर यह अनुमान लगाया गया है कि सिन्धु घाटी के निवासी नारियल, खजूर, अनार, आम, खरबूजा, तरबूज, नींबू आदि से परिचित थे।

(ii) **पशुपालन–** सिन्धु निवासियों का दूसरा प्रमुख व्यवसाय पशुपालन था। ये लोग गाय, भैंस, ऊँट, हाथी तथा बैल पालते थे, परन्तु घोड़ों का ज्ञान उन्हें नहीं था। खुदाई से प्राप्त अनेक जंगली जानवरों के अस्थि-पंजर प्राप्त हुए हैं, जिससे सिद्ध होता है कि ये लोग इन पशुओं का शिकार करते थे। अनेक मुद्राओं पर चीता, भालू, बाघ, गैंडा, हिरन तथा खरगोश की आकृतियाँ भी अंकित मिली हैं।

(iii) **वस्त्र उद्योग–** हड़प्पा से कताई-बुनाई के अनेक औजार प्राप्त हुए हैं, जिससे यह सिद्ध होता है कि ये लोग वस्त्र बुनना जानते थे। ये लोग सूती, ऊनी और रेशमी सभी प्रकार के वस्त्र बनाते थे। इन्हें कपड़ों की रँगाई, कढ़ाई करना भी आता था। इसके अतिरिक्त खुदाई में प्राप्त सुइयाँ और बटन यह प्रमाणित करते हैं कि ये लोग सिलाई भी किया करते थे।

(iv) **धातु उद्योग–** इन क्षेत्रों की खुदाई से प्राप्त बर्तन, प्रतिमाओं तथा अस्त्र-शस्त्रों से यह ज्ञात होता है कि सिन्धु घाटी के लोग सोना-चाँदी, पीतल, सीसा, काँसा, ताँबा आदि धातुओं का प्रयोग करना जानते थे। ये लोग पत्थर का भी प्रयोग करते थे। धातु उद्योग यहाँ के लोगों का मुख्य व्यवसाय था।

(v) **अन्य उद्योग–** सिन्धु घाटी के निवासी अनेक प्रकार की घरेलू वस्तु बनाना जानते थे। खुदाई में सूई, कैंची, कुल्हाड़ी, हथौड़ा, बरमा (छेद करने वाला औजार), छुरी तथा हँसिया आदि वस्तुएँ प्राप्त हुई हैं। ये लोग आकर्षक खिलौने, अस्त्र-शस्त्र भी अधिक संख्या में बनाते थे। आभूषणों का निर्माण तथा मिट्टी की वस्तुओं के निर्माण का ज्ञान भी उस काल में उन्नत दशा में था।

(vi) **कला-कौशल–** सिन्धु सभ्यता के निवासी शिल्पी और कलाकार भी थे। वे लेखन-कला में प्रवीण थे। लगभग 500 मुहरें ऐसी मिली हैं जिन पर सुन्दर लिपि अंकित हैं, परन्तु अभी तक उस लिपि को पढ़ा नहीं जा सका है। मुहरों पर पशुओं के सुन्दर चित्र बने हुए हैं तथा उन पर चमकदार पॉलिश की हुई है। अनेक धातुओं की मूर्तियाँ भी प्राप्त हुई हैं, जिनसे यह ज्ञात होता है कि ये लोग मूर्ति कला में प्रवीण थे। इन लोगों को अलंकरण कला भी पर्याप्त ज्ञान था।

(vii) **व्यापार–** सिन्धुवासी जल व थलमार्गों द्वारा विदेशों से व्यापार भी किया करते थे। थल पर बैलगाड़ियाँ और जल में जहाजों का प्रयोग किया जाता था। ये सोना, चाँदी, सीसा, ताँबा आदि धातुओं का आयात करते थे। पिगेट के अनुसार, सम्भवत: दासों का व्यापार भी होता था। खुदाई में एक तराजू व अनेक बाट भी प्राप्त हुए हैं। इनमें सबसे छोटा बाट 13.64 ग्राम का मिला है।

10. भारत में सिन्धु घाटी सभ्यता के प्रमुख पुरास्थलों का वर्णन कीजिए।

उ०– सिन्धु सभ्यता के प्रमुख पुरास्थल–

(i) **हड़प्पा–** सिन्धु सभ्यता की खोज 1921 ई० में डॉ० दयाराम साहनी ने हड़प्पा नामक स्थल पर की थी, जो रावी नदी के बाएँ तट पर मोंटगोमरी जिले (पंजाब), पाकिस्तान से 25 किमी की दूरी पर स्थित है। सर्वप्रथम इस टीले का उल्लेख चार्ल्स मैसन ने किया था। इसके आकार एवं उपलब्ध भौतिक सामग्रियों के आधार पर यह बस्ती सिन्धु सभ्यता का प्रमुख नगर मानी जाती है। इस नगर के अवशेष 5 किलोमीटर के घेरे में उपलब्ध हुए हैं। लेकिन आश्चर्यजनक तथ्य यह है कि हड़प्पा के आसपास बस्तियों का कोई चिह्न नहीं है। यहाँ पर दो प्रमुख टीले मिले हैं। पश्चिम में दुर्ग टीला और पूर्व में नगर टीला स्थित है। हड़प्पा का दुर्ग क्षेत्र सुरक्षा प्राचीर से घिरा हुआ था। हड़प्पा के दुर्ग के बाहर 6 मीटर ऊँचे टीले को 'एफ' नाम दिया गया है, जहाँ पर अन्नागार, अनाज कूटने के वृत्ताकार चबूतरे और श्रमिक आवास के प्रमाण मिले हैं। हड़प्पा से प्राप्त विशिष्ट अवशेषों में मृदभाण्ड, ताँबे और काँसे के उपकरण, पकाई हुई ईंटों की आकृतियों तथा छोटी-बड़ी मोहरें शामिल है यहाँ से ताँबे की बनी इक्कागाड़ी मिली है। हड़प्पा से प्राप्त मूर्तियों में पुरुष मूर्तियाँ नारी मूर्तियों की तुलना में अधिक है।

(ii) **मोहनजोदड़ो–** मोहनजोदड़ों की खोज 1922 ई० में राखालदास बनर्जी ने की थी। मोहनजोदड़ो सिन्ध (पाकिस्तान) के लरकाना जिलें में कराँची से लगभग 500 किमी० उत्तर में सिन्धु नदी के दाहिने किनारे पर स्थित है। यहाँ पर भी दो प्रमुख टीले मिले हैं— दुर्ग टीला तथा नगर टीला। दुर्ग टीले में अनेक महत्वपूर्ण सार्वजनिक स्मारक एवं भवन स्थित थे; जैसे— विशाल स्नानागार, अन्नागार, सभाभवन। इनमें सबसे प्रसिद्ध एवं महत्वपूर्ण स्नानागार है। नगर भाग में योजनाबद्ध तरीके से बसे हुए भवन मिलते हैं। मोहनजोदड़ो से प्राप्त नगर-निर्माण योजना, भवन, मृदभाण्ड, मोहरे तथा अन्य कलाकृतियाँ अत्यन्त विकसित सभ्यता की सूचक हैं।

(iii) **कालीबंगा–** इसकी खोज 1951 ई० में अलमानन्द घोष ने की थी। कालीबंगा राजस्थान के हनुमानगढ़ जिले में घग्घर (प्राचीन सरस्वती) के किनारे पर स्थित सिन्धु सभ्यता का प्रमुख पुरास्थल है। यहाँ पर प्राक-सिन्धु सभ्यता के अवशेष प्राप्त हुए हैं। इस स्थल से जुते हुए खेत का प्रमाण, लघुपाषाण उपकरण, माणिक एवं मनके, छ: विभिन्न प्रकार के मिट्टी के बर्तनों के अवशेष मिले हैं।

(iv) **लोथल–** लोथल की खोज 1954 ई० में एस०आर०राव ने की थी। यह सिन्धु सभ्यता का एक महत्वूपर्ण व्यापारिक केन्द्र था। लोथल का यह स्थल गुजरात प्रांत के अहमदाबाद से 80 किलोमीटर दक्षिण में भोगवा नदी के निकट स्थित है। लोथल का टीला 3.25 किमी के क्षेत्र में फैला हुआ है। सिन्धु सभ्यता के विशिष्ट मृदभाण्ड उपकरण, मोहरें, बाट तथा माप यहाँ से प्राप्त मुख्य पुरावशेष हैं। लोथल के पूर्वी भाग में पक्की ईंटों से निर्मित एक क्षेत्र मिला है जिसका आधार 214 ×36×3.3 मीटर है। पुरातत्वविदों ने इसकी पहचान एक गोदी (डॉकयार्ड) के रूप में की है।

(v) **चहूँदड़ो–** 1931 ई० में एन०जी०मजूमदार ने चहूँदड़ों की खोज की। यह स्थान मोहनजोदड़ो से 128 किमी० दूर सिन्धु नदी के बाएँ किनारे पर अवस्थित रूप में प्राप्त हुआ। यहाँ से प्राप्त मुद्राएँ टेराकोटा, स्टीटाइट, हाथीदाँत और फियांस से बनी थी। इन पर वृक्ष, बकरी आदि के मनोरंजक चित्र अंकित थे।

(vi) **आलमगीर–** इस महत्वपूर्ण पुरातात्विक स्थल की खोज 1958 ई० में हुई। यह स्थान उत्तर प्रदेश के मेरठ जिले में हिण्डन नदी के तट पर स्थित है। इस स्थान से मिट्टी से बनी मकान की दीवारें, मिट्टी के बर्तन, मनके और पिण्ड प्राप्त हुए हैं।

(vii) **बनवाली–** हरियाणा के वर्तमान फतेहाबाद जिले में स्थित बनवाली का उत्खनन 1974-77 ई० तथा 1983-84 ई० के दौरान किया गया। यहाँ हड़प्पा पूर्व के काल के सुरक्षा प्राचीर एवं सुनियोजित आवास-व्यवस्था के प्रमाण मिले हैं। इस स्थल से एक अर्द्धवृत्ताकार ढाँचा मिला है, जिसे कुछ विद्वान मन्दिर होने की सम्भावना व्यक्त करते हैं। बनवाली के आवास-स्थलों से अग्नि वेदिकाओं के साक्ष्य भी मिले हैं। यहाँ से मिट्टी से निर्मित एक हल (खिलौने के रूप में) भी प्राप्त हुआ है।

(viii) **धौलावीरा–** सिन्धु सभ्यता के इस अत्यंत महत्वपूर्ण स्थल से आशा से अधिक अवशेष प्राप्त हुए हैं। गुजरात के कच्च में स्थित इस स्थल की खोज जगतपति जोशी ने 1967-68 ई० में की, लेकिन इसका विस्तृत उत्खनन रवीन्द्र सिंह बिष्ट द्वारा किया गया। यह स्थल अपनी प्रभावशाली नगर योजना, दुर्भेद्य प्राचीर तथा अतिविशिष्ट जल-प्रबन्ध व्यवस्था के कारण सिन्धु सभ्यता का एक अनूठा नगर था। यहाँ से विश्व के प्राचीनतम एवं सबसे बड़े स्टेडियम का प्रमाण मिला है। यहाँ से विभिन्न आकार-प्रकार के 16 जलाशय मिले हैं। धौलावीरा एक बहुत बड़ी बस्ती थी, बिस्ट के अनुसार जिसकी जनसंख्या 20 हजार थी, यह मोहनजोदड़ो से आधी मानी जा सकती है।

(ix) **राखीगढ़ी–** हरियाणा में सरस्वती तथा दृषद्वती नदियों के शुष्क क्षेत्र में राखीगढ़ी सिन्धु सभ्यता का महत्वपूर्ण स्थल है, जो भारतीय क्षेत्र में धौलीवीरा के बाद दूसरा विशालतम नगर है। इसका उत्खनन व्यापक पैमाने पर 1997-99 ई० के दौरान अमरेन्द्र नाथ द्वारा किया गया। राखीगढ़ी से प्राप्त महत्वपूर्ण स्मारक एवं पुरावशेष दुर्ग प्राचीर, अन्नागार, स्तम्भयुक्त मण्डप, ऊँचे चबूतरे पर बनाई गई अग्नि वेदिकाएँ इत्यादि हैं।

(x) **बालाथल–** बालाथल नामक स्थल राजस्थान (उदयपुर) से 42 किमी० दक्षिण पूर्व में स्थित वल्लभ नगर तहसील में स्थित है। यहाँ पर उत्खनन कार्य 1993 ई० में बी०एन० मिश्रा के नेतृत्व में किया गया। वहाँ से परवर्ती हड़प्पा कालीन लोहे के औजार व लौहा गलाने वाली भट्टियाँ भी प्राप्त हुई।

4

आर्य सभ्यता
(Aryan Civilization)

अभ्यास

निम्नलिखित तिथियों के ऐतिहासिक महत्व का उल्लेख कीजिए–

1. 3000 ई० पू० से 1500 ई० पू० तक
2. 2000 ई० पू० से 1000 ई० पू० तक
3. 1500 ई० पू०
4. 1500 ई० पू० से 500 ई० पू० तक
5. 1440 ई० पू०
6. 1786 ई०
7. 1859 ई०
8. 2500 ई० पू०
9. 1500 ई० पू० से 1000 ई० पू० तक
10. 800 ई० पू० से 600 ई० पू० के मध्य तक
11. 1000 ई० पू० से 600 ई० पू०

उ०– उत्तर के लिए पाठ्यपुस्तक के पृष्ठ संख्या— 51 पर तिथि सार का अवलोकन करें।

सत्य या असत्य बताइए–

उ०– प्रश्नोत्तर के लिए पाठ्यपुस्तक के पृष्ठ संख्या– 52 का अवलोकन कीजिए।

बहुविकल्पीय प्रश्न

उ०– प्रश्नोत्तर के लिए पाठ्यपुस्तक के पृष्ठ संख्या– 52 का अवलोकन कीजिए।

अतिलघु उत्तरीय प्रश्न

उ०– प्रश्नोत्तर के लिए पाठ्यपुस्तक के पृष्ठ संख्या– 52 व 53 का अवलोकन कीजिए।

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. आर्यो के मूल-निवास सम्बन्धी किन्ही चार सिद्धान्तों को लिखिए।

उ०– आर्यों के मूल निवास स्थान या उत्पत्ति के संबंध में प्रतिपादित चार मुख्य सिद्धान्त निम्नलिखित है–

(i) यूरोप का सिद्धान्त– सर विलियम जोन्स के अनुसार आर्य हंगरी जर्मनी या रूस के साइबेरिया प्रदेश से भारत में आए थे।

(ii) मध्य एशिया का सिद्धान्त– मैक्समूलर और ब्रैडस्टोन के अनुसार आर्य मध्य एशिया के पामीर या किर्ग्रीज स्टेप्स के मैदानों से भारत आए थे।

(iii) उत्तरी ध्रुव प्रदेश का सिद्धान्त– लोकमान्य बालगंगाधर के अनुसार आर्य उत्तरी ध्रुव प्रदेश से भारत में आए थे।

(iv) भारत ही मूल देश– राजबली पाण्डेय ने आर्यों का मूल निवास स्थान भारत बताया है।

2. आर्य तथा अनार्य के विषय में आप क्या जानते हैं?

उ०– आर्य का शाब्दिक अर्थ श्रेष्ठ अथवा उत्तम होता है इस जाति के लोग गोरवर्ण, सुडौल व लम्बे तथा सुन्दर आकृति वाले थे। ये उत्साही, वीर, कठोर, पश्चिमी व घुमन्तु थे। आर्यों ने अपनी विरोधी जाति को 'अनार्य' की संज्ञा दी है। अनार्य काले, नोटे व कुरूप थे।

3. वैदिक समाज में वर्ण-व्यवस्था का स्वरूप कैसा था?

उ०– वर्ण-व्यवस्था– वैदिक साहित्य में पूर्ण-व्यवस्था की उत्पत्ति ईश्वर से मानी गई है। इस प्रथा का अंकुरण तो ऋग्वैदिक काल में ही हो गया था, परन्तु वर्ण-व्यवस्था का पूर्ण विकास उत्तर वैदिक काल में ही हुआ। इस काल में वर्ण भेद का आधार कर्मगत था, जन्मगत नहीं। वर्ण-व्यवस्था के अन्तर्गत चातुर्ण्य वर्ण का विवरण निम्नलिखित है–

(i) ब्राह्मण– तैत्तरीय ब्राह्मण के अनुसार, ''ब्राह्मण दिव्य वर्ण वाला होता है, वह पृथ्वी पर प्रत्यक्ष देवता है तथा उसमें समस्त देवता वास करते हैं।'' ब्राह्मणों का कार्य-क्षेत्र वेदों का अध्ययन करना, यज्ञ करना तथा कराना, दान लेना व दान देना तथा अध्ययन एवं अध्यापन था। समाज में ब्राह्मणों को स्थान सर्वोपरि था। राजा भी ब्राह्मणों का सम्मान से अभिवादन करते थे।

(ii) क्षत्रिय– ब्राह्मण के बाद क्षत्रिय वर्ण का स्थान था। क्षत्रियों का प्रधान कर्तव्य प्रजा की रक्षा करना था। राज्य की सुरक्षा तथा उसके प्रशासन का उत्तरदायित्व मुख्य रूप से इसी वर्ण पर था। साथ ही, वेदों का अध्ययन करना, यज्ञ कराना तथा दान देना आदि भी उनका नैतिक और अनिवार्य कर्तव्य था।

(iii) वैश्य– वैश्य शब्द विश्य शब्द से बना है, जिसका उल्लेख वाजसनेयी संहिता में मिलता है। राष्ट्र के आर्थिक, व्यापारिक तथा कृषि-संबंधी कार्यों का उत्तरदायित्व वैश्य वर्ण पर था। पशुओं की रक्षा तथा उनका पालन करना भी इन्हीं का उत्तरदायित्व था। स्वर्णकार, रथकार, बढ़ई आदि वैश्य वर्ण की उपजातियाँ थीं। उत्तर वैदिक साहित्य में वैश्यों को 'अन्यस्थ बलिकृत' कहा गया है। इनका स्थान क्रमश: ब्राह्मण और क्षत्रिय के बाद आता था।

(iv) शुद्र– वैदिक समाज में चौथा वर्ण शुद्रों का था। शुद्रों का कार्य उपर्युक्त तीनों वर्णों की सेवा करना था। इस वर्ण का समाज के अन्य वर्णों की उपेक्षा बहुत निम्न स्थान होता था। इस वर्ण को धर्मपालन और अध्ययन से वंचित रखा गया था।

4. चातुर्ण्य वर्ण-व्यवस्था के विषय का स्वरूप कैसा था?

उ०– वैदिक काल में सम्पूर्ण समाज को कार्य विभाजन की दृष्टि से चार वर्णों में विभक्त किया गया था। ये चार वर्ण थे– (1) ब्राह्मण, (2) क्षत्रिय, (3) वैश्य तथा (4) शुद्र। समाज में ब्राह्मण वर्ण को सर्वाधिक सम्मान प्राप्त था। ब्राह्मण का कार्य वेदों का पठन-पाठन, क्षत्रिय का कार्य युद्ध करना तथा राज्य की रक्षा करना , वैश्य का कार्य व्यापार करना तथा शुद्र का कार्य उपर्युक्त तीनों वर्णों के व्यक्तियों की सेवा करना था। वैदिक ऋषियों की कल्पना के अनुसार, वर्ण का निर्धारण मानव शरीर के रूप में किया गया। उनके अनुसार शरीर का शीर्ष स्थान ब्राह्मण थे, भुजा के रूप में क्षत्रिय थे, पेट एवं जंघा के रूप में वैश्य थे तथा शूद्र पैरों के समान थे। 'पुरुषसूक्त' के अनुसार आदिपुरुष के मुख से ब्राह्मण, भुजाओं से क्षत्रिय, जंघाओं से वैश्य और चरणों से शूद्र की उत्पत्ति हुई।

वैदिक काल में वर्ण व्यवस्था वंशानुगत नहीं थी, वरन व्यक्ति की योग्यता, गुण एवं कर्म के आधार पर ही उसके वर्ण का निर्धारण होता था। कालान्तर में यही वर्ण-व्यवस्था जाति प्रथा व्यवस्था में परिवर्तित हो गई और व्यक्ति की जाति का निर्धारण वंशानुगत हो गया।

5. ऋग्वैदिक आर्यों के राजनीतिक संगठन का वर्णन कीजिए।

उ०– राजनीतिक जीवन– ऋग्वेद के वर्णन से तत्कालीन राजनीतिक जीवन पर प्रकाश पड़ता है। राजनीतिक दृष्टिकोण के आधार पर तत्कालीन व्यवस्था को निम्नलिखित विभागों में विभाजित किया जा सकता है—

(i) कुटुम्ब– ऋग्वैदिक काल की सबसे छोटी इकाई 'कुटुम्ब' थी, जिसका अर्थ है परिवार। इसे कुल भी कहा जाता था। कुल के मुखिया को कुलप कहा जाता था। संयुक्त परिवार प्रथा का प्रचलन था।

(ii) ग्राम– अनेक कुटुम्बों के समूह को ग्राम की उपाधि दी गई थी। प्रत्येक कुटुम्ब के कुलप की भाँति, ग्राम का भी एक मुखिया होता था, जिसे 'ग्रामणी' की संज्ञा दी जाती थी। ग्रामणी अत्यन्त महत्वपूर्ण पद होता था। प्रत्येक ग्राम का एकमात्र प्रशासनिक अधिकारी ग्रामणी ही होता था।

(iii) विश– अनेक ग्रामों के समुदाय को विश कहते थे, जिसके अधिकारी को विशपति कहा जाता था।

(iv) जन– अनेक विश मिलकर जन की रचना करते थे। जन के प्रधान अधिकारी को गोप कहते थे।

(v) राष्ट्र– देश अथवा राज्य को राष्ट्र कहते थे।

(vi) शासन-व्यवस्था– ऋग्वैदिक काल में शासन-व्यवस्था मुख्यत: राजतंत्रात्मक थी, जिसका अध्यक्ष राजा होता था। ऋग्वेद में गणों का भी उल्लेख है, किन्तु राजतंत्रों की ही संख्या अधिक थी।

(क) राजा– राज्य का प्रमुख अधिकारी राजा होता था, जिसका पद वंशानुगत था।

(ख) पुरोहित एवं सेनानी– ऋग्वैदिक राज्य में पुरोहित एक शिक्षक, पथ-प्रदर्शक, दार्शनिक एवं मित्र के रूप में राजा का मुख्य साथी होता था। राज परिवार के समस्त धार्मिक कार्यकलाप करने के साथ-साथ पुरोहित राजनीतिक कार्यों में भी भाग लेता था।

(ग) सभा एवं समिति– ऋग्वैदिककालीन राजाओं की स्वेच्छाचारिता पर प्रतिबन्ध लगाने वाली दो संस्थाएँ सभा एवं समिति थीं। वेदों में सभा एवं समिति को प्रजापति की कन्या कहा गया है। वस्तुत: सभा का प्रमुख कार्य राजा को परामर्श देना व उसकी निरंकुशता पर अंकुश रखना था।

6. आश्रम व्यवस्था से आप क्या समझते हैं।

उ०– भारतीय ऋषि-मुनियों द्वारा निर्धारित आश्रम व्यवस्था सम्पूर्ण जीवन के समाजीकरण की एक विवेकपूर्ण व्यवस्था है। वैदिक काल में व्यक्ति की औसत आयु एक सौ वर्ष मानी जाती थी जिसको 25-25 वर्ष की अवधि के चार आश्रमों में वर्गीकृत किया गया है—

(i) ब्रह्मचर्य आश्रम (ii) गृहस्थ आश्रम
(iii) वानप्रस्थ आश्रम (iv) सन्यास आश्रम

वास्तव में आश्रम व्यक्ति के व्यक्तित्व, विकास और जीवन के विभिन्न लक्ष्यों को प्राप्त करने के साधन थे।

7. ऋग्वैदिक काल में 'पुरोहित एवं सेनानी' की भूमिका स्पष्ट कीजिए।

उ०– ऋग्वैदिक काल में पुरोहित एक शिक्षक, पथ-प्रदर्शक दार्शनिक एवं मित्र के रूप में राजा का मुख्य साथी होता था। राज परिवार के सभी धार्मिक कार्यकलाप करने के साथ-साथ पुरोहित राजनीतिक कार्यों में भी भाग लेता था।

सेनानी सेना का सबसे बड़ा अधिकारी होता है। सेनानी का प्रमुख कार्य अन्य राज्यों पर आक्रमण करना व अपने राज्य पर हुए आक्रमण का सामना कर राज्य की रक्षा करना था। युद्ध केन्द्र संचालन का कार्य भार सेनानी पर ही था।

8. 'सभा' व 'समिति' पर प्रकाश डालिए।

उ०– (i) सभा– तत्कालीन राज प्रणाली में 'सभा' नाम की संस्था राजा को परामर्श देते हुए राजा की निरंकुशता पर नियन्त्रण रखती थी। इसके पुरुष सदस्यों को 'संभय' तथा स्त्री सदस्यों को 'संभावती' कहा जाता था। इसकी तुलना वर्तमान राज्यसभा से की जा सकती है।

(ii) समिति– राजा को परामर्श देने वाली और राजा के निर्वाचन में भाग लेने वाली एक संस्था 'समिति' होती थी। जनता द्वारा निर्वाचित यह समिति अपने कार्यों के लिए जनता के प्रति ही उत्तरदायी होती थी। यह समिति राजा पर नियन्त्रण रखती थी। इसका प्रधान 'ईशान' या 'पति' कहलाता था।

9. उत्तर वैदिककालीन समाज पर प्रकाश डालिए।

उ०– ऋग्वैदिक समाज; उत्तर वैदिककाल में विकास के पथ पर काफी आगे बढ़ चुका था। इस युग में आर्यों का सामाजिक जीवन स्थिरता प्राप्त करने लगा था। इस काल की सामाजिक दशा निम्नवत् थी—

(i) कुटम्ब या परिवार– आर्यों की सामाजिक व्यवस्था की आधारशिला परिवार था। पितृसत्तात्मक परिवार का कर्त्ताधर्ता, पालक तथा स्वामी पिता होता था। पत्नी गृहस्वामिनी होती थी। सास-ससुर, देवर-ननद आदि उसका बड़ा आदर करते थे। पैतृक सम्पत्ति संयुक्त परिवार की निधि होती थी।

(ii) **ग्रामीण जीवन–** आर्यों का पारिवारिक जीवन ग्रामों में सुसंगठित था। उनके पारस्परिक सम्बन्ध सुखद, शान्तिपूर्ण तथा प्रेमपूर्ण थे। पारस्परिक सहयोग उनके अटूट बन्धन का आधार था।

(iii) **नगरीय जीवन–** ऋग्वैदिक काल में हमें किसी नगर का उल्लेख नहीं मिलता है, परन्तु उत्तर वैदिककाल में अनेक नगरों की स्थापना हो चुकी थी जो धार्मिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक तथा सामाजिक गतिविधियों के प्रमुख केन्द्र थे।

10. ऋग्वैदिक काल में स्त्रियों की स्थिति की समीक्षा कीजिए।

उ०– ऋग्वैदिक काल भारतीय नारीत्व का आदर्श एवं गौरवशाली युग था। इस युग में सर्वत्र स्त्रियों के प्रति सम्मान का भाव दिखाई देता है। यज्ञ में पत्नी की अनिवार्य उपस्थिति इसका स्पष्ट प्रमाण है। स्त्रियों की शिक्षा पर पर्याप्त ध्यान दिया जाता था। इसी कारण अपाला, विश्वधारा, धोषा, लोपा, मुद्रा आदि स्त्रियों ने तो मंत्र रचना भी की। पिता की सम्पत्ति का अधिकारी पुत्र होता था, किन्तु पुत्र न होने पर पुत्री ही उसकी उत्तराधिकारी होती थी।

11. उत्तर वैदिक काल के धार्मिक जीवन पर टिप्पणी कीजिए।

उ०– धार्मिक जीवन– उत्तर वैदिक काल में आर्यों की धार्मिक विचारधारा में व्यापक परिवर्तन हो गए थे। ऋग्वैदिक काल में धर्म अत्यन्त सरल था, किन्तु उत्तर वैदिक काल में धर्म के क्षेत्र में अनेक जटिल आडम्बर आ गए थे।

(i) **ब्राह्मणों का महत्व–**इस काल में ब्राह्मणों का महत्व बहुत बढ़ गया था।

(ii) **यज्ञ तथा बलि-प्रथा का विकास–**इस युग में यज्ञ तथा बलि की प्रथा बहुत विकसित हो गई थी। यज्ञ में पशु की बलि दी जाती थी। यज्ञों की संख्या में भी अत्यधिक वृद्धि हो गई थी।

(iii) **नए देवताओं की उत्पत्ति–**इस काल में ऋग्वैदिक काल के देवताओं जैसे इन्द्र, वरुण आदि का महत्व कम हो गया था और उनका स्थान नए-नए देवताओं ने ग्रहण कर लिया था। विष्णु प्रजापति का महत्व इस युग में सर्वाधिक हो गया था।

(iv) **दार्शनिक चिन्तन–**इस काल में पुनर्जन्म के सिद्धान्त को भी स्वीकार किया गया और कर्म के सिद्धान्त को प्रबलता से मान्यता प्रदान की गई। तू भी ब्रह्म है, में भी ब्रह्मा हूँ। आत्मा एवं ब्रह्म का यह संबंध उत्तर वैदिककाल की महान दार्शनिक देन है।

विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

1. पूर्व वैदिक काल में भारत की सामाजिक, धार्मिक तथा आर्थिक व्यवस्था पर प्रकाश डालिए।

उ०– आर्यों का परिचय– 'आर्य' शब्द का अर्थ है– 'उत्तम', 'उच्च' अथवा 'श्रेष्ठ'। सम्भवत: भारत की मूल प्रजातियों के विरुद्ध अपनी उच्च जातीयता, उत्तम कर्म तथा श्रेष्ठता को प्रमाणित करने के लिए इस आगन्तुक जाति ने अपना नाम आर्य रखा हो तथा अपनी विरोधी जाति को 'अनार्य', 'दस्यु' अथवा 'दास' की संज्ञा दी हो। कदाचित् आर्य लम्बे सुडौल, गौरवपूर्ण, सुन्दर आकृति तथा लम्बी नाक वाले थे। उनके मस्तिष्क सुन्दर कल्पनाओं से परिपूर्ण थे तथा उनकी मान्यताओं के कुछ दार्शनिक आधार थे। वे वीर, उत्साही, कठोर परिश्रमी तथा पर्यटनशील थे। उनके आचार-विचार विकसित तथा उन्नत थे। वे मुख्यत: कृषि कर्म करते थे तथा जौं व दूध उनका प्रिय भोजन था।

पूर्व वैदिक काल या ऋग्वैदिक काल की सभ्यता– आर्यों की सभ्यता से परिचित होने के लिए सर्वाधिक महत्वपूर्ण साधन वैदिक साहित्य है। ऋग्वैदिक के द्वारा प्रारम्भिक वैदिक काल की सभ्यता पर व्यापक प्रकाश पड़ता है और यजुर्वेद, अथर्ववेद तथा सामवेद के द्वारा उत्तर वैदिक काल के आर्यों के राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक तथा सांस्कृतिक जीवन की विस्तृत जानकारी प्राप्त होती है। जिस काल में ऋग्वेद की रचना हुई उस काल की सभ्यता को हम ऋग्वैदिक सभ्यता अथवा पूर्व वैदिक सभ्यता के नाम से पुकारते हैं।

ऋग्वैदिक या पूर्व वैदिक सभ्यता की विशेषताएँ– ऋग्वैदिक अथवा पूर्व वैदिक सभ्यता के सामाजिक, आर्थिक एवं धार्मिक जीवन से संबंधित प्रमुख विशेषताओं का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है–

सामाजिक जीवन–

(i) **परिवार या कुटुम्ब–** वैदिक काल में संयुक्त परिवार प्रथा प्रचलित थी और परिवार पितृसत्तात्मक होते थे। एक परिवार में माता-पिता, पति-पत्नी, बच्चे तथा अविवाहित भाई-बहन रहते थे। परिवार के सभी सदस्य प्रेम एवं सहयोग के साथ गृह-मुखिया या 'गृहपति' या 'कुलाप' (परिवार के वयोवृद्ध व्यक्ति) के नियन्त्रण में रहते थे। परिवार में पुत्र-जन्म पर विशेष उत्सव मनाया जाता था । पुत्री का जन्म, पुत्र के जन्म की भाँति हर्ष का विषय नहीं रहता था।

(ii) **स्त्रियों की दशा–** समाज में स्त्रियों की दशा बहुत अच्छी थी। अधिकांश स्त्रियाँ विदुषी होती थी। ऋग्वेद में कुछ ऐसी विदुषी स्त्रियों का उल्लेख है जिन्होंने ऋग्वेद की ऋचाओं की रचना की थी। अपाला, विश्वधारा, घोषा, सिकता तथा लोपा मुद्रा आदि इस युग की प्रसिद्ध विदुषी स्त्रियाँ थीं। उस समय पर्दा प्रथा नहीं थी। स्त्रियों को सम्मान की दृष्टि से देखा जाता था और उन्हें पिता की सम्पत्ति में भी उपयुक्त भाग मिलता था। इस प्रकार स्त्रियों का परिवार और समाज में उच्च स्थान था।

(iii) **समाज का संगठन–** आर्यों का समाज अत्यंत संगठित एवं सुव्यवस्थित था। पूर्व वैदिक काल के प्रारम्भ में आर्यों का समाज केवल दो वर्गों—आर्य और अनार्य में विभक्त था। समाज में प्रधानता के आधार पर सभी स्नेह और सहयोग से रहते

थे। आर्यों ने अनार्यों को अपना दास तथा सेवक बना लिया था। कालान्तर में ऋग्वैदिककालीन समाज चार वर्णों में विभक्त हो गया था।

(iv) **वस्त्राभूषण–** पूर्व वैदिक काल में आर्य लोग सूती और ऊनी दोनो प्रकार के वस्त्रों का उपयोग करते थे। कुछ लोग मृगछाला और अन्य पशुओं की खाल भी धारण किया करते थे। वस्त्रों मे तीन मुख्य वस्त्र थे– (क) नीवी (अधोवस्त्र)- धोती अथवा साड़ी, (ख) उत्तरीय- शरीर के ऊपरी भाग पर धारण किया जाने वाला वस्त्र (अंगरखा अथवा चोली), (ग) अधिवास- ऊपर से ओढ़ा जाने वाला वस्त्र (चादर या ओढ़नी)। पुरुषों द्वारा धारण की जाने वाली पगड़ी (उष्णीय) का भी चौथे वस्त्र के रूप में विवरण प्राप्त होता है।

आर्य लोग स्वर्णहार, कुण्डल, अँगूठी आदि आभूषण धारण करते थे। चूड़ियाँ और पायजेब स्त्रियों के प्रिय आभूषण थे। इसके अतिरिक्त, वैदिक साहित्य में कर्णशोभन (कान के आभूषण), निष्ग्रीव (कण्ठहार), खादि (नुपूर), रुक्मपक्ष (हार), भुजबन्ध, कंकण, मुद्रिका आदि आभूषणों का उल्लेख भी प्रचुरता से मिलता है।

(v) **विवाह–** वैदिक काल में साधारणतया एकविवाह-प्रथा प्रचलित थी। कन्या सामान्य रूप से और स्वयंवर में अपनी इच्छानुसार पति का चयन कर सकती थी। इस युग में अन्तजातीय विवाह भी हो जाते थे। बाल-विवाह तथा सती प्रथा नहीं थी। विधवा का विवाह देवर के साथ ही हो जाता था।

(vi) **खान-पान–** वैदिक आर्यों का मुख्य भोजन गेहूँ, जौ और दालें थी। ऋग्वेद में रोटी और तवे का उल्लेख नहीं मिलता है। चावल का उल्लेख भी नहीं मिलता है। वे लोग दूध, दही, सब्जी, तथा फलों का उपयोग भी प्रचुरता से करते थे। उत्सवों आदि पर सोमरस (सुरा) नामक पेय का प्रयोग करते थे।

(vii) **नैतिकता–** आर्यों का सामाजिक जीवन सरल, सादा और पवित्र था। उस युग में चोरी, लूट अपहरण तथा व्यभिचार का नामोनिशान तक नहीं था।

(viii) **मनोरंजन के साधन–** आर्य मनोरंजन के साधनों में भी रूचि लेते थे। रथ-दौड़, जुआ, गायन, तथा नृत्य आदि इनके मनोरंजन के प्रमुख साधन थे। वैदिक ग्रन्थों में वीणा, दुन्दुभि, झाँझ, मृदंग, श्रृंग, तूणवे, शंख तथा बाँसुरी आदि वाद्य-यन्त्रों का उल्लेख भी मिलता है। इनके अतिरिक्त आखेट करना और पशुओं को लड़ाना भी आर्यों के मनोरंजन के मुख्य साधन थे।

आर्थिक जीवन– ऋग्वैदिक काल की अपेक्षा उत्तर वैदिककाल में आर्यों के आर्थिक जीवन में काफी उन्नति हुई। इस युग में हमें **'वार्त्ता'** नामक शब्द का प्रयोग मिलता है। इसके अन्तर्गत कृषिकर्म, पशुपालन, वाणिज्य-व्यापार तथा अन्य व्यवसाय आते थे।

(i) **कृषि–** इस काल में कृषि क्षेत्र में काफी सुधार हो गया था। काठक संहिता में 24 बैलों वाले हल का उल्लेख मिलता है। सांख्यायन गृह्य सूत्र में भी कृषि में प्रयुक्त अनेक विधियों का उल्लेख मिलता है। इस काल में आर्यजन वर्ष में तीन फसलें उगाने लगे थे तथा उन्होंने अनेक नए कृषि यन्त्रों का प्रयोग आरम्भ कर दिया था। खेत अभी भी व्यक्तिगत सम्पत्ति माने जाते थे।

(ii) **पशुपालन–** इस काल में भी गाय को समाज का पवित्र व प्रमुख पशु माना जाता था। बैल, बकरी, भेड़, घोड़े, ऊँट, हाथी, गधे, कुत्ते आदि भी पाले जाते थे। पशुओं के चरागाह अभी भी सामूहिक सम्पत्ति थे।

(iii) **व्यापार–** उत्तर वैदिककाल में जल और स्थल व्यापार में भारी वृद्धि हो गई थी। व्यापारी वर्ग धनी था और समाज में उसको विशेष सम्मान प्राप्त था। इस समय क्रय-विक्रय का कार्य वस्तु-विनिमय द्वारा होता था। **निष्क, कृष्णाल, पाद, शतयान** नामक मुद्राओं का उल्लेख वैदिक ग्रन्थों में मिलता है। इस काल की मुद्राएँ केवल धातुखण्ड के रूप में होती थीं। उन पर कोई भी लेख या चित्र अंकित नहीं होता था।

(iv) **यातायात के साधन–** इस युग में यातायात तथा भारवाहकों के रूप में बैलों, गधों, घोड़ों तथा ऊँटों आदि का प्रयोग किया जाता था। रथ भी यातायात के साधन थे। स्थल मार्ग के लिए सड़कें भी थीं, जो सार्वजनिक स्थानों तथा नगरों से जुड़ी हुई थीं। व्यापारिक जलमार्ग भी थे, जिनमें नावों द्वारा आवागमन होता था।

(v) **विज्ञान–** इस युग में विज्ञान की अनेक उपयोगी शाखाओं का विकास हो गया था। महाभारत में अनेक वैज्ञानिक विद्याओं का उल्लेख मिलता है। इस काल में ज्योतिष, चिकित्सा, अश्वविद्या, हस्तविद्या, गर्भ विज्ञान, शरीर विज्ञान, धनुर्वेद विज्ञान आदि के विशेषज्ञ प्रचुर मात्रा में धनोपार्जन करते थे।

धार्मिक जीवन–

(i) **बहुदेववाद–** आर्य प्राकृतिक शक्तियों को देवी-देवता मानकर उनकी उपासना किया करते थे। वैदिक देवताओं की तीन श्रेणियाँ थीं- पृथ्वीवासी में पृथ्वी, सोम, अग्नि, बृहस्पति और सरस्वती; अन्तरिक्षवासी में इन्द्र, रुद्र, वात, पर्जन्य तथा मारुति और आकाश देवता में सूर्य (सविता), वरुण, पूषन, अश्विन, अदिति, उषा आदि देवता थे। सभी देवताओं में वरुण को विशेष महत्व दिया जाता था। आर्य उषा को देवी मानकर पूजा करते थे। ऋग्वेद में मुख्य रूप से 33 देवी-देवताओं की उपासना की जाती थी।

(ii) **धार्मिक कार्य–** आर्य देवी-देवताओं को प्रसन्न करने के लिए प्रार्थना को विशेष महत्व देते थे। वे यज्ञ एवं हवन आदि भी किया करते थे। यज्ञों में भोजन तथा पेय सामग्री देवी-देवताओं को चढ़ाई जाती थी। युद्ध में विजय प्राप्त करने और संकट से मुक्ति पाने के लिए यज्ञों आदि का आयोजन भी किया जाता था।

(iii) **आत्मा के अस्तित्व और पुनर्जन्म में विश्वास–** ऋग्वैदिक दर्शन में आत्मा के अस्तित्व मे पूर्ण विश्वास किया जाता है। डॉ० राजबली पाण्डेय 'आत्म-तत्व को स्वीकार करते हुए लिखते हैं, ''ऋग्वेद में कुछ ऐसी ऋचाएँ हैं, जिनसे अनुमान होता है कि आर्य पुनर्जन्म को मानते थे।''

(iv) **दार्शनिक मान्यताएँ–** ऋग्वैदिक आर्य उच्चकोटि के दार्शनिक भी थे। उन्होंने इहलोक और परलोक की कल्पना की थी। उन्होंने देवताओं का मानवीकरण करके उन्हें अमर सर्वशक्तिमान, कालजयी और सर्वगुणसम्पन्न मान लिया था। वे एकेश्वरवाद में विश्वास करते थें ऋग्वेद में इस सर्वोच्च सत्ता (ईश्वर) के अनेक नाम है— प्रजापति, विश्वकर्मा, हिरण्यगर्भ आदि मिलतें हैं। ऋग्वेद में जहाँ पाप और पुण्य का उल्लेख है, वहीं पर नरक और स्वर्ग की भी कल्पना है।

(v) **यज्ञ और कर्मकाण्ड–** ऋग्वैदिक काल में यज्ञों तथा कर्मकाण्डों की परम्परा आरम्भ हो चुकी थी। देवताओं की स्तुति तथा वरदान प्राप्ति के लिए यज्ञ किया जाता था।

(vi) **धर्म की श्रेष्ठता–** ऋग्वैदिक धर्म सरल, सादा और उत्तम था। इसकी अनेक बातें आज तक भी हिन्दू समाज में प्रचलित हैं; उदाहरणार्थ— आज भी हिन्दू धर्म में सूर्य की उपासना प्रचलित है। इसी प्रकार हिन्दू, वेदों को ही धर्म का मूल स्रोत मानते हैं और विवाह आदि संस्कारों में मन्त्रों को विशेष महत्व देते हैं।

2. ऋग्वैदिक समाज एवं धर्म पर निबन्ध लिखिए।

उ०– उत्तर के लिए विस्तृत उत्तरीय प्रश्न संख्या—1 के उत्तर का अवलोकन करें।

3. आर्यों के धार्मिक जीवन के विविध पक्षों का वर्णन कीजिए।

उ०– धार्मिक जीवन– आर्यों ने सबसे पहले प्रकृति की पूजा प्रारम्भ की। डॉ० राजबली पाण्डेय का कथन है, ''आर्यों ने असभ्य अन्धविश्वासों से ऊपर उठकर एक नए जीवन की उमंग में प्रकृति की दिव्य विभूतियों का दर्शन किया।''

(i) **धार्मिक दर्शन–** ऋग्वैदिक लोग मृत्यु के बाद क्या होता है, इसकी चिन्ता नहीं करते थे। यद्यपि ऋग्वेद में स्वर्ग एवं नरक का उल्लेख मिलता है। ये लोग देवताओं से भयभीत नहीं थे वरन् उन्हें मित्रवत समझते थे। यद्यपि ऋग्वैदिक आर्य अनेक देवी-देवताओं की उपासना करते थे किन्तु उन्हें एक सत् अथवा एकत्व का ज्ञान था। ऋग्वैद में कहा गया है,''सत् एक ही है। आर्य प्राकृतिक शक्तियों को देवी-देवता मानकर उनकी उपासना करते थे। सभी देवताओं में वरुण को विशेष महत्व दिया जाता था। ऋग्वेद के अनुसार 33 देवी-देवताओं की उपासना की जाती थी, परन्तु मन्दिरों तथा मूर्तिपूजा का कोई साक्ष्य नहीं मिला है।

ऋग्वेद में जिन देवताओं की पूजा-अर्चना एवं स्मृतियाँ मिलती है वे प्राकृतिक तत्वों मे निहित शक्तियों के प्रतीक हैं। उस काल के देवताओं को तीन वर्गों मे बाँटा गया था—

(क) स्वर्ग के देवता– स्वर्ग के देवताओं में प्रमुख द्यौस, वरुण, सूर्य, सावित्री, अदिति एवं उषा आदि थे।

(ख) वायुमण्डलीय देवता– इस श्रेणी के प्रमुख देवताओं में इन्द्र, रुद्र, मारुत, वायु एवं वात आदि थे।

(ग) पार्थिव देवता– इस श्रेणी में अग्नि, सोम व पृथ्वी प्रमुख देवता थे।

(ii) **आराधना एवं यज्ञ–** ऋग्वैदिक युगीन धर्म में पूजा एवं यज्ञ का प्रमुख स्थान था। पूजा एवं यज्ञ देवताओं को प्रसन्न करने के प्रमुख तरीके माने जाते थे। यज्ञ में पुरोहित का अत्यन्त प्रमुख एवं महत्वपूर्ण स्थान होता था तथा वे यज्ञ के लिए परमावश्यक समझे जाते थे। यज्ञ में विभिन्न श्रेणियों के पुरोहित होते थे। मन्त्रोच्चारण करने वाले पुरोहित को 'होता' व पूजा से संबंधित हाथ के काम करने वाले को 'अध्वर्य' कहते थे। यज्ञ देवताओं की स्तुति तथा वरदान प्राप्ति के लिए किए जाते थे। युद्ध में विजय प्राप्त करने व संकटों से मुक्ति हेतु भी यज्ञ किए जाते थे। यज्ञों में भोजन व पेय सामग्री देवताओं को चढ़ाई जाती थी।

(iii) **पुनर्जन्म–** ऋग्वैदिक दर्शन में आत्मा के अस्तित्व पर पूर्णत: विश्वास किया गया है। डॉ० राजबली पाण्डेय के अनुसार, ''आर्यों ने आत्मत्व को स्वीकार किया था'' ऋग्वेद की कुछ रचनाओं से इस कथन की पुष्टि भी होती है।

ऋग्वैदिक धर्म सरल व उत्तम था। इसकी अनेक बातें आज भी हिन्दू धर्म में हैं; जैसे— पीपल के वृक्ष व सूर्य की उपासना करना और वेदों की महत्ता।

4. आर्यों की उत्पत्ति के विषय में आप क्या जानते हैं?

उ०– आर्यों का मूल स्थान– आर्य कौन थे व कहाँ के मूल निवासी थे? इस जटिल प्रश्न का अभी तक सर्वमान्य उत्तर नहीं मिल पाया है। कुछ विद्वानों के अनुसार आर्यों की जन्मभूमि भारतवर्ष ही है व कुछ विद्वान इस तर्क से सहमत नहीं है। आर्यों के मूल निवास के संबंध में विद्वानों ने अपनी तर्क शक्ति, कल्पना शक्ति व पुरातत्वों के गहन निरीक्षण व जातिगत भिन्नताओं व समानताओं का गहन अध्ययन करने के बाद निम्नलिखित सिद्धान्तों पर प्रतिवादन किया है—

(i) **उत्तरी ध्रुव या आर्कटिक प्रदेश का सिद्धान्त–** लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक ने अपनी पुस्तक, ''आर्कटिक होम आफ दी वेदाज' में आर्यों का मूल निवास उत्तरी ध्रुव बताया है क्योंकि ऋग्वेद में 6 महीने के दिन व 6 महीने की रात का वर्णन हैं, जो केवल उत्तरी ध्रुव में ही सम्भव है। उनके अनुसार सम्भवत: लगभग दस हजार वर्ष पूर्व हिम प्रलय के कारण आर्यों को उनके तथाकथित मूल स्थान से विलग होना पड़ा होगा।

(ii) यूरोपियन सिद्धान्त– कुछ विद्वानों द्वारा यह विचार प्रतिपादित किया गया कि आर्यों तथा जर्मनों की शारीरिक बनावट में समानता है व जर्मनवासी इण्डो-यूरोपियन भाषा का प्रयोग करते रहे हैं, वहाँ के ताम्रपत्रों पर भी यह भाषा अंकित हैं। इसके अतिरिक्त पर यह मत प्रस्तुत किया था कि आर्यों का मूल स्थान यूरोप महाद्वीप था। इसके बाद 1786 ई० में 'एशियाटिक सोसायटी ऑफ बंगाल' के अध्यक्ष सर विलियम जोन्स ने अपने लेख में यह विचार व्यक्त किया है कि यूरोपीय भाषाओं और आर्यों की मूल भाषा संस्कृत में आश्चर्यजनक समानता है; जैसे— पितृ-पिदर-पेटर-फादर और मातृ-मादर-मेटर और मदर क्रमशः संस्कृत, यूनानी, लैटिन और अंग्रेजी भाषाओं के शब्दों में काफी समानता देखने को मिलती है।

पी० गाइल्स, पेन्का, हर्ट, मच, नेहरिंग, पोकोर्नी इत्यादि विदेशी विद्वानों ने आर्यों का मूल निवास-स्थान यूरोप के भिन्न भिन्न प्रदेशों को माना है। इन विद्वानों ने भी भाषा की समानता के आधार पर यूरोप को आर्यों का मूल स्थान बताया है तथा इण्डो-यूरोपियन भाषाओं के शबद व मुहावरों का यूरोप की भाषाओं से साम्य बताया है।

पी० गाइल्स आर्यों का मूल स्थान हंगरी या डेन्यूब नदी की घाटी मानते हैं। इस सन्दर्भ में वे तर्क देते हैं कि आर्य लोग गाय, बैल, घोड़ा, हिरण, कुत्ता, आदि पशुओं से परिचित थे। ये लोग गेहूँ, जो आदि का प्रयोग भी करते थे। ये सभी विशेषताएँ हंगरी प्रदेश में उपलब्ध थीं।

नेहरिग तथा पोकार्नो ने त्रिपोल्जे, यूक्रेन से प्राप्त 300 ईसा पूर्व के कुछ मिट्टी के बर्तनों और ताम्रपत्रों के आधार पर ये विचार व्यक्त किए कि आर्यों का मूल निवास-स्थान दक्षिण रूस था।

(iii) मध्य एशिया का सिद्धान्त– जर्मन विद्वान मैक्समूलर व जे०जी० रोहड़, श्लीगन सेअस इत्यादि विद्वानों ने भी आर्यों का आदि देश मध्य एशिया बताया है। इन विद्वानों ने वेदों और अवेस्ता को प्रमाणिक आधार माना है। इनके अध्ययन से ज्ञात होता है कि भारतीयों तथा ईरानियों ने बहुत दिनों तक साथ-साथ निवास करता था।

एशिया माइनर के **बोगजकोई** नामक स्थान से लगभग 1440 ई० पूर्व का जो अभिलेख मिला है, इसमें आर्यों के प्रमुख देवताओं मित्र, वरुण इन्द्र तथा नासत्यस का उल्लेख है। इन देवताओं की पूजा का उल्लेख वैदिक काल के ग्रन्थों में भी है। इसके अतिरिक्त मिस्र के **अलअमना** नामक स्थान से प्राप्त मिट्टी की मुहरों पर **शुत्तर्न, अर्जेविय** आदि राजाओं के नाम उत्कीर्ण हैं। इन शब्दों का आर्यों को ज्ञान था तथा वैदिककाल के आर्यों के नामों तथा इनमें पर्याप्त समानता है, ऐसे प्रमाण अभी तक यूरोप से नही मिले हैं। अतः एशिया ही आर्यों का आदि देश हो सकता है।

एडवर्ड मेयर, ओल्डनबर्ग, कीथ आदि विद्वानों ने भाषा विज्ञान के तुलनात्मक अध्ययन से यह निष्कर्ष निकाला है कि पामीर का पठार या बैक्ट्रिया (तुर्किस्तान) ही आर्यों का मूल स्थान हो सकता है। इनका मत है कि **ऋग्वेद** और **जेन्द अवेस्ता** आर्यों के प्राचीन ग्रन्थ हैं तथा इन दोनों में भाषा एवं विषय की समानता है। दोनों में प्राचीन ग्रामीण जीवन, अश्वों (घोड़ों), नावों, वृक्षों तथा पशुओं का वर्णन मिलता है। अतः आर्यों की जन्मभूमि ऐसे ही स्थान पर है जहाँ पर उपर्युक्त विषयों के अतिरिक्त शीत की भी प्रधानता हो। ऐसा स्थान मध्य एशिया में कैस्पियन सागर के निकट तुर्किस्तान या पामीर प्रदेश ही है।

(iv) आर्यों का मूल निवास-भारत– नवीन अनुसंधानों के प्रकाश में अब यह मत सर्वाधिक मान्य एवं विवेकसम्मत जान पड़ता है कि आर्यों का मूल निवास-स्थान भारत ही था। अधिकांश भारतीय विद्वान अब इसी मत के समर्थक हैं, यद्यपि जातीय पूर्वाग्रह से ग्रस्त विदेशी विद्वान इस मत को पूरी तरह स्वीकार करने से हिचकते हैं।

सम्पूर्णानन्द व अविनाश चन्द्र दास ने सप्त सैन्धव को आर्यों का मूल-निवास स्थान बताया है। इस सम्बन्ध में इन्होंने तर्क दिया है कि अवेस्ता और बौद्धिक संहिताओं में खान-पान, रहन-सहन, आचार-विचार सम्बन्धी वर्णन व भौगोलिक सीमाओं के आधार पर आर्यों का निवास सप्त सैन्धव प्रदेश होना निश्चित होता है। **एल०डी० कल्ला** के अनुसार, ''आर्यों का मूल स्थान कश्मीर या हिमालय प्रदेश था।'' **गंगानाथ झा** के अनुसार, आर्यों का मूल निवास-स्थान ब्रह्मर्षि देश था। ये अपना तर्क देते हैं कि आर्यों का प्राचीनतम साहित्य भारत में ही मिलता है। यदि वे बाहर से आते, तो अपना साहित्य वहाँ अवश्य छोड़कर आते। **राजबली पाण्डेय** आर्यों का मूल स्थान मध्य प्रदेश (वर्तमान उत्तर प्रदेश और बिहार) को मानते हैं। उनके अनुसार, ''प्राचीन साहित्य, वेद , परवर्ती संस्कृत साहित्य और पुराणों में सुरक्षित पुरानी परम्परा और इतिहास के अनुसार आर्य लोग इसी देश के मूल निवासी थे। किन्तु इन मतों के विरोध में भी अनेक विद्वानों ने अपने-अपने तर्क दिए हैं। उपर्युक्त मतों की विवेचना से यह सिद्ध होता है कि आर्यों के मूल निवास के सम्बन्ध में निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता। **कीथ** के अनुसार, ''विश्वसनीय प्रमाणों से विभिन्न कल्पनाओं और सिद्धान्तों को बनाना और पुष्ट करना सुगम है, परन्तु इस प्रकार के ढंग के अपनाने पर मात्र एक आपत्ति है कि अन्य कल्पनाएँ और सिद्धान्त भी समान रूप से उचित हैं और तथ्य इतने अपूर्ण हैं कि कोई निश्चित निष्कर्ष निकालना कठिन है।''

5. उत्तर वैदिक काल की प्रमुख विशेषताओं का अलोचनात्मक परीक्षण कीजिए।

उ०– वैदिक साहित्य के अनेक ग्रन्थों विशेषकर यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, ब्राह्मण ग्रन्थों, आरण्यको, उपनिषदों तथा महाकाव्यों से उत्तर वैदिककाल आर्यों की सभ्यता व संस्कृति का पर्याप्त ज्ञान प्राप्त होता है। इन ग्रन्थों के आधार पर उत्तर वैदिक काल की प्रमुख विशेषताएँ निम्न प्रकार थीं—

(i) राजनीतिक जीवन– मानव समूहों के विशाल होते जाने पर राज्य संबंधी विचारधारा भी पुष्टतर होने लगी। इस काल तक आर्यों का प्रभुत्व भारत के अधिक विस्तृत भाग पर हो गया था। वैदिक युग के अन्त तक आर्यों ने गंगा, यमुना और सदानीरा

(गण्डक) नदियों के द्वारा सिंचित उर्वरा मैदान पर अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया था। आर्य संस्कृति का केन्द्र अब सरस्वती और गंगा के बीच प्रदेश में आ गया। यह प्रदेश आर्यावर्त कहलाता था।

उत्तर वैदिक काल में राज्यों की सीमाएँ बहुत अधिक विस्तृत हो गई थी। कुरु, पांचाल, कोशल, विदेह, काशी, कैकेय, गंधार, मगध, अंग आदि बड़े-बड़े और शक्तिशाली राज्य स्थापित हो गए थे। इस काल में राजतन्त्रामक प्रणाली की जड़े जम चुकी थी। ऐतरेय ब्राह्मण में राज्य, स्वराज्य, वैराज्य महाराज्य तथा साम्राज्य शबद मिलते हैं। इस युग में राजा की शक्तियों में बहुत वृद्धि हो गई थी। ऋग्वेद काल की सभा एवं समिति नामक संस्थाएँ शक्तिहीन हो गई थीं। युद्ध क्षेत्र में जाना अब राजा के लिए अनिवार्य नहीं रह गया था। सेनापति ही युद्ध क्षेत्र में युद्ध का प्रतिनिधित्व करने लगा था। प्रमुख राज्य पदाधिकारियों, जिन्हें 'रक्षिन' या राजकत कहा जाता था, की संख्या में भी वृद्धि हो गई थी। इन अधिकारियों में पुरोहित, सेनापति, संग्रहाणी (कोषाध्यक्ष), ग्रामणी (न्यायालय का सभापति), अक्षा-वाय (आय-व्यय का विवरण रखने वाला), पालागरव (दूत) राजस (राजपरिवार का सदस्य) आदि प्रमुख थे। इनके अतिरिक्त अंगरक्षक, धर्माध्यक्ष, दौवारिक (राजमहल के द्वार का प्रमुख रक्षक), परिचारक, वृन्दाध्यक्ष, अश्वाध्यक्ष आदि कर्मचारियों के नाम वैदिक ग्रन्थों में मिलते हैं।

उत्तर वैदिक काल में राज्य की आय के सोत्र बढ़ गए थे। 'भाग चुक' नामक अधिकारी कर-संग्रह करता था। भूमिकर, आयकर, उपहार कर तथा व्यापार कर वसूल किया जाता था। करों का मुख्य भार वैश्यों पर ही था। इसी कारण उन्हें ब्राह्मण साहित्य में बलिकृत कहा गया है।

उत्तर वैदिक काल की न्याय व्यवस्था भी पूर्व वैदिक काल की अपेक्षा अधिक विकसित थी। अब न्याय करना राजा का परम कर्तव्य बन गया था। विशेष मामले में न्याय के लिए पूरी जाति का आयोजन होता था। ग्रामों में 'ग्राम्यवादिन' न्याय का कार्य सम्पादित करता था। ब्राह्मण की हत्या सबसे बड़ा अपराध था और न्याय के मामलों में ब्राह्माणों को विशेषाधिकार प्राप्त थे।

(ii) वर्ण-व्यवस्था– वैदिक साहित्य में वर्ण-व्यवस्था की उत्पत्ति ईश्वर से मानी गई है। इस प्रथा का अंकुरण तो ऋग्वैदिक काल में ही हो गया था, परन्तु वर्ण-व्यवस्था का पूर्ण विकास उत्तर वैदिककाल में ही हुआ। इस काल में वर्ण भेद का आधार कर्मगत था, जन्मगत नहीं। वर्ण-व्यवस्था के अन्तर्गत चातुर्ण्य वर्ण का विवरण निम्नलिखित है—

(क) ब्राह्मण– तैत्तरीय ब्राह्मण के अनुसार, ''ब्राह्मण दिव्य वर्ण वाला होता है, वह पृथ्वी पर प्रत्यक्ष देवता है तथा उसमें समस्त देवता वास करते हैं।'' ब्राह्मणों का कार्य-क्षेत्र वेदों का अध्ययन करना, यज्ञ करना तथा कराना, दान लेना व दान देना तथा अध्ययन एवं अध्यापन था। समाज में ब्राह्मणों का स्थान सर्वोपरि था। राजा भी ब्राह्मणों का सम्मान से अभिवादन करते थे।

(ख) क्षत्रिय– ब्राह्मण के बाद क्षत्रिय वर्ण का स्थान था। क्षत्रियों का प्रधान कर्तव्य प्रजा की रक्षा करना था। राज्य की सुरक्षा तथा उसके प्रशासन का उत्तरदायित्व मुख्य रूप से इसी वर्ण पर था। साथ ही, वेदों का अध्ययन करना, यज्ञ कराना तथा दान देना आदि भी उनका नैतिक और अनिवार्य कर्तव्य था।

(ग) वैश्य– 'वैश्य' शब्द 'विश्य' शब्द से बना है, जिसका उल्लेख वाजसनेयी संहिता में मिलता है। राष्ट्र के आर्थिक, व्यापारिक तथा कृषि-सम्बन्धी कार्यों का उत्तरदायित्व वैश्य वर्ण पर था। पशुओं की रक्षा तथा उनका पालन करना भी इन्हीं का उत्तरदायित्व था। स्वर्णकार, रथकार, बढ़ई आदि वैश्य वर्ण की उपजातियाँ थीं। उत्तर वैदिक साहित्य में वैश्यों को 'अन्यस्थ बलिकृत' कहा गया है। इनका स्थान क्रमश: ब्राह्मण और क्षत्रिय के बाद आता था।

(घ) शूद्र– वैदिक समाज में चौथा वर्ण शूद्रों का था। शूद्रों का कार्य उपर्युक्त तीनों वर्णों की सेवा करना था। इस वर्ण का समाज के अन्य वर्णों की अपेक्षा बहुत निम्न स्थान होता था। इस वर्ण को धर्मपालन और अध्ययन से वंचित रखा गया था।

प्रारम्भ में यह वर्ण-व्यवस्था कर्म पर आधारित थी। कर्म और कार्यों के आधार पर वर्ण परिवर्तन सम्भव भी था, किन्तु कालान्तर में वर्ण-व्यवस्था ने जन्म के आधार पर जटिल रूप धारण कर लिया था। यही वर्ण व्यवस्था आगे चलकर जाति-प्रथा के रूप में परिणत हो गई थी। आज की जाति और वर्ण व्यवस्था का यही मूलाधार है।

(iii) आश्रम व्यवस्था– 'गृह्यसूत्र' ग्रन्थ में आर्यों द्वारा प्रचलित आश्रम व्यवस्था पर पूर्ण प्रकाश डाला गया है। आर्य मनीषियों ने चार— **ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ** और **संन्यास** आश्रम का विधान किया था। मनुष्य की औसत आयु 100 वर्ष निश्चित की गई थी और इस सौ वर्ष के काल को निम्नलिखित चार भागों अथवा आश्रमों में विभक्त किया गया था। यद्यपि इस आश्रम व्यवस्था के नियम का पालन सभी लोग नहीं करते थे।

(क) ब्रह्मचर्य आश्रम– यह आश्रम लगभग 25 वर्ष की आयु तक चलता था। इसमें विद्यार्थी गुरु के आश्रम में रहकर विद्याध्ययन करता था। वह पूर्ण रूप से ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करते हुए समाज के भौतिक वातावरण से मुक्त रहता था।

(ख) गृहस्थ आश्रम– 25 वर्ष की आयु पूर्ण करने के उपरान्त ब्रह्मचारी गृहस्थ आश्रम में प्रवेश करता था। वह 25 वर्ष से 50 वर्ष तक की आयु इसी आश्रम में व्यतीत करता था। इस आश्रम में रहते हुए आर्य अपना विवाह करते थे और सुखी दाम्पत्य जीवन व्यतीत करते थे।

(ग) वानप्रस्थ आश्रम– वानप्रस्थ आश्रम 50 से 75 वर्ष की आयु तक माना जाता था। 50 वर्ष की आयु पूर्ण कर लेने के उपरान्त स्त्री तथा पुरुष अपने ज्येष्ठ पुत्र पर परिवार का भार छोड़कर तथा उसे अपना उत्तराधिकारी बनाकर वन में चले जाते थे। वहाँ वे तप एवं त्याग का जीवन व्यतीत करते थे।

(घ) संन्यास आश्रम– 75 वर्ष की आयु पूर्ण कर लेने के उपरान्त व्यक्ति संन्यास आश्रम में प्रवेश करता था। 75 वर्ष से 100 वर्ष तक की आयु संन्यास आश्रम की मानी जाती थी। इस आश्रम में जीवन-साथी का भी त्याग कर दिया जाता था। इस प्रकार वह परिव्राजक (संन्यासी) बन जाता था। संन्यासी के लिए ग्राम या नगर में रहना वर्जित था। वह वन और पर्वतों की कन्दराओं में वैराग्ययुक्त एवं त्यागमय जीवन व्यतीत करता था।

डॉ० बेनी प्रसाद ने आश्रम व्यवस्था पर प्रकाश डालते हुए लिखा है, ''उत्तर वैदिक काल में आश्रमों का सिद्धान्त प्रतिपादित हुआ, जो फिर सदा हिन्दशास्त्रों में माना गया। पर यह समझना भूल होगी कि आश्रमों के नियमों का पालन सब लोग करते थे। जातकों से पता चलता है कि आश्रम सिद्धान्त सबको मान्य था, परन्तु व्यवहार में सबको ग्राह्य न था।''

6. आर्यों की वर्ण व आश्रम व्यवस्था पर प्रकाश डालिए।

उ०– उत्तर के लिए विस्तृत उत्तरीय प्रश्न संख्या– 5 के उत्तर का अवलोकन करें।

7. उत्तर वैदिककाल के समाज व अर्थशास्त्र का विश्लेषण कीजिए।

उ०– उत्तर के लिए विस्तृत उत्तरीय प्रश्न संख्या– 1 के उत्तर का अवलोकन करें।

8. ''ऋग्वेद भारतीय संस्कृति की आधारशिला है।'' स्पष्ट कीजिए।

उ०– उत्तर के लिए विस्तृत उत्तरीय प्रश्न संख्या– 1 के उत्तर का अवलोकन करें।

9. वैदिक साहित्य पर प्रकाश डालिए।

उ०– वैदिक साहित्य– वैदिक साहित्य तथा दर्शन न केवल भारतीय साहित्य में बल्कि विश्व साहित्य में महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। वैदिक ग्रन्थों में ज्ञान का जो भण्डार निहित है, वह संसार के किसी अन्य साहित्य में उपलब्ध नहीं है। वैदिक साहित्य एवं दर्शन के ग्रन्थों के अन्तर्गत वेद, ब्राह्मण ग्रन्थ, उपनिषद, वेदांग, उपवेद, सूत्र गन्थ, स्मृति ग्रन्थ, व्याकरण, धर्मशास्त्र ,दर्शनशास्त्र, महाकाव्य आदि ग्रन्थों की गणना की जाती है।

(i) वेद– वैदिक साहित्य में सर्वाधिक प्राचीन एवं महत्वपूर्ण ग्रन्थ 'वेद' हैं। वेद शब्द संस्कृत की 'विद' धातु से बना है, जिसका अर्थ है– जानना अथवा ज्ञान प्राप्त करना। वेद चार हैं– ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद एवं अथर्ववेद। प्रत्येक तीन वेदों को संयुक्त रूप से 'त्रयी' कहा गया। प्रत्येक वेद की की अपनी संहिता है तथा प्रत्येक संहिता से सम्बद्ध 'ब्राह्मण', आरण्यक एवं 'उपनिषद' ग्रन्थ हैं। ये सभी वैदिक ग्रन्थों की श्रेणी में आते हैं।

यह भी माना जाता है कि ईश्वर की प्रेरणा से ऋषि-मुनियों ने वेदों की रचना की। वेदों को इतना पवित्र माना गया है कि वे कण्ठस्थ कर लिए जाते थे। इसी कारण वेदों की श्रुति भी कहा गया है।

(क) ऋग्वेद– ऋग्वेद की रचनाकाल के सम्बन्ध में पर्याप्त मतभेद हैं, ऋग्वेद में 1017 सूक्त हैं। इन सूक्तों में यदि 'ग्यारह बालखिल्य' सूक्त भी जोड़ दिए जाएँ, तो सूक्तों की कुल संख्या 1028 हो जाती है। ऋग्वेद में दस मण्डल तथा 10580 ऋचाएँ हैं। यह भी मान्यता है कि वेदों का ज्ञान ईश्वरीय ज्ञान है, वेद में निहित इस ज्ञान का विशद विवेचन ऋषियों द्वारा किया गया। ऋग्वेद में देवता प्रकृति के प्रतीक तथा अंग माने गए हैं; जैसे– सूर्य, वायु, अग्नि, इन्द्र देवता आदि। ऋग्वेद के अनेक सूक्तों द्वारा प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष रूप से हमें तत्कालीन भारतीय भूगोल, समाज, राजनीति, धर्म, आर्थिक विषयों आदि के विभिन्न पक्षों का ज्ञान प्राप्त होता है। ऋग्वेद आज तक उस गायत्री मन्त्र का मूल स्रोत है, जिसके अक्षरश: (पूर्ण रूप से) जप में श्रद्धा रखने वाले करोड़ों हिन्दू उसके प्रत्येक स्तर, वर्ण और शब्द को पवित्र मानते हैं और उसके स्थान पर मानव-रचित किसी भी अनुवाद या अन्य जप को स्वीकार नहीं करते। इस कथन से ऋग्वेद की महानता का ज्ञान सहज ही हो जाता है।

(ख) यजुर्वेद– यजुर्वेद में आर्यों के धार्मिक विधि-विधानों का वर्णन है। यजुर्वेद में कुल 40 अध्याय हैं तथा प्रत्येक अध्याय का सम्बन्ध किसी-न-किसी याज्ञिक क्रिया से है। यजुर्वेद के दो भाग हैं– कृष्ण यजुर्वेद और शुक्ल यजुर्वेद। यजुर्वेद की पाँच शाखाएँ कष्ठक, कपिष्ठल, मैत्रायणी, तैत्तरीय तथा वाजसनेयी हैं। इनमें प्रथम चार का सम्बन्ध कृष्ण यजुर्वेद से और वाजसनेयी का सम्बन्ध शुक्ल यजुर्वेद से है।

इस वेद में अनेक प्रकार के यज्ञों के विधान का वर्णन है। इन यज्ञों में वाजपेय, राजसूय, अश्वमेध, अग्निष्टोम आदि प्रमुख हैं। यजुर्वेद का अन्तिम अध्याय **'ईषोपनिषद'** है, जिसका विषय याज्ञिक विधि-विधान न होकर दार्शनिक तथा अध्यात्म है।

यजुर्वेद के गीतों का संकलन गद्य और पद्य दोनों में किया गया है। यज्ञों का सम्पादन करने वाले पुरोहित (अध्वर्यु) इनका सस्वर पाठ करते थे।

(ग) सामवेद– यह वेद संगीतमय सूक्तियों पर आधारित है। इस वेद में गेय व काव्यात्मक रचनाओं को संकलित किया गया है। इसमें 1801 मंत्र समाहित हैं, जिनमें केवल 75 नए मन्त्र हैं, बाकी सभी ऋग्वेद से लिए गए हैं। इन मन्त्रों का प्रयोग देवताओं की स्तुति के लिए होता था।

(घ) अथर्ववेद– इस वेद के रचयिता अथर्वा ऋषि को माना गया है। इसमें 20 मण्डल, 731 सूक्त और 6000 मन्त्र हैं। इस वेद में ब्रह्मज्ञान, धर्म, समाज, औषधि प्रयोग, शत्रुदमन आदि के साथ-साथ तन्त्र-मन्त्र, जादू, प्रेतात्मा, लोक-विश्वास आदि का भी वर्णन है।

(ii) **ब्राह्मण ग्रन्थ–** वेदों के बाद 'ब्राह्मण ग्रन्थों' की रचना हुई। प्रत्येक ब्राह्मण ग्रन्थ विभिन्न वैदिक संहिताओं से सम्बद्ध हैं। ऋग्वेद का ब्राह्मण ग्रन्थ **एतरेय** है। इसमें कुल चालीस अध्याय हैं, तथा इसके रचयिता **महीदास ऐतरेय** हैं। ऋग्वेद का दूसरा ब्राह्मण ग्रन्थ **कौषितकी** अथवा **सांख्यायन** ब्राह्मण है। कृष्ण यजुर्वेद का ब्राह्मण ग्रन्थ **तैत्तरीय** है तथा शुक्ल यजुर्वेद का **शतपथ ब्राह्मण** है। इसके 'शत' अध्याय 14 काण्डों में विभक्त हैं। शतपथ ब्राह्मण में यान्त्रिक अनुष्ठानों के साथ-साथ उनका प्रयोजन भी स्पष्ट किया गया है। इस ब्राह्मण ग्रन्थ की रचना **याज्ञवल्क्य ऋषि** द्वारा की गई है। सामवेद से सम्बन्धित तीन ब्राह्मण ग्रन्थ हैं; यथा- **ताण्डव महाब्राह्मण, षडविश ब्राह्मण** तथा **जैमनीय ब्राह्मण।** ये ब्राह्मण ग्रन्थ अपेक्षाकृत अधिक प्राचीन हैं। अथर्ववेद का ब्राह्मण ग्रन्थ 'गोपथ' है। इसमें मारण, मोहन, उच्चाटन तथा चिकित्सा सम्बन्धी मन्त्रों के याज्ञिक विधि-विधान वर्णित हैं।

(iii) **आरण्यक–** आरण्यक ब्राह्मण ग्रन्थों के उपसंहार खण्ड माने जाते हैं। मानव जीवन के गूढ़ प्रश्नों का उत्तर खोजने के लिए प्राचीन ऋषि-मुनियों ने वन्य प्रदेशों, अरण्यों तथा पर्वत कन्दराओं के एकान्त वातावरण में जो मनन-चिन्तन किया, उसके परिणामस्वरूप सृजित ग्रन्थों को आरण्यक की संज्ञा दी गई है। आरण्यक शब्द 'अरण्य' शब्द से बना है, जिसका तात्पर्य है— वन। सम्भवत: ज्ञानमार्गी विचारधारा का बीजोरोपण इन्हीं ग्रन्थों द्वारा हुआ होगा। इनकी संख्या सात है— ऐतरेय, सांख्यायन, तैत्तरीय, मैत्रायणी, माध्यन्दिन, तल्वकार तथा जैमनीय आरण्यक। आरण्यकों का वर्ण्य विषय कर्मकाण्ड न होकर रहस्यवाद तथा दर्शन है। वास्तव में 'आरण्यक' ब्राह्मण ग्रन्थों के ही भाग हैं।

(iv) **उपनिषद्–** उपनिषद् का अर्थ है— 'गुरु के निकट बैठकर प्राप्त किया हुआ ज्ञान अर्थात् वैयक्तिक अथवा गुप्त शिक्षा।' इसका आशय यह हुआ कि जिज्ञासु शिष्य का ब्रह्म और जीव के सम्बन्धों के रहस्यात्मक सिद्धान्तों पर चिन्तन मनन करने के लिए गुरु के समीप बैठना। इसका यह भी अर्थ निकलता है कि उस काल में सभी शिष्य समान रूप में इस रहस्यात्मक ज्ञान को प्राप्त करने के अधिकारी नहीं थे। उपनिषदों की कुल संख्या 108 मानी गई है, जिनमें प्रमुख ईश, केन, माण्डूक्य, मुण्डक, प्रश्न, वृहदारण्यक, छान्दोय, तैत्तरीय, ऐतरेय तथा कौषितकी हैं। इन उपनिषदों का रचनाकाल 800 ईसा पूर्व से लेकर 600 ईसा पूर्व के मध्य माना गया है। यह भी माना जाता है कि 600 ई० पू० में इनकी रचना का कार्य पूर्ण हो गया था। इनके रचनाकार विभिन्न ऋषि-मुनि थे। वैदिक साहित्य का अन्तिम भाग होने के कारण उपनिषदों को वेदान्त भी कहा जाता है।

उपनिषदों में आरण्यकों पर टीकाएँ हैं तथा इनमें 'अद्वैतवाद के सिद्धान्त' का प्रतिपादन किया गया है तथा पुनर्जन्म जैसे अन्य दार्शनिक सिद्धान्तों की व्याख्या भी की गई है। उपनिषदों में भारत के उत्तरकालीन दर्शन का सार निहित है। उपनिषदों में वर्णित सार्वभौमिक सिद्धान्त **बादरायण** के **वेदान्त सूत्रों** का आधार हैं। **शंकराचार्य** और **रामानुजाचार्य** के दार्शनिक तथा आध्यात्मिक विचार भी इन्हीं ग्रन्थों पर आधारित हैं।

10. ऋग्वैदिक समाज तथा अर्थव्यवस्था का वर्णन कीजिए।

उ०– उत्तर के लिए विस्तृत उत्तरीय प्रश्न संख्या—1 के उत्तर का अवलोकन करें।

11. उत्तर वैदिककाल के सामाजिक जीवन व राजनैतिक जीवन का वर्णन कीजिए।

उ०– सामाजिक जीवन–

(i) **परिवार–** उत्तर वैदिक काल में भी परिवार में माता-पिता, भाई-बहन, पति-पत्नी, पुत्र-पुत्री आदि रहते थे। संयुक्त परिवार प्रथा प्रचलित थी। पिता ही परिवार का मुखिया होता था।

(ii) **भोजन तथा पेय–** खाने में घी, दूध, दही, फल इत्यादि का प्रयोग किया जाता था। उत्तर-वैदिक काल में भी ऋग्वैदिक काल के समान मांस खाया जाता था तथा सुरा (मदिरा) का भी प्रयोग किया जाता था।

(iii) **मनोरंजन के साधन–** शिकार खेलना, घुड़दौड़, रथदौड़ आदि आर्यों के प्रमुख मनोरंजन के साधन थे। जुआ, नृत्य, संगीत इत्यादि के भी आर्य शौकीन थे।

(iv) **वेशभूषा प्रसाधन–** उत्तर वैदिक काल के वस्त्र पहले ही अपेक्षा श्रेष्ठ हो गये थे। मुख्यत: तीन प्रकार के वस्त्र-नीवी, वास और अधिवास धारण करते थे। आर्य-सूती, रेशमी व ऊनी कपड़े पहनते थे। आभूषण स्त्री और पुरुष दोनों ही धारण करते थे।

(v) **शिक्षा–** उत्तर वैदिक काल में शिक्षा के क्षेत्र में व्यापक परिवर्तन हुए। आध्यात्मिक तथा सांसारिक क्षेत्र में सफलता प्राप्त करना ही सम्भवत: शिक्षा का प्रमुख ध्येय था।

(vi) **वर्ण-व्यवस्था–** उत्तर-वैदिक काल में वर्ण-व्यवस्था का आधार कर्म न होकर जन्म पर आधारित हो गया। इस प्रकार जो धर्म की व्यवस्था जानते थे, ब्राह्मण कहलाए। इसी प्रकार युद्ध में रत रहने वाले व राजनीति में अधिकार रखने वाले क्षत्रिय तथा शेष जनता वैश्य कहलाई जिसमें व्यापारी एवं कृषक थे। इस व्यवस्था का निम्नतम-वर्ग शूद्र था जो अनार्य थे तथा उनका काम शेष तीनों वर्गों की सेवा करना था। यह फिर भी निश्चित है कि अभी उत्तर-वैदिककाल तक वर्ण-व्यवस्था इतनी जटिल नहीं बनी थी जैसा कि आगे चलकर हो गयी थी। शूद्रों की स्थिति इस युग में शोचनीय थी।

(vii) **विवाह एवं स्त्रियों की दशा–** विवाह एक पवित्र बंधन माना जाता था। विवाह वयस्क होने पर ही किया जाता था। सामान्यत: एक स्त्री से विवाह का प्रचलन था, परन्तु बहुविवाह का भी उत्तर-वैदिक काल में उल्लेख मिलता था। इस युग में विधवा पुनर्विवाह का भी प्रचलन था। सती प्रथा इस युग में भी प्रचलित नहीं थी।

ऋग्वैदिककाल में स्त्रियों की स्थिति जितनी गौरवपूर्ण थी उतनी उत्तर-वैदिक काल में दिखाई नहीं पड़ती। पुत्र की अपेक्षा पुत्री की अवस्था हीन थी। अथर्ववेद में पुत्री के जन्म पर खिन्नता का उल्लेख है। इस युग में धार्मिक कार्यों में भी स्त्रियों की उपस्थिति अनिवार्य न रही। फिर भी यह उल्लेखनीय है कि उत्तर वैदिक काल में नारी की चतुर्मुखी शिक्षा-दीक्षा पर विशेष बल दिया जाता था। गार्गी एवं मैत्रेयी जैसी विदुषी महिलायें इस युग की देन हैं।

(viii) आश्रम-व्यवस्था– आश्रम व्यवस्था उत्तर-वैदिक काल की एक और प्रमुख विशेषता थी। मनुष्य जीवन चार आश्रमों (अवस्थाओं) में विभाजित था—

(क) ब्रह्मचर्याश्रम– इस अवस्था में मनुष्य जीवन के पहले 25 वर्ष किसी गुरुकुल में जाकर ज्ञान प्राप्त करता था।

(ख) गृहस्थाश्रम– ब्रह्मचर्याश्रम के बाद 50 वर्ष की आयु तक विवाह करके गृहस्थ के रूप में सांसारिक जीवन का उपभोग करता था।

(ग) वानप्रस्थाश्रम– इसमें मनुष्य 75 वर्ष की आयु तक रहता था। इसके बाद वह गृहस्थी से स्वयं को अलग कर त्याग एवं तपस्या का जीवन व्यतीत करता था।

(घ) संन्यासाश्रम– इसमें मनुष्य संसार के सभी बंधन त्यागकर ब्रह्मचिन्तन में लीन हो जाता था।

राजनीतिक जीवन–

(i) राजतन्त्रों का उदय– इस युग की प्रमुख विशेषता शक्तिशाली राजतंत्रों का उदय होना था। इसका प्रमुख कारण साम्राज्यवाद की भावना का विकास होना था। छोटे एवं बड़े राज्यों में अन्तर किया जाने लगा। ऐतरेय ब्राह्मण में विभिन्न प्रकार के राज्यों का उल्लेख है— राज्य, स्वराज्य, भोज्य, वैराज्य, महाराज्य और साम्राज्य।

(ii) राजा के अधिकार–उत्तर-वैदिक काल में राज्यों की शक्ति एवं आकार में वृद्धि तथा विस्तारवादी आकांक्षाओं की पूर्ति के लिए कुशल सैनिक नेतृत्व की आवश्यकता ने अनिवार्य रूप से राजा के अधिकार में वृद्धि कर दी। सामान्यत: राजा का पद अब स्थायी और वंशानुगत हो चला था, यद्यपि निर्वाचन का सिद्धान्त नष्ट नहीं हुआ था। राजा से सदैव धर्मानुकूल आचरण की अपेक्षा की जाती थी। इस काल में राजा अधिक ऐश्वर्य से रहने लगा था और उसके कुल के लोगों का स्वतंत्र वर्ग बन गया था।

(iii) प्रशासनिक तन्त्र–राज्यों के आकार में वृद्धि के साथ प्रशासनिक तंत्र भी विस्तृत एवं जटिल हुआ। शासन का संचालन करने में राजा मन्त्रियों की एक परिषद् (राजपरिषद्) की सहायता लेता था। महत्वपूर्ण पदाधिकारियों को 'रत्निन् ' कहा गया है। शतपथ ब्राह्मण में रत्निनों के पदनामों का उल्लेख है और इनकी संख्या 11 है। ये अधिकारी हैं— पुरोहित, सेनानी, युवराज, महिषी (रानी), सूत(राजा का सारथी), ग्रामणी (ग्राम का मुखिया), क्षत्री(प्रतिहारी), संगृहीता (कोषाध्यक्ष), भागदुध (करसंग्रहकर्ता), अक्षवाप (पाँसे के खेल में राजा का सहयोगी) एवं पालागल (संदेशवाहक)। राजा इन अधिकारियों की सहायता से प्रशासन सुचारु रूप से चलाता था। इन राज्याधिकारियों का महत्व डॉ० आर० सी० मजूमदार के इस कथन से हो जाता है, ''राजसूय यज्ञ के समय राजा को एक-एक दिन इन 'रत्निनों' के घर जाना पड़ता था और वहीं जाकर उसे देवताओं की पूजा करनी पड़ती थी।

(iv) सभा, समिति एवं विदथ–उत्तर-वैदिक काल में सभा एवं समिति नामक जनसंस्थाओं का राजनीतिक महत्व बना रहा। यद्यपि ऋग्वैदिककालीन सभा व समिति की तुलना में उत्तर-वैदिक काल में सभा व समिति का महत्व कम हो गया था। अथर्ववेद के एक मंत्र में एक राजा का कथन है, ''सभा और समिति प्रजापति की दुहिताएँ हैं, वे मेरी रक्षा करें। वे मुझे उत्तम शिक्षा दें.....।'' उत्तर-वैदिक साहित्य में विदथ नामक एक अन्य संस्था का उल्लेख मिलता है। डॉ० आर० एस० शर्मा 'विदथ' को आर्यों की प्राचीनतम जनसभा मानते हैं।

(v) न्याय प्रशासन– राजा न्याय-व्यवस्था का सर्वोच्च अधिकारी होता था। न्याय-व्यवस्था के संचालन हेतु कुछ अन्य पदाधिकारी होते थे जो सहयोगी होते थे। न्यायाधीश को 'स्थापति' कहा जाता था। गाँव के साधारण अपराधों का निर्णय 'ग्राम्यवादिन' अधिकारी द्वारा किया जाता था।

12. ऋग्वैदिक संस्कृति की प्रमुख विशेषताओं का परीक्षण कीजिए।

उ०– उत्तर के लिए विस्तृत उत्तरीय प्रश्न संख्या— 1 के उत्तर का अवलोकन करें।

5 धार्मिक क्रान्ति का उद्भव (Birth of Religious Movements)

अभ्यास

निम्नलिखित तिथियों के ऐतिहासिक महत्व का उल्लेख कीजिए–

1. 551 ई० पू० 2. 599 ई० पू० 3. 563 ई० पू० 4. 300 ई० पू०

उ०– उत्तर के लिए पाठ्यपुस्तक के पृष्ठ संख्या— 67 पर तिथि सार का अवलोकन करें।

सत्य या असत्य बताइए–

उ०– प्रश्नोत्तर के लिए पाठ्यपुस्तक के पृष्ठ संख्या– 67 का अवलोकन करें।

बहुविकल्पीय प्रश्न

उ०– प्रश्नोत्तर के लिए पाठ्यपुस्तक के पृष्ठ संख्या– 67 व 68 का अवलोकन करें।

अतिलघु उत्तरीय प्रश्न

उ०– प्रश्नोत्तर के लिए पाठ्यपुस्तक के पृष्ठ संख्या– 68 व 69 का अवलोकन करें।

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. छठी शताब्दी ई० पू० की धार्मिक क्रान्ति के दो प्रमुख कारणों का उल्लेख कीजिए।

उ०– छठी शताब्दी ई० पू० की धार्मिक क्रान्ति के दो प्रमुख कारण निम्नलिखित हैं–

(i) ब्राह्मणों के प्रभुत्व का परिणाम– धार्मिक क्रान्ति के उदय का पहला महत्वपूर्ण कारण ब्राह्मणों के प्रभुत्व का चरमोत्कर्ष था इस कारण समाज के अन्य तीन वर्णों में असन्तोष व्याप्त था। डॉ० बेनी प्रसाद ने लिखा है– ''एक तो ब्राह्मण कर्मकाण्ड पर बहुत जोर देता था, यज्ञ करते-करते कभी थकता ही नहीं था और तपस्या भी बहुत कराता था। बाहरी बातों पर बहुत जोर देता था, पर आत्मा की आन्तरिक प्यास बुझाने का कोई प्रयत्न नहीं करता था।

(ii) वेदों का विरोध– वैदिक धर्म में 'वेदों' को ईश्वर की वाणी माना गया था। वेदों को सर्वदा सत्य व पूर्ण माना जाता था। परन्तु सभी के लिए वेदों के पठन-पाठन को अमान्य ठहराना भी धार्मिक असन्तोष का कारण बना अत: विरोध उग्र रूप धारण करने लगा।

2. महावीर स्वामी तथा महात्मा बुद्ध के सिद्धान्तों के मुख्य अन्तर लिखिए।

उ०– महावीर स्वामी तथा महात्मा बुद्ध (जैन तथा बौद्ध धर्म) के सिद्धान्तों के मुख्य अन्तर निम्नलिखित हैं–

(i) बौद्ध धर्म की तुलना में जैन धर्म अधिक अंहिसावादी है।

(ii) जैन धर्म बौद्ध धर्म की तुलना में अधिक प्राचीन है।

3. महावीर स्वामी व गौतम बुद्ध की शिक्षाओं में क्या समानताएँ हैं?

उ०– महावीर स्वामी व गौतम बुद्ध (जैन तथा बौद्ध धर्म) की शिक्षाओं में समानताएँ–

(i) उत्पत्ति सम्बन्धी– जैन व बौद्ध धर्म की उत्पत्ति के मूल कारण समान थे। ब्राह्मणों के द्वारा धर्म को जटिल व गूढ़ बनाने के फलस्वरूप एक ऐसे लोक कल्याणकारी आन्दोलन की आवश्यकता उत्पन्न हुई, जो धर्म के विकृत रूप का विरोध कर सकें। अत: जनकल्याण के लिए इन धर्मों का जन्म हुआ।

(ii) वेदों में अविश्वास– जैन व बौद्ध दोनों धर्मों को नास्तिक दर्शन कहा जाता है क्योंकि दोनों ही धर्म वेदों का खण्डन करते हैं। दोनो धर्मों ने वेदों की प्रमाणिकता को अस्वीकार किया है तथा वेदों के मतानुसार ईश्वर के अस्तित्व को नकारा है।

(iii) ईश्वर में अविश्वास– बौद्ध व जैन दोनों ही धर्म ईश्वर के अस्तित्व को स्वीकार नहीं करते। बौद्ध धर्म के अनुसार, मनुष्य (जीव) अपने कर्मों के आधार पर जन्म लेते हैं। मनुष्यों का निर्माण अणुओं द्वारा होता है व संसार को चलाने वाली किसी सर्वोच्च शक्ति का कोई अस्तित्व नहीं है। इसी प्रकार जैन मतावलम्बी भी ईश्वर के अस्तित्व पर विश्वास नहीं करते।

(iv) कर्मवाद मे विश्वास– दोनों धर्मों के अनुसार जीव अपने अच्छे व बुरे कर्मों के आधार पर जन्म लेते हैं। अच्छे कर्मों के कारण नवीन जन्म उच्चकोटि का व बुरे कर्मों के कारण निम्न कोटि का फल जातक (मनुष्य) को भोगना पड़ेगा।

(v) पुनर्जन्म की उपस्थिति– दोनों धर्मों में पुनर्जन्म की व्याख्या उपस्थित है। दोनों धर्म यह विश्वास रखते हैं कि जीवित मानव या अन्य जीव विभिन्न तत्वों को सम्मिश्रण है। मृत्यु के पश्चात सभी तत्व पृथक-पृथक हो जाते हैं व इस जीवन के कर्मों के अनुसार दूसरे तत्वों से उसका पुनर्जन्म होता है।

(vi) समान अन्तिम उद्देश्य– दोनों धर्मों का अन्तिम उद्देश्य 'मुक्ति' प्राप्त करना था। दोनो धर्मों ने लोगों को यह शिक्षा दी कि संसार दु:खों का भण्डार है तथा इन दु:खों से मुक्ति प्राप्त करने के लिए जन्म-मरण के चक्र से मुक्ति आवश्यक है। अत: इन दोनों धर्मों का उद्देश्य मनुष्य को दु:ख रहित अवस्था तक पहुँचाना था, जिसे 'निर्वाण' की संज्ञा दी गई।

4. भारतीय संस्कृति को जैन धर्म की क्या देन है?

उ०– भारतीय संस्कृति को जैन धर्म की देन निम्न है–

(i) जैन धर्म की अहिंसा नीति प्रारम्भ से ही भारतीयों के जीवन का अंग रही है।

(ii) कला-स्थापत्य के क्षेत्र में जैनियों ने अनेक सुन्दर मन्दिर बनाकर भारतीय कला को प्रोत्साहन दिया। जैन मन्दिर भारतीय कला का निखरा हुआ रूप प्रकट करते हैं।

(iii) जैन धर्म का अनेकान्तवाद का सिद्धान्त विभिन्न मतों एवं सम्प्रदायों के बीच भेदभाव मिटाकर समन्यवादी दृष्टिकोण अपनाने की दिशा में महत्वपूर्ण माना जा सकता है।

5. 'चार आर्य सत्यों' के विषय में आप क्या जानते हैं? या चार आर्य सत्यों के नाम लिखिए।

उ०– बौद्ध धर्म के चार आर्य सत्य निम्न है। बौद्ध धर्म मूल रूप से आचारमूलक और व्यावहारिक धर्म है। महात्मा बुद्ध ने धर्म के दार्शनिक पक्ष के स्थान पर व्यवहार पर अधिक बल दिया है उनकी दृष्टि से धार्मिक क्रियाओं और गूढ़ चिन्तन की अपेक्षा शुद्ध आचरण शुद्ध विचार, शुद्ध कर्म और शुद्ध भावना अधिक महत्वपूर्ण है। इन चार आर्य सत्य के नाम हैं–

(i) दु:ख (ii) दु:ख समुदाय (iii) दु:ख निषेध (iv) दु:ख निरोध मार्ग

6. स्याद्वाद से आप क्या समझते हैं?

उ०– स्याद्वाद– इसका अर्थ है प्रत्येक वस्तु के अनेक पक्ष है। महावीर स्वामी के अनुसार– सत्य के भी कई पहलू होते हैं। परिस्थिति भेद से मानव को इसका आंशिक ज्ञान होता है। कोई भी मनुष्य यह दावा नहीं कर सकता है कि उसके विचार ही पूर्ण रूप से सत्य है। सायादवाद के अनुसार किसी वस्तु अथवा सत्य के बारे में 7 प्रकार के कथन हो सकते हैं।

(i) शायद वह है। (ii) शायद वह नहीं हैं।
(iii) शायद वह है भी और नहीं भी। (iv) शायद कुछ कहा नहीं जा सकता।
(v) शायद वह है किन्तु कहा नहीं जा सकता (vi) शायद वह नहीं है और कहा भी नहीं जा सकता।
(vii) शायद वह है नहीं और कहा भी नहीं जा सकता।

7. हीनयान तथा महायान में क्या अन्तर है?

उ०– गौतम बुद्ध की मृत्यु के पश्चात बौद्ध धर्म दो शाखाओं में बँट गया था– हीनयान और महायान। हीनयान; बौद्ध धर्म का वह सम्प्रदाय है जो बौद्ध धर्म के प्राचीन स्वरूप को ही स्वीकार करता है। यह सम्प्रदाय ईश्वर के स्वरूप तथा अस्तित्व में विश्वास नहीं करता है। यह लोक-कल्याण की अपेक्षा स्व-कल्याण में विश्वास करता है।

इसके विपरीत, महायान सम्प्रदाय परिवर्तनों का समर्थक है । इस सम्प्रदाय के अनुयायी बुद्ध को ईश्वर मानकर उनकी पूजा करते हैं। ये लोक-कल्याण में विश्वास करते है तथा कर्मकाण्डों को महत्व देते हैं।

8. बौद्ध धर्म के अष्टांगिक मार्ग पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए?

उ०– गौतम बुद्ध ने सांसारिक दु:खों का अन्त करने के लिए जिस मार्ग का प्रतिपादन किया, उसे 'अष्टांग मार्ग 'कहते हैं। इसके अन्तर्गत निम्नलिखित आठ बातें सम्मिलित हैं–

(i) सम्यक दृष्टि, (ii) सम्यक संकल्प, (iii) सम्यक वाणी, (iv) सम्यक कर्म,
(v) सम्यक जीवन, (vi) सम्यक ध्यान, (vii) सम्यक व्यायाम (उद्यम),(viii)सम्यक समाधि।

9. जैन धर्म के पाँच महाव्रत लिखिए?

उ०– जैन धर्म के पाँच महाव्रत– जैन धर्म के अनुसार, मोक्ष प्राप्ति के लिए पाँच अन्य नियमों का पालन करना भी आवश्यक है। ये नियम या महाव्रत इस प्रकार हैं–

(i) अंहिसा– इसका अर्थ है 'जीव मात्र के प्रति दया का व्यवहार करना।'

(ii) सत्य– जैन धर्म ने सत्य बोलने की शिक्षा दी है। जैनधर्म के अनुसार मनुष्य को सदैव सत्य बोलना चाहिए। सत्य बोलने के लिए मनुष्य को लोभ, मोह, मायाचार एवं क्रोध से दूर रहना चाहिए।

(iii) अस्तेय– इसका तात्पर्य है– 'चोरी न करना।'

(iv) अपरिग्रह– इसका अर्थ है– 'सांसारिक वस्तुओं का संग्रह करने के मोह को त्याग देना।

(v) ब्रह्मचर्य– इसका अर्थ है– 'इन्द्रियों को वश में करते हुए सदाचार पर आधारित जीवन व्यतीत करना।'

इनके साथ ही जैन धर्म में गृहस्थ जीवन व्यतीत करने वालों को तीन अणुव्रतों का पालन करना भी आवश्यक है। जैन धर्म में चार शिक्षाव्रतों का उल्लेख भी मिलता है।

10. महावीर स्वामी की शिक्षाओं पर प्रकाश डालिए।

उ०– महावीर स्वामी की शिक्षाएँ इस प्रकार हैं–

(i) ईश्वर में अविश्वास अर्थात् ईश्वर कुछ नहीं करता, हम स्वयं ही अपने अच्छे-बुरे कर्मों का भोग करते हैं।
(ii) आत्मा के अस्तित्व तथा अमरत्व में विश्वास अर्थात् आत्मा अमर और अनन्त है।
(iii) सम्यक ज्ञान, सम्यक चरित्र और सम्यक दर्शन में विश्वास।
(iv) पंच-अणुव्रत का पालन करने पर बल।

11. 'धर्म-चक्रप्रवर्तन' का क्या आशय है?

उ०– धर्म-चक्रप्रवर्तन– बुद्ध ने ज्ञान-प्राप्ति के बाद पीड़ित मानवता के उद्धार के लिए सबको ज्ञान का उपदेश देने का निश्चय किया। वे गया से ''सारनाथ (बनारस)'' पहुँचे और वहाँ उन्होंने सर्वप्रथम धर्म का उपदेश दिया। बौद्ध साहित्य में प्रथम धर्म उपदेश की यह घटना 'धर्म-चक्रप्रवर्तन' (धर्मरूपी चक्र चलाना) कहलाता है।

बुद्ध जीवनपर्यन्त मगध, काशी, कोसल, वज्जि, मल्ल, वत्स, शाक्य, कोलिय, मोरिय,अंग आदि जनपदों मे विचरण करते रहे अपनी शिक्षाओं का प्रचार करते रहे। इस दौरान वे अपनी जन्मभूमि कपिलवस्तु भी गये । उन्होंने अपना सर्वाधिक समय कोशल

जनपद में बिताया। वैशाली में प्रवास के दौरान ही बुद्ध ने पहली बार स्त्रियों को संघ में प्रवेश की अनुमति प्रदान की। भिक्षुणी संघ में प्रवेश पाने वाली प्रथम महिला महाप्रजापति गौतमी थी, जो बुद्ध की मौसी थी तथा जिसने उनका लालन-पालन किया था।

12. बौद्ध धर्म की सफलता के दो कारण बताइए?

उ०– बौद्ध धर्म की सफलता के दो कारण निम्नलिखित हैं—

(i) लोकप्रिय भाषा का प्रयोग– छठी शताब्दी ईसा पूर्व तक आते आते संस्कृत भाषा केवल ग्रन्थ लेखन तथा पण्डितों की भाषा रह गई थी। जनसाधारण पारस्परिक वार्तालाप में पालि भाषा का प्रयोग करने लगा था। इस प्रकार ग्रन्थभाषा एवं जनभाषा भिन्न थी। इस स्थिति में संस्कृत भाषा के धार्मिक सिद्धान्त जनसाधारण के लिए दुर्बोध बन गए। बुद्ध ने इस कठिनाई को हृदयंगम करके अपने सिद्धान्तों के उपदेश जनसामान्य की बोलचाल की भाषा में दिए। पालि में दिए गए इन उपदेशों को अशिक्षित सामान्य जन भी सरलता से समझ पाते थे।

(ii) अनुकूलता की शक्ति– बौद्ध धर्म में व्यावहारिकता बहुत अधिक थी। इसी कारण परिस्थिति बदलने पर बौद्ध धर्म भी थोड़े से सुधार से उसके अनुकूल बन जाता था। भारत से बाहर के देशों में प्रचारित होने पर इस धर्म ने अपने आपको वहाँ की परिस्थिति एवं वातावरण के अनुकूल ढाल लिया, जिससे उन देशवासियों पर गहरा प्रभाव पड़ा। इसी कारण चीन, जापान, म्यांमार (बर्मा), हिन्दचीन आदि देशों में आज तक इसके पर्याप्त अनुयायी हैं।

13. बौद्ध धर्म के पतन के दो कारणों का उल्लेख कीजिए?

उ०– बौद्ध धर्म के पतन के दो कारण निम्न हैं—

(i) बौद्ध-भिक्षुओं का पतित जीवन– गौतम बुद्ध के जीवनकाल एवं उनकी मृत्यु के कुछ समय बाद तक बौद्ध धर्म को पर्याप्त राजकीय संरक्षण एवं सहायता मिलती रही। अनेक राजाओं और धनवानों ने बौद्ध मठ, विहार आदि बनवाए और उन्हें पर्याप्त धन दान दिया। इससे भिक्षुओं को आराम से रहने तथा अच्छा भोजन खाने को मिलने लगा और वे त्याग व साधना को भूलकर भोग-विलास में डूब गए। इस प्रकार उनका विलासी जीवन बौद्ध धर्म के पतन का प्रमुख कारण बना।

(ii) सम्राटों का संरक्षण न मिलना– सम्राट अशोक तथा कनिष्क के पश्चात के राजाओं ने बौद्ध धर्म के स्थान पर हिन्दू धर्म को स्वीकार किया और इसे ही अपना राजधर्म घोषित किया। गुप्त सम्राटों ने ब्राह्मण धर्म स्वीकार कर विष्णु की पूजा प्रारम्भ की तथा राजपूत राजाओं ने भी ब्राह्मण धर्म को ही अपना लिया। इस प्रकार कालान्तर में बौद्ध धर्म को राजाओं का संरक्षण प्राप्त नहीं हुआ। इन परिस्थितियों में बौद्ध धर्म का पतन स्वाभाविक ही था।

14. बौद्ध धर्म के विघटन के कारण बताइए?

उ०– उत्तर के लिए लघु उत्तरीय प्रश्न संख्या– 13 के उत्तर का अवलोकन करें।

15. महायान सम्प्रदाय के उद्देश्यों का संक्षिप्त वर्णन कीजिए?

उ०– उत्तर के लिए लघु उत्तरीय प्रश्न संख्या– 7 के उत्तर का अवलोकन करें।

16. महावीर एवं बुद्ध की दो समान शिक्षाओं का उल्लेख कीजिए।

उ०– महावीर एवं बुद्ध की दो समान शिक्षाएँ निम्नलिखित हैं—

(i) जैन धर्म और बौद्ध धर्म दोनों के ही अनुयायी वेदों में विश्वास नहीं करते थे।

(ii) दोनों ही धर्म के अनुनायी कर्मवाद में विश्वास करते थे। महावीर स्वामी और बुद्ध के अनुसार यह निर्देशित किया गया है कि जीव तीन बलों (मन बल, वचन बल, काय बल) से कर्मों के बन्धन में बँधता है तथा उसी के अनुसार उसे अच्छे-बुरे फल भोगने पड़ते हैं।

17. जैन व बौद्ध धर्म से संबंधित दो स्थलों का वर्णन कीजिए?

उ०– (i) कुण्डग्राम– यह स्थान वैशाली (जिला मुजफ्फरपुर, बिहार) में स्थित है। छठी शताब्दी ईसा पूर्व में इस स्थान पर ज्ञात्रिकों का प्रभुत्व था और यहीं पर महावीर स्वामी ने जन्म लिया था। यहाँ का जैन मन्दिर दर्शनीय है।

(ii) पावापुरी– यह नगर बिहार शरीफ से नौ किलोमीटर पर स्थित है। इसका प्राचीन नाम अपापा था। इसी स्थान पर महावीर स्वामी ने निर्वाण प्राप्त किया। महावीर के निर्वाण का सूचक एक स्तूप यहाँ खण्डहर के रूप में विद्यमान है।

विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

1. भारत में बौद्ध धर्म के उदय के कारणों पर प्रकाश डालिए?

उ०– बौद्ध धर्म के उत्थान एवं प्रसार के निम्नलिखित कारण थे—

(i) ब्राह्मण धर्म में व्याप्त दोष– जिस समय बौद्ध धर्म का उदय हुआ, उस समय तक ब्राह्मण धर्म में अनेक दोष उत्पन्न हो चुके थे। वैदिक धर्म के दार्शनिक विचार इतने जटिल हो गए थे कि वे साधारण जनता की समझ से परे थे। जाति-पाँति के बन्धन भी बहुत कठोर हो गए थे। शूद्र वर्ण के लोगों को किसी भी प्रकार के धार्मिक कर्मकाण्ड करने का अधिकार प्राप्त नहीं था। इसके अतिरिक्त वैदिक धर्म बहुत खर्चीला हो गया था, क्योंकि इस धर्म में ब्राह्मण एवं पुरोहितों का प्रभुत्व बढ़ गया था। प्रत्येक अवसर पर यज्ञ करने का प्रचलन था, जिन्हें पुरोहित लोग कराते थे और वे पर्याप्त दक्षिणा आदि लेते थे। ऐसे वातावरण में सरल और सर्वग्राही बौद्ध धर्म का उत्थान होना स्वाभाविक ही था।

(ii) **महात्मा बुद्ध का आकर्षक व्यक्तित्व व पवित्र जीवन–** महात्मा बुद्ध का प्रभावशाली व्यक्तित्व और नैतिक चरित्र, बौद्ध धर्म की व्यापकता का मुख्य आधार-स्तम्भ बना। उनका जीवन आदर्शों से युक्त था। उनकी विशेषता यह थी कि वे जैसा आचरण करने को वैसा ही आचरण स्वयं करते थे, जिससे जनता पर प्रत्यक्ष रूप से गहरा प्रभाव पड़ता था। इसके अतिरिक्त, महात्मा बुद्ध परम त्यागी, नि:स्वार्थी, दयावान एवं ज्ञानी पुरुष थे जिसका जनसाधारण पर गहरा प्रभाव पड़ा।

(iii) **जाति-पाँति का भेदभाव न होना–** बौद्ध धर्म से पूर्व समाज में जाति-पाँति का बहुत भेदभाव व्याप्त था, किन्तु बौद्ध धर्म के द्वार सभी जातियों के लिए खुले थे। अत: निम्न जाति के लोगों ने बौद्ध धर्म की शरण ली। बौद्ध धर्म में समस्त जातियों और वर्णों के स्त्री-पुरुषों को प्रवज्या लेने का अधिकार प्राप्त था। शूद्र हो या ब्राह्मण, सभी भिक्षुओं और भिक्षुणियों को बौद्ध धर्म में समान अधिकार प्राप्त थे।

(iv) **भिक्षुओं का दृढ़ संगठन–** बौद्ध धर्म के प्रसार का एक मुख्य कारण भिक्षुओं का आश्चर्यजनक संगठन भी था। बुद्ध को यह भली-भाँति पता था कि भिक्षुओं के संगठन को सुदृढ़ किए बिना बौद्ध धर्म को दूर तक प्रसारित करना सम्भव नहीं है। इसीलिए उन्होंने भिक्षुओं को बौद्ध संघों में संगठित किया।

(v) **जनसाधारण की भाषा में धर्म प्रचार–** बौद्ध धर्म की लोकप्रियता का एक प्रमुख कारण यह भी था कि उस समय प्रचलित ब्राह्मण धर्म के ग्रन्थ बहुत कठिन भाषा में लिखे गए थे। उनमें दिया गया वर्णन सामान्य व्यक्ति नहीं समझ सकता था। बुद्ध ने बौद्ध धर्म की बातें बहुत सरल एवं जन-साधारण की बोल-चाल की भाषा पालि में बताईं। यही कारण था कि लोग उनके उपदेशों को सुगमता एवं सहजतापूर्वक ग्रहण कर उनके अनुयायी बनते चले गए।

(vi) **शासन का सहयोग–** बौद्ध धर्म को अनेक महान राजाओं ने अपना आश्रय भी प्रदान किया। सम्राट अशोक ने तो अपना तन-मन-धन एवं पुत्र महेन्द्र तथा पुत्री संघमित्रा को भी इस धर्म के प्रचार में लगा दिया। उसने बौद्ध धर्म के उपदेशों को शिलाओं पर लिखवाकर स्थान-स्थान पर लगवा दिया जिससे साधारण जनता उन उपदेशों को पढ़कर आचरण करे। यहाँ उल्लेखनीय है कि सम्राट अशोक ने 84 हजार स्तूपों का निर्माण करवाया था। इन स्तूपों में 'साँची का स्तूप' प्रमुख है। सम्राट अशोक की मृत्यु के पश्चात् कनिष्क और इसी प्रकार हर्ष और बंगाल के पाल राजाओं यथा धर्मपाल आदि ने भी इस धर्म की उन्नति में पर्याप्त योगदान दिया। हर्ष की कन्नौज सभा से भी बौद्ध धर्म का विशेष प्रसार हुआ था।

(vii) **बौद्ध-भिक्षुओं और भिक्षुणियों का त्यागमय जीवन–** भिक्षुओं और भिक्षुणियों का जीवन अन्य सम्प्रदायों के साधु-संन्यासियों की अपेक्षा बहुत ही आदर्शपूर्ण और त्यागमय था। इस त्यागमयी जीवन का समाज के सामान्य और बुद्धिजीवी व्यक्तियों पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ता था।

(viii) **बौद्ध धर्म की सभाएँ–** बौद्ध धर्म की त्रुटियों को दूर करने के उद्देश्य से समय-समय पर सभाओं का आयोजन भी किया जाता था, जिसके कारण इस धर्म की प्रगति में बहुत सफलता प्राप्त हुई। इन सभाओं में आन्तरिक मतभेद दूर हो जाते थे, जिससे बौद्ध प्रचारक अधिक उत्साह से प्रचार कार्य में तल्लीन हो जाते थे।

(ix) **श्रेष्ठ प्रचार विधि–** महात्मा बुद्ध में एक विशेष बात यह थी कि वे अपने धर्म को सरलता से समझ में आ जाने वाला बनाने के लिए जिन उपमाओं एवं उदाहरणों का सहारा लेते थे, वे मानव-जीवन से सम्बन्धित होते थे। इससे लोग बौद्ध धर्म की अनेक बातें सरलता से समझ जाते थे। नागार्जुन, वसुमित्र, धर्मकीर्ति, असंग, कुमारजीव तथा दिङ्.नाग जैसे बौद्ध धर्म के विद्वानों ने बौद्ध धर्म के प्रचार में महत्वपूर्ण योगदान किया।

(x) **नालन्दा विश्वविद्यालय द्वारा प्रचार–** नालन्दा विश्वविद्यालय ने भी बौद्ध धर्म के प्रचार में पर्याप्त योगदान किया। विद्यार्थी एवं विद्वान बौद्ध धर्म की शिक्षाओं के अध्ययन हेतु सुदूर स्थानों से नालन्दा में आते थे और लौटकर अपने देशों में बौद्ध धर्म का व्यापक प्रचार करते थे।

(xii) **बौद्ध धर्म के सिद्धान्तों का सरल होना–** बौद्ध धर्म के सिद्धान्त बहुत सरल और समझ में आ जाने वाले थे। महात्मा बुद्ध ने अत्यन्त सरल भाषा में लोगों को समझाया कि जीवन दु:खमय है और तृष्णा को समाप्त करके ही दु:खमय जीवन से मुक्ति प्राप्त कर पाना सम्भव है। इस प्रकार उन्होंने क्रमबद्ध ढंग से समझाया कि मानव जीवन कैसा है और उससे किस प्रकार मुक्ति पाई जा सकती है।

2. महात्मा बुद्ध के प्रमुख सिद्धान्तों का विवेचन कीजिए।

उ०– बौद्ध धर्म के सिद्धान्त अथवा शिक्षाएँ– महात्मा बुद्ध के प्रमुख उपदेश उनके चार आर्य सत्य थे, जिन पर उन्होंने विशेष बल दिया। उनके अन्य उपदेश अथवा सिद्धान्त इन्हीं चार आर्य स्तम्भों पर आधारित थे। ये चार आर्य सत्य निम्नांकित हैं–

(i) **दु:ख–** बुद्ध का कहना था कि मानव जीवन में चारों ओर दु:ख ही दु:ख है। रोग, बुढ़ापा और मृत्यु ये तीनों दु:ख मनुष्य के जीवन में निश्चित रूप से आते हैं। इसके अतिरिक्त, इच्छित वस्तु की प्राप्ति न होने पर भी दु:ख का अनुभव होता है। प्रिय के बिछुड़ने पर भी दु:ख होता है। इस प्रकार संसार दु:खों का सागर है।

(ii) **दु:ख समुदय (दु:ख का कारण)–** भगवान बुद्ध ने अबोध जनता को केवल दु:ख की स्थिति ही नहीं बताई, बल्कि दु:खों की उत्पत्ति का कारण (इच्छा, तृष्णा, भोग, काम-वासना आदि) भी बताया।

(iii) **दु:खों की समाप्ति तृष्णा के नाश से सम्भव–** लोगों को दु:ख का कारण समझा देने के बाद महात्मा बुद्ध ने तीसरे सत्य के अन्तर्गत यह बताया कि यदि इस तृष्णा को समाप्त कर दिया जाए, तो मनुष्य जन्म-मरण के चक्कर से मुक्त हो निर्वाण

प्राप्त कर सकता है। महात्मा बुद्ध का भिक्षुकों को उपदेश था कि ''संसार में जो कुछ भी प्रिय लगता है, संसार में जिसमें भी रस मिलता है, उसे जो दुःख-रूप समझेंगे, रोग रूप समझेंगे, उससे उठेंगे, वे ही तृष्णा को छोड़ सकेंगे।'' तृष्णा का नाश हो जाने पर ऐसी अवस्था प्राप्त हो जाती है, जिसमें कोई दुःख नहीं होता।

(iv) दुःख निवारण का मार्ग-अष्टांगिक मार्ग– गौतम बुद्ध ने अपने चौथे आर्य सत्य में लोगों को इस तृष्णा से मुक्ति पाने के लिए **अष्टांगिक मार्ग** का अनुसरण करने पर बल दिया। अष्टांग मार्ग के अन्तर्गत आठ साधन हैं, जो निम्नांकित हैं— (क) सम्यक् दृष्टि, (ख) सम्यक् संकल्प, (ग) सम्यक् वाणी, (घ) सम्यक् जीविका, (ङ) सम्यक् कर्म, (च) सम्यक् स्मृति, (छ) सम्यक् व्यायाम एवं (ज) सम्यक् समाधि।

इस अष्टांग मार्ग को **'मध्यमा-प्रतिपदा'** अर्थात् **'मध्यम-मार्ग'** भी कहते हैं।

दस आचरण (शील)– बुद्ध ने अपने व्यवहारिक धर्म में दस आचरणों का पालन करने का निर्देश दिया है। प्रथम पाँच आचरण संसार में रहने वाले गृहस्थों, बौद्ध भिक्षुओं तथा भिक्षुणियों दोनों के लिए हैं। बाद के पाँच आचरण केवल बौद्ध-भिक्षुओं और भिक्षुणियों के लिए ही हैं। ये दस आचरण निम्नलिखित हैं—

(i) अहिंसा– हिंसा न करना,
(ii) सत्य- झूठ न बोलना,
(iii) अचौर्य- चोरी न करना,
(iv) ब्रह्मचर्य- संयमित जीवन व्यतीत करना,
(v) अपरिग्रह- अधिक वस्तुओं का संग्रह न करना,
(vi) असमय भोजन का परित्याग,
(vii) कोमल शय्या का परित्याग,
(viii) नृत्य, गायन एवं मादक वस्तुओं का त्याग,
(ix) सुगन्धित पदार्थों का त्याग,
(x) कुविचारों का त्याग।

3. भारत में बौद्ध धर्म के उत्थान एवं पतन के कारणों की विवेचना कीजिए।

उ०– बौद्ध धर्म के उत्थान के कारण– इसके लिए विस्तृत उत्तरीय प्रश्न संख्या—1 के उत्तर का अवलोकन करें।

बौद्ध धर्म के पतन के कारण– कनिष्क की मृत्यु के पश्चात् हिन्दू धर्म का पुनरुत्थान प्रारम्भ हुआ क्योंकि उसने बौद्ध धर्म की सभी विशेषताओं को ग्रहण कर लिया था। इसके फलस्वरूप बौद्ध धर्म के प्रसार में अनेक बाधाएँ उपस्थित हो गई थीं। इसके अतिरिक्त ईस्वी सन् की प्रथम शताब्दी तक बौद्ध धर्म का कोई सशक्त बौद्ध संघ अथवा बौद्ध भिक्षु भी शेष नहीं रह गया था, जो हिन्दू धर्म की विसंगतियों का तर्कपूर्ण एवं युक्तिसंगत उत्तर दे सकता तथा लोगों को बौद्ध धर्म के सम्बन्ध में आवश्यक मार्गदर्शन कराता। अत: बौद्ध धर्म निरन्तर पतन की ओर उन्मुख होता गया। उसके पतन के प्रमुख कारण निम्नलिखित हैं—

(i) बौद्ध-भिक्षुओं का पतित जीवन– गौतम बुद्ध के जीवन-काल एवं उनकी मृत्यु के कुछ समय पश्चात् तक बौद्ध धर्म को पर्याप्त राजकीय संरक्षण एवं सहायता मिलती रही। अनेक राजाओं और धनवानों ने बौद्ध मठ, विहार आदि बनवाए और उन्हें पर्याप्त धन दान में दिया। इससे भिक्षुओं को आराम से रहने तथा अच्छा भोजन खाने को मिलने लगा और वे त्याग व साधना को भूलकर भोग-विलास में डूब गए। इस प्रकार उनका विलासी जीवन बौद्ध धर्म के पतन का प्रमुख कारण बना।

(ii) सम्राटों का संरक्षण न मिलना– सम्राट अशोक तथा कनिष्क के पश्चात् के राजाओं ने बौद्ध धर्म के स्थान पर हिन्दू धर्म को स्वीकार किया और इसे ही अपना राजधर्म घोषित किया। गुप्त सम्राटों ने ब्राह्मण धर्म स्वीकार कर विष्णु की पूजा प्रारम्भ की तथा राजपूत राजाओं ने भी ब्राह्मण धर्म को ही अपना लिया। इस प्रकार कालान्तर में बौद्ध धर्म को राजाओं का संरक्षण प्राप्त नहीं हुआ। इन परिस्थितियों में बौद्ध धर्म का पतन स्वाभाविक ही था।

(iii) गृहस्थ धर्म की अवहेलना– बौद्ध धर्म अपनाने वाले व्यक्ति भी अपने गृहस्थ धर्म को त्यागकर भिक्षु बनने लगे थे। इससे सामाजिक व्यवस्था डगमगाने लगी। इसके दुष्परिणामों के सम्बन्ध में रामधारी सिंह दिनकर ने अपनी पुस्तक 'भारतीय संस्कृति के चार अध्याय' में लिखा है— ''बौद्ध धर्म से समाज की तीसरी कु-सेवा यह हुई कि लोग घर-बार छोड़कर संन्यासी होने लगे और सारा देश मठों और विहारों से भर गया ..... बुद्ध ने यह प्रथा चला दी थी कि बालक, बूढ़ा, नौजवान जो जब चाहे, संन्यास ले सकता है। परिणाम यह हुआ कि हृष्ट-पुष्ट लोग, जो खेती में काम कर सकते थे अथवा समाज की सेवा कर सकते थे, गेरुआ वस्त्र पहनकर भिक्षु बनकर इधर-उधर डोलने लगे।'' गृहस्थ धर्म की इस अवहेलना का परिणाम यह हुआ कि बौद्ध धर्म पतन के गर्त में विलीन होने लगा।

(iv) बौद्ध संघों में स्त्रियों का प्रवेश– प्रारम्भ में बुद्ध ने स्त्रियों को अपने धर्म संघ में प्रवेश नहीं दिया था किन्तु अपने प्रिय शिष्य **आनन्द** और मौसी **प्रजापति गौतमी** के आग्रह पर इन्होंने स्त्रियों को अपने संघ में प्रवेश की अनुमति दी। यद्यपि वे इसका परिणाम जानते थे। इसीलिए एक बार उन्होंने आनन्द से कहा भी था- ''आनन्द! मैंने जो धर्म चलाया था, वह पाँच हजार वर्ष तक स्थायी रहने वाला था, लेकिन अब वह केवल पाँच सौ वर्ष ही चलेगा, क्योंकि हमने स्त्रियों को संघ में सम्मिलित होने की अनुमति दे दी है।'' वास्तव में, स्त्रियों के प्रवेश के दुष्परिणाम कुछ तो बुद्ध के सामने ही स्पष्ट होने लगे थे और उनकी मृत्यु के पश्चात् तो भिक्षु एवं भिक्षुणियाँ पूर्णरूप से स्वच्छन्द हो गए। **चुल्लवग्ग** में कहा गया है कि बौद्ध भिक्षु सुन्दर पुष्पमालाओं और अन्य साधनों से कुल-वधुओं और कुमारियों को आकर्षित करने में लिप्त रहते थे। इस प्रकार के अनैतिक वातावरण के कारण बौद्ध धर्म का पतन होना स्वाभाविक था।

(v) नास्तिकता– बुद्ध किसी देव या ईश्वर के अस्तित्व में विश्वास नहीं करते थे, जबकि साधारण मनुष्य ऐसी धारणा रखता है कि उसके अच्छे और बुरे कर्मों को भगवान देख रहा है, इसीलिए बुरे कर्मों को करने से वह डरता है तथा मूर्तिपूजा,

आराधना, उपासना करके मन में सन्तोष अनुभव करता है। इस प्रकार, ईश्वर के अस्तित्व में विश्वास के कारण लोग अच्छे कर्म करते हैं, लेकिन बौद्ध धर्म में ईश्वर को नहीं माना गया है। नास्तिकता की इस भावना के प्रसार का परिणाम यह हुआ कि लोग यह सोचने लगे अच्छे या बुरे कर्म को देखने वाला ईश्वर नहीं है। यह नास्तिकता भी बौद्ध धर्म के पतन का प्रमुख कारण बनी।

(vi) बौद्ध धर्म का सम्प्रदायों में विभक्त होना– बौद्ध धर्म की अवनति का एक प्रमुख कारण यह भी था कि बौद्ध-धर्मोपासक दो सम्प्रदायों हीनयान और महायान में विभक्त हो गए थे। इन प्रचारकों को बौद्ध धर्म की उन्नति का कोई ध्यान नहीं रहा और वे व्यर्थ के वाद-विवाद में ही समय व्यतीत करने लगे। बौद्ध धर्म का विघटन दो सम्प्रदायों तक ही सीमित नहीं रहा, वरन् अल्प मत-मतान्तरों के साथ कुछ उपासक अन्य सम्प्रदायों में भी विभाजित होते चले गए। इसका दुष्परिणाम यह हुआ कि भिक्षुओं में प्रारम्भ में धर्म-प्रचार के लिए जो निष्ठा एवं अदम्य उत्साह विद्यमान था, वह धीरे-धीरे कम होता चला गया, जिससे बौद्ध धर्म की उन्नति अवरुद्ध हो गई।

(vii) देवस्तुति एवं मूर्तिपूजा का प्रारम्भ– महात्मा बुद्ध ईश्वर और देवताओं का अस्तित्व नहीं मानते थे। उनका कहना था कि सृष्टि कर्मों के फल के अनुसार ही चली आ रही है, किन्तु उनकी मृत्यु के पश्चात् इनके अनुयायियों ने बौद्ध धर्म में हिन्दुओं के देववाद को अपना लिया तथा वे मूर्तिपूजा एवं हिन्दू धर्म के अनेक रीति-रिवाजों का अनुसरण करने लगे। इससे बौद्ध धर्म के अनुयायी हिन्दू-धर्म की कर्मकाण्ड वाली जटिल रीतियों को अपनाने लगे।

(viii) भाषा में परिवर्तन– बुद्ध ने अपने सिद्धान्तों एवं आदर्शों को सरल भाषा में समझाया था, किन्तु उनकी मृत्यु पश्चात् बौद्ध धर्माचार्यों ने पुन: संस्कृत भाषा को अपना लिया तथा बौद्ध धर्म में अनेक गूढ़ बातों का समावेश हो गया। भाषा में होने वाले इन परिवर्तनों के कारण लोगों में बौद्ध धर्म के प्रति विरक्ति उत्पन्न होने लगी।

(ix) विदेशियों का आक्रमण– कालान्तर में विदेशी जातियों ने आक्रमण कर बौद्ध संस्कृति के असंख्य अवशेषों को नष्ट कर दिया। हूणों ने भी बौद्ध धर्म को बहुत अधिक हानि पहुँचाई। मुसलमानों ने भी भारत में अपने धर्म के प्रचार हेतु बौद्ध मठों एवं विहारों को तुड़वा डाला था तथा अनेक भिक्षुओं एवं भिक्षुणियों को मौत के घाट उतार दिया गया। इस प्रकार, बौद्ध धर्म को विदेशी आक्रमणों ने अपार क्षति पहुँचाई। यह नितान्त सत्य भी है कि बौद्ध धर्म में विनाशकारी परिवर्तनों, सम्प्रदायवाद और भिक्षु-भिक्षुणियों के अनैतिक चरित्र के कारण इसके महान आदर्श विलीन हो गए और आधुनिक काल में बौद्ध धर्म सम्पूर्ण भारत से विलीन-सा हो गया।

4. बौद्ध धर्म की शिक्षा एवं दर्शन पर प्रकाश डालिए। जैन धर्म से इसकी समानताओं एवं असमानताओं को स्पष्ट कीजिए।

उ०– बौद्ध धर्म मूल रूप से अचारमूलक और व्यावहारिक धर्म है। महात्मा बुद्ध ने धर्म के दार्शनिक पक्ष के स्थान पर व्यवहार पर अधिक बल दिया है। इसकी दृष्टि से धार्मिक क्रियाओं और गूढ़ चिन्तन की अपेक्षा शुद्ध आचरण, शुद्ध विचार, शुद्ध कर्म और शुद्ध भावना अधिक महत्वपूर्ण है। बुद्ध अपने उपदेशों में कहा करते थे– ''भिक्षुओं! मैं दो बातों का ही उपदेश देता हूँ– दु:ख और दु:ख, दु:ख संसार हैं और दु:ख निरोध निर्वाण है।''

आर्य सत्य– बौद्ध धर्म के सिद्धान्तों की आधारशिला उसके चार आर्य सत्यों में निहित है। ये चार आर्य सत्य हैं–

(i) दु:ख-बुद्ध के अनुसार, समस्त मानव-जीवन दु:खमय है। चारों ओर दु:ख हैं। स्वयं महात्मा बुद्ध के शब्दों में,जन्म भी दु:ख है, वृद्धावस्था भी दु:ख है, मृत्यु भी दु:ख है, अप्रिय-मिलन भी दु:ख है, प्रिय-वियोग भी दु:ख है, इच्छित वस्तु की अप्राप्ति भी दु:ख है, मृत्यु भी, दु:ख का अन्त नहीं है, क्योंकि मृत्यु के बाद पुनर्जन्म है, इस प्रकार यह भवचक्र चलता रहता है और मनुष्य निरन्तर दु:ख भोगता रहता है।''

(ii) दु:ख समुदाय– द्वितीय आर्य सत्य है कि दु:ख अकारण नहीं है। जब दु:ख है तो कोई-न-कोई कारण अवश्य होना चाहिए। बौद्ध धर्म के प्रतीत्य-समुत्पाद के नियम के अनुसार, सृष्टि का चक्र कार्य-कारण श्रृंखला में बँधा है। इसका अर्थ है कि कारण के होने पर भी कार्य होता है, यह नियम अटल है। इसलिए दु:ख का भी कारण है। दु:ख का मूल कारण अविद्या है, जिसका अर्थ है– ''अपने वास्तविकतास्वरूप के बारे में मिथ्या धारणा।

(iii) दु:ख निरोध– तृतीय आर्य सत्य है कि जहाँ दु:ख का कारण है, वहाँ उससे छुटकारा भी है। दु:ख को दूर करने का उपाय उसके कारण को दूर करना है। दु:ख का कारण जो तृष्णा है, उसको जड़ से उखाड़ फेंक देने से दु:ख का निरोध हो सकता है। अविद्या एव तृष्णा की समाप्ति ही दु:ख के अन्त का उपाय है।

(iv) दु:ख निरोध मार्ग– चतुर्थ आर्य सत्य है कि यदि दु:ख है, दु:ख का कारण है, दु:ख का निदान सम्भव है तो फिर इस हेतु कोई तरीका अथवा मार्ग भी होना चाहिए। महात्मा बुद्ध ने इस मार्ग को ''दु:ख निरोध गामिनी प्रतिपदा'' या ''दु:ख निरोध मार्ग'' कहा है। इसे अष्टांगिक मार्ग भी कहा गया है।

अष्टांगिक मार्ग– अष्टांगिक मार्ग के आठ अंग इस प्रकार हैं–

(i) सम्यक् दृष्टि– सत्य दृष्टि, असत्य को पहचानने का ज्ञान।

(ii) सम्यक् संकल्प– इच्छा एवं हिंसारहित संकल्प।

(iii) सम्यक् वाणी– सत्य एवं मृदु वाणी।

(iv) **सम्यक् कर्मान्त–** सभी कर्मों में पवित्रता रखना, हिंसा, चोरी, व्यभिचाररहित कर्म।

(v) **सम्यक् आजीव–** जीवनयापन का सदाचारपूर्ण एवं उचित मार्ग।

(vi) **सम्यक् व्यायाम–**विवेकपूर्ण प्रयत्न, अशुभ कर्मों का त्याग और शुभ कर्मों के लिए प्रयत्नशील।

(vii) **सम्यक् स्मृति–** उत्तम शिक्षाओं का स्मरण, सदा जागरूक बने रहना।

(viii) **सम्यक् समाधि–** चित्त की एकाग्रता, चार आर्य सत्यों का निरन्तर ध्यान।

प्रतीत्यसमुत्पाद– प्रतीत्यसमुत्पाद का शाब्दिक अर्थ है— ''किसी वस्तु के प्राप्त होने पर दूसरे की उत्पत्ति अथवा एक कारण के आधार पर कार्य की उत्पत्ति अथवा ऐसा होने पर वैसा उत्पन्न होना है। प्रतीत्यसमुत्पाद के तीन सूत्र बताये गये हैं—

(i) इसके होने पर यह होता है, (ii) इसके न होने पर यह नहीं होता है तथा (iii) इसका निरोध होने पर यह निरुद्ध हो जाता है। इस नियम के अनुसार संसार के सारे पदार्थ तथा अवस्थाएँ किन्हीं कारणों पर निर्भर हैं। प्रत्येक वस्तु या घटना का कोई-न-कोई कारण अवश्य होता है। किसी कारण के बिना किसी भी घटना या कर्म का जन्म नहीं होता है। इसी प्रकार कर्म या घटना को उत्पन्न किये बिना कारण नहीं रह सकता।

सदाचारी जीवन– महात्मा बुद्ध ने नैतिक मूल्यों पर अत्यधिक बल दिया। महात्मा बुद्ध ने सदाचार के ये नियम बताये—(i) अहिंसा, (ii) सत्य, (iii) अस्तेय (चोरी न करना), (iv) अपरिग्रह (सम्पत्ति का त्याग), (v) ब्रह्मचर्य, (vi) नृत्य, मादक वस्तुओं का त्याग, (vii) सुगन्धित वस्तुओं का परित्याग, (viii) असमय भोजन न करना, (ix) कोमल बिस्तर का त्याग, (x) धन का त्याग।

कर्म एवं पुनर्जन्म– गौतम बुद्धकर्म के प्रभाव एवं पुनर्जन्म में विश्वास करते थे। उनका मानना था कि कर्म के आधार पर ही मनुष्य का वर्तमान एवं भावी जीवन बनता है।

अहिंसा– बुद्ध ने अहिंसा, मैत्री एवं करुणा पर सबसे अधिक जोर दिया। उन्होंने बुद्धत्व प्राप्त करने के बाद जीवनपर्यन्त ''अहिंसा परमोधर्म'' के सिद्धान्त पर प्रचार-प्रसार किया ।

निर्वाण– बुद्ध ने जीवन का अन्तिम उद्देश्य निर्वाण या मोक्ष प्राप्ति बताया । निर्वाण का अर्थ है— जन्म मरण के बन्धन से मुक्ति प्राप्त करना तृष्णा तथा वासनाओं के समाप्त हो जाने पर मनुष्य का अहंकार नष्ट हो जाता हे। अहंकार नष्ट होने पर ही जीव जीवनमरण बंधन से मुक्ति प्राप्त करता है। इसी अवस्था को निर्वाण कहते हैं।

क्षणिकवाद– बौद्ध दर्शन, जगत की किसी वस्तु या विचार की नित्यता में विश्वास नहीं करता है। उसके अनुसार जगत की प्रत्येक वस्तु अनित्य और क्षणिक है। आत्मा और जगत प्रतिक्षण बदलते रहते हैं। परिवर्तन जीवन और जगत का वास्तविक नियम है।

अनात्मवाद– बौद्ध दर्शन, अनात्मवादी है। अनात्मवाद का सिद्धान्त क्षणिकवाद के सिद्वान्त का ही परिणाम है। बौद्धमत स्थायी आत्मा की सत्यता को नहीं मानता। आत्मा शरीर के ही समान नाशवान है। आत्मा में वे सभी विकार हैं, जो शरीर में है। आत्मा भी शरीर के साथ बदलता है।

वेदों में अविश्वास व जाति प्रथा के विरोध– महात्मा बुद्ध वैदिक रीतियों व कर्मकाण्डों के विरोधी थे। महात्मा बुद्ध का मानना था कि निर्वाण प्राप्त करने के लिए यज्ञ व बलि की आवश्यकता नहीं है। महात्मा बुद्ध जाति प्रथा के भी विरोधी थे।

जैन एवं बौद्ध धर्म में समानताएँ– जैन एवं बौद्ध धर्म की पारस्परिक समानताओं को संक्षिप्त उल्लेख इस प्रकार हैं—

(i) **धर्मों की उत्पत्ति संबंधी समानता–** दोनों धर्मों की उत्पत्ति समान भावनाओं और उद्देश्यों को लेकर हुई थी। जब ब्राह्मण धर्म पाखण्डवादी, जटिल एवं निकृष्ट हो गया तभी दोनों धर्म तत्कालीन विकृत धार्मिक परिस्थितियों के विरुद्व लोक-कल्याणकारी आन्दोलन के रूप में उदित हुए थे।

(ii) **ईश्वर के अस्तित्व में अविश्वास–** बौद्ध धर्म का कहना था कि सृष्टि किसी सर्वोच्च शक्ति द्वारा नहीं चलती, वरन मनुष्य (जीव) अपने कर्मों के आधार पर स्वयं निर्मित एवं नष्ट होता रहा है। मनुष्य का निर्माण अणुओं द्वारा होता है, उसमें ईश्वर कोई योगदान नहीं है। इसी प्रकार जैन मतावलम्बी भी ईश्वर के अस्तित्व में विश्वास नहीं करते।

(iii) **वेदों में अविश्वास–** जैन और बौद्ध दोनो धर्मों ने वेदों का खण्डन किया। इसलिए दोनों को नास्तिक दर्शन कहा गया। इन दोनों धर्मों ने वेदों के मतानुसार भी ईश्वर का अस्तित्व स्वीकार नही किया। जातक ग्रन्थों के अनुसार, वेद सारहीन और निरर्थक पुस्तकें हैं।

(iv) **कर्मवाद में विश्वास–** दोनों धर्म जीव के कर्म-बन्धन के सिद्वान्त में विश्वास करते थे। दोनों धर्मों का कहना था, ''मनुष्य (जीव) निर्बाध गति से अपने अच्छे-बुरे कर्मों के आधार पर उच्च एवं निम्न कोटि में जन्म लेता रहता है और अपने इस जन्म और पूर्वजन्म के कृत कर्मों का फल भोगता है।''

(v) **पुनर्जन्म में विश्वास–** दोनों ही धर्मावलम्बी यह विश्वास करते थे कि जीवित मानव या अन्य जीव कुछ तत्वों का सम्मिश्रण हैं। मृत्यु के बाद ये तत्व पृथक-पृथक हो जाते हैं और जैसे ही वे पृथक-पृथक होते है, इस जीवन में किए कर्मों के अनुसार दूसरे तत्वों से उसका पुन:निर्माण (पुनर्जन्म) हो जाता है।

(vi) **दोनो धर्मों का अन्तिम उद्देश्य मुक्ति–** दोनों ही धर्मों का मुख्य उद्देश्य लोगों को यह बताना था कि संसार दु:खों को भण्डार है और यदि इन दु:खों से मुक्ति प्राप्त करनी है तो जन्म मरण के चक्र से मुक्ति पानी होगी। अत: इन दोनों धर्मों का उद्देश्य मनुष्य को निर्वाण अर्थात् दु:खरहित अवस्था तक पहुँचाना था।

(vii) कुछ अन्य समानताएँ– (क) दोनों धर्मों का प्रचार सामान्य जनता की बोलचाल की भाषा में हुआ, (ख) दोनों धर्मों ने भिक्षुओं और भिक्षुणियों के लिए अत्यंत त्यागपत्र और कठोर जीवन-निर्वाह का निर्देश दिया, (ग) दोनों धर्म तत्कालीन हिन्दू पाखण्डवाद के कट्टर विरोधी थे, (घ) दोनों धर्म अहिंसा के समर्थक थे, (ङ) दोनों धर्म लगभग एक ही समय, एक ही स्थान (भारत) में उत्पन्न हुए थे, (च) दोनों धर्मों के प्रर्वतक क्षत्रिय राजकुमार थे।

जैन धर्म और बौद्ध धर्म में असमानताएँ– इन दोनो धर्मों के मध्य निम्नलिखित असमानताएँ हैं–

(i) निर्वाण के संबंध में मतभेद– बौद्ध और जैन-दर्शन, दोनों में ही निर्वाण का अन्तिम अर्थ जीव को जन्म-मरण के बन्धनों से मुक्ति दिलाकर मोक्ष प्राप्त करने से हैं, परन्तु बौद्ध-दर्शन से जीवित अवस्था में ही मनुष्य कर्मबन्धन से मुक्ति पाकर और परम ज्ञान प्राप्त करके निर्वाण प्राप्त कर सकता है। जैन-दर्शन में निर्वाण उस अवस्था को कहा जाता है जब 'आत्मा' यह शरीर त्यागकर मुक्त हो जाती है।

(ii) निर्वाण के साधनों में अन्तर– जैन-दर्शन में निर्देशित है कि कठोर व्रत एवं तपस्या के द्वारा कर्मों के प्रभाव को समाप्त करने पर मोक्ष की प्राप्ति होती है, जबकि बौद्ध धर्म ने निर्वाण प्राप्त करने के लिए अष्टांग-मार्ग को साधन बताया है।

(iii) आत्मा संबंधी विचारों में मतभेद– बौद्ध धर्म के अनुसार सम्पूर्ण शरीर का निर्माण कुछ तत्वों के संयोग से होता है और इन तत्वों के अलग होने पर आत्मा एवं शरीर दोनों ही समाप्त हो जाते हैं, किन्तु जैन धर्म अनन्त, विनष्ट न होने वाली आत्मा का अस्तित्व स्वीकार करता है।

(iv) प्रचार-प्रसार में अन्तर– बौद्ध धर्म का प्रचार अति शीघ्रता से तथा भारत के बाहर श्रीलंका, बर्मा, जापान, चीन आदि देशों में भी हुआ, जबकि जैन धर्म का प्रचार केवल भारत की परिधि में ही सीमित रहा था। बौद्ध आचार्य प्रचार को अधिक महत्व देते थे, जबकि जैन आचार्य धर्मपालन को आवश्यक मानते थे।

(v) कुछ अन्य असमानताएँ– (क) दोनों का साहित्य दो भिन्न भाषाओं क्रमश: पालि और प्राकृत साहित्य पर आधारित है। (ख) जैन धर्म को अधिक राजकीय सहायता प्राप्त नहीं हुई, लेकिन बौद्ध धर्म को पर्याप्त राजकीय सहायता प्राप्त हुई। (ग) कुछ विचारों में जैन धर्मावलम्बी ईश्वर को भी मानते हैं, लेकिन प्रारम्भिक बौद्ध धर्मावलम्बी ईश्वर को बिल्कुल नहीं मानते, (घ) अब अनेक.खोजों द्वारा यह सिद्ध हो गया कि जैन धर्म, बौद्ध धर्म से अधिक प्राचीन है।

5. जैन धर्म की मुख्य शिक्षाओं का विवेचन कीजिए।

उ०– **जैन धर्म की शिक्षाएँ–** जैन धर्म के सिद्धान्त व्यावहारिक तथा सभी के लिए अपनाए जाने योग्य थे। इसी कारण यह भारतवर्ष में फैल गया। जैन धर्म के प्रमुख सिद्धान्त (शिक्षाएँ) इस प्रकार हैं–

(i) ईश्वर में अविश्वास– इस धर्म के अनुयायी ईश्वरीय सत्ता को नहीं मानते हैं। वे अनीश्वरवादी हैं। उनके अनुसार यह संसार अनादि और अनन्त है तथा छह द्रव्यों जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश तथा काल द्वारा स्थिर है। ईश्वर नाम की कोई ऐसी सत्ता नहीं है, जो जीव के सुख-दु:ख की निर्धारक हो। कर्मों का फल ही सुख-दु:ख का कारण बनता है।

(ii) वेदों में अविश्वास– जैन धर्म के अनुयायी, वेदों में विश्वास नहीं करते। वेदों में ईश्वर और सृष्टि के बारे में जो कुछ कहा गया है उसे वे लोग नहीं मानते बल्कि वे महावीर स्वामी के वचनों में ही विश्वास करते हैं।

(iii) त्रिरत्नों के द्वारा मोक्ष की प्राप्ति– जैन धर्म के मुख्य सिद्धान्त त्रिरत्न के नाम से प्रसिद्ध हैं। ये त्रिरत्न हैं– (क) सम्यक् ज्ञान, (ख) सम्यक् दर्शन, तथा (ग) सम्यक् चरित्र। तीर्थंकरों द्वारा दिखाए गए मार्ग पर चलकर इन तीनों रत्नों की प्राप्ति से तथा कर्मों के बन्धन से मुक्ति पाकर आत्मा जन्म-मरण से मुक्ति प्राप्त कर लेती है और मोक्ष में चली जाती है। इसी अवस्था को जैन धर्म में **निर्वाण** (मुक्ति) कहा जाता है।

(iv) मोक्ष प्राप्ति की प्रथम सीढ़ी– पाँच महाव्रत– जैन धर्म के अनुसार मोक्ष की प्राप्ति के लिए 5 अन्य नियमों का पालन करना भी अनिवार्य है। ये नियम या महाव्रत निम्न प्रकार हैं–

(क) अहिंसा– इसका अर्थ है– 'जीव मात्र के प्रति दया का व्यवहार करना।' जैन धर्म में अहिंसा से सम्बन्धित नियम बड़े कठोर हैं।

(ख) सत्य– जैन धर्म ने सत्य बोलने की शिक्षा दी है। जैन धर्म के अनुसार मनुष्य को सदैव सत्य बोलना चाहिए। सत्य बोलने के लिए मनुष्य को लोभ, मोह, मायाचार एवं क्रोध से दूर रहना चाहिए।

(ग) अस्तेय– इसका तात्पर्य है– 'चोरी न करना।'

(घ) अपरिग्रह– इसका अर्थ है– 'सांसारिक वस्तुओं का संग्रह करने के मोह को त्याग देना।'

(ङ) ब्रह्मचर्य– इसका अर्थ है– 'इन्द्रियों को वश में करते हुए सदाचार पर आधारित जीवन व्यतीत करना।'

(v) कर्म की प्रधानता में विश्वास– जैन धर्म 'कर्मवाद' में विश्वास रखता है, जिसका आशय है कि इस संसार में जो भी जन्म लेता है, उसे अपने वर्तमान जीवन में कर्मों और पूर्वजन्म के कर्मों के अनुसार फल की प्राप्ति होतीहै। कर्म के ही आधार पर जीव को योनि एवं सुख-दुख की प्राप्ति होती है जैन धर्म में कर्मबन्धन तीन बलों– मन-बल,वचन-बल, काय-बल (शरीर-बल) के द्वारा स्वीकार किया गया है अर्थात् मन में विचार कर लेने से ही शुभ या अशुभ कर्मों का बन्धन हो जाता है।

(vi) पुनर्जन्म का सिद्धान्त–महावीर के अनुसार आत्मा सर्वद्रष्टा, ज्ञानसम्पन्न तथा निर्मल होती है। किन्तु अनेक जन्मों के कर्मों

की संचित वासनाओं और सांसारिक तृष्णाओं के कारण शुद्धआत्मा बन्धन में पड़ जाती है। कर्मबन्धन ही पुनर्जन्म का मूल कारण है जिससे आत्मा बार-बार इस संसार में जन्म लेती है। तप करने और शरीर को कठोर अनुशासन में रखने से नवीन कर्म का बन्धन और उसका एकीकरण भी रुकता है और संचित कर्म भी धीरे-धीरे नष्ट होते हैं। कर्म के विनाश के साथ-ही-साथ आत्मा के वास्तविक गुण उत्तरोत्तर अभिव्यक्त होते जाते हैं और आत्मा कर्मबन्धन से मुक्त हो जाती है ऐसा कैवल्य प्राप्त जीव ही तीर्थंकर हो जाता है।

(vii) आत्मा की सत्ता में विश्वास–महावीर स्वामी समस्त चेतन प्राणियों में आस्था का अस्तित्व स्वीकार करते हैं। इसी आधार पर यह माना जाता है कि प्रत्येक जीव में एक स्थायी, अजर और अमर आत्मा निवास करती है और जीव की मृत्यु हो जाने पर यही आत्मा नए शरीर में प्रवेश कर जाती है।

(viii) अनेकात्मवाद–जैन धर्म आत्मा की एकता में विश्वास नहीं रखता है। उनके अनुसार जिस प्रकार जीव भिन्न है, उसी प्रकार आत्मा भी भिन्न है। जैनियों के अनुसार आत्म सर्वद्रष्टा तो है, परन्तु कर्म एवं मोह उसकी शक्तियों को क्षीण कर देते हैं। आत्मा की कोई आकृति नहीं होती, वह निर्विकार है परन्तु प्रकाश के समान उनका अस्तित्व नहीं है।

(ix) अनेकान्तवाद अथवा स्यादवाद—जैन धर्म ने मत-मतान्तरों के पारस्परिक वाद-विवाद को दूर करने के लिए अनेकान्तवाद या सप्तभंगी सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। अनेकान्तवाद के अनुसार, कोई भी सिद्धान्त या कथन पूर्णरूपेण सत्य या असत्य नहीं है। इसे स्यादवाद भी कहते हैं।

स्यादवाद जैन धर्म का सबसे महत्वपूर्ण सिद्धान्त है। इसका अभिप्राय यह है कि जो बात कही जा रही है, वह किसी विशेष अपेक्षा से (किसी एक इच्छित दृष्टिकोण से) कही जा रही है, परन्तु यह बात अन्य दृष्टिकोणो से या अपेक्षाओं से भी कही जा सकती है और नहीं भी कही जा सकती है। उदाहरण के लिए ज्ञान क्या है? प्रश्न का उत्तर निम्न प्रकार से दिया जा सकता है—

(क) ज्ञान है,
(ख) ज्ञान नहीं है,
(ग) ज्ञान है और नहीं है,
(घ) ज्ञान के विषय में कुछ नहीं कहा जा सकता,
(ङ) ज्ञान है किन्तु कहा नहीं जा सकता,
(च) ज्ञान नहीं है और कहा नहीं जा सकता तथा
(छ) ज्ञान है, ज्ञान नहीं, कहा जा सकता है।

(x) कुछ अन्य सिद्धान्त– (क) जैन धर्म के अनुयायी तप एवं व्रत में दृढ़ विश्वास करते हैं।
(ख) जैनी लोग पशुओं की बलि का प्रबल विरोध करते हैं।
(ग) आखेट, मांस-भक्षण, नारी-गमन, जुआ तथा नशीली वस्तुओं के परित्याग को भी सच्चे जैन धर्मावलम्बियों के लिए परम आवश्यक माना गया है।
(घ) जैन धर्म नारी स्वातन्त्रय का समर्थक है।
(ङ) जैन धर्म के अनुसार नग्नता आसक्ति के प्रति उदासीनता की द्योतक है।
(च) जैन धर्म में देवताओं के अस्तित्व को स्वीकार किया गया है, किन्तु यह तथ्य उनके जिन से जुड़ा हुआ नहीं है।
(छ) प्रारम्भ में जैन धर्म मे मूर्तिपूजा का प्रावधान नहीं था, किन्तु कालान्तर में पार्श्वनाथ, महावीर तथा अन्य तीर्थंकरों की पूजा होने लगी।

जैन धर्म के उपर्युक्त सिद्धान्तों का अध्ययन करने से यह सहज ही स्पष्ट हो जाता है कि जैन धर्म लोकहितकारी धर्म है और इस धर्म में व्यर्थ के कर्मकाण्डों के लिए कोई स्थान नहीं है। इसी कारण प्राय: यह कहा जाता है कि एक सर्वग्राही धर्म है।

6. ''छठी शताब्दी ईसा पूर्व का काल बौद्धिक एवं धार्मिक सन्तोष का काल था।'' विवेचना कीजिए?

उ०– धार्मिक क्रान्ति के कारण– छठी शताब्दी ई०पू० की धार्मिक क्रान्ति न ही विश्व में और न ही भारत में आकस्मिक थी और न ही इसका कोई एक कारण था। वैदिककाल से चले आ रहे अनेक कारण धार्मिक क्रान्ति की पृष्ठभूमि तैयार कर चुके थे। संक्षेप में छठी शताब्दी ई०पू० की धार्मिक क्रान्ति के प्रमुख कारण निम्नलिखित थे—

(i) ब्राह्मणों के प्रभुत्व का परिणाम– धार्मिक क्रान्ति के उदय का पहला महत्वपूर्ण कारण ब्राह्मणों के प्रभुत्व का चरमोत्कर्ष था। इस कारण समाज के अन्य तीन वर्णों में असन्तोष व्याप्त था। डॉ० बेनीप्रसाद ने लिखा है— ''एक तो ब्राह्मण कर्मकाण्ड पर बहुत जोर देता था, यज्ञ करते-करते कभी थकता ही नहीं था और तपस्या भी बहुत कराता था। बाहरी बातों पर बहुत जोर देता था, पर आत्मा की आन्तरिक प्यास बुझाने का कोई प्रयत्न नहीं करता था। ब्राह्मण धर्म के अनुयायियों के बीच ब्राह्मण पुरोहित ने अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया था। थोड़े दिनों तक तो यह क्रम निरन्तर चलता रहा, परन्तु यह भी अवश्यम्भावी था कि किसी दिन सच्ची धार्मिक प्रवृत्ति प्रबल होकर पुरोहिती को समाप्त कर देगी।''

(ii) वेदों का विरोध– वैदिक धर्म में 'वेदों' को ईश्वर की वाणी माना गया था। वेदों को सर्वदा सत्य व पूर्ण माना जाता था। परन्तु सभी के लिए वेदों के पठन-पाठन को अमान्य ठहराना भी धार्मिक असन्तोष का कारण बना अत: विरोध उग्र रूप धारण करने लगा।

(iii) बहुदेववाद– ब्राह्मण धर्म की मान्यताओं के अनुसार मानव जीवन दैवीय कृपा पर आश्रित है। इसके अनुसार मानव के सभी कर्म, सुख, दु:ख केवल दैवीय इच्छा है। मनुष्य के सभी कार्य किसी न किसी देवता द्वारा नियन्त्रित होते हैं व देवताओं

की कृपा के अभाव में सब कुछ व्यर्थ था। इसका सारांश यह था कि स्वयं मानव का पुरुषार्थ और स्वतन्त्रता महत्वहीन थी। फलस्वरूप अनेक चिन्तनशील लोगों ने व्यक्तिगत स्वतन्त्रता तथा देवी-देवताओं के प्रभाव से मुक्ति के साधनों के विषय में क्रान्तिकारी ढंग से चिन्तन करना शुरू कर दिया था।

(iv) जातीय भेदभाव– हालाँकि आर्य-अनार्य संघर्ष को हुए बहुत समय व्यतीत हो चुका था, तथापि अभी भी आर्य तथा अनार्य जातियों के बीच भेदभाव बना हुआ था। राजनीतिक दृष्टि से भी इस समय देश दो प्रमुख भागों में विभाजित था। उत्तर भारत पर आर्य सभ्यता का प्रभुत्व था तथा दक्षिण भारत में अनार्यों का बोलबाला था। आर्यों ने दक्षिण-पूर्वी भारत को अनार्य संज्ञा से विभूषित कर रखा था। ऐसी स्थिति में जातीय मतभेद धार्मिक क्रान्ति के विस्फोट का प्रमुख कारण बन गया था।

(v) धार्मिक साहित्य की गूढ़ता– वैदिक साहित्य में दिए गए गूढ़ रहस्य तथा उसकी कठिन भाषा जन-साधारण के मानसिक स्तर से ऊपर थी। दूसरी ओर जनसाधारण अन्धविश्वास से ऊब गया था। वह धार्मिक साहित्य का ज्ञान सरल, साधारण तथा जनभाषा में प्राप्त करना चाहता था।

धार्मिक क्रान्ति की विशेषताएँ– छठी शताब्दी ई० पूर्व की धार्मिक क्रान्ति की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित थीं—

(i) इस क्रान्ति ने पूर्व प्रचलित ब्राह्मण धर्म को अनुकूलन तथा समयानुसार परिवर्तन की क्षमता प्रदान की।

(ii) इस क्रान्ति के फलस्वरूप ब्राह्मण वर्ग ने अभिमान तथा द्वेष की भावना से ऊपर उठकर स्वयं अपने हृदय को टटोला तथा क्रान्ति के परिणामों को स्वीकार करके अपना ही परिमार्जन किया।

(iii) धार्मिक क्रान्ति के अन्तर्गत सुधारवादी आन्दोलनों का विकास प्रमुखत: गणराज्यों में हुआ। गणराज्यों का वातावरण स्वतंत्र था। इसके परिणामस्वरूप क्रान्ति ने व्यक्तिगत स्वतंत्रता पर जोर दिया।

(iv) इस क्रान्ति की एक महत्वपूर्ण विशेषता अनेकता से एकता की ओर अग्रसर होना था। इस क्रान्ति के फलस्वरूप ही सुधारवादी आन्दोलन की अनेक धाराएँ एक गहरी नदी के रूप में प्रवाहित होने लगीं।

(v) इस क्रान्ति ने धर्म और राजनीति का समन्वय कर दिया। अब धर्म को राजकीय संरक्षण की आवश्यकता पड़ने लगी तथा राजा धर्म और राज्य का समान रूप से अधिकारी बन गया।

धार्मिक क्रान्ति का स्वरूप– धार्मिक क्रान्ति का स्वरूप निम्नवत् रहा—

(i) धार्मिक स्वरूप– इस क्रान्ति का आधारभूत स्वरूप धार्मिक ही था। इस क्रान्ति के प्रवर्तक दार्शनिक बुद्धिवादी तथा तर्कशास्त्री थे। उन्होंने अपने प्रबल तर्कों से रूढ़िवादी तथा परम्परागत ब्राह्मण धर्म की मान्यताओं का जोरदार खण्डन किया। उन्होंने वेदों की प्रामाणिकता तथा ब्राह्मणों के प्रभुत्व को साहसिक चुनौती देकर यज्ञ, बलिप्रथा तथा अपव्ययी कर्मकाण्डों का विरोध किया। कर्म पर विशेष बल देकर उन्होंने मनुष्य को अपना भाग्यविधाता बताया तथा व्यक्तिगत स्वतंत्रता को प्रोत्साहन दिया।

(ii) सामाजिक स्वरूप– इस युग के विचारकों और सुधारकों ने भारतीय समाज में प्रचलित दोषों के विरुद्ध जोरदार आवाज उठाई। उन्होंने समाज के बहुसंख्य पददलित वर्ग का समर्थन किया तथा वर्ण व्यवस्था, जाति-प्रथा एवं ऊँच-नीच का खण्डन किया। इसके फलस्वरूप समाज को एक नई दिशा मिली तथा व्यक्ति की स्वतंत्रता आचार-विचार की पवित्रता, अनुशासन, स्त्री-पुरुष की समानता आदि को बढ़ावा मिला।

(iii) सांस्कृतिक स्वरूप– इस क्रान्ति ने सांस्कृतिक क्षेत्र में अनेक महत्वपूर्ण परिवर्तन कर दिए। क्रान्ति से पूर्व साहित्य की भाषा संस्कृत थी, जो जनसाधारण के परे थी। परन्तु इस समय के धर्म-प्रचारकों, उपदेश आदि ने जनसाधारण की भाषा का उपयोग किया। जैन धर्म ने प्राकृत तथा बौद्ध धर्म ने पालि भाषा का उपयोग किया। नैतिकता, सदाचार, अहिंसा, पवित्रता और व्यावहारिकता पर अधिक बल दिए जाने से लोगों का सामान्य जीवन सरल हो गया।

(iv) राजनीतिक स्वरूप– छठी शताब्दी ईसा पूर्व के प्रारम्भ में भारत की राजनीतिक दशा बड़ी अस्त-व्यस्त थी। अनेक राजतन्त्रीय और गणतन्त्रीय राज्य संघर्षरत थे। इस क्रान्ति ने राजनीतिक क्षेत्र में साम्राज्य प्रवृत्ति को प्रोत्साहन दिया, जिसके फलस्वरूप कालान्तर में मौर्य साम्राज्य की स्थापना हुई।

छठी शताब्दी ईसा पूर्व की धार्मिक क्रान्ति के विभिन्न पक्षों का अध्ययन करके हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते है कि पूर्व वैदिककाल से चली आ रही रूढ़िवादी मान्यताओं पर समयानुकूल कुठाराघात होना एक स्वाभाविक बात थी। एशिया और यूरोप के इतिहास के धार्मिक आन्दोलन इस बात के प्रमाण हैं कि स्थापित धर्म ने पहले तो बदलने से इनकार कर दिया और जब प्रतिद्वन्द्वी धर्म चल निकले तो उनकी आँखे खुल गई। यूरोप के कैथोलिक तथा प्रोटेस्टैण्ट धर्म इसके ज्वलन्त उदाहरण हैं। छठी शताब्दी ई० पूर्व की इस क्रान्ति का नेतृत्व महावीर स्वामी और महात्मा बुद्ध ने करके जैन तथा बौद्ध धर्म को प्रसारित किया।

7. जैन धर्म के पतन के क्या कारण थे?

उ०– जैन धर्म के पतन के कारण– जैन धर्म अपने आदर्शों व सादगी के कारण उत्थान के शिखर पर तो पहुँचा लेकिन कुछ कारणों से उसका पतन भी हो गया; क्योंकि उत्थान और पतन प्रकृति का शाश्वत नियम है। जैन धर्म के पतन के लिए उत्तरदायी कारणों का विवेचन निम्नलिखित है—

(i) जनसाधारण से सम्बन्ध विच्छेद– जैन धर्म को अपनी चरमावस्था में अनेक राजाओं तथा धनी व्यक्तियों का संरक्षण और

सहयोग प्राप्त था। अत: जैन धर्म उनका अनुग्रही बन गया और जनसाधारण की उपेक्षा करने लगा। जनसाधारण से सम्बन्ध विच्छेद करना ही जैन धर्म के पतन का प्रमुख कारण बना।

(ii) **अन्य धर्मों का उत्थान–** जैन धर्म के प्रसार से हिन्दू धर्म ने अपनी कमियों को दूर करना आरम्भ कर दिया, जिसके परिणामस्वरूप जैन धर्म की मान्यता का क्षेत्र सीमित होने लगा। इतना ही नहीं, जैन धर्म ने हिन्दू धर्म की अनेक परम्पराओं तथा मान्यताओं को स्वीकार करना शुरू कर दिया। दक्षिण भारत के चोल राजाओं ने मदुरा के जैन मन्दिरों में शिव की उपासना प्रारम्भ कर दी, क्योंकि वहाँ शैव धर्म चरमोत्कर्ष पर था। रामानुज द्वारा मैसूर राज्य में वैष्णव धर्म का प्रचार किए जाने से भी जैन धर्म के विस्तार और प्रचार में अवरोध उत्पन्न होने लगा। इतना ही नहीं, जैन धर्म के प्रतिद्वन्द्वी बौद्ध धर्म के प्रचारकों के उत्साह ने इस धर्म की नींव हिला दी।

(iii) **धर्म प्रचारकों के उत्साह में कमी–** मध्यकाल आने तक जैन धर्म के प्रचारकों का उत्साह ठण्डा पड़ गया। उनकी संख्या और विद्वत्ता में भी कमी आने लगी। महावीर स्वामी के बाद ऐसा कोई भी महान धार्मिक नेता नहीं हुआ, जो जैन धर्म के प्रचारकों को संगठित कर पाता। उत्साह की कमी के कारण जैन धर्म का शिथिल होना स्वाभाविक था।

(iv) **मतभेदों का जन्म–** पार्श्वनाथ और महावीर स्वामी के मतभेद केवल वैचारिक थे। जैन धर्म के मूल सिद्धान्तों में उनकी समान आस्था थी। लेकिन कालान्तर में जैन विद्वानों ने पार्श्वनाथ और महावीर स्वामी के मतों का विवेचन करके अनेक मतभेदों को जन्म दे दिया। फलत: जैन धर्म दो प्रमुख सम्प्रदायों में बँट गया। ये सम्प्रदाय 'श्वेताम्बर' और 'दिगम्बर' थे। धीरे-धीरे इन सम्प्रदायों के भी बहुत से उप-सम्प्रदाय बन गए। इस प्रकार जैन धर्म की एकता नष्ट होने लगी।

इन समसामयिक कारणों के फलस्वरूप जैन धर्म के अनुयायियों की संख्या में कमी आने लगी और हिन्दू धर्म के पुनरुत्थान के साथ ही जैन धर्म की व्यवहारिक मौलिकता पूर्ण रूप से विलुप्त हो गई। आज हम हिन्दू और जैन धर्म की अनेक परम्पराओं में भेद करने में कठिनाई अनुभव करते हैं।

8. गौतम बुद्ध के जीवन-चरित्र एवं उनकी शिक्षाओं पर एक टिप्पणी लिखिए?

उ०– महात्मा बुद्ध का संक्षिप्त जीवन वृत्तान्त– बुद्ध का जन्म 563 ई० पू० में शाक्य गणराज्य की राजधानी कपिलवस्तु से 14 मील दूरी पर अवस्थित लुम्बिनी (वर्तमान रुम्मिनदेई) में हुआ था, जो नेपाल की तराई में स्थित है। महात्मा बुद्ध के जन्म का नाम सिद्धार्थ था। गौतम गोत्र से सम्बन्धित होने के कारण उन्हें गौतम भी कहा जाता है। इनके पिता शुद्धोदन कपिलवस्तु के शाक्य गणराज्य के प्रधान थे। बुद्ध की माता का नाम महामाया था, जो कोलिय गणराज्य की राजकन्या थी। बुद्ध के जन्म के सातवें दिन माता महामाया का निधन हो गया। उसके बाद बुद्ध का लालन-पालन उनकी मौसी महाप्रजापति गौतमी ने किया। उनके पिता ने उनकी सुख-सुविधा एवं शिक्षा-दीक्षा की यथोचित् व्यवस्था की। शीघ्र ही वे तीरंदाजी, घुड़सवारी एवं मल्ल-विद्या में निपुण हो गए।

महाभिनिष्क्रमण– शुद्धोदन के प्रयासों के बावजूद सिद्धार्थ बचपन से ही चिंतनशील रहने लगे। उन्हें राग-रंग में बाँधे रखने के प्रयास सफल नहीं हो पाए। पिता ने उनका विवाह 16 वर्ष की आयु में कोलिय गणराज्य की सुन्दर राजकुमारी यशोधरा के साथ कर दिया। विवाह के बारह वर्ष पश्चात् उनके एक पुत्र हुआ, जिसका नाम राहुल रखा गया। लगभग तेरह वर्ष तक गृहस्थ जीवन व्यतीत करते हुए भी सिद्धार्थ का मन सांसारिक प्रवृत्तियों में नहीं लग सका। नगर भ्रमण के दौरान भिन्न-भिन्न अवसरों पर मार्ग में पहले जर्जर शरीर वाले वृद्ध, फिर व्यथापूर्ण रोगी, फिर मृतक और अन्त में प्रसन्नचित संन्यासी को देखा। इन दृश्यों को देखकर सिद्धार्थ को पक्का विश्वास हो गया कि संसार दु:खों का घर है और यह शरीर, यौवन और सांसारिक सुख क्षणिक है। इसी वैराग्य भावना से प्रेरित बुद्ध एक रात्रि को अपने पुत्र, पत्नी और पिता तथा सम्पूर्ण राज्य वैभव को त्यागकर ज्ञान की खोज में निकल पड़े। उनके जीवन की इस घटना को बौद्ध धर्म एवं साहित्य में ''महाभिनिष्क्रमण'' के नाम से पुकारा जाता है।

बौद्ध धर्म के सिद्धान्त (शिक्षाएँ)– महात्मा बुद्ध के प्रमुख उपदेश उनके चार 'आर्य सत्य' थे, जिन पर उन्होंने विशेष बल दिया। उनके अन्य उपदेश अथवा सिद्धान्त इन्हीं चार आर्य सत्यों पर आधारित थे। ये चार आर्य सत्य इस प्रकार हैं–

(i) **दु:ख–** बुद्ध कहना था कि मानव जीवन में चारों ओर दु:ख ही दु:ख है। रोग, बुढ़ापा और मृत्यु ये तीनों दु:ख मनुष्य के जीवन में निश्चित रूप से आते हैं। इसके अतिरिक्त इच्छित वस्तु की प्राप्ति न होने पर भी दु:ख का अनुभव होता है। प्रिय के बिछुड़ने पर भी दु:ख होता है। इस प्रकार संसार दु:खों का सागर है।

(ii) **दु:ख समुदय (दु:ख का कारण)–** भगवान बुद्ध ने निर्बोध जनता को केवल दु:ख की स्थिति को ही नहीं बताया, बल्कि दु:खों की उत्पत्ति का कारण(इच्छा, तृष्णा, भोग, काम-वासना आदि) भी बताया।

(iii) **दु:खो की समाप्ति तृष्णा के नाश से सम्भव है–** लोगों को दु:ख का कारण समझा देने के बाद महात्मा बुद्ध ने तीसरे सत्य के अन्तर्गत यह बताया कि यदि इस तृष्णा को समाप्त कर दिया जाये तो मनुष्य जन्म-मरण के चक्कर से मुक्त हो निर्वाण प्राप्त कर सकता है। महात्मा बुद्ध का भिक्षुकों को उपदेश था– ''संसार में जो कुछ भी प्रिय लगता है, संसार में जिसमें भी रस मिलता है, उसे जो दु:ख रूप समझेगें, रोग रूप समझेंगे, उससे उठेंगे, वे तृष्णा को छोड़ सकेंगे।'' तृष्णा का नाश हो जाने पर ऐसी अवस्था प्राप्त हो जाती है, जिसमें कोई दु:ख नहीं व्यापता।

(iv) **दु:ख निवारण का मार्ग: अष्टांगिक मार्ग–** गौतम बुद्ध ने अपने चौथे आर्य सत्य में लोगों को इस तृष्णा से मुक्ति पाने के लिए अष्टांगिक मार्ग का अनुसरण करने पर बल दिया। अष्टांग मार्ग के अन्तर्गत आठ साधन हैं, जो इस प्रकार हैं–

(क) सम्यक् दृष्टि, (ख) सम्यक् संकल्प, (ग) सम्यक् वाणी, (घ) सम्यक् जीविका, (ङ) सम्यक् स्मृति, (च) सम्यक् व्यायाम एवं (छ) सम्यक् समाधि।

इस अष्टांग मार्ग को 'मध्यमा-प्रतिपदा' अर्थात मध्यम-मार्ग भी कहते हैं।

(v) **दस आचरण–** बुद्ध ने अपने व्यावहारिक धर्म में दस आचरणों का पालन करने का निर्देश दिया है। प्रथम पाँच आचरण संसार में रहने वाले गृहस्थों और बौद्ध भिक्षुओं तथा भिक्षुणियों दोनों के लिए हैं। बाद के पाँच आचरण केवल बौद्ध-भिक्षुओं और भिक्षुणियों के लिए ही हैं। ये दस आचरण निम्नलिखित हैं–

(क) अहिंसा– हिंसा न करना, (खा) सत्य– झूठ न बोलना, (ग) अचौर्य– चोरी न करना, (घ) ब्रह्मचर्य– संयमित जीवन व्यतीत करना, (ङ) अपरिग्रह– अधिक वस्तुओं का संग्रह न करना, (च) असमय भोजन का परित्याग (छ) कोमल शय्या का परित्याग, (ज) नृत्य, गायन एवं मादक वस्तुओं का त्याग, (झ) सुगन्धित पदार्थों का त्याग, (ञ) कुविचारों का त्याग।

बुद्ध की ये समस्त शिक्षाएँ यथार्थ एवं व्यावहारिक थीं। भारतीय उपनिषदों ने भी वास्तव में यहीं जीवन दर्शन प्रस्तुत किया था। किन्तु वह दार्शनिक तत्व चिन्तन से बोझिल हो गया था। इसीलिए सामान्यजन उसे सरलता से समझ नहीं पाते थे।

महापरिनिब्बानसुत्त में कहा गया है कि महात्मा बुद्ध ने अपने निर्वाण के समय भिक्षुओं को जो उपदेश दिया था, उसमें बौद्ध धर्म के 37 सिद्धान्त निहित थे। इनमें चार स्मृतिप्रधान, चार सम्यक् प्रधान, चार ऋषि पाद, पाँच इन्द्रियाँ, पाँच बल, सात बोध्यंग और आठ अष्टांगिक मार्ग हैं।

बौद्ध धर्म के उपर्युक्त व्यावहारिक सिद्धान्त केवल नाममात्र के लिए ही नहीं वरन वास्तविक रूप से धर्माचरण के व्यवहारजन्य नियम थे।

9. बौद्ध धर्म तथा जैन धर्म के सिद्धान्तों के बीच अन्तर स्पष्ट कीजिए।

उ०– **जैन व बौद्ध धर्म का तुलनात्मक अध्ययन–** डा० रमेशचन्द्र मजूमदार के अनुसार ''जैन व बौद्ध धर्म दोनों की पृष्ठभूमि आर्य संस्कृति की है। दोनों ही उपनिषदों के विचारों व दर्शन से प्रेरित हैं।'' इसी प्रकार, मोनियर, विलियम्स के अनुसार, ''जैन धर्म और बौद्ध धर्म को एक ही पिता की दो सन्तानों के रूप में समझना चाहिए, जिनका जन्म लगभग एक ही समय में हुआ था। किन्तु अनेक शोधों से यह सिद्ध हो चुका है कि दोनों धर्मों का अस्तित्व पूर्णत: स्वतन्त्र है। स्मिथ के शब्दो में, 'कतिपय समानताओं के आधार पर जैन और बौद्ध मतों को एक ही धर्म के विभिन्न सम्प्रदाय मानना गलत है। ये दोनों मत एक दूसरे से भिन्न हैं।'' आइए, इन दोनों धर्मों की समानताओं व असमानताओं का अध्ययन करते हैं।

जैन और बौद्ध धर्म में समानताएँ–

(i) **उत्पत्ति सम्बन्धी–** जैन व बौद्ध धर्म की उत्पत्ति के मूल कारण समान थे। ब्राह्मणों के द्वारा धर्म को जटिल व गूढ़ बनाने के फलस्वरूप एक ऐसे लोक कल्याणकारी आन्दोलन की आवश्यकता उत्पन्न हुई, जो धर्म के विकृत रूप का विरोध कर सके। अत: जनकल्याण के लिए इन धर्मों का जन्म हुआ।

(ii) **वेदों में अविश्वास–** जैन व बौद्ध दोनों धर्मों को नास्तिक दर्शन कहा जाता है क्योंकि दोनों ही धर्म वेदों का खण्डन करते हैं। दोनों धर्मों ने वेदों की प्रामाणिकता को अस्वीकार किया है तथा वेदों के मतानुसार ईश्वर के अस्तित्व को नकारा है।

(iii) **ईश्वर में अविश्वास–** बौद्ध व जैन दोनों ही धर्म ईश्वर के अस्तित्व को स्वीकार नहीं करते। बौद्ध धर्म के अनुसार, मनुष्य (जीव) अपने कर्मों के आधार पर जन्म लेते हैं। मनुष्यों का निर्माण अणुओं द्वारा होता है व संसार को चलाने वाली किसी सर्वोच्च शक्ति का कोई अस्तित्व नहीं है। इसी प्रकार जैन मतावलम्बी भी ईश्वर के अस्तित्व पर विश्वास नहीं करते।

(iv) **कर्मवाद में विश्वास–** दोनों धर्मों के अनुसार जीव अपने अच्छे व बुरे कर्मों के आधार पर जन्म लेते हैं। अच्छे कर्मों के कारण नवीन जन्म उच्चकोटि का व बुरे कर्मों के कारण निम्न कोटि का फल जातक (मनुष्य) को भोगना पड़ेगा।

(v) **पुनर्जन्म की उपस्थिति–** दोनों धर्मों में पुनर्जन्म की व्याख्या उपस्थित है। दोनों धर्म यह विश्वास रखते हैं कि जीवित मानव या अन्य जीव विभिन्न तत्त्वों का सम्मिश्रण है। मृत्यु के पश्चात् सभी तत्व पृथक्-पृथक् हो जाते हैं व इस जीवन के कर्मों के अनुसार दूसरे तत्वों से उसका पुनर्जन्म होता है।

(vi) **समान अन्तिम उद्देश्य–** दोनों धर्मों का अन्तिम उद्देश्य 'मुक्ति' प्राप्त करना था। दोनों धर्मों ने लोगों को यह शिक्षा दी कि संसार दु:खों का भण्डार है तथा इन दु:खों से मुक्ति प्राप्त करने के लिए जन्म-मरण के चक्र से मुक्ति आवश्यक है। अत: इन दोनों धर्मों का उद्देश्य मनुष्य को दु:ख रहित अवस्था तक पहुँचाना था, जिसे 'निर्वाण' की संज्ञा दी गई।

अन्य समानताएँ– दोनों धर्मों का प्रचार साधारण मनुष्य की बोल-चाल की भाषा में हुआ। दोनों धर्मों ने भिक्षुओं व भिक्षुणियों को कठोर त्याग व कठिन जीवन-निर्वाह की शिक्षा दी। दोनों धर्मों के प्रवर्तक क्षत्रिय राजकुमार थे।

जैन और बौद्ध धर्म की असमानताएँ–

(i) **प्रचार-प्रसार में अन्तर–** जैन धर्म का प्रचार केवल भारतवर्ष की परिधि तक ही रहा, जबकि बौद्ध धर्म का प्रचार भारत की सीमाओं के बाहर भी तीव्र गति से हुआ। जिस वक्त जैन धर्म भारत में फल-फूल रहा था उसी वक्त बौद्ध धर्म का प्रचार श्रीलंका, बर्मा, चीन व जापान में हो रहा था। इसका मुख्य कारण यह था कि बौद्ध धर्म के अनुयायी अपने धर्म के प्रचार-प्रसार को अधिक महत्व देते थे व जैन धर्म के अनुयायियों ने धर्मपालन पर अधिक जोर दिया।

(ii) **निर्वाण के सम्बन्ध में मतभेद–** बौद्ध व जैन दोनों धर्मों में निर्वाण शब्द की उपस्थिति है परन्तु उसकी व्याख्या भिन्न है। निर्वाण का अन्तिम अर्थ जन्म-मरण के चक्र से मुक्ति पाना है। बौद्ध दर्शन के अनुसार जीवित अवस्था में ही व्यक्ति कर्मबन्धन से मुक्ति प्राप्त कर निर्वाण की अवस्था प्राप्त कर सकता है, परन्तु जैन दर्शन के अनुसार निर्वाण वह अवस्था है जिसमें आत्मा शरीर त्यागकर 'मुक्त' हो जाती है।

10. भारतीय संस्कृति को 'बौद्ध धर्म की देन' विषय पर एक निबन्ध लिखिए।

उ०– बौद्ध धर्म मूलत: हिन्दू धर्म का ही एक सुधारवादी दृष्टिकोण था। बौद्ध धर्म ने जिन सिद्धान्तों को अपनाया, वे वास्तव में नए नहीं थे वरन सारे ही उपनिषदों ने उनका प्रतिपादन किया था। कालान्तर में दोनों धर्मों का पारस्परिक मतभेद बढ़ता ही गया। किन्तु भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता पर बौद्ध धर्म ने अपनी विलक्षण एवं अमिट छाप छोड़ी है। भारत के धार्मिक, राजनीतिक, सामाजिक, दार्शनिक, कला-संबंधी आदि सभी क्षेत्र बौद्ध धर्म से बहुत प्रभावित हुए है। वस्तुत: बौद्ध धर्म ने भारतीय संस्कृति की श्रीसम्पन्नता में अपूर्व वृद्धि की।

(i) **लोकप्रिय एवं सरल धर्म–** बौद्ध धर्म अपने पूववर्ती जटिल हिन्दू धर्म की अपेक्षा अत्यंत सरल एवं कर्मकाण्ड रहित था। हिन्दू धर्म में प्राकृतिक शक्तियों के प्रतीक रूप देवताओं की याज्ञिक उपासना का प्रचलन था अथवा निर्गुण ब्रह्म का अध्यात्मवाद था- यह सारा धर्म सामान्य बुद्धि वाले व्यक्ति के समझ पाना सरल नहीं था। बौद्ध धर्म ने इस कठिनता को दूर कर दिया। बौद्ध धर्म में ही सर्वप्रथम व्यक्तित्व को भी प्रधानता दी गई। बौद्ध धर्म की सरलता, शिष्टता, नैतिक नियम, सामूहिक प्रार्थना तथा पूजन, उपमा और दुष्टान्तों से समन्वित उपदेश का सर्वप्रिय ढंग, इन सबने मिलकर भारतीय जीवन पद्धति पर अधिक प्रभाव डाला।

(ii) **उच्च नैतिकता की स्थापना–** बौद्ध धर्म में सत्य, सदाचार, काम, क्रोधादि छह विकारों का त्याग, अपरिग्रह, जनसेवा आदि उच्च नैतिक नियमों के पालन ने जनमानस की नैतिकता का स्तर भी ऊपर उठाया। इससे पूर्व ये सारे सिद्धान्त मात्र थे किन्तु बुद्ध एवं उनके भिक्षुओं ने इन समस्त गुणों को अपनी जीवन पद्धति में व्यावहारिक रूप में प्रयोग करके भी दिखा दिया।

(iii) **वर्ग एवं वर्णभेद का अभाव–** बुद्ध से पूर्व भारतीय समाज में जातिप्रथा के कारण ऊँच-नीच का बहुत भेदभाव था। ब्राह्मण पूज्यतम थे और शुद्र अस्पृश्य एवं अधमतम। बौद्ध धर्म ने सब मनुष्यों में समानता का सिद्धान्त प्रचारित किया।? 'समाज ने न तो जातियों का और न ही स्त्री-पुरुषों का भेदभाव है, अपितु सभी समान और स्वतंत्र हैं। सभी को आध्यात्मिक प्रगति करने और निर्वाण प्राप्ति के अधिकार हैं।'

(iv) **हिन्दू धर्म पर प्रभाव–** बौद्ध धर्म के विचारों एवं नैतिकता की भावना ने हिन्दू धर्म के स्वरूप को बहुत प्रभावित किया। बौद्धों ने अहिंसा के सिद्धान्त को क्रियात्मक रूप से सफल कर दिखाया था। इस अहिंसा ने हिन्दू धर्म में भी पशु बलि को बहुत अधिक प्रभावित किया। धर्म का 'अहिंसा परमो धर्म, बौद्ध धर्म की देन है।

(v) **मूर्ति पूजा आरम्भ–** बौद्ध धर्म से पूर्व भारत में मूर्ति पूजा नहीं थी। समस्त धार्मिक अनुष्ठान यज्ञ में ही सम्पन्न होते थे। मूर्ति पूजा का प्रारम्भ बौद्धों के द्वारा किया गया। बौद्ध धर्म की महायान शाखा ने बुद्ध और बोधिसत्व की सुन्दर अलंकृत प्रतिमाएँ बनाई, उस पर मन्दिरों का निर्माण किया तथा उनकी विविधि प्रकार की पूजन विधि विकसित की।

(vi) **संघ व्यवस्था–** बौद्ध के उदय से पूर्व भारतीय संस्कृति में तपस्वी ऋषि, मुनियों, परिव्राजकों, सन्यासियों आदि का तो उल्लेख है, किन्तु सुव्यवस्थित संगठन बनाकर अपना धर्म प्रचार करने की प्रथा का कोई संकेत नहीं है। बौद्ध धर्म की संघ व्यवस्था भारतीय संस्कृति को एक नई देन है। इन्हीं बौद्ध संघों से प्रभावित होकर अन्य धर्मों में भी मठ, रामद्वारे, संन्यासी, सम्प्रदायों के अखाड़े और महन्तों के समुदाय आदि विकसित हुए।

(vii) **बौद्धिक स्वातन्त्र्य–** ब्राह्मण धर्म में वेद ईश्वरीय ज्ञान तथा शब्द प्रमाण रूप थे। इसके फलस्वरूप बौद्धिक क्षेत्र में पुरोहितों का एकाधिकार हो गया था। इस एकाधिकार ने स्वतंत्र एवं व्यक्तिगत चिन्तन के विकास को लगभग प्रतिबन्धित कर दिया।

(viii) **लोक साहित्य एवं लोक भाषा का विकास–** बौद्ध धर्म के उदय से पूर्व का समस्त भारतीय साहित्य संस्कृत भाषा में है। बुद्ध के समय तक जनभाषा संस्कृत नहीं रह गई थी, किन्तु भारतीय पण्डितों के कारण ग्रन्थभाषा संस्कृत ही बनी हुई थी। तथागत बुद्ध ने अपने धर्मोपदेश जनसाधारण की भाषा में दिए जो उस समय पालि भाषा थी।

(ix) **भारतीय कलाओं पर प्रभाव–** बौद्ध धर्म ने भारतीय संस्कृति को कलाओं के क्षेत्र में सर्वाधिक योगदान दिया। यह योगदान या प्रभाव विशेषत: वास्तुकला, स्थापत्यकला, मूर्तिकला तथा चित्रकला के क्षेत्र में हैं। बौद्ध धर्म ने इन सभी कलाओं को स्थायी आधार भी दिया और उन्हें अत्यधिक समृद्ध भी किया। बौद्ध भिक्षुओं के निवास के लिए देश भर में बड़े-बड़े विहार बने; पर्वत में चट्टानों को काट-काटकर अनेक गुहा विहार बने; बुद्ध के अवशेषों पर पाषाण के स्तूप बने; बुद्ध के वचनों और उपदेशों को खोदकर स्तम्भ खड़े किए गए— इन सबसे वास्तुकला की अत्यधिक उन्नति हुई। साँची, भरहुत तथा अमरावती के स्तूप आज भी भारतीय कला के अनुपम उदाहरण है। अजन्ता, एलोरा, बाघ तथा बारबरा के गुहा चित्र विश्वभर में प्रसिद्ध हैं तथा भारतीय संस्कृति की अमूल्य निधि हैं।

(x) **राष्ट्रीय एकता–** बौद्ध धर्म ने ऊँच-नीच भाव के विनाश, लोक भाषा के प्रयोग तथा अम्बर मुक्ति के द्वारा भारत की सामाजिक एकता को सुदृढ़ किया। उससे स्वत: ही उस युग में भारत की राजनीतिक एकता का मार्ग प्रशस्त हुआ तथा भारतीय राष्ट्र भावना का विकास हुआ।

(xi) **भारतीय संस्कृति का प्रसार–** बौद्ध धर्म की सर्वाधिक महत्वपूर्ण देन यह है कि इस धर्म ने अन्य अनेक देशों के साथ भारत का घनिष्ठ सम्बंध स्थापित कर दिया। भारत के बौद्ध धर्म प्रचारकों ने मध्य एशिया, चीन, मंगोलिया, मंचूरिया, जापान, कोरिया, जावा, सुमात्रा, श्याम, मलाया, ब्रह्मा, लंका आदि देशों तक इस धर्म का प्रचार किया। फाह्यान, ह्वेनसांग आदि अनेक चीनी यात्री कष्ट सहकर भी भारत आए, वर्षों तक भारत में रहे और यहाँ से पवित्र ज्ञान एवं संस्कृति की अमूल्य धरोहर लेकर अपने देश वापस गए।

(xii) **दर्शन की नवीन विचारधाराएँ–** भारतीय दार्शनिक चिन्तन को बौद्ध धर्म ने एक नवीन दिशा प्रदान की। बौद्ध दार्शनिकों और विचारकों ने तत्वज्ञान की विभिन्न जटिल समस्याओं पर स्वतंत्रापूर्वक जो कुछ मनन चिन्तन किया; उसके फलस्वरूप नवीन दार्शनिक मान्यताएँ स्थापित हुईं। बौद्ध धर्म के अन्तर्गत अनेक दार्शनिक विचारधाराएँ प्रसिद्ध हैं। बौद्ध दर्शन की महनीयता का अनुमान इसी से किया जा सकता है कि नागार्जुन, वसुबन्धु, अश्वघोष, असंग, धर्मकीर्ति, दिडंनाग आदि बौद्ध दार्शनिकों के विचारों का सम्यक् अध्ययन किए बिना कोई भी भारतीय दर्शन का आचार्य नहीं कहा जा सकता।

(xiii) **शिक्षा की व्यवस्थित एवं नियमित प्रणाली–**मूलत: बौद्ध धर्म का प्रचार-प्रसार करने के लिए मठ और विहार निर्मित हुए थे। किन्तु शीघ्र ही नालन्दा, तक्षशिला, विक्रमशिला जैसे वृहद् विश्वविद्यालयों की स्थापना हुई जिनमें सहस्त्राधिक छात्र शिक्षा प्राप्त करते थे। इन विश्वविद्यालयों में सुयोग्य आचार्यों द्वारा सभी विषयों का अध्यापन किया जाता था। इस प्रकार बौद्ध धर्म के प्रभाव से भारत में सुव्यवस्थित शिक्षा प्रणाली प्रारम्भ हुई।

(xiv) **भारतीय इतिहास पर अमिट प्रभाव–** भारतीय संस्कृति पर बौद्ध धर्म का एक दु:खद प्रभाव भी पड़ा है। इस धर्म ने अहिंसा और जीवदया पर सर्वाधिक बल दिया था। बौद्ध धर्म के प्रभाव में आकर अशोक ने पुन: कभी युद्ध न करने की प्रतिज्ञा की और अपनी समस्त शासन नीति ही परिवर्तित कर डाली। युद्ध न करने की स्थिति में सेना आलसी, शिथिल और निष्क्रिय हो गई और सामान्य जनता की प्रवृत्ति भी रक्तपात आदि से विमुख हो गई। शस्त्रास्त्रों का प्रशिक्षण और अभ्यास बहुत कम रह गया। इसी कारण जब भारत पर विदेशी आक्रान्ताओं ने बर्बर आक्रमण किए तो भारत को पुन: पुन: पराजय का ही मुख देखना पड़ा। केन्द्रीय राज्यसत्ता के अहिंसक हो जाने पर व्यवस्था छिन्न-भिन्न हुई और देश छोटी-छोटी अनेक इकाइयों में बँट गया। क्रमश: अहिंसा का सिद्धान्त बुद्धमूल हो जाने पर भारत से दीर्घकाल के लिए सैन्य भावना का ही लोप हो गया। भारतीय इतिहास पर बौद्ध धर्म के प्रभाव का यह दु:खद पहलू है।

11. भारत में जैन धर्म के उत्थान एवं पतन का संक्षिप्त परिचय दीजिए।

उ०– जैन धर्म का भारत में उत्थान– यद्यपि जैन धर्म भारत का मूल धर्म तथापि जैन धर्म को विश्व धर्मों में कोई विशेष प्राप्त नहीं है। परन्तु भारत में यह धर्म प्राचीन काल से वर्तमान तक स्थायित्व प्राप्त किए हुए है। भारत में जैन धर्म के उत्थान के निम्नलिखित कारण गिनाए जा सकते हैं–

(i) **समन्वयवादी नीति–** जैन धर्म ने समन्वयवादी नीति का अनुसरण किया, जिसके अनुसार जैन धर्म ने ब्राह्मण विरोधी व बौद्ध धर्म का प्रतिद्वन्द्वी होते हुए भी इन धर्मों की अनेक बातों को ग्रहण किया। यह जैन धर्म के मूल कारण हैं।

(ii) **धर्मानुयायियों की एकता–** जैन धर्म के अनुयायी जाति के रूप में संगठित हो गए थे। जैन धर्म के अनुयायियों की अल्पसंख्यता के कारण ही जैन मतावलम्बी एकता के सूत्र में बँधकर रह सके। जिसने इस धर्म को स्थायित्व प्रदान किया।

(iii) **जातीय भावना–** विभिन्न जातियों के जैन धर्मानुयायियों ने अपनी जातिगत भावना से ऊपर धर्म को स्थान दिया। इस प्रकार 'जैन जाति' की आधारशिला रखी गई। वर्तमान में भी जैन धर्म को मानने वाले न तो ब्राह्मण होता है, न क्षत्रिय या वैश्य और न ही क्षुद्र होता है, वे केवल जैनी होता है। यह जातीय एकता भी जैन धर्म के उत्थान का कारण बनी।

जैन धर्म के पतन के कारण– इसके लिए विस्तृत उत्तरीय प्रश्न संख्या– 7 के उत्तर का अवलोकन करें।

12. ''बुद्ध का युग एक विचार-मंथन का युग था।'' छठी शताब्दी ई० पू० के धार्मिक आन्दोलनों के प्रकाश में इस कथन की विवेचना कीजिए।

उ०– उत्तर के लिए विस्तृत उत्तरीय प्रश्न संख्या– 6 के उत्तर का अवलोकन करें।

13. ''बौद्ध तथा जैन धर्म में तुलना कीजिए। बौद्ध धर्म ने भारतीय संस्कृति को कैसे प्रभावित किया?

उ०– उत्तर के लिए विस्तृत उत्तरीय प्रश्न संख्या 9 व 10 के उत्तर का अवलोकन करें।

14. महावीर स्वामी जी के जीवन एवं शिक्षण पर प्रकाश डालिए।

उ०– महावीर स्वामी का जीवन परिचय– महावीर स्वामी को जैन धर्म के अनुयायियों द्वारा 24 वाँ तीर्थंकर स्वीकार किया जाता है। जैन धर्म के कुल 24 तीर्थंकर में ऋषभदेव सर्वप्रथम तीर्थंकर थे। महावीर स्वामी का वास्तविक नाम वर्धमान था। इनका जन्म 599 ईसा पूर्व में उत्तरी भारत वज्जि गणराज्य संघ वैशाली के निकट 'कुण्डग्राम' में हुआ था। इनकी माता का नाम त्रिशला देवी और पिता का नाम सिद्धार्थ था। युवावस्था में उनका विवाह यशोदा नामक राजकुमारी से सम्पन्न हुआ, जिससे उन्हें एक कन्या 'प्रियदर्शनी' की प्राप्ति हुई।

जिस समय इनके माता-पिता का स्वर्गवास हुआ, उस समय वे तीस वर्ष के थे। इन्होंने सांसारिक मोह त्यागकर अपने बड़े भाई नन्दिवर्धन की आज्ञा से सन्यास (प्रवज्या) ले लिया और अपने शरीर को अनेक प्रकार की यातनाएँ देकर कठोर तपस्या की।

बारह वर्ष की कठोर साधना के बाद इन्हें परम ज्ञान (कैवल्य) प्राप्त हुआ। अब वे पाँच ज्ञानों— मति ज्ञान, श्रुत ज्ञान, अवधि ज्ञान, मन पर्याय ज्ञान और कैवल्य ज्ञान के पूर्ण स्वामी हो गए थे। ज्ञान-प्राप्ति के बाद महावीर; अर्हन्त, जिन तथा निग्रन्थ आदि नामों से संबोधित किए जाने लगे और इनके द्वारा प्रचलित धर्म जैन-धर्म कहलाने लगा।

जैन धर्म के सिद्धान्त (शिक्षाएँ)– इसके लिए विस्तृत उत्तरीय प्रश्न संख्या— 5 के उत्तर का अवलोकन करें।

इकाई-3

6 भारत का पश्चिमी जगत से सम्पर्क (India's Contact with Western World)

अभ्यास

निम्नलिखित तिथियों के ऐतिहासिक महत्व का उल्लेख कीजिए–

1. 356 ई० पू०
2. 323 ई० पू०
3. 330 ई० पू०
4. 336 ई० पू०
5. 324 ई० पू०

उ०– उत्तर के लिए पाठ्यपुस्तक के पृष्ठ संख्या— 75 पर तिथि सार का अवलोकन करें।

सत्य या असत्य बताइए–

उ०– प्रश्नोत्तर के लिए पाठ्यपुस्तक के पृष्ठ संख्या— 75 का अवलोकन करें।

बहुविकल्पीय प्रश्न

उ०– प्रश्नोत्तर के लिए पाठ्यपुस्तक के पृष्ठ संख्या— 75 का अवलोकन करें।

अतिलघु उत्तरीय प्रश्न

उ०– प्रश्नोत्तर के लिए पाठ्यपुस्तक के पृष्ठ संख्या— 76 का अवलोकन करें।

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. सिकन्दर का संक्षिप्त परिचय दीजिए।

उ०– सिकन्दर महान का परिचय– सिकन्दर का जन्म 20 जुलाई 356 ई० पू० को हुआ था। सिकन्दर का पिता फिलिप मकदूनिया (मेसेडोनिया) का शासक था। लगभग 329 ई० पू० में अपने पिता की मृत्यु के उपरान्त वह मकदूनिया का सम्राट बना। सबसे पहले उसने एक सुसंगठित सेना का गठन किया और विश्व विजेता बनने के लिए पहले उसने ग्रीक राज्यों को जीता और फिर एशिया माइनर (आधुनिक तुर्की) की ओर प्रस्थान किया, उस समय उस क्षेत्र पर फारस का शासन था, जो मिस्र से पश्चिमोत्तर भारत तक फैला था। 330 ई० पू० सिकन्दर ने फारस के शासक दारा (डेरियस) को तीन अलग-अलग युद्धों में पराजित किया।

2. सिकन्दर के भारत आक्रमण के समय पश्चिमोत्तर भारतीय राज्यों की स्थिति पर टिप्पणी कीजिए।

उ०– सिकन्दर के भारत आक्रमण के समय पश्चिमोत्तर भारत अनेक छोटे-छोटे राज्यों में विभक्त था। कुछ राज्य गणतन्त्रात्मक व कुछ राजतन्त्रात्मक थे।

3. सिकन्दर की राजा पोरस पर विजय में किन घटकों का योगदान रहा?

उ०– सिकन्दर की राजा पोरस पर विजय में निम्न घटनाओं का योगदान रहा–

(i) भारत के राजाओं में एकता नहीं थी। राजा परस्पर संघर्ष करते रहते थे और विदेशी आक्रमणकारी इसका लाभ उठाते थे। राजा आम्भी का व्यवहार इसका प्रमुख उदाहरण है।

(ii) जब यूनानियों ने महावतों को मारकर हाथियों की आँखें फोड़ दीं, तो हाथियों में भगदड़ मच गई, जिससे पोरस की सेना के बहुत-से अश्वारोही और पैदल सैनिक कुचल गए।

(iii) सिकन्दर ने कुशलता के साथ सैन्य संचालन किया था। उसका सैन्य संचालन पोरस की अपेक्षा अधिक उत्तम श्रेणी का था।

(iv) भारतीय सेना की टुकड़ियाँ बहुत बड़ी थीं, जिन्हें युद्ध के मैदान में सुगमता से नहीं मोड़ा जा सका।

4. सिकन्दर के भारत से लौटने के क्या कारण थे?

उ०– सिकन्दर भारत से वापस नहीं लौटना चाहता था। उसने सिकन्दर ने अपनी सेना को आगे बढ़ने का आदेश दिया, परन्तु यूनानी सेना बहुत दिनों से अपने घर व परिवार से दूर रहने के कारण खिन्न थी। अत: यूनानी सेनापति 'कोइनाश' ने आगे बढ़ने से बिल्कुल मना कर दिया। सिकन्दर ने सैनिकों के सम्मुख एक ओजस्वी भाषण दिया और उन्हें हर प्रकार से समझाने-बुझाने की चेष्टा की। किन्तु सिकन्दर के सभी प्रयास असफल हुए। वह शर्म के मारे तीन दिन तक अपने खेमे से बाहर नहीं निकला और विवश होकर पंजाब से लौटने की तैयारी करनी पड़ी। अपने जीते हुए प्रदेश पोरस, आम्भी एवं अभिसार जैसे शुभचिंतक राजाओं में बाँट दिए। कुछ प्रदेशों पर यूनानी गर्वनर नियुक्त कर दिए। सिकन्दर, झेलम के मार्ग से ही वापस लौट गया।

5. सिकन्दर महान के भारतीय आक्रमण के दो महत्त्वपूर्ण प्रभावों का वर्णन कीजिए।

उ०– सिकन्दर महान के भारतीय आक्रमण के दो महत्वपूर्ण प्रभाव निम्नलिखित हैं–

(i) कला पर प्रभाव– भारतीय स्थापत्य कला पर यूनानी प्रभाव अधिक नहीं पड़ा किन्तु मूर्तिकला पर यूनानियों का बहुत गहरा प्रभाव पड़ा। यूनानी प्रभाव के परिणामस्वरूप एक नवीन कला-शैली का प्रादुर्भाव हुआ, जो गान्धार कला या इण्डो-यूनानी कला के नाम से प्रसिद्ध हुई। यूनानी कला से प्रभावित मूर्तिकला का ज्वलन्त उदाहरण प्रथम शताब्दी ई० पू० के प्रारम्भ में तक्षशिला में बने कुछ भवनों के अवशेष है। कनिष्क के काल में तो गान्धार कला-शैली उन्नति की पराकाष्ठा पर पहुँच गई थी।

(ii) मुद्रा निर्माण पर प्रभाव– सबसे अधिक यूनानी प्रभाव मुद्रा-निर्माण पर पड़ा क्योंकि यूनानियों के पर्दापण करने से पूर्व भारत में छोटे-छोटे ताँबे तथा चाँदी के सिक्कों का प्रयोग किया जाता था जिस पर वृषभ, चक्र, चैत्य तथा अन्य चिह्न अंकित रहते थे। इस समय कुछ स्वर्ण-मुद्राओं का भी प्रचलन था, किन्तु भारतीय मुद्राओं की तौल तथा आकार में अनियमितता पायी जाती थी। यूनानियों के आगमन के बाद सिक्कों का कलात्मक एवं सुडौल रूप में ढालना शुरू किया गया और लेखों तथा चिन्हों को सुन्दर रूप में उत्कीर्ण किया गया। अतएव यह कहना सत्य है कि भारतीयों ने कलापूर्ण मुद्राओं का निर्माण यूनानियों से ही सीखा।

6. भारत में सिकन्दर की सफलता के क्या कारक थे?

उ०– सर्वप्रथम, सिकन्दर ने कुशलता के साथ सैन्य संचालन किया। उसका सैन्य संचालन अन्य शासकों की अपेक्षा अधिक उत्तम श्रेणी का था। द्वितीय, भारत के राजाओं में एकता नहीं थी। इससे भी विदेशी आक्रमणकारी लाभ उठाते रहे।

विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

1. सिकन्दर के आक्रमण के समय भारत की राजनीतक दशा पर प्रभाव डालिए।

उ०– सिकन्दर के आक्रमण के समय भारत की राजनीतिक दशा– सिकन्दर जिस समय भारत पर आक्रमण की योजना बना रहा था उस समय भारत की राजनीतिक स्थिति अत्यन्त दयनीय थी। यद्यपि मगध-साम्राज्य भारत में राजनीतिक एकता स्थापित करने का प्रयत्न कर रहा था, किन्तु तब तक पूर्वोत्तर भारत ही मगध-साम्राज्य का अंग बना था। पश्चिमोत्तर भारत की स्थिति विशेष रूप से खराब थी। सम्पूर्ण पश्चिमोत्तर भारत छोटे-छोटे राज्यों में बँटा हुआ था। जिसमें पारस्परिक ईर्ष्या व कलह थी, जिसका प्रत्यक्ष उदाहरण तक्षशिला के राजा आम्भि द्वारा सिकन्दर को सहायता दिया जाना है। ईरानी आधिपत्य में लम्बे समय तक रहने के कारण भी उत्तर-पश्चिमी भारत लगभग शक्तिहीन हो चुका था।

सिकन्दर के आक्रमण के समय भारत के प्रमुख राज्य निम्नलिखित थे–

अस्सप– यह राज्य काबुल नदी के उत्तर में स्थित था। यहाँ के प्रमुख नगर अरीरोयम तथा अण्डक थे। अस्सप को अश्वायन भी कहा गया है। यहाँ अस्पसिओई जाति के लोग निवास करते थे।

गौरी– अस्सप व अस्सकीनोस के मध्य स्थित यह प्रदेश गौरी नदी के किनारे स्थित था।

अस्सकीनोस– इस प्रदेश को अश्वकायन भी कहते थे। इस राज्य की राजधानी मस्सग थी। सिकन्दर के समकालीन अस्सकीनोस का राजा अक्सीकेनोस था।

नीसा– नीसा एक पर्वतीय राज्य था, जहाँ गणतन्त्रात्मक शासन पद्धति थी। सिकन्दर का समकालीन नीसा का शासक अकोफीस था। यह राज्य काबुल और सिन्धु नदियों को मध्य स्थित था।

पुष्करावती– पुष्करावती पेशावर के उत्तर-पूर्व में स्वात नदी के किनारे स्थित था। सिकन्दर का समकालीन पुष्करावती का शासक अत्तेस अथवा अष्टक था।

तक्षशिला– सिन्धु और झेलम नदियों के मध्य तक्षशिला राज्य स्थित था। तक्षशिला शिक्षा का प्रसिद्ध केन्द्र था। चन्द्रगुप्त मौर्य ने तक्षशिला में ही शिक्षा प्राप्त की थी। सिकन्दर का समकालीन तक्षशिला का शासक आम्भि था। आम्भि ने सिकन्दर को उसके भारतीय अभियान में सहायता की थी तथा पोरस पर आक्रमण करने के लिए उकसाया था।

अरसेकस– यह आधुनिक पाकिस्तान के हजारा जिले में स्थित था। इस राज्य को 'उरषा-राज्य' के नाम से भी जाना जाता है।

अभिसार– इस राज्य में आधुनिक पुँछ जिला, निकटवर्ती प्रदेश तथा हजारा जिले का कुछ भाग शामिल था। अभिसार के शासक ने सिकन्दर ने विरुद्ध युद्ध में पोरस की सहायता की थी।

पोरस का राज्य– पोरस का राज्य झेलम और चिनाब नदी के मध्य स्थित था। इसके अन्तर्गत आधुनिक पाकिस्तान के गुजरात व शाहपुर के जिले आते थे। स्ट्रेबो ने लिखा है, इसमें 300 नगर थे। पोरस अत्यन्त शक्तिशाली शासक था। अपनी वीरता के कारण ही वह विश्व प्रसिद्ध है।

ग्लोगनिकाई– यह एक विशाल राज्य था जो चिनाब नदी के पश्चिम में स्थित था। इस राज्य में 37 नगर थे। इस राज्य को ग्लोशियन व ग्लौगनिषन भी कहा गया है। यह एक गणराज्य था।

गन्दरीस– यह राज्य चिनाब और रावी नदी के मध्य स्थित था। इस राज्य को मद्र देश भी कहा जाता था। यहाँ का राजा पोरस का भतीजा ही था जिसे छोटा पोरस कहा जाता है।

अद्रेष्ट– यह राज्य व्यास और रावी नदी के बीच स्थित था। इसकी राजधानी प्रिम्पपपा थी।

कठ-गणराज्य– कठ-गणराज्य रावी नदी के पूर्व मे स्थित था। इसमें आधुनिक लाहौर व अमृतसर के जिले आते थे। एरियन ने लिखा है कि कठ के लोग अपने युद्ध-कौशल के लिए प्रसिद्ध थे।

सौभूति– यह राज्य झेलम के तट पर ही स्थित था। स्ट्रेबो ने लिखा है कि इस राज्य में नमक का पहाड़ था जो सम्पूर्ण भारत के लिए पर्याप्त था। डॉ० जायसवाल का मत है कि राज्य कठ-गणराज्य का पड़ौसी राज्य था।

यौद्धेय गणराज्य– यौद्धेय गणराज्य एक विशाल राज्य था। जो उत्तर प्रदेश के सहारनपुर से भावलपुर तक विस्तृत था। उत्तर-पश्चिम में यह लुधियाना से दक्षिण-पूर्व में दिल्ली तक फैला हुआ था। सिकन्दर के सैनिकों द्वारा व्यास नदी के किनारे से लौट जाने का एक कारण नदी के दूसरे तट पर स्थित यौद्धेय गणराज्य की शक्ति से भयभीत होना ही था। इससे स्पष्ट होता है कि यह एक अत्यन्त शक्तिशाली राज्य था।

क्षुद्रक, शिवि और मालव गणराज्य– सिकन्दर को भारतीय अभियान से लौटते समय जिन गणराज्यों का सामना करना पड़ा, उनमें क्षुद्रक, मालव व शिवि प्रमुख थे। क्षुद्रक, लायलपुर और झंग जिला (आधुनिक पाकिस्तान में), मालव मोण्टमुगरी जिले के पश्चिमी प्रदेश, उत्तरी मुल्तान व दक्षिणी लायलपुर तथा शिवि झंग जिले के शेरकोट क्षेत्र में स्थित था। सिकन्दर का सामना करने के लिए क्षुद्रक व मालवों ने संघ बनाया था तथा सिकन्दर का अत्यन्त वीरतापूर्वक सामना किया था।

अगलिस्सि– यह शिवि गणराज्य के पूर्व में स्थित था।

अम्बष्ठ– यह एक छोटा लोकतन्त्र था किन्तु यहाँ के लोग अत्यन्त वीर थे।

मुचिकर्ण– इस गणतन्त्र में सिन्ध प्रदेश का विस्तृत भाग सम्मिलित था। इसकी राजधानी अलोर थी।

पटन– सिन्धु नदी सिन्ध में जहाँ दो धाराओं में विभक्त होती है वहीं यह राज्य स्थित था।

मगध-साम्राज्य– मगध-साम्राज्य का, सिकन्दर का समकालीन, शासक धनानन्द था जो अत्यधिक शक्तिशाली एवं अपार सम्पत्ति का स्वामी था। उसकी सेना भी अत्यन्त विशाल थी, जिसकी यूनानी लेखकों ने प्रशंसा की है। सिकन्दर की सेना मगध-राज्य की सेना की शक्ति से भयभीत हो गई थी।

उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि जब सिकन्दर ने भारत पर आक्रमण की योजना बनाई उस समय सम्पूर्ण उत्तर-पश्चिमी भारत राजनीतिक रूप से विशृंखलित था। अत: उसे भारत में प्रवेश करते समय मात्र छोटे-छोटे राज्यों का सामना करना पड़ा न कि किसी चक्रवर्ती सम्राट की संगठित शक्ति का, जैसा कि कुछ समय पश्चात् सेल्यूकस के साथ हुआ।

2. भारत पर सिकन्दर द्वारा किए गए आक्रमण और उसके प्रभाव को स्पष्ट कीजिए।

उ०– सिकन्दर के आक्रमण का भारत पर प्रभाव– सिकन्दर के आक्रमण का भारत पर प्रभाव पड़ा ही नहीं, इस सम्बन्ध में परस्पर दो विरोधी मत हैं—

(i) **डॉ० रमेशचन्द्र मजूमदार, डॉ० आर० एस० त्रिपाठी, डॉ० हेमचन्द्र रायचौधरी** आदि इतिहासकारों को मत है कि सिकन्दर के आक्रमण का भारत पर व्यापक प्रभाव पड़ा।

(ii) इसके विपरीत **डॉ० वी० ए० स्मिथ, रॉलिन्सन** और **डॉ० राधाकुमुद मुकर्जी** का मत है कि सिकन्दर का आक्रमण एक घटना मात्र है, जिसका भारत पर कोई व्यापक प्रभाव नहीं पड़ा। भारत की हिन्दू, जैन और बौद्ध साहित्य से सम्बन्धित किसी भी कृति में सिकन्दर के आक्रमण का उल्लेख नहीं मिलता।

सिकन्दर भारतीय सीमा में 19 माह तक रहा, इस अवधि के दौरान भारत यूनानी सभ्यता से प्रभावित न हो, ऐसा सम्भव नहीं है। अत: यह कथन अतिशयोक्तिपूर्ण है कि **सिकन्दर आँधी के समान भारत आया और तूफान की तरह चला गया।** वास्तवकिता उपुर्यक्त दोनों मतों के बीच है।

सिकन्दर के आक्रणमण का भारत पर निश्चय ही प्रभाव पड़ा, क्योंकि इसने भारत की राजनीतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक दशा में अनेक परिवर्तन किए।

सिकन्दर के आक्रमण के राजनीतिक प्रभाव– (i) राष्ट्रीय एकता की भावना का जन्म– सिकन्दर के भारत आक्रमण के प्रभाव और परिणाम दोनों ही स्पष्ट रूप से दिखाई देते हैं। भारत उस समय छोटे-छोटे राज्यों, गणराज्यों व कबीलें में विभक्त था। उत्तर-पश्चिमी भारत बाहरी आक्रमणों से आक्रान्त रहता था, ऐसे काल में सिकन्दर के आक्रमण ने भारतीयों को यह आभास कराया कि अपने राज्य को बाहरी आक्रान्ताओं से सुरक्षित करने का एकमात्र विकल्प भारतीय एकता का विकास है। सिकन्दर के भारत से जाने के तुरन्त बाद ही शक्तिशाली भारतीय साम्राज्य के गठन की प्रक्रिया प्रारंभ हो गई थी।

(ii) केन्द्रीय शक्ति का विकास– सिकन्दर ने केवल छोटे राज्यों से ही युद्ध किया। जबकि एक छोटे राज्य के शासक पोरस ने ही सिकन्दर की सेना के हौसले पस्त कर दिए। सिकन्दर ने तत्कालीन राजनैतिक महाशक्ति राजा नन्द से युद्ध नहीं किया क्योंकि नन्द की सेना विशाल थी। सिकन्दर के इस आक्रमण ने पंजाब और सिन्ध जैसे छोटे राज्यों की शासन पद्धति खत्म कर विशाल साम्राज्य की स्थापना में सहायता की।

(iii) सैन्य कुशलता का ज्ञान– सिकन्दर के आक्रमण से भारतीयों को इस बात का ज्ञान हो गया कि उनका सैन्य संगठन दोषपूर्ण है। सिकन्दर के प्रशिक्षित सैनिकों को देखकर भारतीय यह समझ गए कि थोड़े से प्रशिक्षित सैनिक भी एक विशाल असंगठित सेना को सरलता से पराजित कर सकते हैं।

सिकन्दर के आक्रमण के आर्थिक प्रभाव– सिकन्दर के भारत आक्रमण ने भारत और यूनान के मध्य नए मार्गों का सृजन किया। ऐसा कहा जाता है कि सिकन्दर महान ने भारत और पश्चिम के मध्य आवागमन के पाँच मार्गों का निर्माण किया। जिसके परिणामस्वरूप भारत और पश्चिमी देशो के मध्य व्यापार प्रारम्भ हुआ। रोम के धनी वर्गों ने विलासिता के लिए भारत से आयातित वस्तुओं का उपभोग करना प्रारम्भ कर दिया।

सिकन्दर के आक्रमण के सांस्कृतिक प्रभाव– संस्कृति किसी भौगोलिक सीमा में बँधी नहीं रहती। विभिन्न संस्कृति वाले दो लोग जब एक दूसरे से मिलते है, तो संस्कृति का आदान-प्रदान अनायास ही हो जाता है। यूनानियों के भारत आक्रमण ने भारतीयो को ऐसी ही सांस्कृतिक आदान-प्रदान का अवसर प्रदान किया। सिकन्दर के भारत आक्रमण के समय यूनानी सभ्यता अपने चरमोत्कर्ष पर थी। सिकन्दर के साथ भारत आए दार्शनिको, इतिहासकारों व लेखकों ने भारतीय सभ्यता का बारीकी से निरीक्षण किया। सिकन्दर स्वयं भी भारतीय दर्शन शास्त्र को अधिक से अधिक जानने का उत्सुक था। सिकन्दर के काल के यूनानी विचारों पर हिन्दू व बौद्ध विचारों का प्रभाव देखा गया है।

इसी प्रकार भारतीयों ने ज्योतिष के क्षेत्र में यूनानियों से बहुत कुछ सीखा। भारतीय ज्योतिष की कुछ राशियाँ मेष, वृषभ, शनि आदि यूनानी नामों का रूपान्तरण है। भारतीय चिकित्सा पर भी यूनानी प्रभाव स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। भारतीय स्थापत्य कला पर यूनानी प्रभाव अधिक नहीं पड़ा, किन्तु मूर्तिकला पर यूनानियों का प्रत्यक्ष प्रभाव दिखाई पड़ता है। यूनानी प्रभाव के परिणामस्वरूप एक नवीन कला शैली का प्रादुर्भाव हुआ, जो गान्धार कला के नाम से प्रसिद्ध हुई।

सिकन्दर के आक्रमण के सामाजिक प्रभाव– सिकन्दर ने अपने एक जहाजी बेड़े को बन्दरगाहों का पता लगाने के लिए समुद्र में भेजा, इस प्रकार सिकन्दर के इतिहासकार एक भौगोलिक विवरण भारतीयों को दे गए, जिससे समुद्री मार्गों की खोज हुई। इतना ही नहीं, यूनानी इतिहासकारों ने सिकन्दर के अभियान का तारीख सहित व्याख्यान किया है, जिससे भारत में हुई घटनाओं का तिथिक्रम निश्चित करने में सहायता मिलती है।

यूनानियों के भारत में पर्दापण से पूर्व भारत में छोटी ताँबे, चाँदी व सोने की मुद्राओं का प्रचलन था, जिन पर वृषभ, चक्रादि चिह्न अंकित होते थे, परन्तु इन मुद्राओं के तोल व आकार में अनियमितता पाई जाती थी। यूनानियों के आगमन के पश्चात् सिक्कों की गुणवत्ता में सुधार आया। भारतीयों ने सिक्कों को कलात्मक व सुडौल रूप में ढालना शुरू कर दिया। यूनानी राज्य समाप्त होने के पश्चात् यूनानियों का भारतीयकरण हो गया और वे यहाँ के राजनीतिक व धार्मिक जीवन में घुल-मिल गए।

3. सिकन्दर के आक्रमण के समय उत्तर पश्चिम भारत के प्रमुख राज्यों का विवरण दीजिए।

उ०– उत्तर के लिए विस्तृत उत्तरीय प्रश्न संख्या– 1 के उत्तर का अवलोकन करें।

4. सिकन्दर के आक्रमण के समय भारत की राजनीतिक दशा पर प्रकाश डालिए तथा यह भी बताइए कि इसका भारतीय इतिहास और राजनीतिक पर क्या प्रभाव पड़ा।

उ०– उत्तर के लिए विस्तृत उत्तरीय प्रश्न संख्या– 1 के उत्तर का अवलोकन करें।

5. भारतीय संस्कृति पर यूनानी प्रभाव की विवेचना कीजिए।

उ०– भारतीय संस्कृति पर यूनानी प्रभाव– भारतीय संस्कृति पर यूनानी प्रभाव के विषय में विद्वानों में मतैक्य नहीं है। पाश्चात्य विद्वानों का कहना है कि भारत को यूनानियों की अनेक देन हैं किन्तु भारतीय विद्वान इस बात से सहमत नहीं है। उनका मत है कि भारत ने यूनानियों से जो शिक्षा ग्रहण की थी, उसकी तुलना में भारत ने यूनानियों को बहुत अधिक ज्ञान दिया था। फिर भी भारतीय संस्कृति पर जो विभिन्न यूनानी प्रभाव पड़े, उनका संक्षिप्त विवरण निम्नलिखित है–

(i) ज्योतिष तथा विज्ञान के क्षेत्र पर प्रभाव– भारतीय ज्योतिष के क्षेत्र पर यूनानी प्रभाव स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। जैसे– होरा, रेचक व पोलिश शब्द एवं सिद्धान्त यूनानी शब्द व सिद्धान्त हैं। फलित ज्योतिष में नक्षत्र को देखकर भविष्य कथन की कला यूनानियों की ही देन है। भारतीय ज्योतिष पर यूनानी प्रभाव की ओर संकेत करते हुए 'गार्गी संहिता' में लिखा है, ''यद्यपि यवन बर्बर हैं तथापि ज्योतिष के जन्मदाता होने के कारण ये देवताओं की भाँति स्तुत्य हैं।'' ज्योतिष के साथ-साथ चिकित्सा विज्ञान पर भी यूनानियों का प्रभाव पड़ा।

(ii) कला पर प्रभाव– भारतीय स्थापत्य कला पर यूनानी प्रभाव अधिक नहीं पड़ा, किन्तु मूर्तिकला पर यूनानियों का बहुत गहरा प्रभाव पड़ा। यूनानी प्रभाव के परिणामस्वरूप एक नवीन कला-शैली का प्रादुर्भाव हुआ, जो गान्धार कला या इण्डो-यूनानी कला के नाम से प्रसिद्ध हुई। यूनानी कला से प्रभावित मूर्तिकला का ज्वलन्त उदाहरण प्रथम शताब्दी ई० पू० के प्रारम्भ से तक्षशिला में बने कुछ भवनों के अवशेष हैं। कनिष्क के काल में तो गान्धार कला शैली उन्नति की पराकाष्ठा पर पहुँच गई थी।

(iii) मुद्रा निर्माण पर प्रभाव– सबसे अधिक यूनानी प्रभाव मुद्रा-निर्माण पर पड़ा क्योंकि यूनानियों के पर्दापण करने से पूर्व भारत में छोटे-छोटे ताँबे तथा चाँदी के सिक्कों का प्रयोग किया जाता था जिन पर वृषभ, चक्र, चैत्य तथा अन्य चिह्न अंकित रहते थे। इस समय कुछ स्वर्ण-मुद्राओं का भी प्रचलन था, किन्तु भारतीय मुद्राओं की तौल तथा आकार में अनियमितता पायी जाती थी। यूनानियों के आगमन के बाद सिक्कों को कलात्मक एवं सुडौल रूप में ढालना शुरू किया गया और लेखों तथा चिह्नों को सुन्दर रूप में उत्कीर्ण किया गया। अतएव यह कहना सत्य है कि भारतीयों ने कलापूर्ण मुद्राओं का निर्माण यूनानियों से ही सीखा।

(iv) **व्यापार पर प्रभाव–** यूनानियों का राज्य भारत में स्थापित हो जाने से भारतीय व्यापार अधिक उन्नत हुआ। आवागमन के नवीन मार्गों का निर्माण हुआ, जिनके द्वारा यूनान और रोम से व्यापार होने लगा। रोम के धनी वर्गों द्वारा विलास की भारतीय सामग्री काम में लाई जाने लगी, फलस्वरूप अनेक उपयोगी वस्तुओं का निर्यात यूनान और रोम को किया जाने लगा।

(v) **साहित्यिक क्षेत्र पर प्रभाव–** कुछ विद्वानों का मत है कि यूनानी भाषा एवं साहित्य का प्रभाव भारतीय भाषा तथा साहित्य पर पड़ा किन्तु इसके विपरित, कुछ विद्वान इसे सत्य नहीं मानते। अपने मत की पुष्टि करते हुए वे कहते हैं कि भारतीय सिक्कों पर इष्ठी व प्राकृत भाषा तथा खरोष्ठी लिपि का प्रयोग इस बात का प्रमाण है कि जन-साधारण को यूनानी भाषा-लिपि की कोई जानकारी नहीं थी। एरियन, प्लूटार्क आदि विद्वानों ने यह भी कहा है कि भारतीय होमर के महाकाव्यों का अध्ययन करते थे।

एन० एन० घोष के अनुसार, दो महान सभ्यताओं के सम्पर्क का परिणाम उनके पारस्परिक विचार विनिमय का माध्यम बना, जो दर्शन, नक्षत्र विज्ञान तथा ज्योतिष के क्षेत्र में, विशेषत: ज्योतिष में परिलक्षित होता है।

6. सिकन्दर के भारतीय अभियान की सफलता के कारणों पर प्रकाश डालिए।

उ०– उत्तर के लिए विस्तृत उत्तरीय प्रश्न संख्या– 1 के उत्तर का अवलोकन करें।

7. सिकन्दर के आक्रमण के समय की पश्चिोत्तर भारत की राजनीतिक स्थिति पर प्रकाश डालिए।

उ०– उत्तर के लिए विस्तृत उत्तरीय प्रश्न संख्या– 1 के उत्तर का अवलोकन करें।

7 राजनीतिक एकता की प्रक्रिया– मौर्य वंश
(Process of Political Unity : Mouryan Dynasty)

अभ्यास

निम्नलिखित तिथियों के ऐतिहासिक महत्व का उल्लेख कीजिए–

1. 322 ई० पू०
2. 305 ई० पू०
3. 304 ई० पू० से 298 ई० पू०
4. 345 ई० पू०
5. 298 ई० पू०
6. 269 ई० पू०
7. 273 ई० पू०
8. 261 ई० पू०
9. 258 ई० पू० से 257 ई० पू०
10. 257 ई० पू० से 256 ई० पू०
11. 246 ई० पू०
12. 242 ई० पू० से 232 ई० पू०
13. 257 ई० पू० से 250 ई० पू०
14. 232 ई० पू०

उ०– उत्तर के लिए पाठ्यपुस्तक के पृष्ठ संख्या– 90 पर तिथि सार का अवलोकन करें।

सत्य या असत्य बताइए–

उ०– प्रश्नोत्तर के लिए पाठ्यपुस्तक के पृष्ठ संख्या– 90 का अवलोकन करें।

बहुविकल्पीय प्रश्न

उ०– प्रश्नोत्तर के लिए पाठ्यपुस्तक के पृष्ठ संख्या– 90 व 100 का अवलोकन करें।

अतिलघु उत्तरीय प्रश्न

उ०– प्रश्नोत्तर के लिए पाठ्यपुस्तक के पृष्ठ संख्या– 91 व 92 का अवलोकन करें।

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. चन्द्रगुप्त मौर्य के प्रशासन पर टिप्पणी लिखिए।

उ०– चन्द्रगुप्त मौर्य का प्रशासन– चन्द्रगुप्त एक वीर योद्धा ही नहीं, वरन् एक कुशल प्रशासक भी था। चाणक्य जैसे गुणवान प्रधानमंत्री की सहायता से चन्द्रगुप्त ने एक सुदृढ़ शासन व्यवस्था की स्थापना की थी। चन्द्रगुप्त मौर्य के शासन-प्रबन्ध का ज्ञान हमें मेगस्थनीज की 'इण्डिका' तथा कौटिल्य के 'अर्थशास्त्र से प्राप्त होता है।

शासन-प्रबन्ध के आधारभूत सिद्धान्त अथवा तत्त्व– चन्द्रगुप्त मौर्य के प्रशासन के आधारभूत सिद्धान्त अथवा विशेषताओं का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है–

(i) **प्रजा के हितों की सुरक्षा–** कौटिल्य और मेगस्थनीज के विवरण के आधार पर यह स्पष्ट होता है कि मौर्य प्रशासन में प्रजा के हितों और सुखों की ओर विशेष ध्यान दिया जाता था।

(ii) **शत्रुओं से सुरक्षा–** चन्द्रगुप्त मौर्य ने शत्रुओं से देश की सुरक्षा के लिए सुशिक्षित सैन्य-बल के संगठन की ओर विशेष ध्यान दिया था।

(iii) निष्पक्ष न्याय-व्यवस्था– मौर्य साम्राज्य के प्रत्येक मनुष्य को निष्पक्ष न्याय प्राप्त हो, ऐसी न्यायिक व्यवस्था मौर्य प्रशासन की एक उल्लेखनीय विशेषता थी।

(iv) प्रशासन की सभी इकाईयों पर नियन्त्रण– मौर्य प्रशासन की सफलता का मुख्य आधार यह था कि चन्द्रगुप्त द्वारा, प्रशासन से सम्बन्धित समस्त विभागों और अधिकारियों के समुचित प्रबन्ध की ओर ध्यान दिया गया था। वास्तव में, उसके द्वारा कौटिल्य के गाड़ी के दो पहियों के सिद्धान्त को व्यावहारिक महत्त्व दिया गया था।

2. ''अशोक बौद्ध धर्म का प्रचारक होने के साथ ही एक योग्य प्रशासक भी था।'' इस कथन के आलोक में अशोक का मूल्यांकन कीजिए।

उ०– अशोक का मूल्याकंन– अशोक ने हृदय में धर्म के प्रति जो निष्ठा थी, उसे उसने व्यावहारिक रूप प्रदान किया। यद्यपि वह बौद्ध धर्मावलम्बी था, किन्तु उसने जनता को जिस धर्म का अनुसरण करने की आज्ञा दी, वह बौद्ध धर्म नहीं था, वरन् उसमें सभी धर्मों के आदर्शों और कल्याणकारी सिद्धान्तों का समन्वय था। साथ ही उसने बौद्ध धर्म का व्यापक प्रचार सुदूर देशों में भी किया। यथार्थ में अशोक स्वतन्त्र धार्मिक विचारों का सम्राट था। कलिंग विजय के पश्चात् वह पूर्णत: अहिंसावादी हो गया था। अशोक की अहिंसावादी भावना, धर्मपरायणता और सहिष्णुता की सराहना संसार के सभी विद्वानों ने की है। अशोक एक उच्चकोटि का शासक था। उसकी शासन व्यवस्था आध्यात्मिकता पर आधारित थी। उसने अपने अधिकारियों के समक्ष अपने चरित्र का आदर्श प्रस्तुत करते हुए उनके आध्यात्मिक स्तर को विकसित किया। उसने जनता के कल्याण के अनेकानेक कार्य किए। बौद्ध धर्म का संरक्षक होते हुए भी अशोक ने अपने व्यक्तिगत विचार कभी भी जनता पर थोपने का प्रयास नहीं किया। उसका धार्मिक दृष्टिकोण उदार था और वह सभी धर्मों का समान रूप से आदर करता था। उसके 12वें शिलालेख में कहा गया है– ''देवताओं के प्रियदर्शी राजा सभी धर्मों के प्रति आदर का भाव रखते हैं।''

3. अशोक के शासन-प्रबन्ध को समझाइए।

उ०– अशोक का शासन-प्रबन्ध– अशोक का साम्राज्य उत्तर में कश्मीर से सुदूर दक्षिण में मैसूर तक और पश्चिम में अफगानिस्तान-ब्लूचिस्तान से लेकर पूर्व में बंगाल तक विस्तृत था। पूर्व में केवल आसाम उसके साम्राज्य में सम्मिलित नहीं था। सुदूर दक्षिण में चोल, पाण्ड्य इत्यादि छोटे-छोटे राज्य भी उसके अधीन नहीं थे। शेष सम्पूर्ण भारत अशोक के शासन के अन्तर्गत था। इसकी पुष्टि उसके शिलालेखों तथा साहित्यिक साक्ष्यों से होती है। प्राचीन भारत में किसी भी सम्राट को इतने बड़े साम्राज्य पर शासन करने का सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ था। अशोक के प्रशासन का स्वरूप राजतन्त्रात्मक था तथा शासन-व्यवस्था उसके पूर्ववर्ती सम्राटों की व्यवस्था के अनुरूप थी। लेकिन, अशोक निरंकुश एवं स्वेच्छाचारी न होकर जन-हितैषी शासक था। यद्यपि साम्राज्य में सम्राट सर्वोपरि था, लेकिन चन्द्रगुप्त मौर्य के समय के समान प्रशासनिक कार्यों में सहयोग देने के लिए अशोक ने भी मन्त्री, मन्त्रिण और मन्त्रिपरिषद् को बनाए रखा था।

शासन की सुविधा के लिए साम्राज्य पाँच भागों अथवा प्रान्तों में विभाजित था। ये प्रकार थे– (i) प्राच्य अथवा उत्तर-पूर्वी प्रान्त। (ii) उत्तरापथ अथवा उत्तर-पश्चिमी प्रान्त। (iii) दक्षिणापथ। (iv) अपरान्त अथवा अवन्ति। (v) कलिंग देश।

4. मौर्य कौन थे?

उ०– (i) मौर्य पारसी थे– स्पूनर महोदय का मत है कि चन्द्रगुप्त मौर्य की शासन-प्रणाली, रहन-सहन और राजदरबार में अग्नि रखने की प्रथा आदि पारसिक परम्परा के अनुरूप है; अत: मौर्य वंश की उत्पत्ति का स्रोत पारसिक है। लेकिन यह मत सर्वथा गलत, भ्रमपूर्ण और निरर्थक है; क्योंकि यह मात्र सम्पन्नता के आधार पर टिका हुआ है।

(ii) मौर्य शूद्र थे– ब्राह्मण साहित्य और अन्य सम्बन्धित ग्रन्थों में मौर्य को शूद्र कहा गया है; यथा–

(क) विष्णुपुराण के टीकाकार रत्नगर्भ के अनुसार मौर्य शूद्र थे; क्योंकि चन्द्रगुप्त नन्दराजा की स्त्री 'मुरा' से उत्पन्न हुआ था। केवल कथा के अनुसार पर 'मुरा' को नन्दराजा की स्त्री तथा चन्द्रगुप्त को उसका पुत्र मानना और 'पुरा' को 'मौर्य' कहना असंगत है।

पाणिनी की व्याकरण के अनुसार 'मुरा' का अर्थ 'मौरिय' हो सकता है, 'मौर्य' नहीं। अत: यह मत टीकाकार की कल्पना की उपज है।

(ख) मुद्राराक्षस में विशाखादत्त ने चन्द्रगुप्त को वृषल कहते हुए उसे नन्दपुत्र तथा अपनी माता की अवैध सन्तान कहा है। इस मत को विरोधियों का कहना है कि वृषल के अनेक अर्थ हैं। 'मेघातिथि' में कर्महीन क्षत्रिय और आदर्शहीन ब्राह्मण को 'वर्षल' कहा गया है। महाभारत में अधर्मियों को 'वृषल' कहा गया है। कौटिल्य 'वृषल' को हीन बताता है इस प्रकार मौर्यों के सन्दर्भ में वृषल का अर्थ शूद्र तो नहीं हो सकता है; अत: 'वृषल' शब्द के आधार पर मौर्यों को शूद्र प्रमाणित करना भ्रामक है।

(iii) मौर्य क्षत्रिय थे– अनेक प्रमाणों तथा साक्ष्यों से सिद्ध होता है कि मौर्य शूद्र न होकर क्षत्रिय थे। इन प्रमाणों तथा साक्ष्यों का विवरण निम्नलिखित है–

(क) 'महावंश' के टीकाकार के अनुसार मौर्य वंश क्षत्रिय शाक्य वंश की उपशाखा था। 'महापरिनिब्बानसुत्त' में भी मौर्यों को क्षत्रिय कहा गया है। महाबोधिवंश में कहा गया है कि मौर्य वंश के लोग शाक्यों के नगर 'मोरियों' में निवास करते थे। 'दिव्यावदान' में बिन्दुसार और अशोक ने स्वयं को क्षत्रिय बताया है।

(ख) परिशिष्टपर्वन के अनुसार चन्द्रगुप्त मयूर-पालक सरदार का नाती था। जैन ग्रन्थ 'आवश्यक सूत्र' के टीकाकार ने भी मौर्यों को क्षत्रिय माना है।

(ग) कौटिल्य के 'अर्थशास्त्र' से प्रमाणित होता है कि मौर्य क्षत्रिय थे।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि ब्राह्मण साहित्य, जैन धर्मग्रन्थ तथा पुरातात्त्विक साक्ष्यों द्वारा मौर्य क्षत्रिय प्रमाणित होते हैं।

5. अशोक के 'धम्म' को समझाइए।

उ०– अशोक ने बारहवें शिलालेख तथा अन्य बहुत से राज्योदशों में निम्नलिखित सदाचारों का पालन करने के लिए कहा है—

(i) माता-पिता, वृद्धजन, गुरु और अन्य आदरणीय व्यक्तियों की आज्ञा का पालन।
(ii) गुरुओं के प्रति आदर-भाव।
(iii) साधु-संन्यासियों, सगे-सम्बन्धियों, दासों, नौकर-चाकरों तथा आश्रितजनों, गरीबों, एवं दु:खी लोगों, मित्रों, परिचितों तथा साथियों के प्रति उचित व्यवहार।
(iv) भिक्षुओं, साधु-संन्यासियों, मित्रों, साथियों, सगे-सम्बन्धियों और वृद्धजनों के प्रति उदारता।
(v) जीव-हत्या से बचना।
(vi) प्राणियों को क्षति न पहुँचाना।
(vii) अल्प व्यय और अल्प संग्रह।
(viii) सभी प्राणियों के साथ नरमी बरतना।
(ix) सच बोलना।
(x) नैतिकता में आसक्ति तथा हृदय की पवित्रता रखना।

इस प्रकार, अशोक ने नैतिक नियमों (धम्म) को शासन के सिद्धान्त के रूप में अपनाया और जीवन के हर क्षेत्र में उनका पालन करने पर बल दिया। अत: अशोक का धम्म सदाचारपूर्ण एवं नैतिक जीवन व्यतीत करने के लिए एक आचार-संहिता है।

6. मौर्य साम्राज्य के पतन का कारण बताइए।

उ०– मौर्य साम्राज्य के पतन के निम्न कारण हैं।

(i) अशोक की अहिंसा नीति,
(ii) अयोग्य उत्तराधिकारी,
(iii) प्रान्तीय स्वतन्त्रता,
(iv) ब्राह्मणों की प्रतिक्रिया,
(v) वित्तीय संकट,
(vi) विदेशी आक्रमण,
(vii) राष्ट्रीय भावना का अभाव।

ये निम्नलिखित कारण मौर्य साम्राज्य के पतन के कारण बने।

7. अशोक के प्रशासन व वर्तमान व्यवस्था में क्या समानताएँ हैं?

उ०– अशोक ने अखण्ड साम्राज्य की स्थापना की थी। उसका साम्राज्य उत्तर में कश्मीर से दक्षिण में मैसूर तक और पश्चिम में अफगानिस्तान, ब्लूचिस्तान से लेकर पूर्व में बंगाल तक विस्तृत था। इतने बड़े साम्राज्य की सुदृढ़ शासन-व्यवस्था के लिए अशोक ने कुछ संशोधन किए। इन संशोधनों के पश्चात् प्राप्त व्यवस्था का गहन अध्ययन करने से हमें यह ज्ञात होता है कि मौर्य काल की शासन-व्यवस्था व वर्तमान शासन-व्यवस्था में काफी समानताएँ थीं। अशोक ने शासन को केवल केन्द्रीय न रखकर उसका विभाजन प्रान्तों में कर दिया। शासन की सुविधा के लिए साम्राज्य पाँच भागों में विभाजित था। ये पाँच भाग निम्नवत् थे— (i) उत्तर पूर्वी प्रांत (प्राच्य), (ii) उत्तर-पश्चिमी प्रान्त (उत्तरापथ), (iii) दक्षिणापथ, (iv) अवन्ति अथवा उपरान्त (v) कलिंग देश।

इन प्रान्तों के प्रान्तपति के रूप में राजकुमारों को नियुक्त किया जाता था। यह पद वर्तमान के राज्य के मुख्यमन्त्रियों के समान ही था। जिस प्रकार प्रत्येक राज्य का मुख्यमन्त्री व उसकी मन्त्रिपरिषद् होती है, उसी प्रकार मौर्य काल में प्रत्येक प्रान्तपति की भी मन्त्रिपरिषद् होती थी, जो प्रान्तीय शासक की मदद करती थी और उसे निरंकुश होने से भी रोकती थी। राजुक का पद वर्तमान राज्यपाल(गर्वनर) के अनुरूप होता था। राजुक अपने कार्यों के लिए महापात्र के प्रति उत्तरदायी होते थे। प्रादेशिक नामक अधिकारी वर्तमान जिलाधिकारी की भाँति कार्य करता था। कर संग्रह, अपराधों की रोकथाम तथा अन्य कार्यों का निरीक्षण करना उसके मुख्य कार्य थे। इसके अतिरिक्त अशोक ने वर्तमान पुलिस अधिकारी के समान एक अधिकारी की नियुक्ति की थी। अर्थशास्त्र में इसका पदनाम 'पुरुष' या 'राजपुरुष' है।

इसके अतिरिक्त अशोक ने राजकीय लिपिक 'लिपिकार' की भी नियुक्ति की। जिसका प्रमुख कार्य-विवरण तैयार करके अपने उच्च अधिकारी को दिखाना था।

वर्तमान ग्राम व्यवस्था के समान ही अशोक ने 'आयुक्त' नामक ग्राम पदाधिकारी की नियुक्ति की। इसके अतिरिक्त अशोक ने अपने अधिकारियों को यह आदेश भी दिए थे कि वे एक निश्चित अवधि के अन्तराल पर अपने कार्यक्षेत्र का निरीक्षण करें व जनता को आवश्यक सहायता प्रदान करें।

8. कलिंग विजय का अशोक पर क्या प्रभाव पड़ा?

उ०– कलिंग युद्ध अशोक के जीवन का पहला और अन्तिम युद्ध था। कलिंग के युद्ध की विभीषिका ने अशोक के मन को बुरी तरह झकझोर दिया। युद्ध की नृशंसता को देखकर अशोक के दिल में बहुत पश्चाताप हुआ। फलस्वरूप उसने आक्रमण की नीति को छोड़ दिया और लोगों के दिल जीतने का प्रयास किया।

9. मौर्यकालीन इतिहास को जानने के साहित्यिक स्रोतों का वर्णन कीजिए।

उ०– साहित्यिक स्रोत– अशोक पर प्रकाश डालने वाले साहित्यिक स्रोतों में दीपवंश, महावंश बुद्धघोष की रचनायें, दिव्यावदान, अशोकावदान, आर्य-मंजूरी मूलकल्प, राजतंरगिणी व पुराण-कथाएँ आदि प्रमुख हैं। इसके अतिरिक्त कुछ चीनी लेखकों फाह्यान, ह्वेनसांग व इत्सिंग ने भी अपने वर्णनों में अशोक का उल्लेख किया है।

विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

1. चन्द्रगुप्त मौर्य कौन था ? एक साम्राज्य निर्माता के रूप में उसकी उपलब्धियों का वर्णन कीजिए।

उ०– चन्द्रगुप्त का प्रारम्भिक जीवन– चन्द्रगुप्त मौर्य के विषय में विद्वान एकमत नहीं हैं। कुछ विद्वानों के अनुसार, चन्द्रगुप्त मगध के राजा नन्द व उसकी शूद्र रानी मुरा से उत्पन्न वर्णसंकर पुत्र था। अधिकांश विद्वान चन्द्रगुप्त के विषय में बौद्ध साहित्य के विवरण को अधिक विश्वसनीय मानते हैं। बौद्ध साहित्य के अनुसार चन्द्रगुप्त मौर्य का जन्म 345 ई० पू० में मोरिया जाति के मुखिया के यहाँ हुआ था। चन्दगुप्त के पिता की सीमान्त युद्ध में मृत्यु होने के बाद उसकी गर्भवती विधवा माँ पाटलिपुत्र पहुँची, जहाँ उसने चन्द्रगुप्त को जन्म दिया। सुरक्षा की दृष्टि माताओं ने चन्द्रगुप्त को एक गौशाला में छोड़ दिया। वहाँ से उसे 'चन्द' नामक एक गड़रिए ने उठा लिया तथा उसका पालन-पोषण किया। बड़ा होने पर चन्द्रगुप्त को एक आखटेक ने ले लिया। एक दिन जब चन्द्रगुप्त अपने साथी बालकों के साथ 'राजकीलम्' खेल में संलग्न था, तो वहाँ से गुजरते हुए चाणक्य की दृष्टि उस पर पड़ी। इस खेल में चन्द्रगुप्त अपने साथियों के झगड़े सुनकर न्याय कर रहा था। चाणक्य ने उसके गुणों से प्रभावित होकर तुरन्त ही आखेटक को एक हजार कार्षापण (आर्यों द्वारा प्रचलित सिक्के या बट्टे, जो भिन्न-भिन्न मूल्यों के होते थे।) देकर चन्द्रगुप्त को खरीद लिया।

चन्द्रगुप्त मौर्य की एक साम्राज्य निर्माता के रूप में उपलब्धियाँ– चन्द्रगुप्त मौर्य की उपलब्धियों का वर्णन निम्नलिखित बिन्दुओं के अन्तर्गत कर सकते हैं–

(i) मगध राज्य पर प्रथम आक्रमण– बौद्ध ग्रन्थ **महावंश** के अनुसार, चन्द्रगुप्त एवं चाणक्य ने एक संगठित सेना द्वारा मगध की शक्तिशाली सेना पर आक्रमण कर दिया। किन्तु इस युद्ध में उनकी पराजय हुई, क्योकि मगध की सेना सुसंगठित एवं विशाल थी।

(ii) सिकन्दर से भेंट– जस्टिन तथा **प्लूटार्क** के अनुसार ''चन्द्रगुप्त सिकन्दर से मिला था तथा उसे नन्द राजा पर आक्रमण करने के लिए उकसाया था, परन्तु सिकन्दर उसके महत्त्वाकांक्षी होने से क्षुब्ध हो गया और उसने चन्द्रगुप्त को बन्दी बनाने का आदेश दिया, परन्तु बेहद फुर्तीले व सुगठित शरीर के धनी चन्द्रगुप्त को सैनिक पकड़ पाने में असमर्थ रहे और वह सिकन्दर के शिविर से भाग निकलने में सफल हो गया।''

(iii) पंजाब पर विजय– महावंश की टीका के अनुसार चन्द्रगुप्त ने घूम-घूम कर सैनिकों की भर्ती की और एक शक्तिशाली सेना का संगठन किया। 'परिशिष्टपर्वन' तथा 'मुद्राराक्षस' के अनुसार चन्द्रगुप्त तथा चाणक्य ने हिमालय के किसी पर्वतीय प्रदेश के राजा 'पर्वतक' से मित्रता करके सेना का गठन किया। यूनानी लेखकों के अनुसार पोरस ने भी चन्द्रगुप्त को अप्रत्यक्ष रूप से सहायता दी थी। इसीलिए चन्द्रगुप्त ने सर्वप्रथम यूनानी क्षत्रपों को पराजित करके 322 ई० पू० के आस-पास झेलम के प्रदेश पर अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया।

(iv) मगध पर विजय– पंजाब पर आधिपत्य स्थापित कर लेने के पश्चात् उसने एक विशाला सेना के साथ मगध की ओर प्रस्थान किया। मगध की राजधानी पाटलिपुत्र के चारों ओर से घेर लिया गया और वहाँ का नन्दवंशीय सम्राट धनानन्द सम्पूर्ण राज-परिवार सहित चन्द्रगुप्त मौर्य की सेना द्वारा मारा गया। इस विजय के पश्चात् ही लगभग 322 ई०पू० में चन्द्रगुप्त मगध के सिंहासन पर आसीन हुआ।

(v) सेल्यूकस से युद्ध और विजय– मगध पर विजय प्राप्त करने के पश्चात् चन्द्रगुप्त दिग्विजय प्राप्त करने का इच्छुक था। इसीलिए मगध पर आधिपत्य स्थापित करने के पश्चात् उसने उत्तर भारत के सम्पूर्ण राज्यों को जीतने के लिए एक विशाल योजना बनाई। सर्वप्रथम उसने यूनानी सेल्यूकस को पराजित किया।

सेल्यूकस सिकन्दर का प्रमुख सेनापति था और उसकी मृत्यु के पश्चात् उसने सम्पूर्ण पश्चिमी और मध्य-एशिया पर अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया था। अत: प्रतिशोधवश और विश्व-विजय की इच्छा के कारण सेल्यूकस ने 305 ईसा पूर्व में चन्द्रगुप्त मौर्य पर आक्रमण कर दिया। लेकिन सेल्यूकस तथा चन्द्रगुप्त के बीच युद्ध होने का कोई उल्लेख नहीं मिलता है। टार्न के मतानुसार ''दोनों के बीच एक सन्धि हुई, जिसके अन्तर्गत चन्द्रगुप्त ने सेल्यूकस को 500 हाथी भेंट किए। इसके बदले में सेल्यूकस को अपनी पुत्री हेलना का विवाह चन्द्रगुप्त के साथ करना पड़ा, साथ ही अपने चार प्रदेश-हेरात– (ऐरिया), काबुल (पेरापेनिसदाई), कन्दहार या कान्धार (आरकोशिया) एवं बलूचिस्तान (जैड्रोसिया) भी चन्द्रगुप्त को

देने पड़े। सेल्यूकस ने अपने राजदूत मेगस्थनीज को भी चन्द्रगुप्त के दरबाज में भेजा। अब मौर्य साम्राज्य का प्रसार ईरान तक हो गया था।

(vi) **सौराष्ट्र विजय–** चन्द्रगुप्त ने सौराष्ट्र क्षेत्र पर भी अपना अधिकार स्थापित कर लिया। इस विजय का आक्रमण गिरनार से प्राप्त अभिलेखों से उपलब्ध हुआ है। जूनागढ़ अभिलेख के अनुसार, सौराष्ट्र प्रान्त का गर्वनर पुष्यगुप्त चन्द्रगुप्त मौर्य का अधीनस्थ था। मुम्बई के थाणे जनपद के 'सोपारा' नामक स्थान से प्राप्त अशोक के शिलालेखों से भी चन्द्रगुप्त मौर्य के पश्चिम भारत पर आधिपत्य की पुष्टि होती है।

(vii) **बंगाल पर आधिपत्य–** उसने पूर्वी राज्यों को परास्त कर बंगाल को भी अपने अधिकार क्षेत्र में सम्मिलित कर लिया।

(viii) **दक्षिण भारत पर विजय–** ऐतिहासिक साक्ष्यों, जैसे– मुद्राराक्षस, बौद्ध साहित्य, प्लूटार्क का विवरण, चन्द्रगिरि अभिलेख, तमिल-साहित्य, जैन-ग्रन्थ आदि के आधार पर यह ज्ञात हुआ है कि चन्द्रगुप्त ने दक्षिण भारत को भी रौंद डाला था। रुद्रदामन के जूनागढ़ अभिलेख भी बताते है कि चन्द्रगुप्त दक्षिण भारत पर भी अपना प्रभुत्व स्थापित कर चुका था।

2. मौर्य साम्राज्य की उपलब्धियों की विवेचना कीजिए।

उ०– उत्तर के लिए विस्तृत उत्तरीय प्रश्न संख्या–1 के उत्तर का अवलोकन कीजिए।

3. चन्द्रगुप्त मौर्य की उपलब्धियों की विवेचना कीजिए।

उ०– उत्तर के लिए विस्तृत उत्तरीय प्रश्न संख्या–1 के उत्तर का अवलोकन करें।

4. 'अशोक महान था।' विवेचना कीजिए।

उ०– अशोक महान्– इतिहास के रंगमंच पर अनेक सम्राट अवतीर्ण हुए, किन्तु उनमें से कोई भी अशोक से समान शान्ति-प्रेमी, धर्म-प्रचारक और महान् नहीं था। अशोक के कार्यकलाप विश्व इतिहास में देदीप्यमान नक्षत्र के तुल्य हैं। उसकी गणना आज भी विश्व के महान् सम्राटों में की जाती है।'' **एच०जी० वेल्स** ने अपनी पुस्तक, विश्व इतिहास की रूपरेखा में लिखा है– ''इतिहास के स्तम्भों को भरने वाले सहस्रों राजाओं, सम्राटों, धर्माधिकारियों, सन्त-महात्माओं आदि के मध्य केवल अशोक का नाम देदीप्यमान है।'' डॉ० वी०ए० स्मिथ के शब्दों में भी, ''अशोक एक महान् सम्राट था। यदि वह योग्य न होता तो अपने विशाल साम्राज्य पर चालीस वर्ष तक सफलतापूर्वक शासन न कर पाता और अपना नाम न अमर कर पाया होता। आज भी उसका नाम आदर तथा श्रद्धा से लिया जाता है।''

अशोक की महानता के कारण– इतिहासकारों ने अशोक की तुलना **कॉन्स्टेण्टाइन, मार्क्स ओरिलियस, एल्फ्रेड शार्लमेन, खलीफा उमर** तथा **अकबर** आदि से की है और उसे भारत का एक महानतम सम्राट बताया है। **डॉ० राधाकुमुद मुकर्जी** के अनुसार, ''धर्म के उच्चतम आदर्शों के अनुसार धर्म का राज्य स्थापित करने के कारण उसकी (अशोक की) तुलना इजराइल के **डेविड** तथा **सोलोमन** से की जाती है। उसकी तुलना **कॉन्स्टेण्टाइन** से भी की गई है, जिसका सम्बन्ध **ईसाई धर्म** से था। अपने दर्शन तथा पवित्रता के आदर्शों में वह **मार्क्स ओरिलियस** का स्मरण कराता है। अपने साम्राज्य विस्तार तथा कुछ अन्य अंशों में अपनी शासन-पद्धति में वह **शार्लमैन** के समान था। यद्यपि उसके शिलालेख रुक्ष, भद्दे, असम्बद्ध तथा पुनरावृत्ति से भरे हैं, तथापि शिष्टाचार में वे **ओलीवर क्रामवेल के भाषणों** की भाँति प्रतीत होते हैं। अन्त में उसकी तुलना **खलीफा उमर** तथा **सम्राट अकबर** से की जाती है, जिनसे वह कई अर्थों में समान था'' **एच० जी० वेल्स** ने तो यहाँ तक लिखा है– ''प्रत्येक युग तथा प्रत्येक राष्ट्र ऐसे राजा को जन्म नहीं दे सकता। विश्व-इतिहास में आज तक अशोक की समता किसी से नहीं की जा सकती।'' संक्षेप में, अशोक की इस महानता के प्रमुख कारण निम्नलिखित थे–

(i) **एक महान् और आदर्श विजेता–** अन्य सम्राटों के समान अशोक की विजय शक्ति पर आधारित न होकर अहिंसा और शान्ति पर आधारित थी। कंलिग का युद्ध उसके जीवन का प्रथम और अन्तिम युद्ध था जिसके बाद उसने अपनी तलवार को सदैव के लिए म्यान में बन्द कर लिया। अशोक लोगों के शरीर के स्थान पर हृदय को जीतता था। इस प्रकार कर मानव हृदय विजेता था। उसने अपनी विशाल सेना को अस्त्र-शस्त्रों से लैस करने के स्थान पर सरल, शान्ति और अहिंसा के गुणों द्वारा विभूषित किया था। इस प्रकार स्पष्ट है कि अशोक एक महान् तथा आदर्श विजेता था।

(ii) **महान् धर्मपरायण एवं सहिष्णु शासक–** अशोक के हृदय में धर्म के प्रति जो निष्ठा थी, उसे उसने व्यावहारिक रूप प्रदान किया। यद्यपि वह बौद्ध धर्मावलम्बी था, किन्तु उसने जनता को जिस धर्म का अनुसरण करने की आज्ञा दी, वह बौद्ध धर्म नहीं था, वरन् उसमें सभी धर्मों के आदर्शों और कल्याणकारी सिद्धान्तों का समन्वय था। साथ ही उसने बौद्ध धर्म का व्यापक प्रचार सुदूर देशों में भी किया। यथार्थ में अशोक स्वतन्त्र धार्मिक विचारों की सम्राट था। कलिंग विजय के पश्चात् वह पूर्णत: अहिंसावादी हो गया था। अशोक की अहिंसावादी भावना, धर्मपरायणता और सहिष्णुता की सराहना संसार के सभी विद्वानों ने की है।

(iii) **एक महान् शासक–** अशोक एक उच्चकोटि का शासक था। उसकी शासन व्यवस्था आध्यात्मिकता पर आधारित थी। उसने अपने अधिकारियों के समक्ष अपने चरित्र का आदर्श प्रस्तुत करते हुए उनके आध्यात्मिक स्तर को विकसित किया। उसने जनता के कल्याण के अनेकानेक कार्य किए। उसका कथन था– ''हर समय चाहे मैं भोजन करता हूँ या शयनागार में हूँ, प्रतिवेदक प्रजा की दशा से मुझे अवगत करें। मैं सर्वत्र प्रजा कार्य करूँगा।

(iv) **राष्ट्रीय एकता का नायक–** अशोक एक महान् राष्ट्र-निर्माता था। उसने राष्ट्र की एकता और संगठन के लिए निरन्तर प्रयत्न किया। उसने सम्पूर्ण राष्ट्र में एक ही राष्ट्रभाषा का प्रयोग किया। अशोक के अभिलेख पालि भाषा में मिलते हैं जो उस युग की जनसाधारण की भाषा थी। साम्राज्य के अधिकांश भाग में ब्राह्मी लिपि में लिखे गए अभिलेख ही प्राप्त होते है। इस प्रकार भाषा एवं लिपि की एकता द्वारा अशोक ने राजनीतिक एकता को जीवन्त रूप प्रदान किया।

(v) **प्रजा-वत्सल सम्राट–** अशोक अपनी प्रजा को अपनी सन्तान के समान समझता था। अशोक ने कलिंग के शिलालेखों में लिखवाया था, ''सभी मनुष्य मेरे पुत्र हैं और जिस प्रकार मैं अपने पुत्रों का हित और सुख चाहता हूँ उसी प्रकार मैं अपनी प्रजा के लिए ऐहिक और लौकिक हित एवं सुख की कामना करता हूँ।''

(vi) **धार्मिक सहिष्णु सम्राट–** बौद्ध धर्म का संरक्षक होते हुए भी अशोक ने अपने व्यक्तिगत विचार कभी भी जनता पर थोपने का प्रयास नहीं किया। उसका धार्मिक दृष्टिकोण उदार था और वह सभी धर्मों का समान रूप से आदर करता था। उसके 12 वें शिलालेख में कहा गया है– ''देवताओं के प्रियदर्शी राजा सभी धर्मों के प्रति आदर का भाव रखते हैं।'' अशोक की धार्मिक सहिष्णुता की प्रशंसा करते हुए **डॉ० हेमचन्द्र राय चौधरी** ने लिखा है– ''अशोक ने ऐसे युग में धार्मिक सहिष्णुता तथा मेलजोल का उपदेश दिया जबकि धार्मिक कट्टरता पर चरमोत्कर्ष पर थी।''

वास्तव में विश्व के इतिहास में सम्राट अशोक के उपदेशों ने लोगों को सभ्य बनाने में सबसे अधिक प्रभाव डाला, क्योंकि इनका प्रवेश ऐसे प्रदेशों में हुआ था, जिनका अधिकांश भाग असभ्य और अन्धविश्वासी था और इन असभ्य लोगों में बौद्ध धर्म का सौम्यतापूर्वक प्रचार हुआ।

(vii) **एक महान् आदर्शवादी–** अशोक का नाम इतिहास में स्वर्णाक्षरों में अंकित होने का प्रमुख कारण उसके महान् आदर्श थे। उसके जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में आदर्शवाद को अपनाकर उसे व्यावहारिक स्वरूप प्रदान किया। राजनीतिक क्षेत्र में उसने विजेता और कुशल शासक होने के साथ धार्मिक क्षेत्र में उदार और सहिष्णु तथा सामाजिक क्षेत्र में मानव कल्याण के लिए अनेक कार्य करते हुए 'वसुधैव कुटुम्बकम्' के सिद्धान्त का प्रचार किया। विश्व के किसी अन्य सम्राट में तथाकथित विशेषताएँ मिलनी दुर्लभ है। इसलिए अशोक को विश्व का महान् आदर्शवादी सम्राट कहना न्यायसंगत है।

(viii) **अशोक के शासन सुधार–** अशोक ने अपने पितामह चन्द्रगुप्त मौर्य की कठोर शासन व्यवस्था में कुछ सुधार किए थे। उसने कठोर शासन व्यवस्था को नरम और सरल बनाने का प्रयास किया। चन्द्रगुप्त के कठोर दण्ड विधान को सरल कर दिया और जनता का आध्यात्मिक स्तर ऊँचा उठाने के लिए अनेक धर्माधिकारियों की नियुक्ति की।

(ix) **कला का उन्नायक–** अशोक के शासनकाल में वास्तुकला की विशेष उन्नति हुई। उसने धर्म प्रचार का साधन कला की दृष्टि से वरन् ऐतिहासिक दृष्टिकोण से भी उसके अभिलेखों का बड़ा महत्त्व है। इस सम्बन्ध में **डॉ० रमाशंकर त्रिपाठी** ने लिखा है, ''अशोक के अभिलेखों एक अनूठे लेख संग्रह हैं। उनसे आन्तरिक भावनाओं और आदर्शों का पता लग जाता है और वे महान् सम्राट के महान् शब्दों को शताब्दियों से वहन करते आए हैं।''

(x) **एक महान् जनसेवक–** अशोक ने मानव कल्याण के लिए अनेक महान् कार्य किए। उसने ने केवल मनुष्यों के लिए, वरन् पशुओं तक के लिए औषधालय खुलवाए थे। उसने लोगों के आवागमन के लिए अनेक सड़क बनवाई। इन पर छायादार वृक्ष लगवाए और यात्रियों की सुविधा के लिए स्थान-स्थान पर कुएँ तथा धर्मशालाएँ बनवाई थी। उसने न्याय तथा दान के क्षेत्र में धर्म महामात्यों की नियुक्ति की। उसने पशु-हत्या और मदिरापन पर प्रतिबन्ध लगाकर प्रजा का नैतिक स्तर उठाने का प्रयास किया था। उसने जनकल्याण के लिए वे सभी कार्य किए, जिनसे जनता सुखमय जीवन व्यतीत कर सके।

प्रजवत्सल कार्यों तथा आदर्शों के कारण अशोक की तुलना विश्व के महान् विभूतियों से की जाती है, किन्तु कोई भी सम्राट उसका समकक्ष होने का अधिकारी नहीं है। **डॉ० हेमचन्द्र राय चौधरी** ने लिखा है– ''अशोक को यदि संसार के महान् सम्राटों का सिरमौर कहा जाए तो अत्युक्ति न होगी। उसकी धार्मिक उदारता तथा सहिष्णुता, पवित्र सद्भावना, कर्त्तव्यपरायणता और प्रजावत्सलता आदि आदर्शों ने इतिहास में इसके नाम को सदैव के लिए अमर कर दिया है। उसकी तुलना संसार के किसी भी सम्राट से नहीं की जा सकती है।''

5. अशोक के 'धम्म' की व्याख्या कीजिए।

उ०– अशोक का 'धम्म'– अशोक के अभिलेखों में 'धम्म' शब्द का अनेक स्थानों पर उल्लेख मिलता है। इस 'धम्म' के अन्तर्गत अशोक ने अनेक विषयों, नीतियों, साधनों तथा उपदेशों को वर्णित करते हुए अनेकानेक आदेश तथा अनुग्रह किए हैं। उसके 'धम्म' का स्वरूप निम्नलिखित रूप में प्रकट होता है–

'धम्म' का अर्थ– अशोक के 'धम्म' के सम्बन्ध में तीन मत प्रचलित हैं–

'धम्म' का अर्थ राजधर्म है– कुछ विद्वानों का मत है कि अशोक ने जिस धर्म का प्रतिपादन किया, उसके द्वारा उसने अपने साम्राज्य में व्यावहारिक तथा मानवीय धार्मिक सिद्धान्तों के पालन पर बल दिया था। 'धम्म' द्वारा उसने अपने राज्य को एक ऐसी व्यवस्था प्रदान की, जिसके पालन द्वारा समस्त प्रजा अपना धार्मिक हितसाधन कर सके। इतना ही नहीं, अशोक ने अपने द्वारा प्रतिपादित धर्म को राजकीय संरक्षण प्रदान किया था।

अशोक के 'धम्म' के सिद्धान्त– अशोक के 'धम्म' के सिद्धान्तों का वर्णन उसके अग्रलिखित अभिलेखों में मिलता है–

(i) द्वितीय स्तम्भ लेख – इस अभिलेख में अशोक प्रश्न करता है कि **'कि यंचु धम्मे?'** अर्थात् **'धम्म क्या है?'** और वह स्वयं उत्तर देता है— ''आपासिनने बहुकथनेन दयादाने सचे सोचिए।'' अर्थात् 'पापकर्म से निवृत्ति, विश्व-कल्याण, दयादान, सत्य एवं कर्मशुद्धि ही धम्म है।''

(ii) द्वितीय शिला अभिलेख– अशोक के इस अभिलेख में कहा गया है कि माता-पिता की आज्ञा का पालन करना चाहिए। इसी तरह जीवमात्र का भी सम्मान करना चाहिए, सत्य बोलना चाहिए। ये दया धर्म के लक्षण हैं। यह धर्म का सनातन रूप है।

(iii) सातवाँ अभिलेख– इसमें कहा गया है कि ''मन, कर्म, वचन तथा इन्द्रियों पर नियन्त्रण रखा जाए।''

(iv) नवाँ अभिलेख– इस अभिलेख में अशोक कहता है कि ''लोग अनेक शुभ कार्य करते हैं; यथा— पुत्र-पुत्रियों के विवाह, पुत्र-जन्म आदि— शुभ कर्म आवश्यक हैं, परन्तु इस कोटि के शुभ कर्म फलदायक नहीं होते। जो धम्मरूपी शुभ कार्य हैं, वे निश्चित रूप से फलदायक है। इस 'धम्म में निम्नलिखित बातें हैं —
गुरुजनों के प्रति आदर, प्राणियों के प्रति अहिंसा, दान तथा मजदूरी पाने वाले सेवकों के प्रति उचित व्यवहार तथा भ्रमणों एवं ब्राह्मणों को दान।'' ये और इसी प्रकार के अन्य कर्म— धम्म कर्म कहलाते हैं।

(v) ग्यारहवाँ अभिलेख– इस अभिलेख में 'धम्म' के निम्नलिखित तत्त्वों का उल्लेख है; यथा— ''दास, भृत्यों तथा वेतनभोगी सेवकों के प्रति उचित व्यवहार, माता-पिता की सेवा, मित्रों, परिचितों, ब्राह्मणों तथा संन्यासियों के प्रति उदारता, प्राणियों के प्रति संयमपूर्ण व्यवहार तथा पशुबलि से विरक्ति।''

(vi) बारहवाँ अभिलेख– इस अभिलेख में कहा गया है कि ''सभी सम्प्रदायों के व्यक्ति उसकी श्रद्‌ा के पात्र हैं। चाहे वे श्रमण हों यहा गृहस्थ— सभी उसके दान एवं श्रद्धा के पात्र हैं— सभी धर्मों के सार की वृद्धि हो, यही मेरी कामना है।''

(vii) तेरहवाँ शिलोलख– इस अभिलेख में कहा गया है कि ''सर्व भूतानां भक्षति, च संयम च।'' यही 'धम्म' का सार या निचोड़ है।

अशोक के धम्म के तत्त्व– अशोक के समस्त अभिलेखों में 'धम्म' के जिन सिद्धान्तों का वर्णन किया गया है, उनके तीन तत्त्वरूप हैं; यथा—

(i) व्यावहारिक तत्त्व– (क) माता-पिता, गुरुजनों तथा वृद्धों की सेवा करना।
(ख) सत्य, संयम, कृतज्ञता, भक्ति, दया, दानयुक्त आचरण का पालन करना।
(ग) मन एवं कर्म को शुद्ध रखना।
(घ) विभिन्न सम्प्रदायों के प्रति उदार भाव तथा ब्राह्मणों, श्रमणों, सम्बन्धियों, मित्रों, परिचितों आदि के प्रति दया, दान तथा सद्‌व्यवहार करना।
(ङ) अल्प व्यय तथा अल्प संग्रह करना।
(च) सेवकों, वेतनभोगियों, श्रमिकों के प्रति सद्‌व्यवहार करना।
(छ) समस्त प्राणिमात्र के प्रति अहिंसा का पालन करना।

(ii) निषेधात्मक तत्त्व– (क) मान— घमण्ड नहीं करना चाहिए।
(ख) इस्या— ईर्ष्या नहीं करनी चाहिए।
(ग) निठुलिप— निष्ठुरता से बचना चाहिए।
(घ) चण्डिय— उग्र व्यवहार नहीं करना चाहिए।
(ङ) क्रोध— क्रोध नहीं करना चाहिए।

(iii) आसिनव (पाप)– अशोक ने समस्त निषेधात्मक तत्त्वों को आसिनव की संज्ञा दी है। तीसरे स्तम्भ लेख में अशोक ने आसिनव का वर्णन करते हुए कहा है— ''मनुष्य अपने सत्कर्मों को ही देखता है और उनको देखकर सोचता है कि 'यह सत्कर्म मैंने किया है परन्तु वह यह नहीं सोचता कि यह आसिनव (पाप) मैंने किया है। यह पता लगाना भी कठिन।'' उसके 'धम्म' की मान्यता है कि जो व्यक्ति 'आसिनव' से मुक्त रहता है, वह 'निषेधों' से मुक्ति पाकर अपने चित्त को शुद्ध कर लेता है।

अशोक के 'धम्म' की विशेषताएँ– अशोक के धम्म की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं—

(i) आदर्श उद्देश्य– अशोक का धम्म सभी धर्मों के सर्वश्रेष्ठ गुणों का सार है। यह चिरकालिक, अक्षुण्ण तथा चिरस्थायी धर्म है। इसका आदर्श उद्देश्य सामाजिक जीवन में धार्मिक सहिष्णुता को प्रोत्साहन देना है।

(ii) वैयक्तिक, पारिवारिक, सामाजिक तथा राजनीतिक जीवन का समन्वय – अशोक के धम्म की दूसरी आश्चर्यजनक विशेषता यह है कि उसका धम्म वैयक्तिक, पारिवारिक सामाजिक तथा राजनीतिक जीवन के बीच समन्वय की स्थापना करता है। अशोक की मान्यता थी कि धर्म का रूप सर्वव्यापी है तथा उसका आरम्भ तो व्यक्ति के व्यक्तिगत जीवन से होता है, परन्तु गौण रूप से यह सम्पूर्ण मानव सभ्यता एवं संस्कृति को प्रभावित करता है। अत: मानव जीवन के हित की रक्षा करने वाली संस्थाओं के उद्देश्य तभी पूर्ण हो सकतें हैं, जबकि धर्म द्वारा उनके बीच समन्वय स्थापित किया जाए। अशोक ने अपने धम्म द्वारा इस समन्वय को व्याहारिक रूप दिया।

(iii) **सार्वभौमिकता–** अशोक का धम्म साम्प्रदायिकता तथा रूढ़िवादिता से सर्वथा मुक्त है। इसमें धर्मभेद तथा पक्षपात के लिए कोई स्थान नहीं है। अशोक का धम्म समस्त मानव जाति के लिए है। वास्तव में अशोक के धम्म में सम्पूर्ण विश्व तथा मानवता के लिए एक युग-प्रवर्तक सन्देश है।

(iv) **सद्व्यवहार–** अशोक के धम्म की एक प्रमुख विशेषता यह है कि यह माता-पिता, गुरुजनों, वृद्धों, मित्रों के सम्बन्धियों आदि के प्रति श्रद्धा, आदर तथा स्नेह की प्रस्तावना द्वारा समाज में सद्व्यवहार की स्थापना करता है।

(v) **अहिंसा–** अशोक के **प्रथम शिलालेख** में कहा गया है अशोक अहिंसा का पोषक था। कलिंग युद्ध के रक्तपात ने उसके हृदय में दूरगामी परिवर्तन कर दिया था और केवल मनुष्य ही नहीं, अपितु समस्त प्राणिजगत् उसकी दया, प्रेम एवं श्रद्धाभक्ति के पात्र हो गए। द्वितीय स्तम्भ लेख में अशोक ने स्वयं कहा है– ''केवल पृथ्वी ही नहीं, अपितु जल और आकाश में विचरण करने वाले प्राणियों के प्रति भी हिंसा न की जाए– मैंने द्विपद (दो पैर वाले) तथा चतुष्पद (चार पैर वाले) पशु-पक्षियों एवं जलचरों के प्रति यथेष्ट तथा अनेक प्रकार के उदारतापूर्ण अनुग्रह किए हैं।''

(vi) **धार्मिक सहिष्णुता –** बारहवें शिलालेख में अशोक ने अपनी धार्मिक सहिष्णुता का परिचय देते हुए कहा है– ''सभी सम्प्रदायों के व्यक्ति उसकी श्रद्धा के पात्र हैं। चाहे वे श्रमण हों अथवा गृहस्थ; सभी उसके दान और श्रद्धा के पात्र है।'' इस प्रकार धार्मिक सहिष्णुता उसके धम्म की एक प्रमुख विशेषता है।

अशोक के धम्म की विशेषताओं का विवेचन करने के बाद हम यह कह सकते हैं कि उसका धम्म हिंसा, पाप, पराभव, अमानुषिकता, ईर्ष्या, द्वेष आदि को समूल नष्ट करके अहिंसा, पुण्य, प्रेम, श्रद्धा, सत्य एवं स्वतन्त्रता की स्थापना करता है।

6. अशोक के धम्म के विशिष्ट तत्वों का निरूपण कीजिए। उसने उसके प्रचार के लिए क्या उपाय किए?

उ०– अशोक के धम्म के विशिष्ट तत्वों का निरूपण– इसके लिए विस्तृत उत्तरीय प्रश्न संख्या– 5 के उत्तर का अवलोकन करें।

अशोक द्वारा बौद्ध धर्म या धम्म के प्रचार हेतु किए गए कार्य– बौद्ध-धर्मावलम्बी होने के बाद अशोक ने बौद्ध धर्म का प्रचार ही नहीं किया, वरन् अन्य धर्मों के श्रेष्ठतम गुणों को भी बौद्ध धर्म में समाहित कर वह अपनी प्रजा को उनका अनुसरण करने का उपदेश देता रहा। उसने निम्नलिखित साधनों के माध्यम से बौद्ध धर्म को विश्व में लोकप्रिय बनाया–

(i) **स्वयं बौद्ध धर्म स्वीकार करना–** कलिंग विजय के पश्चात् उसने स्वयं बौद्ध धर्म अंगीकार कर लिया। उसने युद्ध, शिकार, मांसभक्षण आदि सभी का त्याग कर दिया, जिससे जनता के हृदय पर उसके चरित्र एवं आचरण का प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ा तथा लोग स्वेच्छा से उसका अनुकरण करने लगे।

(ii) **राजकीय संरक्षण–** अनेक विद्वानों का विचार है कि अशोक ने बौद्ध धर्म को अपना राजधर्म भी घोषित किया था। इस धर्म को पूर्ण राजकीय संरक्षण प्रदान करने के उद्देश्य से अशोक ने अपने राज्य में एक नवीन विभाग भी स्थापित किया। इस विभाग का प्रधान अधिकारी 'धर्म महामात्य' (धर्म महामात्र) कहलाता था। इसका प्रमुख कार्य जनता में धर्म के सिद्धान्तों का प्रचार कर लोगों को चरित्रवान् बनाना था।

(iii) **बौद्ध धर्म को प्रोत्साहन देना–** अशोक बौद्ध धर्म को राजकीय धर्म बनाने हेतु स्वयं भिक्षुओं की भाँति रहने लगा तथा लोगों को इस धर्म के श्रेष्ठ गुणों के विषय में जानकारी व उपेदश देने लगा। इससे लोग बहुत अधिक प्रभावित हुए और बौद्ध धर्म की उन्नति में सहयोग देने लगे।

(iv) **धर्म-यात्राएँ–** अशोक ने अपनी आमोद-प्रमोद के उद्देश्य से की जाने वाली यात्राएँ समाप्त कर दीं। इसके स्थान पर वह प्रति पाँच वर्ष बाद धर्म-यात्रा करने लगा। इतना ही नहीं, वह विभिन्न स्थानों पर जाकर धार्मिक उपदेश भी देने लगा।

(v) **बाह्याडम्बरों को समाप्त करना–** अशोक ने व्यक्तिगत आचरण पर विशेष बल दिया और वह व्यक्तिगत धर्म-आडम्बरों का खण्डन करने लगा। उसने हिन्दुओं में प्रचलित विवाह, जन्म एवं मृत्यु आदि के अवसर पर धर्म के नाम पर किए जाने वाले विभिन्न पाखण्डों को समाप्त करवा दिया। इससे व्यक्ति बौद्ध धर्म कें यथार्थवादी ज्ञान की ओर आकर्षित हुए और इनमें बौद्ध धर्म के प्रति सहज आकर्षण उत्पन्न होने लगा।

(vi) **शिलालेखों और मठों का निर्माण–** सम्राट अशोक ने बौद्ध धर्म के प्रचार हेतु धर्म के विभिन्न उपदेशों और सिद्धान्तों को अभिलेखों एवं शिलालेखों पर सामान्य जन-भाषा में लिखवाकर उन्हें स्थान-स्थान पर लगवाया, जिससे कि सभी इन्हें पढ़ सकें और इनके अनुकूल आचरण कर सकें। साथ ही उसने अनेक मठों का निर्माण भी करवाया, ताकि अधिकाधिक लोग बौद्ध धर्म ग्रहण करने के उपरान्त बौद्ध भिक्षु बनकर वहाँ रहें और बौद्ध धर्म के प्रचार का कार्य करें।

(vii) **धार्मिक विषयों पर आधारित प्रदर्शनी का आयोजन–** अशोक ने जनता को ऐसे उपायों के माध्यम से धर्म के प्रति आकर्षित किया जिनसे स्वेच्छा से बौद्ध धर्म के अनुयायी बनें। उसने जनता के समक्ष साक्षात् स्वर्ग के दृश्यों को नाटकों द्वारा प्रदर्शित करने की व्यवस्था करवाई। अशोक से पूर्व मनोरंजन हेतु पशुओं की लड़ाईयाँ दिखाई जाती थीं, लेकिन अशोक ने इनके स्थान पर शिक्षाप्रद धार्मिक मनोरंजन के प्रदर्शनी का प्रबन्ध किया।

(viii) **दान-व्यवस्था–** अशोक अपने राजकोष का धन दीन-दु:खियों, असहाय लोगों की सेवा और धार्मिक संस्थाओं को अनुदान देने के रूप में व्यय किया करता था। अशोक ने बौद्ध संघों को भी विशेष दान दिए थे। इससे बौद्ध धर्म के प्रचार तथा प्रसार में पर्याप्त सहायता मिली थी।

(ix) **तृतीय बौद्ध संगीति का आयोजन–** 'सिंहली-अनुश्रुति' के अनुसार अशोक ने पाटलिपुत्र में अपने राज्याभिषेक के 18 वें वर्ष में एक बौद्ध सम्मेलन आयोजित किया था। इसमें विभिन्न देशों से एक हजार के लगभग बौद्ध भिक्षु आए थे। इस सम्मेलन के आयोजन का उद्देश्य बौद्ध धर्म में उत्पन्न दोषों एवं मतभेदों को समाप्त करना था।

(x) **विदेशों में प्रचार हेतु धर्माचार्यों को भेजना–** अशोक ने बौद्ध धर्म का प्रचार न केवल भारत की सीमा के अन्दर ही, वरन् सुदूर देशों में भी किया। उसने इस धर्म के प्रचार हेतु विभिन्न देशों में अनेक बौद्ध भिक्षु एवं भिक्षुणियों को भेजा। यही नहीं, उसने अपने पुत्र महेन्द्र और पुत्री संघमित्रा को भी इसी उद्देश्य से नेपाल एवं श्रीलंका भेजा था।

(xi) **पशु-वध निषेध–** अशोक ने अपने राज्य में पशु-वध निषिद्ध घोषित करवा दिया था और लोगों को जीव-जन्तुओं पर दयाभाव रखने का उपदेश दिया। अशोक ने यज्ञों में भी पशु-बलि निषिद्ध घोषित कर दी थी। इस प्रकार, अहिंसा का स्वयं पालन कर उसने अपनी प्रजा को भी ऐसा करने के लिए बाध्य कर दिया।

(xii) **पालि भाषा का प्रयोग–** बुद्ध ने अपने उपदेशों को जनसाधारण द्वारा प्रयुक्त की जाने वाली पालि भाषा में दिया था, जिससे जनता इन्हें सुगमता से ग्रहण कर सकी। इसीलिए अशोक ने बौद्ध धर्म का प्रचार करने और अपने उद्देश्यों से जनसाधारण को अवगत कराने के लिए जनसाधारण की इसी पालि भाषा का ही प्रयोग किया गया।

उपर्युक्त विवरण के आधार पर हम कह सकते हैं कि अशोक ने बौद्ध धर्म का प्रचार तन, मन एवं धन से किया। साथ-ही जनता का अपने उपदेशों द्वारा नैतिक उत्थान कर मानव मात्र का कल्याण किया अत: इस दृष्टि से यह कहना अतिशयोक्तिपूर्ण नहीं है कि अशोक के जीवन का एकमात्र उद्देश्य बौद्ध धर्म का उत्थान रह गया था।

7. मौर्यों की शासन-प्रणाली का वर्णन कीजिए।' या 'चन्द्रगुप्त मौर्य के शासन-प्रबन्ध का वर्णन कीजिए।

उ०– चन्द्रगुप्त मौर्य की शासन-प्रणाली– चन्द्रगुप्त मौर्य को भारतीय इतिहास में एक विशाल साम्राज्य का संस्थापक माना जाता है। उसने इस विशाल साम्राज्य की स्थापना के साथ-साथ अपने विस्तृत साम्राज्य के लिए एक सुदृढ़ शासन-व्यवस्था का गठन भी किया मेगस्थनीज की 'इण्डिका' और कौटिल्य का 'अर्थशास्त्र' चन्द्रगुप्त मौर्य के शासन-प्रबन्ध की विस्तृत जानकारी प्राप्त करने के महत्त्वपूर्ण स्रोत हैं।

(i) केन्द्रीय शासन–

(क) सम्राट– शासन का प्रधान सम्राट होता था। यद्यपि शासन की समस्त शक्तियाँ उसके हाथों में ही केन्द्रित थीं, किन्तु वह स्वेच्छाचारी नहीं हो सकता था। विधान, मन्त्रिपरिषद् तथा परम्पराओं के आधार पर ही वह शासन करता था। साम्राज्य के समस्त उच्च कर्मचारियों तथा मन्त्रियों की नियुक्ति वही करता था। सेना, न्याय तथा कूटनीति सम्बन्धी समस्त कार्यों में सम्राट का निर्णय अन्तिम समझा जाता था। विदेशो में राजदूत भेजना एवं विदेशी राजदूतों से भेंट करना सम्राट का कार्य होता था। लेकिन असीमित अधिकार होते हुए भी शासक जनता की भौतिक, नैतिक एवं आध्यात्मिक उन्नति का पूरा ध्यान रखता था।

(ख) मन्त्रिपरिषद्– शासन-कार्यों को सुचारू रूप से चलाने तथा सम्राट को मन्त्रणा देने के लिए एक मन्त्रिपरिषद् गठित की गई थी। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में इन मन्त्रियों की संख्या 18 बताई गई है। ये मन्त्री अपने-अपने विभागों के अध्यक्ष होते थे तथा दैनिक प्रशासन से इनका कोई सम्बन्ध नहीं होता था। मन्त्रिपरिषद् का प्रत्येक सदस्य 22,000 पण वार्षिक का वेतन प्राप्त करता था।

(ग) विभागीय व्यवस्था– चन्द्रगुप्त ने शासन को सुचारु रूप से चलाने के लिए केन्द्रीय शासन को विभागों में विभक्त कर दिया था। इन विभागों को तीर्थ का नाम दिया गया। प्रत्येक विभाग का एक अध्यक्ष होता था, जिसे अमात्य कहा जाता था। शासन कुल 18 विभागों में बाँटा गया था। अत: 18 अमात्यों को नियुक्त करना होता था। इनकी नियुक्ति सम्राट द्वारा की जाती थी। इन अमात्यों के नियन्त्रण में उपविभागों के अध्यक्ष व अन्य कर्मचारीगण कार्य करते थे।

(घ) अर्थ-व्यवस्था– चन्द्रगुप्त के राज्य की आर्थिक स्थिति अत्यन्त सुदृढ़ थी। कृषि, राज्य की आय का मुख्य स्रोत थी परन्तु आय के अन्य साधन भी प्रचलित थे। उपज का 1/6 भाग कर के रूप में लिया जाता था। इसके अतिरिक्त बिक्री कर, जंगल कर, जुर्माना, खानों व चरागाहों से भी राज्य की आय होती थी।

(ङ) गुप्तचर-व्यवस्था– चन्द्रगुप्त ने अपने राज्य में गुप्तचरों का जाल बिछा रखा था। कौटिल्य के अनुसार, गुप्तचर राजा के नेत्र होते हैं। उस काल में स्त्रियाँ भी गुप्तचरों का कार्य किया करती थीं। गुप्तचर दो वर्गों में कार्य करते थे– (अ) संस्थिल (ब) संथारण। संस्थिल वर्ग के गुप्तचर एक स्थान पर रहते थे व संथारण वर्ग के गुप्तचर भ्रमण किया करते थे। ये गुप्तचर सरकारी कर्मचारियों के कार्यों एवं जनता के विचारों को राजा तक पहुँचाते थे।

(च) न्याय-व्यवस्था– चन्द्रगुप्त मौर्य ने अपने राज्य की न्याय व्यवस्था पर समुचित ध्यान दिया। चन्द्रगुप्त को इस तथ्य का ज्ञान था कि किसी राज्य का स्थायित्व व उन्नति उचित न्याय व्यवस्था पर आधारित होता है। उस काल में नगरों व ग्रामों के लिए अलग-अलग न्यायालय थे। न्यायालय भी दीवानी व फौजदारी में विभक्त थे। दण्ड व्यवस्था बहुत कठोर थी। आर्थिक दण्ड, अंग-भंग व प्राणदण्ड भी दिए जाते थे। सम्राट को सर्वोच्च न्यायाधीश माना जाता था तथा समाज में अपराध केवल नाम मात्र के ही थे।

(छ) सैनिक व्यवस्था– किसी साम्राज्य की सुरक्षा सेना पर ही आधारित होती है। चन्द्रगुप्त ने भी अपने विशाल साम्राज्य के लिए सुसंगठित सैन्य शक्ति का गठन किया था। सैनिकों को केन्द्र की ओर से नियमित वेतन मिलता था। **मेगस्थनीज** के अनुसार चन्द्रगुप्त की सेना में 6 लाख पैदल सैनिक, 30 हजार घुड़सवार, 9 हजार हाथी व 8 हजार रथ थे। सेना का प्रबन्ध छः समितियों में विभाजित था, प्रत्येक समिति में 9 सदस्य होते थे। ये समितियाँ— जल सेना, थल सेना, गज सेना, रथ सेना व घुड़सवार सेना की देखभाल करती थीं।

(ii) प्रान्तीय शासन– सम्भवतया शासन की सुविधा के लिए समस्त राज्य छः प्रान्तों में विभक्त था। यह विभाजन निम्न प्रकार से था—

(क) मगध एवं उसका निकटवर्ती प्रदेश, जिसकी राजधानी पाटलिपुत्र थी। सम्राट स्वयं यहाँ का शासन चलाता था।

(ख) उत्तरापथ, इसकी राजधानी तक्षशिला थी।

(ग) सेल्यूकस से प्राप्त प्रदेश, इसकी राजधानी कपिला थी।

(घ) सौराष्ट्र, इसकी राजधानी गिरनार थी।

(ङ) दक्षिणापथ (कर्नाटक) इसकी राजधानी स्वर्णगिरि थी।

(च) अवन्ति (मालवा) इसकी राजधानी उज्जयिनी थी।

(iii) नगर व्यवस्था– मेगस्थनीज के अनुसार, राजधानी पाटलिपुत्र बहुत बड़ा नगर था, जिसकी व्यवस्था जनतन्त्रीय प्रणाली से होती थी। सोन व गंगा के तट पर बसा नगर पाटलिपुत्र लगभग 16 किमी लम्बा एवं 3 किमी चौड़ा था। नगर की सुरक्षा के लिए चारों ओर 600 फुट चौड़ी तथा 60 फुट गहरी खाई थी, जो शहर की गन्दगी बहाने के भी काम आती थी। नगर के चारों ओर लकड़ी की प्राचीर थी, जिसमें 570 मीनारें एवं 64 द्वार बने हुए थे। पटना के निकट कम्रहार गाँव में प्राचीन पाटलिपुत्र के अवशेष प्राप्त हुए हैं। सुन्दरता तथा रमणीयता में चन्दगुप्त के राजभवन ईरान के राजप्रासादों से भी अधिक सुन्दर थे। पाटलिपुत्र की व्यवस्था के लिए निम्नलिखित छः समितियाँ कार्य करती थीं—

(क) वैदेशिक समिति– यह समिति विदेशी यात्रियों की गतिविधियों का पूरा ध्यान रखती थी। राज्य की ओर से ठहरने की व्यवस्था एवं इनकी सुरक्षा तथा चिकित्सा का प्रबन्ध भी यह समिति करती थी। मृत्यु होने पर राजकीय व्यय से अन्त्येष्टि की जाती थी और उसकी सम्पत्ति उनके उत्तराधिकारियों को लौटा दी जाती थीं।

(ख) वाणिज्य समिति– इस समिति का काम नाप-तौल की जाँच करना, वस्तुओं के भाव निश्चित करना तथा तौलन के बाटों का निरन्तर निरीक्षण करना था।

(ग) शिल्पकला समिति– यह समिति औद्योगिक वस्तुओं की शुद्धता, निरीक्षण, पारिश्रमिक, निर्माण तथा शिल्पियों एवं कलाकारों के हितों की रक्षा करती थी। शिल्पी को अपाहिज या बेकार करने वाले व्यक्ति को राज्य प्राणदण्ड देता था।

(घ) जनसंख्या समिति– यह समिति नगर में जन्म-मरण का लेखा-जोखा करती थी। इससे कर-निर्धारण में सुविधा रहती थी। यह कार्य आजकल की नगरपालिका भी करती है।

(ङ) कर समिति– वस्तुओं पर विक्रय कर यही समिति लेती थी। मूल्य पर दस प्रतिशत कर लिया जाता था। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में कर समिति के कार्यों का विशद वर्णन है। नगर का अधिकारी 'नागरिक' कहलाता था। 'गोप' और 'स्थानिक' उनकी सहायता करते थे। सार्वजनिक कार्यों के लिए सभी समितियाँ मिलकर काम करती थीं।

(च) औद्योगिक समिति– यह समिति कारखानों में तैयार माल की करना, उसकी बिक्री के लिए बाजार तैयार करना तथा नई-पुरानी वस्तुओं के अलग-अलग मूल्य-निर्धारण का काम करती थीं। मिलावट करने वाले को राज्य की ओर से प्राणदण्ड दिया जाता था।

(iv) ग्राम प्रशासन– ग्राम, शासन की सबसे छोटी इकाई थी। ग्रामों का शासन पंचायते थीं, जिनके सदस्यों का चुनाव गाँव के लोग करते थे। इन पंचायतों के प्रमुख 'ग्रामिक' की नियुक्ति राज्य द्वारा की जाती थी। इसको राज्य की ओर से वेतन भी दिया जाता था। ग्राम पंचायतों गाँव के विकास के लिए योजना बनाती थीं। गाँव में सिंचाई की व्यवस्था करना तथा यातायात प्रबन्ध करना इन्हीं का नाम था।

8. ''अशोक भारतीय इतिहास का महानतम् सम्राट था।'' विवेचना कीजिए। या ''सम्राट अशोक की विश्व के महान सम्राटों में गणना की जाती है।'' समीक्षा कीजिए।

उ०– उत्तर के लिए विस्तृत उत्तरीय प्रश्न संख्या— 4 के उत्तर का अवलोकन करें।

9. मौर्य वंश के पतन के कारणों की विवेचना कीजिए।

उ०– मौर्य साम्राज्य या मौर्य वंश के पतन के कारण– जिस मौर्य साम्राज्य की स्थापना महान चन्द्रगुप्त ने अपनी बुद्धि और अदम्य साहस ने की थी, दुर्भाग्य से वह सम्राट अशोक की मृत्यु के पश्चात् पतन के गर्त में डूबता चला गया। कुछ विद्वानों का यह मत है कि अशोक के समय में ही इसका पतन प्रारम्भ हो गया था। अनेक विद्वानों ने इस पतन का कारण अशोक की धार्मिक नीति को बताया है। उनका मानना है अशोक ने अधिकांश समय बौद्ध धर्म के प्रचार में लगा दिया तथा सेना संगठन और प्रशासन की ओर

अधिक ध्यान न दे सका। इसके परिणामस्वरूप मौर्य साम्राज्य का शीघ्र ही पतन होने लगा, किन्तु यह आरोप पूर्णत: सत्य नहीं है। इसका कारण यह है कि वह किसी एक धर्म का नहीं बल्कि सभी धर्मों का आदर करता था। इसीलिए ऐसा नहीं कहा जा सकता कि अशोक की धार्मिक नीति से असन्तुष्ट होकर उसकी प्रजा उससे रुष्ट हो गई होगी। फिर भी, कुछ सीमा तक मौर्य साम्राज्य के लिए अशोक को उत्तरदायी अवश्य स्वीकार किया जा सकता है, क्योंकि उसकी अहिंसावाद नीति के फलस्वरूप सैन्य-बल बहुत कमजोर हो गया। इसके अतिरिक्त भी कुछ अन्य कारण निम्नलिखित थे—

(i) **शासन की शिथिलता–** यातायात के साधनों के अभाव के कारण सुदूर प्रदेशों की शासन-व्यवस्था के संचालन में असुविधा उत्पन्न होने लगी थी, जिससे इन प्रान्तों की शासन-व्यवस्था में 'अमात्य' और अन्य शासनाधिकारी वहाँ के सर्वेसर्वा बन गए थे और साम्राज्य की जनता उनके निरंकुश व्यवहार से व्याकुल होने लगी थी। अत: जब उन्हें यह पता चला कि केन्द्रीय-व्यवस्था भी शिथिल पड़ रही है, तो अशोक की मृत्यु होते ही साम्राज्य में विनाशकारी विघटन प्रारम्भ हो गया था। अशोक की मृत्यु होते ही साम्राज्य विनाशकारी विघटन प्रारम्भ हो गया था। यह विघटन मौर्य साम्राज्य के पतन का एक प्रमुख कारण सिद्ध हुआ।

(ii) **जनता का शोषण–** केन्द्रीय शासन-व्यवस्था शिथिल पड़ने से सुदूर प्रदेशों के राज्य कर्मचारी प्रशासनिक कार्यों में एकपक्षीय निर्णय लेने लगे और जनता पर अनेक प्रकार के अत्याचार करने लगे। इन अत्याचारों के फलस्वरूप अशोक के पिता बिन्दुसार के समय में तक्षशिला की जनता ने प्रान्तीय मन्त्रियों के अत्याचारपूर्ण शासन के विरुद्ध विद्रोह कर दिया था। तक्षशिला की जनता मौर्य राजा बिन्दुसार के विरुद्ध हो गई थी। अशोक की मृत्यु के बाद तो प्रान्तीय प्रशासन और दूरस्थ प्रदेशों के प्रशासन में बहुत अधिक शिथिलता आ गई थी, जो मौर्य साम्राज्य के पतन का प्रमुख कारण बनी थी।

(iii) **अशोक की अहिंसात्मक नीति–** अशोक बौद्ध धर्म का समर्थक था। वह बौद्ध धर्म के अहिंसा सिद्धान्त में बहुत विश्वास करने लगा था। इसीलिए उसने सैन्य शक्ति की उन्नति के प्रति समुचित ध्यान नहीं दिया। इससे सेना का स्तर निरन्तर गिरता चला गया और सैनिकों में वह उत्साह व आत्मबल नहीं रह गया, जो चन्द्रगुप्त मौर्य के समय में था। शक्तिशाली एवं विशाल सेना के बल पर ही विशाल साम्राज्य का अस्तित्व स्थायी रह सकता है। अत: इसका परिणाम यह हुआ कि मौर्य वंश के शत्रुओं ने संगठित होकर, मौर्य साम्राज्य की नींव को खोखला करना प्रारम्भ कर दिया।

(iv) **दरबार के षड्यन्त्र–** बिन्दुसार की मृत्यु के पश्चात् युवराज अशोक और युवराज सुसीम के बीच भीषण युद्ध हुआ, जिससे सम्पूर्ण शासन-व्यवस्था असन्तुलित हो गई। अशोक की अनेक रानियाँ थीं, जिनके अनेक पुत्र थे। अशोक की मृत्यु के पश्चात् उनके मध्य राज्यसत्ता पर अधिकार हेतु पारस्परिक संघर्ष प्रारम्भ हो गए। कर्मचारी भी विभिन्न दलों में बँट गए। अत: ऐसी स्थिति में मौर्य साम्राज्य का पतन होना अवश्यम्भावी हो गया था।

(v) **अयोग्य उत्तराधिकारी–** अशोक की मृत्यु के पश्चात् अनेक उत्तराधिकारी राज्य सिंहासन पर आसीन हुए, लेकिन उनमें से कोई भी इतना योग्य न हुआ, जो इतने विशाल साम्राज्य की व्यवस्था कर सकता। अत: योग्य शासक के अभाव में मौर्य साम्राज्य का अन्त होना स्वाभाविक ही था।

(vi) **शासन का विकेन्द्रीकरण–** अशोक ने प्रान्तीय शासकों को व्यवस्था सम्बन्धी अनेक विशेष अधिकार प्रदान कर दिए थे, जिसके परिणामस्वरूप शासन-व्यवस्था के अन्तर्गत विकेन्द्रीकरण की भावना पनपनी शुरू हो गई थी। इसका परिणाम अशोक की मृत्यु के बाद सामने आया। अशोक की मृत्यु हो गई। अशोक की मृत्यु होते ही कश्मीर में 'जालौक' ने स्वयं को स्वतन्त्र शासक घोषित कर दिया और कन्नौज तक के प्रदेशों को अपने अधिकार कर लिया। अशोक के पौत्रों के काल में मौर्य साम्राज्य दो प्रमुख युवराजों दशरथ और सम्प्रति के मध्य विभक्त हो गया। इस प्रकार, शासन का विभाजन और विकेन्द्रीकरण मौर्य वंश के पतन का प्रमुख कारण बने थे।

(vii) **राजकोष की रिक्तता–** दिव्यावदान से पता चलता है कि अशोक बौद्ध संघों को अत्यधिक धन देता था। एक अनुश्रुति के अनुसार धन की कमी के कारण एक बार अशोक को राज्य छोड़ना पड़ा। 'अशोकावदान' के अनुसार अशोक जब कुक्कुटराम विहार को दान देना चाहता था, तो धनाभाव के कारण अमात्यों ने उसे दान देने से रोक दिया। जब अशोक के समय राजकोष की यह दशा थी, तो उसके बाद निश्चय ही राजकोष धन से खाली हो गया होगा। अत: राजकोष की रिक्तता भी मौर्य साम्राज्य के पतन का कारण बनी होगी।

(viii) **गुप्तचर विभाग की निष्क्रियता–** चन्द्रगुप्त मौर्य गुप्तचर विभाग द्वारा ही राज्य की समस्त आन्तरिक सूचनाएँ प्राप्त करता था और उनके अनुसार शासन-व्यवस्था का संचालन करता था। उनके द्वारा ही वह प्रान्तीय शासकों पर नियन्त्रण बताए रखता था। इससे राज्य के कर्मचारियों का जनता पर अंकुश रहता था और जनता को विद्रोह करने का अवसर ही प्राप्त नहीं होता था। किन्तु अशोक ने गुप्तचर विभाग पर समुचित ध्यान नहीं दिया, जिससे इस विभाग के लोग निष्क्रिय हो गए।

(ix) **विदेशी आक्रमण–** कुछ विद्वानों का मत है कि शक और कुषाणों के विदेशी आक्रमण मौर्य साम्राज्य के पतन का कारण थे। परन्तु वास्तविकता यह है कि विदेशी आक्रमण मौर्य साम्राज्य के पतन का कारण नहीं, परिणाम थे। अशोक की मृत्यु के 15 वर्ष पश्चात् 206 ई०पू० में यवन सम्राट एन्टीयोकस ने भारत के उत्तर-पश्चिमी भागों पर आक्रमण किया था।

(x) ब्राह्मण धर्म का पुनरुत्थान– मौर्य साम्राज्य के पतन में वास्तव में अशोक की धार्मिक नीति भी सहायक रही थी। उसने बौद्ध धर्म को अधिक और ब्राह्मण धर्म को कम प्रोत्साहन दिया। यद्यपि इससे ब्राह्मण क्रोधित हो उठे तथा उन्होंने पुष्यमित्र शुंग के षड्यन्त्र में सक्रिय रूप से भाग लेकर मौर्य साम्राज्य के पतन में सहयोग दिया। अंतत: हम कह सकते है कि ब्राह्मण धर्म का पुनरुत्थान भी मौर्य वंश के विनाश का कारण बना।

10. ''अशोक की धार्मिक नीति मौर्य साम्राज्य के पतन के लिए उत्तरदायी थी।'' इस कथन से आप कहाँ तक सहमत हैं?

उ०– उत्तर के लिए विस्तृत उत्तरीय प्रश्न संख्या– 9 के उत्तर का अवलोकन करें।

11. एक शासक व धर्म प्रचारक के रूप में अशोक का मूल्यांकन कीजिए।

उ०– अशोक का मूल्याकंन तथा इतिहास में स्थान– अशोक न केवल भारतीय इतिहास में वरन् विश्व इतिहास में गौरवपूर्ण न्याय रखता है। वह ऐसा महान शासक था। जिसने नागरिकों की भौतिक एवं नैतिक उन्नति के लिए हर सम्भव साधन जुटाये। **राधाकुमुद मुखर्जी** के अनुसार, ''सम्पूर्ण इतिहास में कोई भी राजा ऐसा नहीं हुआ। जिसकी तुलना अशोक से की जा सके। सम्पूर्ण राज्य में बौद्ध धर्म को फैलाने की दृष्टि से वह इजराइल के डेविड और सोलौमैन के समान था। राज्य विस्तार और शासन-प्रणाली के क्षेत्र में उसकी तुलना सोलौमैन से ही की जा सकती है। अन्त में खलीफा उमर और सम्राट अकबर भी उसकी श्रेणी में रखे जा सकते हैं।''

हेमचन्द्र राय चौधरी के मत में, ''अशोक इतिहास की महान् विभूतियों में से एक था। उसने प्रजा का पुत्रवत् पालन किया। गंगा घाटी के धर्म को उसने विश्व-धर्म बना दिया।'' **एच०जी० वैल्स** का कथन है, ''अशोक का नाम बड़े-बड़े और विभिन्न उपाधियों वाले सहस्रों शासकों में, जिसका वर्णन इतिहास में आता है, सितारे की तरह चमकता है। वोल्गा से जापान तक आज भी उसका सम्मान किया जाता है।''

वास्तव में अशोक एक महान् विजेता, कुशल शासक एवं प्रबन्धक था, परन्तु ये युग तो विश्व के अन्य शासकों में भी पाये जाते हैं। जनसेवा की भावना एवं उच्चकोटि की मानवता अशोक जैसे विरले सम्राटों में ही थी। सिकन्दर, चन्द्रगुप्त मौर्य, समुद्रगुप्त, अकबर, नेपोलियन जैसे सम्राटों ने केवल तलवार के बल पर ही प्रसिद्धि प्राप्त की थी। यह प्रसिद्धी ताकत से अर्जित की गयी थी। इन सम्राटों की ताकत समाप्त होने के साथ उनकी कीर्ति भी समाप्त हो गयी। लेकिन अशोक ने प्रेम, दया और परोपकार के द्वारा प्रसिद्धि प्राप्त की, जो आज भी विद्यमान है। उसने न केवल अपने नाम को वरन् भारत के नाम को भी विश्व में अमर कर दिया। **डी० आर० भण्डारकर** की दृष्टि में, ''अशोक के धर्म प्रचार में संसार को अतुलनीय लाभ हुआ। बौद्ध धर्म के सहारे केवल धर्म और दर्शन का ही प्रचार नहीं हुआ, वरन् भारतीय संस्कृतिक का प्रभाव दूसरे देशों की जनता पर पड़ा।''

इस तरह से अशोक विश्व इतिहास के रंगमंच पर अद्वितीय पात्र था, जिसने लोक-कल्याण को ही अपनी शासन-नीति का आधार बनाया। उसे लोक-कल्याणकारी राज्य का जन्मदाता कह सकते हैं। परन्तु खेद है कि उसके उत्तराधिकारी अयोग्य निकले।

12. ''इतिहास में वर्णित हजारों राजाओं के बीच अशोक का नाम दैदीप्यमान नक्षत्र की भाँति चमक रहा है।'' इस कथन का परीक्षण कीजिए।

उ०– उत्तर के लिए विस्तृत उत्तरीय प्रश्न संख्या– 4 के उत्तर का अवलोकन करें।

13. मौर्यों की केन्द्रीय व प्रान्तीय शासन पद्धतियों का वर्णन कीजिए।

उ०– उत्तर के लिए विस्तृत उत्तरीय प्रश्न संख्या– 7 के उत्तर का अवलोकन करें।

14. मौर्यों शासन लोकहितकारी शासन था'' इस कथन की व्याख्या कीजिए।

उ०– मौर्य शासन के लोक हितकारी कार्य– अशोक ने जनता की भलाई, सुख और शान्ति के लिए निम्नलिखित लोक हितकारी कार्य सम्पादित किए–

(i) राज्य की ओर से सड़कें, कुएँ तथा धर्मशालाएँ आदि बनवाई गईं। राज्य-भर में उद्योगों की स्थापना की गई और बहुल संख्या में वृक्षारोपण किया गया।

(ii) राज्य में विभिन्न स्थानों पर सरकारी दानशालाएँ खोली गईं, जिसमें 'मुख्य' नामक अधिकारी वितरण करता था।

(iii) मनुष्यों तथा पशुओं दोनों के लिए औषधालय स्थापित किए गए, जिनमें मुफ्त औषधि का प्रबन्ध किया गया।

(iv) जनता के स्वास्थय की रक्षा के लिए खाद्यान्न, तेल, झार, लवण, गन्ध औषधि आदि में मिलावट करना गम्भीर अपराध घोषित किया गया और इस अपराध के लिए कठोर दण्ड की व्यवस्था की गई।

(v) सड़कों पर कूड़ा फेंकना, कीचड़ तथा गन्दा पानी जमा करना भी अपराध घोषित कर दिया गया।

(vi) सार्वजनिक स्थानों पर पशु वध निषिद्ध कर दिया गया।

(vii) अकाल तथा महामारी के समय राजकीय सहायता की व्यवस्था की गई।

अशोक के प्रशासकीय सुधार तथा लोक कल्याण की भावना इस बात का प्रमाण है कि वह एक महान धम्म उद्घोषक ही नहीं, वरन् एक महान भौतिक शासक भी था। उसने धर्म, नैतिकता और शासन के बीच घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित किया। उसके अनुसार राजा का कर्त्तव्य जनता का भौतिक चिन्तन ही नहीं है, अपितु प्रजा के नैतिक तथा आध्यात्मिक उत्थान के लिए भी वह उत्तरदायी

है। इस प्रकार अशोक ने अपने प्रशासकीय सुधारों तथा लोक कल्याणकारी कार्यों द्वारा मौर्य साम्राज्य की स्मृति को भारतीय इतिहास में अमर बना दिया।

15. अशोक के प्रशासनिक सुधारों का उल्लेख कीजिए।

उ०– अशोक के प्रशासनिक सुधार– अशोक को उत्तराधिकार में न केवल एक विशाल साम्राज्य वरन् एक सुसंगठित शासन प्रणाली प्राप्त हुई थी। लेकिन अशोक ने अपना राजत्व नीति के अनुरूप चन्द्रगुप्त मौर्य की शासन प्रणाली में कुछ सुधार अवश्य किए। संक्षेप में, अशोक के प्रशासनिक सुधारों का वर्णन निम्नलिखित रूप में किया जा सकता है—

(i) नए राजकीय पदाधिकारियों की नियुक्ति – डॉ० हेमचन्द्र राय चौधरी के अनुसार अशोक ने अनेक नए राजकीय पदाधिकारियों की नियुक्ति की जिनमें प्रमुख इस प्रकार थे—

(क) धर्म महामात्र– धर्म महामात्रों का पद धर्म प्रचार के लिए निर्धारित किया गया था। इस पद पर विशिष्ट गुणों वाले प्रतिभाशाली तथा सम्यक् प्रवृत्ति वाले व्यक्तियों को नियुक्त किया जाता था। धर्म महामात्र सीधे सम्राट के प्रति उत्तरदायी होते थे तथा उनका कार्य धर्म प्रचार की व्यवस्था करना, सभी सम्प्रदायों के स्वार्थों की रक्षा करना, उन्हें आवश्यक संरक्षण प्रदान करना तथा राज्य के साधारण लोगों के कष्टों का निवारण करना था।

(ख) महामात्र– महामात्र का पद मन्त्रियों के समकक्ष था, परन्तु ये सीधे सम्राट के प्रति उत्तदायी न होकर अग्रमात्य के प्रति उत्तरदायी थे। प्रत्येक महामात्र के अन्तर्गत एक विभाग होता था तथा इस विभाग का एक विषय होता था। उदाहरण के लिए 'नगर व्यावहारिक महामात्र' नगर विभाग का अध्यक्ष होता था और 'अन्त महामात्र' सीमावर्ती प्रदेश के विभाग का अध्यक्ष होता था।

(ग) राजुक– राजुक का पद वर्तमान गर्वनर के अनुरूप था, परन्तु वह 'कुमार' के पद से नीचा था। राजुक शासकीय और न्यायिक अधिकारों के स्वामी थे और अपने कार्यों के लिए महामात्र के प्रति उत्तरदायी थे। इनका कार्य भूलेखों का निरीक्षण के अतिरिक्त जनपद के प्रशासनिक कार्यों का संचालन करना भी था।

(घ) पादेशिक– डॉ० वी० ए० स्मिथ के अनुसार 'प्रादेशिक' जिले का अधिकारी था। कुछ विद्वान उसे अर्थशास्त्र में वर्णित प्रदश्त्री नामक अधिकारी मानते हैं। ऐसा लगता है कि प्रादेशिक, प्रदेश का स्थानीय गवर्नर या स्थानीय सामन्त होता था। उसे अपने क्षेत्र में राजुक के समान ही अधिकार प्राप्त थे। कर संग्रह, अपराधों की रोकथाम तथा अध्यक्षों के कार्यों का निरीक्षण करना उसका प्रमुख कार्य था।

(ङ) युक्त– डॉ० राय चौधरी के अनुसार युक्त महामात्र के कार्यालय का पदाधिकारी था तथा उसका प्रमुख कार्य राजकीय आदेशों तथा आज्ञाओं का संकलन करना था। इसके अतिरिक्त जिले के राजकीय कोष की देखभाल तथा आय-व्यय का विवरण रखने का उत्तरदायित्व भी इसी अधिकारी पर था।

(च) अन्य कर्मचारी– अशोक ने 'पुलिस' नामक एक अधिकारी की नियुक्ति की थी। अर्थशास्त्र में इसका पदनाम 'पुरुष' या 'राजपुरुष' है। इसका प्रमुख कार्य गुप्तचरी करना तथा राजुकों पर नियन्त्रण रखना था।

'पतिवेदिका' नामक कर्मचारी राजा को विभिन्न प्रकार की सूचनाएँ तथा वृत्तान्त प्रेषित करता था। 'वचभूमिका' नामक कर्मचारी गौशाला की देखभाल करता था। 'लिपिकार' राजकीय लिपिक था, जिसका कार्य कार्य-विवरण का मसविदा तैयार करके अपने से उच्च अधिकारी के समक्ष उपस्थित करना था। 'आयुक्त' नामक कर्मचारी ग्राम का पदाधिकारी था।

सम्राट अशोक ने राजकीय कर्मचारियों के आचरण सम्बधी नियम भी बनाये थे। इनके अनुसार सभी कर्मचारियों का आदेश दिया गया था कि वे प्रत्येक समय तथा स्थान पर जनहित के कार्यों में संलग्न रहे। उच्च अधिकारियों के लिए उसका आदेश था कि पाँचवें वर्ष राज्य के निरीक्षण हेतु भ्रमण करें तथा महामात्र, प्रादेशिक राजुक तथा युक्त हर तीसरे या पाँचवें वर्ष अपने कार्यक्षेत्र का दौरा करके जनता के प्रार्थना-पत्रों तथा कष्टों की सुनवाई करें तथा उन्हें आवश्यक सहायता प्रदान करें। अशोक द्वारा निर्धारित भ्रमण प्रथा निश्चय ही एक मौलिक प्रशासकीय परिवर्तन था।

(ii) धर्म महामात्र– प्रान्तीय शासन के अन्तर्गत अशोक ने एक नए पद का सृजन किया। यह 'उपराज' का पद था। 'उपराज' का कार्य सम्राट के प्रशासकीय दायित्व को निभाना तथा प्रान्तीय स्थिति से सम्राट को अवगत करना था। अशोक का भाई 'तिष्य' 'उपराज' पर पर कार्यरत था। अशोक का साम्राज्य चार प्रान्तों में विभक्त था— तक्षशिला, उज्जैनी, तोशाली और स्वर्णागिरि। अशोक ने प्रान्तीय शासन में कोई विशेष मौलिक परिवर्तन नहीं किया।

इस प्रकार अशोक ने अपने प्रशासनिक सुधारों तथा लोक कल्याणकारी कार्यों द्वारा मौर्य साम्राज्य की स्मृति को भारतीय इतिहास में अमर बना दिया।

16. चन्द्रगुप्त मौर्य की विजयों और प्रशासनिक उपलब्धियों को उल्लेख कीजिए।

उ०– चन्द्रगुप्त मौर्य का विजय अभियान– इसके लिए विस्तृत उत्तरीय प्रश्न संख्या— 3 के उत्तर का अवलोकन करें।

चन्द्रगुप्त मौर्य की प्रशासनिक उपलब्धियाँ– इसके लिए विस्तृत उत्तरीय प्रश्न संख्या— 1 के उत्तर का अवलोकन करें।

17. अशोक महान के जीवन पर किस विजय का सर्वाधिक प्रभाव पड़ा और क्यों?

उ० – कलिंग विजय और उसका प्रभाव (261 ई० पू०)– अपने शासनकाल के प्रारम्भिक वर्षों में अशोक ने अपने पितामह

चन्द्रगुप्त मौर्य द्वारा प्रारम्भ की गयी साम्राज्यवादी एवं दिग्विजय नीति का ही अनुसरण किया। इसी क्रम में उसके शासन की जिस पहली घटना का अभिलेखों में उल्लेख है, वह कलिंग युद्ध है। युद्ध उसके अभिषेक के आठ वर्ष बाद अर्थात् नौवें वर्ष में हुआ था। अशोक के तेरहवें शिलालेख में कलिंग युद्ध का वर्णन है। कलिंग युद्ध अशोक के जीवन की एक क्रान्तिकारी घटना सिद्ध हुई। कलिंग राज्य नन्दकाल में मगध साम्राज्य का ही अंग था, पर ऐसा प्रतीत होता है कि नन्द वंश के पतन के बाद कलिंग स्वतन्त्र हो गया था।

कलिंग युद्ध अशोक के जीवन का पहला और अन्तिम युद्ध बताया जाता है। अशोक के तेरहवें शिलालेख में इस युद्ध की भीषणता और उससे उत्पन्न कष्टों का वर्णन किया गया है तथा यह भी बताया गया है कि उसका अशोक के मन पर क्या प्रभाव पड़ा। इस शिलालेख के अनुसार, इस युद्ध में एक लाख लोग मारे गये, डेढ़ लाख लोग बन्दी बना लिये गये और कई लाख बर्बाद हो गये थे। ये संख्याएँ अतिशयोक्तिपूर्ण हो सकती है, लेकिन एक बात साफ है कि इस युद्ध का कलिंग के लोगों पर विनाशकारी प्रभाव पड़ा। युद्ध की विभीषिका ने अशोक के मन को बुरी तरह झकझोर दिया और उसके व्यक्तित्व को पूर्ण रूप से बदल डाला। युद्ध की नृशंसता को देखकर अशोक के दिल में बहुत पश्चात्ताप हुआ। फलस्वरूप उसने आक्रमण की नीति को छोड़ दिया और लोगों के दिल जीतने का प्रयास किया। फिर तो युद्ध की घोषणा करने वाले नगाड़ों की बजाय धम्मघोष करने वाले नगाड़ों बजाये जाने लगे, जिनके साथ सदाचार एवं नैतिकता का प्रचार किया जाने लगा। इस सम्बन्ध में अशोक ने दो आदेश जारी किये। ये आदेश धौली (पुरी जिला) व जौगड़ (गंजम) के शिलालेखों पर उत्कीर्ण है। इन शिलालेखों में उत्कीर्ण विवरण इस प्रकार है— ''सम्राट का आदेश है कि प्रजा के साथ पुत्रवत् व्यवहार, जनता को प्यार किया जाये, अकारण लोगों को दण्ड व यातना न दी जाये। जनता के साथ न्याय किया जाना चाहिए। उन्हें राजा के साथ व्यवहार करने से सुख ही मिलेगा, कष्ट नहीं। राजा यथाशक्ति उन्हें क्षमा करेगा, वे धम्म का पालन करें। यहाँ उन्हें सुख मिलेगा तथा मृत्यु के बाद स्वर्ग।'' इस प्रकार उसने जनता और जीवधारियों की भलाई के लिए अनेक कदम उठाये। साथ ही उसने पश्चिम एशिया के यूनानी राज्यों और अन्य देशों में अपने शान्तिदूत भेजे।

किन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि वह एक बुजदिल शान्तिवादी था। इसके विपरीत उसने लोगों को चेतावनी दी कि इन भलाई के उपायों को उसकी कमजोरी का संकेत न माना जाये। यदि आवश्यकता हुई तो वह गलती करने वालों के साथ कठोर-से-कठोर बर्ताव करने से भी नहीं चूकेगा। उसने शान्ति की नीति दिखावे के तौर पर नहीं बल्कि हर परिस्थिति में शान्ति बनाये रखने के लिए अपनायी। उसने अपने साम्राज्य में एक विशेष श्रेणी के अधिकारियों को नियुक्त किया, जिन्हें ''राजुक (रज्जुक)'' कहा जाता था। उन्हें लोगों को भले काम के लिए पुरस्कृत करने का अधिकार ही नहीं सौंपा, अपितु जरूरत पड़ने पर बुरे लोगों को दण्ड देने की शक्ति भी प्रदान की।

18. मौर्यों की शासन पद्धति का परीक्षण कीजिए और मौर्य साम्राज्य के विघटन (पतन) के कारणों का संक्षिप्त विवेचन कीजिए।

उ०– उत्तर के लिए विस्तृत उत्तरीय प्रश्न संख्या 8 व 9 के उत्तर का अवलोकन करें।

19. ''अशोक धर्म एवं कला का महान संरक्षक था।'' विवचेना कीजिए।

उ०– मौर्य काल की भौतिक समृद्धि एवं सांस्कृतिक वैभव ने कला को उत्कृष्टता के शिखर पर पहुँचा दिया। यूनानी लेखकों ने चन्द्रगुप्त मौर्य के राजप्रासाद के वैभव तथा कलात्मकता की बड़े प्रशंसापूर्ण शब्दों में चर्चा की है और सूसा एवं एकवेटना के राजप्रासादों को इसके सामने तुच्छ बताया है। यह राजप्रासाद फाह्यन के समय में भी विद्यमान था, जिसका उसने अशोक के राजप्रासाद के नाम से उल्लेख किया है।

अशोककालीन मौर्य कला के सर्वोत्कृष्ट उदाहरण उसके स्तम्भ हैं। ये कई स्थानों से मिले हैं, जिनमें प्रमुख हैं— सारनाथ स्तम्भ, रामपुरवा स्तम्भ, लौरिया नन्दन स्तम्भ, संकिसा का स्तम्भ। ये संख्या में 30 से 40 हैं। स्तम्भ को कला की दृष्टि से चार भागों में विभक्त कर सकते हैं— दण्ड, शिखर, फलक एवं पशु प्रतिमा। दण्ड एक ही पत्थर का बना होता था, जिस पर सुन्दर पॉलिश की जाती थी। पॉलिश इतनी उत्तम की हुई है कि बहुत से विदेशी यात्री इन्हें धातु का समझने लगे थे। दण्ड के ऊपर घण्टे अथवा उलटे कमल की आकृति का शिखर, शिखर पर पीठिका के रूप में फलक और फलक पर पशु प्रतिमा है। सारनाथ का सिंहशीर्ष मौर्य कला का अत्यन्त सुन्दर उदाहरण है। इसी प्रकार हाथी की प्रतिमा भी सजीव लगती है। **स्मिथ** के अनुसार, ''किसी भी देश में प्राचीन पशु प्रतिमाओं का सुन्दर उदाहरण नहीं मिलता है।'' बिहार में गया के पास बराबर एवं नागार्जुनी पहाड़ियों में मौर्यकालीन सात गुहा-आवास प्राप्त हुए हैं। बराबर पर्वत समूह से चार गुफाएँ मिली हैं तथा नागार्जुनी पहाड़ियों से तीन गुफाएँ मिली हैं। इन गुफाओं की दीवारों एवं छतों पर की गयी अत्यन्त चमकदार पॉलिश मौर्यकालीन कला की विशिष्टता को परिलक्षित करती है।

पाटलिपुत्र, मथुरा, विदिशा तथा अन्य क्षेत्रों में मौर्य युग की अनेक प्रस्तर मूर्तियाँ उपलब्ध हुई हैं। इनमें सबसे प्रसिद्ध दीवारगंज, पटना से प्रान्त चामरग्राहिणी यक्षी की मूर्ति है। मथुरा के परखम गाँव से प्राप्त यक्ष की मूर्ति भी बहुत विशाल एवं प्रसिद्ध है। मौर्य युग की बहुत-सी मृण्मूर्तियाँ भी उपलब्ध हुई हैं। ये पटना, अहिच्छत्र, मथुरा, कौशाम्बी आदि के भग्नावशेषों से मिली हैं। बुलंदीगाग (पटना) से प्राप्त एक नर्तकी की मूर्ति उल्लेखनीय है।

8 कुषाण वंश (Kushan Dynasty)

अभ्यास

निम्नलिखित तिथियों के ऐतिहासिक महत्व का उल्लेख कीजिए–

1. 15 से 65 ई० तक 2. 78 ई० से 106 ई० तक 3. 65 ई० पू० से 78 ई० पू०

उ०– उत्तर के लिए पाठ्यपुस्तक के पृष्ठ संख्या– 97 पर तिथि सार का अवलोकन करें।

सत्य या असत्य बताइए–

उ०– प्रश्नोत्तर के लिए पाठ्यपुस्तक के पृष्ठ संख्या– 97 पर तिथि सार का अवलोकन करें।

बहुविकल्पीय प्रश्न

उ०– प्रश्नोत्तर के लिए पाठ्यपुस्तक के पृष्ठ संख्या– 98 का अवलोकन करें।

अतिलघु उत्तरीय प्रश्न

उ०– प्रश्नोत्तर के लिए पाठ्यपुस्तक के पृष्ठ संख्या– 98 का अवलोकन करें।

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. 'कुषाण काल, कला का संरक्षक था।' इस कथन की व्याख्या कीजिए।

उ०– कुषाण काल में गान्धार कला की अभूतपूर्व उन्नति हुई थी। यह कला यूनानी और भारतीय कला का समन्वित रूप थी, इसीलिए इसे इण्डो-ग्रीक कला भी कहा जाता है। इस कला का मुख्य केन्द्र गान्धार प्रदेश (अफगानिस्तान) था। इस कला के अन्तर्गत महात्मा बुद्ध की बोधिसत्व मूर्तियों का निर्माण हुआ था। इस कला की मुख्य विशेषताएँ निम्नलिखित थीं–

(i) इसकी विषय वस्तु भारतीय और शैली यूनानी थी।
(ii) इस कला पर आधारित कलाकृतियों में महात्मा बुद्ध का प्रभावमण्डल बनाया गया था।
(iii) मूर्तियों में शरीर के अंगों व प्रत्यंगों के प्रदर्शन पर विशेष ध्यान दिया गया था।
(iv) कलाकृतियों की पृष्ठभूमि का अलंकरण काल्पनिकता पर आधारित था।

2. ''कनिष्क बौद्ध धर्म का संरक्षक था।'' इस कथन को स्पष्ट कीजिए।

उ०– कनिष्क ने बौद्ध धर्म को राजकीय संरक्षण प्रदान किया। उसने कनिष्कपुर, पुरुषपुर, मथुरा, तक्षशिला आदि स्थानों पर स्तूप तथा विहार बनवाए। उसने बौद्ध भिक्षुओं को धर्म प्रचार हेतु मध्य एशिया, चीन, तिब्बत तथा जापान भेजा। उसने बौद्ध धर्म के आन्तरिक मतभेदों को दूर करने के लिए कश्मीर के कुण्डल वन में चतुर्थ बौद्ध संगीति आयोजित की। इन कार्यों के फलस्वरूप ही कनिष्क को बौद्ध धर्म का संरक्षक माना जाता है।

3. चतुर्थ बौद्ध संगीति के विषय में आप क्या जानते हैं?

उ०– चतुर्थ बौद्ध संगिति के अध्यक्ष एवं अवघोष के गुरु वसुमित्र भी एक प्रसिद्ध बौद्ध दार्शनिक एवं विद्वान थे। उन्होंने अनेक बौद्ध ग्रन्थों पर विद्वतापूर्ण टीकाएँ लिखी थीं। कनिष्क के दरबार में पार्श्व एवं संघरक्ष जैसे अन्य बौद्ध विद्वान थे।

भारतीय आयुर्वेद का महान चिकित्सक चरक कनिष्क का राजवैद था। 'चरक संहिता' आज भी आयुर्वेद का आधारभूत एवं अमूल्य ग्रन्थ हैं।

4. गांधार कला शैली तथा मथुरा कला शैली में अन्तर स्पष्ट लिखिए।

उ०– गांधार कला शैली– गांधार कला के अन्तर्गत महात्मा बुद्ध की बोधिसत्व मूर्तियों का निर्माण हुआ था। इस कला की मुख्य विशेषताएँ निम्नलिखित थीं–

(i) इसकी विषय वस्तु भारतीय और शैली यूनानी थी।
(ii) इस कला पर आधारित कलाकृतियों में महात्मा बुद्ध का प्रभावमण्डल बनाया गया था।
(iii) मूर्तियों में शरीर के अंगों व प्रत्यंगों के प्रदर्शन पर विशेष ध्यान दिया गया था।
(iv) कलाकृतियों की पृष्ठभूमि का अलंकरण काल्पनिकता पर आधारित था।

मथुरा कला शैली– कनिष्क के काल में मथुरा भी कला का प्रमुख केन्द्र था। मथुरा में कनिष्क द्वारा अनेक विहारों तथा मठों का निर्माण करवाया गया था। मथुरा कला शैली की मुख्य विशेषताएँ निम्नलिखित थीं–

(i) इस शैली में बुद्ध को कमलासन पर बैठा दिखाया गया है। बुद्ध की मूर्तियाँ अपेक्षाकृत स्थूलकाय हैं, उन्हें मुण्डित सिर रूप में प्रदर्शित किया गया है।

(ii) इस शैली की मूर्तियों का निर्माण लाल रंग के पत्थर से किया गया है।
(iii) मथुरा कला में नारी प्रतिमाओं का भी निर्माण किया गया है।
(iv) सम्राट कनिष्क की सिरविहीन मूर्ति मथुरा कला की अद्वितीय कृति है।

5. कुषाण वंश के पतन के क्या कारण थे?

उ०– कनिष्क की मृत्यु के बाद कुषाण साम्राज्य का पतन आरम्भ हो गया। कनिष्क के पश्चात उसका उत्तराधिकारी वासिष्क राजगद्दी पर बैठा। वह मथुरा के समीपवर्ती क्षेत्र पर शासन करता था। वासिष्क के पश्चात् हुविष्क राजसिंहासन पर बैठा। उसने लगभग 30 वर्ष तक शासन किया। उसके पश्चात् वासुदेव प्रथम राजा बना। उसके शासनकाल में फारस के ससानी वंश के कारण उत्तर-पश्चिमी भाग में उनकी सत्ता का पतन आरम्भ हो गया। योग्य उत्तराधिकारी के अभाव के कारण तथा नाग वंश और गुप्त वंश आदि नये राजवंशों के उदय के कारण कुषाणों की सत्ता का धीरे-धीरे पतन हो गया।

6. कनिष्क की विजय यात्रा पर टिप्पणी कीजिए।

उ०– कनिष्क की विजय यात्रा– सम्राट कनिष्क ने एक विशाल साम्राज्य पर शासन किया था। कनिष्क के समय विश्व में तीन अन्य बडे साम्राज्य थे, जिनमें दो, पार्थिया एवं चीन से उसकी सीमाएँ छूती थीं और तीसरा रोम साम्राज्य उसका व्यापारिक प्रतिद्वन्द्वी था। पार्थिया साम्राज्य का एरियाना प्रदेश कुषाणों के अधीन था। अत: पार्थियाँ कुषाणों में स्वाभाविक शत्रुता थी। एरियाना प्राप्त करने के उद्देश्य से पार्थिया के शासक ने कनिष्क पर आक्रमण कर दिया, किन्तु कनिष्क ने उसे परास्त कर दिया।

चीन में कनिष्क के समय शक्तिशाली 'हान वंश' का शासन था। उसके सेनापति पान-चाओ ने खोतान, काशगर, कुचा एवं काराशहर पर कब्जा करके सम्पूर्ण चीनी तुर्किस्तान पर अधिकार कर लिया था। इस संघर्ष का उल्लेख चीनी साक्ष्यों एवं परम्पराओं में मिलता है जिसमें कुषाणों की एक सेना को पान-चाओं द्वारा हराने का उल्लेख है। परन्तु बाद में युवान-च्यांग के साक्ष्यों से यह ज्ञात होता है कि कनिष्ठ ने सुग-लिंग पर्वत का चीनी प्रदेश अधिकार में ले लिया था और पीली नदी के पश्चिम में आवास करने वाली जातियों में आतकं फैला दिया था। युवान-च्यांग ने इन लोगों के द्वारा अपने दो राजकुमारों को कुषाण दरबार में बंधक रखने का उल्लेख किया है। इस प्रकार उसने चीनी तुर्किस्तान को अपने साम्राज्य में मिला लिया था।

विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

1. कुषाण कौन थे? उनके प्रारम्भिक इतिहास पर प्रकाश डालिए।

उ०– कुषाण कौन थे, इस प्रश्न का उत्तर हमें चीनी ग्रन्थों में मिलता है। पानकू के ग्रन्थ के अनुसार कुषाण यूची जाति से संबंधित थे, जो पाँच कबीलों में विभक्त थी। चीन के कानसू नामक प्रान्त में यूची जाति का मूल निवास स्थान था। जब हूणों ने अपनी शक्ति का विकास किया तो उसकी दृष्टि इस प्रान्त की ओर गई तथा कालान्तर में हूणों ने यूची जाति को कानसू छोड़ने के लिए बाध्य कर दिया। निष्कासित यूची नए स्थान की खोज में पश्चिम की ओर बढ़ी, परन्तु इस ओर यूचियों को 'स्से' अथवा 'शक' जाति का सामना करना पड़ा। इस संघर्ष में सफलता प्राप्त करके यूची जाति ने कुछ समय के लिए यहाँ पर सर-ए-दरिया नदी के तट पर निवास किया। कुछ समय के बाद यूचियों को 'वू-सुन' नामक जाति से टक्कर लेनी पड़ी। यूची जाति ने पुन: विजय प्राप्त की तथा उसने पश्चिम की ओर आगे बढ़ना शुरू कर दिया। इसी समय यूची जाति दो शाखाओं में विभाजित हो गई। एक शाखा दक्षिण दिशा की ओर बढ़ती हुई तिब्बत तक जा पहुँची तथा वहीं पर स्थायी रूप से बस गई । दूसरी शाखा निरन्तर आगे बढ़ती रही। मार्ग में उसे शक जाति से संघर्ष करना पड़ा। इस संघर्ष में यूची जाति को पराजय का मुँह देखना पड़ा यहाँ से भागकर यूची जाति आक्सस नदी को पार करके तुवार (ताहिया) प्रदेश पहुँची। यहाँ पर उन्हें इस स्थान की मूल जाति बाख्त्री से संघर्ष करना पड़ा। इस संघर्ष में विजय प्राप्त करके यूची जाति ने इसी प्रदेश में अपने राज्य की स्थापना की और यही पर स्थायी रूप से बस गई। शक्ति बढ़ने के साथ ही यूची जाति के आन्तरिक संघर्ष भी बढ़ने लगे। अन्तत: यह जाति पाँच शाखाओं में विभाजित हो गई। इन शाखाओं में गृहयुद्ध चलता रहा और अन्त में जिस यूची शाखा को विजय प्राप्त हुई, वह इतिहास में कुषाण के नाम से प्रसिद्ध है।

कुषाण वंश के प्रारम्भिक शासक–

(i) कुजुल कद फिसेज– कुषाण वंश का पहला शक्तिशाली शासक कुजुल कद फिसेज था। उसने 15 ई० से लेकर 65 ई० तक शासन किया। पानकू ने अपने ग्रन्थ 'हाऊ-हम-शू' में उसकी विजयों तथा सिक्कों का उल्लेख किया है। उसने पार्थियनों तथा पह्लवों को बैक्ट्रिया में पराजित किया। उसका राज्य सम्पूर्ण अफगानिस्तान, ईरान का पूर्वी भाग, गान्धार, पार्थिया तथा काबुल तक फैला हुआ था। उसने केवल ताँबे के सिक्के चलवाए थे और 'महाराजस महतस' (महाराजाधिराज) नामक उपाधि ग्रहण की थी। अस्सी वर्ष की आयु में कुजुल कद फिसेज की मृत्यु हुई।

(ii) विम कद फिसेज– विम कद फिसेज कुषाण वंश का दूसरा महत्वपूर्ण शासक था। उसने अनेक विजयों के साथ कुषाण साम्राज्य का विस्तार उत्तर भारत के कुछ क्षेत्रों (मथुरा, काशी) तक किया। ऐसा प्रतीत होता है कि इस समय पश्चिम भारत तक मालवा के शक क्षत्रपों ने कुषाणों की अधीनता स्वीकार कर ली थी। उसने 'महाराजाधिराज', 'जनाधिप', 'सर्वलोकेश्वर' की उपाधियाँ धारण की थीं। मथुरा जनपद में विम की एक बड़ी प्रतिमा प्राप्त हुई है।

विम कद फिसेज ने स्वर्ण तथा ताँबे के सिक्के चलवाए थे। उसके सिक्कों पर शिव, नन्दी तथा त्रिशूल की आकृतियाँ अंकित हैं, जिनके आधार पर उसे शैव धर्म का अनुयायी माना गया है। विम कद फिसेज ने सम्भवत: 65 ई० से 78 ई० तक शासन किया था।

कनिष्क (78 ई० से 106 ई० तक)– कनिष्क कुषाण वंश का सर्वाधिक प्रतापी एवं शक्तिशाली शासक था। इसीलिए उसका नाम भारतीय इतिहास के स्वर्णिम पृष्ठों पर अंकित है। कनिष्क के वंश एवं तिथि के विषय में इतिहासकारों में अत्यधिक मतभेद हैं।

कनिष्क के राज्यारोहण की तिथि– फर्ग्युसन ओल्डेनबर्ग , डॉ० हेमचन्द्र राय चौधरी, रैप्सन तथा डॉ० राखालदास बनर्जी ने कनिष्क के राज्यारोहण की तिथि 78 ई० स्वीकार की। इसी समय भारत में शक संवत प्रारम्भ हुए। कुछ इतिहाकारों ने इस मत का खण्डन किया है। दुब्रील के मतानुसार, यदि कुजुल कद फिसेज की मृत्यु 65 ई० में हुई तो उसके बाद होने वाले राजा विम कद फिसेज ने कुछ वर्षो तक शासन किया होगा। अत: कनिष्क की तिथि 78 ई० नहीं हो सकती है। परन्तु यह भी असम्भव नहीं कि विम कद फिसेज ने केवल 13 वर्ष तक ही शासन किया हो। वह वृद्धावस्था में सम्राट बना होगा, क्योंकि उसके पिता कुजुल कद फिसेज की मृत्यु 80 वर्ष की अवस्था में हुई थी; अत: यह सम्भव है कि उसने केवल 13 वर्ष ही शासन किया हो। तिब्बत तथा चीन के अनेक इतिहासकार भी कनिष्क का द्वितीय शताब्दी में सम्राट होना स्वीकार करते हैं। यह भी सम्भव है कि वह कनिष्क प्रथम न होकर कनिष्क द्वितीय हो। अत: कनिष्क के राज्यारोहण की तिथि 78 ई० स्वीकार की है । ओल्डेनबर्ग, फर्ग्युसन, आर०डी० बनर्जी, रैप्सन, डॉ० हेमचन्द्र चौधरी और एन० एन० घोष ने भी इसी तिथि की पुष्टि की है। कनिष्क ने लगभग 28 वर्ष तक राज्य किया है। अत: उसके शासन की अन्तिम तिथि 106 ई० स्वीकार की जाती है।

कनिष्क की उपलब्धियाँ– कनिष्क की उपलब्धियों का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है—

(i) कनिष्क की विजयें– कनिष्क एक पराक्रमी और महत्वाकांक्षी शासक था। उसने अपने शौर्य एवं पराक्रम के द्वारा अनेक अभूतपूर्व विजयें प्राप्त कीं। सर्वप्रथम उसने कश्मीर को जीतकर अपने राज्य में सम्मिलित किया, फिर पूर्व में पाटलिपुत्र और साकेत को जीता। कुछ इतिहासकारों का यह भी मत है कि पाटलिपुत्र के राजा को पराजित कर उसने हर्जाने के रूप में एक बहुत बड़ी धनराशि माँगी, परन्तु बाद में इसके बदले में वह अश्वघोष नामक लेखक, बुद्ध का भिक्षापात्र तथा एक अदभुत मुर्गा पाकर ही सन्तुष्ट हो गया। उसने विदेशियों पर भी आक्रमण किया। पार्थिया के राजा को भी पराजित किया और चीन पर भी आक्रमण किया, परन्तु वह चीनी सेनापति वान-चाओं से पराजित हुआ। उसने चीन पर पुन: आक्रमण किया और अपने इस आक्रमण में वह विजयी हो गया। खोतान, काशगर और यारकन्द क्षेत्रों पर भी कनिष्क ने अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया था।

(ii) साम्राज्य-विस्तार– कनिष्क ने दिग्विजय के द्वारा विशाल साम्राज्य की स्थापना की। उसके साम्राजय की सीमा भारत के अन्दर तथा बाहर दोनों ओर विस्तृत थी। उसके समय के अभिलेखों तथा सिक्कों के आधार पर यह सिद्ध होता है कि उसका साम्राज्य उत्तर में कश्मीर से लेकर दक्षिण में विन्ध्याचल के पर्वत तक तथा पश्चिम में उत्तरी अफगानिस्तान से लेकर पूर्व में पूर्वी उत्तर प्रदेश एवं बिहार तक विस्तृत था। भारत के बाहर अफगानिस्तान, बैक्ट्रिया, काशगर, यारकन्द तथा खोतान आदि के क्षेत्र भी उसके साम्राज्य के अंग थे। भारत में मथुरा, श्रावस्ती, कोशाम्बी, सारनाथ, उड़ीसा, साँची एवं विलासपुर, सुई, बिहार तथा पेशावर आदि में उसके अभिलेख प्राप्त होते हैं तथा पंजाब, उत्तर प्रदेश, सिन्धु, कश्मीर आदि में विभिन्न स्थानों पर उसके शासनकाल में प्रचलित सिक्के प्राप्त हुए हैं। इन अभिलेखों और सिक्कों के आधार पर यह स्पष्ट होता है कि ये प्रदेश उसके साम्राज्य में सम्मिलित थे। उसकी राजधानी पुरुषपुर (पेशावर) थी। यहाँ उसने अनेक भव्य भवनों, सार्वजनिक धर्मशालाओं तथा बौद्ध विहारों का निर्माण करवाया था।

(iii) कनिष्क का शासन-प्रबन्ध– कनिष्क के शासन-प्रबन्ध के विषय में हमें अधिक जानकारी उपलब्ध नहीं है। केवल 81 ई० के सारनाथ लेख से उसकी शासन पद्धति पर प्रकाश पड़ता है। अभिलेखों में कनिष्क को 'महाराजाधिराज देवपुत्र' कहा गया है। ऐसा प्रतीत होता है कि कनिष्क ने देवपुत्र 'वाहि' तथा 'वाहनुवाहि' उपाधियाँ प्रचलित की थीं। उसने अपने साम्राज्य में महाक्षत्रपों तथा क्षत्रप' नामक प्रान्तीय शासक नियुक्त किए थे। उसके काल से दण्डनायक तथा महादण्डनायक नामक अधिकारियों की नियुक्ति प्रारम्भ हो गई थी। ऐसा प्रतीत होता है कि कनिष्क का शासन शक्ति पर आधारित था।

(iv) कनिष्क का धर्म– कनिष्क बौद्ध धर्म का अनुयायी बन गया था वह प्रारम्भ में क्रूर एवं कठोर शासक था, किन्तु कुछ परिस्थितियों के कारण वह लोकहितकारी और धर्मपरायण बन गया था। सम्राट अशोक की भाँति ही उसने भी अपना शेष जीवन बौद्ध धर्म के प्रचार में व्यतीत किया। उसकी धार्मिक नीति अत्यधिक उदार थी। उसके प्रचार कार्यों के कारण ही बौद्ध धर्म चीन, जापान, तिब्बत और मध्य एशिया के कई भागों में व्यापक रूप से फैल गया था। इस सम्बन्ध में **श्रीनिवासचारी** एवं **आयंगर** का कहना है— ''भारतीय इतिहास में उसकी ख्याति का कारण उसकी विजय न थी, वरन बौद्ध धर्म के प्रति उसके कर्तव्य थे।''

डॉ० हेमचन्द्र राय चौधरी का कथन है– ''कनिष्क का वंश विजयों पर उतना अधिक अवलम्बित नहीं है कि जितना कि 'शाक्य' मुनि(गौतम बुद्ध) के धर्म को राजाश्रय प्रदान करने पर है।'' कनिष्क अपने प्रारम्भिक जीवन में शैव धर्म का अनुयायी था, क्योंकि उसकी मुद्राओं पर शिव, पार्वती तथा नन्दी आदि के चित्र प्राप्त हुए है। कनिष्क बौद्ध होने से पूर्व यूनानी देवताओं सूर्य और चन्द्रमा की भी उपासना किया करता था। इसलिए उसे धर्म-सहिष्णु सम्राट के रूप में स्वीकार किया जाता है, परन्तु फिर भी कालान्तर में वह बौद्ध धर्म में ही विशेष रूचि प्रदर्शित करने लगा था।

(v) **कनिष्क के काल में सांस्कृतिक प्रगति– (क) धार्मिक सुधार–** कनिष्क सभी धर्मो का समान रूप से आदर करता था, इसीलिए उसने अपने शासनकाल में प्रचलित कराए गए सिक्कों पर आहशो (शिव), मिहरो (ईरानी, मिस्र, सूर्य) माओ (चन्द्र) , नाना (सुमेरियन मातृदेवी), हेलियोस तथा सेलेनी (यूनानी सूर्य तथा चन्द्र) इत्यादि विदेशी और सूर्य , शिव एवं नन्दी आदि भारतीय देवी-देवताओं की आकृतियाँ अंकित करवाई थी। यह कार्य धार्मिक सहिष्णुता की भावना के साथ ही उसकी कलात्मक अभिरूचियों का भी परिचायक है।

(ख) चतुर्थ बौद्ध संगीति या धर्म-सम्मेलन– जिस समय कनिष्क सिंहसनारूढ़ हुआ, उस समय बौद्ध धर्म पतनोन्मुख अवस्था में था। उसमें अनेक दोष उत्पन्न हुए थे, जिससे लोग बौद्ध धर्म से घृणा करने लगे थे। बौद्ध विहार भोग-विलास एवं अनैतिक कार्यों के केन्द्र बन गए थे। कनिष्क ने इस धर्म का उद्धारक बनकर इसका पुनरुत्थान किया । उसने इस धर्म में उत्पन्न दुर्गुणों को समाप्त करने के उद्देश्य से कश्मीर में कुण्डल वन नामक स्थान पर एक बौद्ध-संगीति (सम्मेलन) का आयोजन किया। इस संगीति के अध्यक्ष वसुमित्र तथा उपाध्यक्ष अश्वघोष थे। इसमें बौद्ध एवं अन्य धर्मों के सैकड़ों भिक्षुओं और विद्वानों ने भाग लिया । इस सभा में बौद्ध धर्म के स्वरूप पर विचार-विमर्श हुआ जिसके परिणामस्वरूप त्रिपिटकों पर टीकाएँ रची गई तथा बौद्धग्रन्थों, विभाषाशास्त्र आदि की रचना हुई। किन्तु यह सभा अपने उद्देश्य में पूर्ण सफल न हुई, क्योंकि इसके पश्चात बौद्ध धर्म दो सम्प्रदायों- हीनयान एवं महायान में विभाजित हो गया। दोनों का साक्ष्य (लक्ष्य) एक, किन्तु साधन भिन्न-भिन्न थे। फिर भी यह तथ्य उल्लेखनीय है कि चतुर्थ बौद्ध-संगीति का आयोजन कनिष्क महान के कर्तव्यों की पूर्ति थी। इससे वह एक महान अलौकिक व्यक्तित्व का स्वामी बन गया था।

(ग) कला की उन्नति– कनिष्क कला प्रेमी भी था। उसने अनेक भवनों एवं स्तूपों का निर्माण करवाया। उसने अपनी राजधानी पुरुषपुर में 400 फुट ऊँचा 13 मंजिलों का एक टावर बनवाया था। इसके ऊपर एक लोहे की छतरी लगाई गई थी। इसी के पास एक विशाल बौद्ध विहार(कनिष्क चैत्य) बनवाया था। कुछ लोगों के मतानुसार उसने तक्षशिला के पास 'सिरकप' नामक एक नगर भी बसाया था। कश्मीर का कनिष्कपुर (वर्तमान कन्समोर) नामक नगर भी सम्भवत: उसी ने बसाया था। यूनानी और भारतीय कलाओं के संयोग से एक महान और विश्वप्रसिद्ध गान्धार कला का विकास, कनिष्क काल में ही हुआ था। इस कला की यह विशेषता है कि इसमें आकृतियाँ एवं भाव भारतीय हैं, किन्तु वेशभूषा यूनानी ढंग की है। इसी प्रकार कनिष्क के समय में शिल्पकला की भी पर्याप्त उन्नति हुई।

(घ) साहित्यिक प्रगति– कनिष्क के समय में साहित्य के क्षेत्र में भी पर्याप्त उन्नति हुई। इस काल में केवल बौद्ध धर्म पर टीकाओं जैसे धार्मिक साहित्य विभाषाशास्त्र का सृजन ही नहीं हुआ, वरन चिकित्सा, विज्ञान, दर्शनशास्त्र आदि पर भी अनेक पुस्तकें लिखी गई। चरक ने कनिष्क के काल में ही आयुर्वेद के महान ग्रन्थ चरक-संहिता की रचना की। बुद्धचरित (महाकाव्य), सौनदरानन्द काव्य और सारिपुत्र प्रकरण नामक नाटक अश्वघोष द्वारा कनिष्क के काल में ही लिखे गए थे। प्रसिद्ध बौद्ध आचार्य नागार्जुन भी कनिष्क के दरबार में ही थे। इन्होंने नवीन दर्शन शून्यवाद का विकास किया था।

2. ''कनिष्ठ कुषाण शासकों में सबसे महान शासक था'' स्पष्ट कीजिए।

उ०– उत्तर के लिए विस्तृत उत्तरीय प्रश्न संख्या– 1 के उत्तर का अवलोकन करें।

3. ''कनिष्ठ एक महान विजेता एवं बौद्ध धर्म का संरक्षक था।'' विवेचना कीजिए।

उ०– कनिष्ठ एक महान विजेता के रूप में– इसके लिए विस्तृत उत्तरीय प्रश्न संख्या– 1 के उत्तर का अवलोकन करें।

कनिष्ठ बौद्ध धर्म के संरक्षक के रूप में– कनिष्क वस्तुत: बौद्ध धर्म का अनुयायी था। प्राचीन बौद्ध साहित्य में कनिष्क को पहले अत्याचारी और रक्त पिपासु कहा गया है, जो बौद्ध प्रभाव से एक दयालु साधु पुरुष बन गया था। यह सम्भव लगता है कि पाटलिपुत्र पर आक्रमण के बाद वह बौद्ध आचार्य अश्वघोष के सम्पर्क में आया और उसके उपदेशों से वह बौद्ध बन गया। इसकी पुष्टि हमें उसके अभिलेखों और सिक्कों से भी होती है। ह्वेनसांग व अलबरूनी, जो क्रमश: सातवीं शताब्दी ई० व ग्यारहवी शताब्दी ई० में भारत आए थे, कुछ अनुश्रुतियों का उल्लेख करते हैं, जिनके अनुसार कनिष्क ने पेशावर में एक विशाल बौद्ध विहार का निर्माण करवाया था। बौद्ध परम्परा में उसे अनेक स्तूपों व बौद्ध विहारों का निर्माता कहा गया है। एक टीले की खुदाई में स्वर्ण के ओप वाली एक धातु-मंजूषा मिली है। इस पर अंकित खरोष्ठी लिपि के लेख से पता है कि यह विहार कनिष्क के शासनकाल में बनवाया गया था। कनिष्क के बौद्ध होने का महत्वपूर्ण साक्ष्य उसके काल में होने वाली बौद्ध धर्म की चौथी संगीति का आयोजन है।

कनिष्क ने बौद्ध धर्म के प्रचार-प्रसार के लिए अनेक कार्य व प्रयत्न किए। इस कारण तिब्बती, चीनी व मंगोलियाई बौद्ध

अनुश्रुतियों में उसे अशोक का समकक्ष स्थान दिया गया है। यहाँ यह द्रष्टव्य है कि कनिष्क बौद्ध धर्म का प्रबल पोषक व स्वयं बौद्ध होते हुए भी अन्य धर्मों के प्रति सहिष्णु व उदार था, उसके सिक्कों से यह बात स्पष्ट होती है कि उसके सिक्कों पर न केवल बुद्ध की बल्कि यूनानी, रोमन, ईरानी व भारतीय देवी-देवताओं की मूर्तियाँ भी अंकित थीं।

कनिष्क को बौद्ध धर्म के मूल तत्व एवं सिद्धान्तों को समझने में कठिनाईयों का अनुभव हुआ। इसका मुख्य कारण बौद्ध धर्म के स्वरूप में अस्पष्टता का आ जाना था। इस समय बौद्ध आचार्यों में भी मतभेद उत्पन्न हो गए थे। अत: कनिष्क ने इस समस्या के समाधान हेतु कश्मीर के कुण्डलवन नामक विहार में चौथी बौद्ध सभा का आयोजन करवाया, जो इतिहास में बौद्ध संगीति के नाम से जानी जाती है। इस संगीति में 500 बौद्ध भिक्षुओं ने भाग लिया। वसुमित्र इस संगीति के अध्यक्ष तथा अवश्वघोष उपाध्यक्ष थे। इस संगिति में त्रिपिटक पर एक प्रमाणिक महाभाष्य की रचना हुई, जिसे कनिष्क ने ताम्रपत्रों पर उत्कीण करवाया। इस संगीति में हुई धार्मिक चर्चा के बाद ही बौद्ध धर्म हीनयान तथा महायान शाखा में विभक्त हो गया। इस संगीति का अधिवेशन 6 माह तक चला। इस संगीति में पहली बार बौद्ध ग्रन्थों में पालि के स्थान पर संस्कृत भाषा का प्रयोग किया गया। इस प्रकार कनिष्क का बौद्ध धर्म के विस्तार में अशोक के बाद सर्वाधिक योगदान माना जाता है।

4. कुषाण कौन थे? कनिष्ठ के शासनकाल तक उनकी राजनीतिक शक्ति के उत्कर्ष को रेखांकित कीजिए।

उ०– उत्तर के लिए विस्तृत उत्तरीय प्रश्न संख्या– 1 के उत्तर का अवलोकन करें।

5. भारतीय संस्कृति को कला, साहित्य एवं धर्म के क्षेत्रों में कुषाणों के योगदान का मूल्याकंन कीजिए।

उ०– उत्तर के लिए विस्तृत उत्तरीय प्रश्न संख्या– 1 के उत्तर का अवलोकन करें।

6. कनिष्ठ प्रथम के जीवन एवं उपलब्धियों का वर्णन कीजिए।

उ०– उत्तर के लिए विस्तृत उत्तरीय प्रश्न संख्या– 1 के उत्तर का अवलोकन करें।

7. कनिष्क प्रथम की विजय यात्रा व साम्राज्य सीमा का वर्णन कीजिए।

उ०– कनिष्क का विजय अभियान– सम्राट कनिष्क ने एक विशाल साम्राज्य पर शासन किया था। कनिष्क के समय विश्व में तीन अन्य बड़े साम्राज्य थे, जिनमें दो, पार्थिया एवं चीन से उसकी सीमाएँ छूती थीं और तीसरा रोम साम्राज्य उसका व्यापारिक प्रतिद्वन्द्वी था। पार्थिया साम्राज्य का **एरियाना** प्रदेश कुषाणों के अधीन था। अत: पार्थिया-कुषाणों में स्वाभाविक शत्रुता थी। एरियाना प्राप्त करने के उद्देश्य से पार्थिया के शासक ने कनिष्क पर आक्रमण कर दिया, किन्तु कनिष्क ने उसे परास्त कर दिया।

चीन में कनिष्क के समय शक्तिशाली 'हान वंश' का शासन था। उसके सेनापति 'पान-चाओ' ने खोतान, काशगर, कुचा एवं काराशहर पर कब्जा करके सम्पूर्ण चीनी तुर्किस्तान पर अधिकार कर लिया था। इस संघर्ष का उल्लेख चीनी साक्ष्यों एवं परम्पराओं में मिलता है, जिसमें कुषाणों की एक सेना को पान-चाओ द्वारा हराने का उल्लेख है। परन्तु बाद में युवान-च्यांग के साक्ष्यों से यह ज्ञात होता है कि कनिष्क ने सुंग-लिंग पर्वत का चीनी प्रदेश अधिकार में कर लिया था और पीली नदी के पश्चिम में आवास करने वाली जातियों में आतंक फैला दिया था। युवान-च्यांग ने इन लोगों के द्वारा अपने दो राजकुमारों को कुषाण दरबार में बंधक रखने का उल्लेख किया है। इस प्रकार उसने चीनी तुर्किस्तान को अपने साम्राज्य में मिला लिया था।

रोमन साम्राज्य से पार्थिया की सीमाएँ मिलती थीं और पार्थिया से कुषाण साम्राज्य की। कुषाण काल में रेशम मार्ग पर कुषाणों के अधिकार से रोम और भारत के बीच व्यापारिक एवं राजनीतिक सम्पर्क बढ़े और दोनों के बीच दौत्य (दूत सम्बन्धी) सम्बन्ध भी बने। व्यापारिक प्रगति से ही कुषाणों की समृद्धि बढ़ी थी। इस प्रकार कनिष्क एक शक्तिशाली विजेता सम्राट था, जिसने उत्तराधिकार में प्राप्त राज्य का न केवल संरक्षण किया बल्कि उसे विस्तृत भी किया। उसके साम्राज्य की सीमाएँ इस प्रकार थीं–

(i) **अफगानिस्तान–** वार्दक (काबुल) अभिलेख से अफगानिस्तान के कुछ भागों पर अधिकार प्रकट होता है। यह अधिकार निश्चय ही कनिष्क के समय से ही था, क्योंकि इनकी विजय स्वयं हुविष्क ने नहीं की होगी।

(ii) **मध्य एशिया–** मध्य एशिया में यारकन्द, खोतान और काशगर।

(iii) **उत्तरी-पश्चिमी सीमा प्रान्त–** इस प्रदेश पर कनिष्क का अधिकार था, क्योंकि पुरुषपुर (पेशावर) कनिष्क की राजधानी थी। सिलवान लेवी ने एक किंवदन्ती के आधार पर कहा है कि कनिष्क के अपने ही सैनिकों ने रजाई से दबाकर उसकी हत्या कर दी थी, क्योंकि उसके लगातार युद्धों से वे थक गए थे और हताश हो चुके थे।

(iv) **बैक्ट्रिया–** कुजुल के समय से ही यहाँ कुषाण आधिपत्य था। खोतान से प्राप्त एक पाण्डुलिपि में भी चन्द्र कनिष्क को बहलक (बैक्ट्रिया) का शासक बताया है।

(v) **पंजाब–** जेद्दा अभिलेख व माणिक्याल अभिलेख, पंजाब पर कनिष्क का अधिकार प्रकट करते हैं।

(vi) **गांधार–** युवान-च्वांग के वर्णनानुसार, गांधार पर कनिष्क का अधिकार था। यह इस समय कला का बड़ा केन्द्र था, यहीं मूर्तिकला की विशिष्ट शैली का विकास इस काल में हुआ।

(vii) **उत्तर प्रदेश–** उत्तर प्रदेश के सुदूरवर्ती भागों पर भी कनिष्क का अधिकार था। इसके सिक्के गाजीपुर, बलिया व गोरखपुर से प्राप्त हुए हैं।

(viii) कश्मीर– राजतरंगिणी के अनुसार, कनिष्क का कश्मीर पर अधिकार था। उसने यहाँ पर बौद्ध धर्म को फैलाया और चौथी बौद्ध संगीति का आयोजन कुण्डलवन (कश्मीर) में किया था। यहाँ उसने कनिष्कपुर नामक नगर भी बसाया था।

(ix) सिन्ध– सुई विहार अभिलेख में सिन्ध पर कनिष्क का अधिकार सिद्ध होता है।

अत: कहा जा सकता है कि कनिष्क का राज्य मध्य एशिया से सारनाथ तक विस्तृत था और इस विशाल साम्राज्य की राजधानी पुरुषपुर (पेशावर) थी। अलबरूनी भी एक अफगानी प्राचीन परम्परा का उल्लेख करता है, जिससे मध्य एशिया पर कनिष्क का अधिकार सिद्ध होता है।

8. शासक के रूप में कनिष्क का मूल्यांकन कीजिए।

उ०– कनिष्क का शासन प्रबन्ध– कनिष्क ने अपने विशाल साम्राजय में शान्ति एवं व्यवस्था के लिये प्रशासनिक व्यवस्था कायम की। उसने सम्भवत: यूनान एवं ईरान में प्रचलित क्षत्रप व्यवस्था अपनायी। उसने साम्राज्य के विभिन्न प्रदेशों में क्षत्रपों की नियुक्ति की होगी, परन्तु उसकी विस्तृत जानकारी उपलब्ध नहीं हैं तथापि अभिलेखों में कुछ क्षत्रपों का उल्लेख मिलता है। कनिष्क के तीसरे वर्ष के सारनाथ अभिलेख में महाक्षत्रप खरपल्लान और क्षत्रप वनस्पर का उल्लेख है। ये सम्भवत: पिता-पुत्र थे और कनिष्क के साम्राज्य के पूर्वी प्रदेश का शासन कार्य देख रहे थे। 11वें वर्ष का जेद्दा अभिलेख लियक के किसी वंश का क्षत्रप का उल्लेख करता है, जो सम्भवत: तक्षशिला अभिलेख के महाराज मोअ का चक्षु प्रदेश का क्षत्रप लियक कुसुलुक था। 18वें वर्ष के मणिक्याला अभिलेख में किसी वेशपति नामक क्षत्रप का उल्लेख है। कुछ विद्वान क्षहरात वंशीय शक क्षत्रप नहपान को भी पश्चिमी प्रदेश में कनिष्क का क्षत्रप मानते हैं परन्तु यह काफी विवादास्पद है।

कनिष्क ने सम्भवत: 23वें वर्ष तक शासन किया किन्तु कुछ अनुश्रुतियों के अनुसार, उसने 45 वर्ष तक शासन किया; तदोपरान्त उसके सेनापतियों ने ही (कनिष्क के निरन्तर युद्धों से तंग आकर) उसकी हत्या कर दी।

कनिष्क का मूल्यांकन– कनिष्क अपनी उपलब्धियों के कारण प्राचीन भारत के महान सम्राटों में स्थान रखता है। कनिष्क एक साम्राज्य निर्माता ही नहीं था, वह कला एवं संस्कृति का भी संरक्षक था। कनिष्क ने अपने दरबार में अनेक उद्भ विद्वानों को आश्रय दिया। वह विद्या एवं विद्वानों का उदार संरक्षक था। अश्वघोष, वसुमित्र, नागार्जुन जैसे विद्वान और चरक जैसे महान चिकित्सक उसके दरबार की शोभा थे। कनिष्क यद्यपि एक विदेशी शासक था परन्तु उसने भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति को पूर्णता से अपनाया। उसने भारतीय धर्म ,भाषा, कला एवं सस्कृति को बढ़ावा दिया । कनिष्क के ही समय में यूनानी कला और भारतीय विषयों वाली गांधार कला शैली का विकास हुआ, तो पूर्णत: भारतीय मूर्तिकला की मथुरा शैली का विकास भी उसी के काल में माना जाता है।

बौद्ध धर्म कनिष्क का व्यक्तिगत धर्म था लेकिन वह सभी धर्मो के प्रति सहिष्णु था। बौद्ध धर्म के विस्तार एवं प्रसार में उसने महत्वपूर्ण भूमिका निभायी थी। इस संबंध में स्मिथ कहते हैं कि कनिष्क की ख्याति उसकी विजयों से नहीं, बल्कि बौद्ध धर्म के संरक्षण होने में निहित है। हेमचन्द्र राय चौधरी की भी ऐसी ही मान्यता है कि शाक्यमुनि के धर्म को संरक्षण देने के कारण उसकी जितनी प्रसिद्धि है, उसकी विजयों के कारण कदापि नहीं। निश्चय ही कनिष्क का बौद्ध धर्म के प्रचार-प्रसार में अशोक के समान महत्वपूर्ण योगदान था। मध्य एशिया एवं आगे चीन में बौद्ध धर्म के प्रसार में उसका योगदान महत्वपूर्ण कहा जायेगा।

कनिष्क एक विजेता सेनानायक ही नहीं एक श्रेष्ठ निर्माता भी था। पुरुषपुर में बनवाये संघाराम और स्तूप इसका प्रमाण है। वह एकाधिकार नगरों का निर्माता भी था। 'राजतरंगिनी' में उसके द्वारा कश्मीर में कनिष्कपुर बसाने का उल्लेख है। पुरुषपुर एवं तक्षशिला के समीप सिरकप नामक स्थान पर नया नगर बसाने का श्रेय भी कनिष्क को ही जाता है। वस्तुत: कनिष्क के व्यक्तित्व में जहाँ चन्द्रगुप्त मौर्य की सैनिक प्रतिभा झलकती है, वहाँ बुद्ध के धर्म के प्रति अशोक महान जैसा अनुराग और उत्साह भी।

9. 'कनिष्ठ योग्यतम शासक था। विवेचना कीजिए।

उ०– उत्तर के लिए विस्तृत उत्तरीय प्रश्न संख्या– 8 के उत्तर का अवलोकन करें।

9 केन्द्रीय शक्ति का पुनरुत्थान– गुप्त साम्राज्य
(Re-emergence of Central Power : Gupta Empire)

अभ्यास

निम्नलिखित तिथियों के ऐतिहासिक महत्व का उल्लेख कीजिए–

1. 369 ई०	2. 320 ई०	3. 335 ई०	4. 375 ई०
5. 380 ई०	6. 399 ई०	7. 415 ई०	8. 412 ई०
9. 455 ई०	10. 467 ई०		

उ०– उत्तर के लिए पाठ्यपुस्तक के पृष्ठ संख्या– 114 पर तिथि सार का अवलोकन करें।

सत्य या असत्य बताइए–

उ०– प्रश्नोत्तर के लिए पाठ्यपुस्तक के पृष्ठ संख्या– 114 व 115 का अवलोकन करें।

बहुविकल्पीय प्रश्न

उ०– प्रश्नोत्तर के लिए पाठ्यपुस्तक के पृष्ठ संख्या– 115 का अवलोकन करें।

अतिलघु उत्तरीय प्रश्न

उ०– प्रश्नोत्तर के लिए पाठ्यपुस्तक के पृष्ठ संख्या– 115 व 116 का अवलोकन करें।

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. चन्द्रगुप्त प्रथम पर टिप्पणी कीजिए।

उ०– घटोत्कच के पश्चात् उसका पुत्र चन्द्रगुप्त प्रथम शासक था। चन्द्रगुप्त प्रथम ही गुप्त वंश का प्रथम स्वतन्त्र शासक था। जिसकी उपाधि महाराजाधिराज थी। इसके पूर्व के राजाओं श्रीगुप्त, घटोत्कच आदि ने केवल राजाधिराज की उपाधि ही धारण की थी। चन्द्रगुप्त की रानी की उपाधि महादेवी थी।

2. गुप्तकाल को स्वर्ण-युग मानने के चार प्रमुख कारण लिखिए।

उ०– गुप्तकाल को स्वर्ण-युग मानने के समर्थन में चार कारण निम्नलिखित हैं–

(i) आर्थिक समृद्धि का युग– इस युग में देश धान धान्य से परिपूर्ण था।

(ii) धार्मिक सहिष्णुता का युग– गुप्तकाल में जैन बौद्ध, शैव, धर्म तथा अन्य हिन्दु देवी-देवताओं के उपासकों को अपने धर्मपालन के लिए हर प्रकार की स्वतन्त्रता प्रदान कर रखी थी।

(iii) ललितकलाओं के चरमोत्कर्ष का युग– गुप्तकाल में कलाओं के क्षेत्र में अभूतपूर्व उन्नति हुई। मथुरा, सारनाथ व सुल्तानगंज में मिली महात्मा बुद्ध की गुप्तकालीन मूर्तियाँ, अजन्ता, एलोरा व बाघ की गुफाओं में की गई चित्रकारी, मेहरौली का लौह स्तम्भ तथा गुप्तकालीन शासकों द्वारा प्रचलित मुद्राएँ, इस काल में विकसित ललितकलाओं के चरमोत्कर्ष की परिचायक हैं।

(iv) भारतीय संस्कृति का प्रसार– गुप्तकाल में भारतीय संस्कृति का सुदूर देशों में प्रसार हुआ। जावा, सुमात्रा, मलाया, बर्मा (म्यांमार), श्रीलंका, कम्बोडिया आदि अनेक देशों ने किसी-न-किसी रूप में भारतीय संस्कृति को अपनाया। आज भी, इन देशों के सामाजिक एवं सांस्कृतिक जीवन पर भारतीय संस्कृति की स्पष्ट छाप परिलक्षित होती है।

3. फाह्यान कौन था? वह भारत क्यों आया?

उ०– फाह्यान एक चीनी यात्री था। वह 399 ई० में चीन से चला तथा गोबी का मरूस्थल खोतान, पामीर, स्वात और गांधार होते हुए भारत में प्रवेश किया। फाह्यान जिस समय बौद्ध धर्म की शिक्षा ग्रहण कर रहा था तब उसे ज्ञात हुआ कि चीन में बौद्ध धर्म का ज्ञान अधूरा है, अत: उसने बौद्ध धर्म के प्रमाणिक ग्रन्थों को प्राप्त करने, बौद्ध धर्म की जन्मभूमि भारत के दर्शन करने तथा बौद्ध तीर्थस्थलों का दर्शन करने के उद्देश्य से भारत यात्रा का कार्यक्रम बनाया।

4. चन्द्रगुप्त द्वितीय के प्रशासन पर संक्षिप्त टिप्पणी कीजिए।

उ०– चन्द्रगुप्त द्वितीय का प्रशासन– चन्द्रगुप्त द्वितीय महान् विजेता होने के साथ-साथ एक सफल एवं कुशल शासक भी था। उसके विशाल साम्राज्य की शासन-व्यवस्था पूरी तरह संगठित और सुव्यवस्थित थी, जिसका ज्ञान हमें चीनी यात्री फाह्यान के यात्रा-विवरण से प्राप्त होता है। उसके विवरण से चन्द्रगुप्त के प्रशासन की निम्नलिखित प्रमुख बातों का पता चलता है–

(i) सम्राट एवं केन्द्रीय मन्त्रिपरिषद्– शासन का सर्वोच्च सम्प्रभु राजा होता था, किन्तु वह स्वेच्छाचारी एवं निरंकुश नहीं था। शासन-कार्यों में उसकी सहायता के लिए एक केन्द्रीय मन्त्रिपरिषद् होती थी; किन्तु वह मन्त्रिपरिषद् का निर्णय मानने के लिए बाध्य नहीं था।

(ii) प्रान्तीय शासन– शासन को सुचारु रूप से संचालित करने के उद्देश्य से साम्राज्य को कई भागों में बाँट दिया गया था तथा प्रत्येक (भक्ति) के लिए एक प्रान्तपति नियुक्त था। बंगाल, बिहार एवं सौराष्ट्र प्रान्त चन्द्रगुप्त के काल के प्रसिद्ध प्रान्त थे।

(iii) विषय (जिले) एवं ग्राम का प्रशासन– चन्द्रगुप्त द्वितीय के शासन-प्रबन्ध में प्रान्तों का विभाजन जिलों में किया गया था, जिन्हें 'विषय' कहा जाता था। विषय का प्रशासनिक अधिकारी विषयपति कहलाता था। वह अन्य अधिकारियों की सहायता से सम्पूर्ण जिले का प्रशासन संचालित करता था। ग्राम प्रशासन की सबसे छोटी इकाई था। ग्राम को प्रधान 'महत्तर' कहलाता था।

(iv) सैन्य व्यवस्था– चन्द्रगुप्त द्वितीय के पास एक विशाल व संगठित चतुरंगिणी थी। उसका प्रधान सेनापति 'आम्रर्कादेव' था, जिसे 'बलाधिकृत' कहते थे। उसके कार्यालय का नाम 'बालाधिकरण' था। अश्व सेना का नायक 'भटाश्वपति' कहलाता था। राजभण्डाराधिकृत सैनिक साज-सामानों को सुरक्षित रखने वाला प्रधान अधिकारी था।

(v) **न्याय-व्यवस्था–** सम्राट चन्द्रगुप्त के समय में न्याय-व्यवस्था का पर्याप्त प्रबन्ध था और वह सभी के लिए समान थी। सम्राट न्याय का अन्तिम निर्णायक होता था। अपराधों की संख्या बहुत कम थी। सामान्य अपराधियों को अर्थ-दण्ड दिया जाता था, जबकि भयंकर अपराधियों को मृत्यु-दण्ड तक दिया जाता था। निष्पक्ष एवं उपुर्यक्त न्याय-व्यवस्था के कारण अपराधी सदैव भयभीत रहते थे।

5. गुप्तकाल में विज्ञान की प्रगति का वर्णन कीजिए।

उ०– गुप्तकाल में भूगोल एवं विज्ञान की भी बहुत उन्नति हुई। इस युग के प्रमुख वैज्ञानिक 'आर्यभट्ट', 'वराहमिहिर', 'ब्रह्मगुप्त' आदि थे। कहा जाता है कि गुप्तकालीन वैद्य 'धन्वन्तरि' के पास एक विशेष प्रयोगशाला थी जिसमें भौतिक एवं रसायनशास्त्र की ऐसी सामग्री उपलब्ध थी, जिसके द्वारा वह बाल तक का भार भी ज्ञात कर सकता था। महान् गणितज्ञ आर्यभट्ट ने वर्गमूल एवं घनमूल निकालने की विधि की खोज तथा दशमलव पद्धति का अन्वेषण इसी युग में किया था। इसके अतिरिक्त, आर्यभट्ट एवं वराहमिहिर आदि विद्वानों ने तारों एवं नक्षत्रों की सूक्ष्म गतिविधियों के सम्बन्ध में इतनी विश्वस्त सूचनाएँ दी हैं, जो आज के वैज्ञानिक युग में भी विश्वसनीय मानी जाती हैं।

6. गुप्त साम्राज्य के पतन के दो प्रमुख कारण क्या थे?

उ०– गुप्त साम्राज्य के पतन के कारण– समुद्रगुप्त तथा चन्द्रगुप्त द्वितीय के पश्चात् गुप्त वंश के अन्य सम्राट्, गुप्त साम्राज्य की पूर्व प्रतिष्ठा के अनुरूप शासन न कर सके, जिसके परिणामस्वरूप छठी शताब्दी के प्रारम्भ में गुप्त साम्राज्य के पतन की प्रक्रिया आरम्भ हो गई। संक्षेप में गुप्त साम्राज्य के पतन के कारणों का विवेचन निम्नलिखित शीर्षकों के अन्तर्गत किया जा सकता है—

(i) **अयोग्य एवं दुर्बल उत्तराधिकारी–** गुप्त साम्राज्य का उत्थान समुद्रगुप्त, चन्द्रगुप्त द्वितीय तथा कुमारगुप्त प्रथम के अधीन अपनी चरम सीमा पर था। स्कन्दगुप्त के पश्चात् गुप्त साम्राज्य के पतन की प्रक्रिया प्रारम्भ हो गई। पुरुषपुर तथा बुद्धगुप्त आदि शासकों में इतने विशाल साम्राज्य को नियन्त्रित करने की न तो सामर्थ्य थी और न ही उनमें प्रशासनिक कुशलता विद्यमान थी।

(ii) **उत्तराधिकार के नियमों का अभाव–** गुप्त साम्राज्य के अन्तर्गत उत्तराधिकार की समुचित व्यवस्था का अभाव था जिसके कारण प्रत्येक राजा की मृत्यु के पश्चात् सिंहासन प्राप्ति हेतु संघर्ष आवश्यक था। स्कन्दगुप्त के पूरवर्ती राजाओं के काल में राजदरबार पारस्परिक विवादों, षड्यन्त्रों तथा गुप्त योजनाओं का केन्द्र बन गया था, जिसके परिणामस्वरूप साम्राज्य की शक्ति क्षीण होने लगी थी।

7. रामगुप्त की ऐतिहासिकता पर प्रकाश डालिए।

उ०– रामगुप्त; समुद्रगुप्त का ज्येष्ठ पुत्र था। उसकी पत्नी का नाम ध्रुवदेवी था। लेकिन रामगुप्त बड़ा अयोग्य व विलासी शासक था। उसकी दुर्बलता का लाभ उठाकर शकराज ने उस पर आक्रमण कर दिया। रामगुप्त अपनी पत्नी के बदले में शकराज से सन्धि करने के लिए तैयार हो गया। लेकिन रामगुप्त के भाई चन्द्रगुप्त द्वितीय ने स्त्री-वेश बनाकर, शत्रु के शिविर में जाकर शकराज की हत्या कर दी और अपने कुल के सम्मान को सुरक्षित रखा। कायर रामगुप्त अपने भाई चन्द्रगुप्त द्वितीय के द्वारा ही मार डाला गया। रामगुप्त की ऐतिहासिकता को अनेक विद्वान्, काल्पनिक मानते थे, लेकिन अब गुप्तकालीन ताम्र-मुद्राएँ मिल जाने और तीन जैन-तीर्थंकरों की प्रतिमा की चौकी पर इसका नाम प्राप्त हो जाने से यह स्पष्ट हो गया है कि यही रामगुप्त गुप्तकाल से सम्बन्धित था।

8. फाह्यान किसके शासनकाल में भारत आया? उसने कौन-सी पुस्तक लिखी?

उ०– फाह्यान चन्द्रगुप्त द्वितीय के शासनकाल में भारत आया। उसने फो-क्वों-की नामक पुस्तक लिखी है।

9. समुद्रगुप्त को भारत का नेपोलियन क्यों कहा जाता है?

उ०– समुद्रगुप्त को निम्नांकित चार तर्कों के आधार पर 'भारत का नेपोलियन' कहा जाता है—

(i) समुद्रगुप्त नेपोलियन की तरह महान् योद्धा तथा विजेता था। इसने समकालीन सभी भारतीय राजाओं को पराजित करने के साथ-साथ विदेशी राज्यों को भी नतमस्तक किया था।

(ii) नेपालियन की भाँति समुद्रगुप्त ने भारतीय राजाओं को नतमस्तक कर दिया था जिस प्रकार नेपोलियन ने फ्रांसीसी साम्राज्य को संगठित किया था, उसी प्रकार समुद्रगुप्त ने भी भारतीय साम्राज्य को संगठित कर दिया था।

(iii) अनेक राजाओं ने समुद्रगुप्त की अधीनता उसी प्रकार स्वीकार कर ली जैसे कि नेपोलियन की अधीनता स्पेन, हॉलैण्ड आदि ने स्वीकार की थी।

विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

1. ''गुप्तकाल भारतीय इतिहास का स्वर्ण-युग था।'' समीक्षा कीजिए।

उ०– भारतीय इतिहास में गुप्तकाल को 'स्वर्ण-युग' की संज्ञा दी जाती है । इसका प्रमुख कारण यह है कि इस काल में देश जितना

समृद्ध एवं शान्तिमय था, उतना कभी नहीं हुआ। **डॉ० स्मिथ** के शब्दों में, ''हिन्दू भारतीय के इतिहास में महान् गुप्त सम्राटों को युग जितना सुन्दर और सन्तोषजनक है उतना कोई अन्य युग नहीं। इस युग में साहित्य, कला तथा विज्ञान की असाधारण उन्नति हुई और बिना अत्याचार के धर्म में क्रमागत परिवर्तन भी किए गए।''

कुछ विद्वानों ने गुप्तकाल की समता रोम के इतिहास के 'आगस्टस काल' और इंग्लैण्ड के महान् सम्राज्ञी 'ऐलिजाबेथ प्रथम' के काल से की है। **डॉ० बार्नेट** ने इसकी तुलना यूनान के इतिहास के 'पेरीक्लीज' के काल से की है। गुप्तकाल को 'स्वर्ण-युग' कहे जाने के पक्ष में तथ्यों का विवरण निम्नलिखित है—

(i) महान् सम्राटों का युग– गुप्तकाल के सम्राट वीर, योद्धा, कुशल सेनानी, महान् विजेता और सफल शासक थे। समुद्रगुप्त, जिसे भारतीय नेपोलियन कहा जाता है, ने उत्तर भारत के अतिरिक्त मध्य तथा दक्षिण भारत के राज्यों पर विजय प्राप्त की थी। इसी प्रकार चन्द्रगुप्त द्वितीय ने अनेक विजयों प्राप्त करके 'विक्रमादित्य' की उपाधि धारण की थी। स्कन्दगुप्त ने हूणों का सर्वनाश कर दिया था। गुप्त सम्राट केवल युद्ध में ही अद्वितीय नहीं थे वरन् शासन के क्षेत्र में भी वे महान् थे।

(ii) राजनीतिक एकता एवं संगठन का युग– गुप्त शासकों ने भारत के विभिन्न प्रदेशों को जीतकर सम्पूर्ण भारत को एक सूत्र में बाँध दिया था। **डॉ० राधाकुमुद मुकर्जी** के शब्दों में, ''गुप्त साम्राज्य अत्यन्त सुसंगठित राज्य था, जिसे अपनी सार्वभौम सम्प्रभुता की छाया में भारत के बहुत बड़े भाग पर राजनीतिक एकता स्थापित करने में सफलता प्राप्त हुई।'' गुप्त नरेश समुद्रगुप्त और उसके पुत्र चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य; दोनों ने ही राजनीतिक एकता स्थापित करने का प्रशंसनीय कार्य किया था। इसके अतिरिक्त, उस समय की राजनीतिक अवस्था की कुछ अन्य उल्लेखनीय विशेषताएँ इस प्रकार थीं— (क) राजा और प्रजा में देव और दास का-सा सम्बन्ध था। राजा प्रजा की सेवा करना अपना परम कर्त्तव्य समझता था तथा जनता राजा को ईश्वर तुल्य मानकर उसका आदर किया करती थी। (ख) राजा साहित्य, कला, विज्ञान और संगीत आदि को पर्याप्त प्रोत्साहन देते थे। (ग) राजा शासन का कार्य मन्त्रिपरिषद् के परामर्श से किया करता था। (घ) शासन-प्रबन्ध की सुविधा के लिए साम्राज्य कई प्रान्तों में बँटा हुआ था। (ङ) न्याय व्यवस्था न कठोर थी, न सरल। न्याय और दण्ड-व्यवस्था का उद्देश्य प्रत्येक मनुष्य को न्याय प्रदान करना था।

(iii) आर्थिक समृद्धि का युग– इस युग में देश धन-धान्य से परिपूर्ण था। प्रजा पूर्ण सुखी और समृद्ध थी, असन्तोष का कहीं नामोनिशान न था। गरीब-से-गरीब व्यक्ति को भरपेट भोजन एवं तन ढकने को पर्याप्त वस्त्र और समुचित आवास उपलब्ध था। उस समय आन्तरिक और सामुद्रिक व्यापार भी चरमोत्कर्ष पर पहुँच गया था। उस समय व्यापार में सोने की मुद्राओं द्वारा विनिमय होता था, जो गुप्तकालीन समाज की समृद्धि का परिचायक था।

देश में कृषि की व्यवस्था भी बहुत अच्छी थी। गेहूँ, चावल, गन्ना, जूट, सुपारी, ज्वार, बाजरा, मसाले आदि अनेक चीजें उत्पन्न होती थीं, लेकिन कपड़ें का उद्योग प्रमुख था। इनमें बहुत-सी चीजें विदेशों को निर्यात होती थीं, जिनके बदले सोना लिया जाता था। गुप्त युग की इस आर्थिक समृद्धता की कारण ही भारत को 'सोने की चिड़िया' कहकर पुकारा जाता था।

(iv) धार्मिक सहिष्णुता का युग– गुप्त सम्राट वैष्णव धर्मावलम्बी थे, किन्तु अन्य धर्मों के प्रति भी उनकी अत्यन्त उदार नीति थी। उन्होंने जैन, बौद्ध, शैव धर्म तथा अन्य हिन्दू-देवी-देवताओं के उपासकों को अपने धर्मपालन के लिए हर प्रकार की स्वतन्त्रता प्रदान कर रखी थी। वास्तव में, गुप्त राज्य सच्चे अर्थों में धर्म निरपेक्ष राज्य थे।

(v) साहित्य की उन्नति का युग– सभी गुप्त सम्राट साहित्य एवं कला के प्रेमी थे। उन्होंने संस्कृत भाषा को विशेष महत्त्व दिया था। इसीलिए गुप्तकाल में संस्कृत साहित्य की अत्यधिक उन्नति हुई। इनके शासनकाल में विद्वानों को विशेष राजकीय संरक्षण एवं सम्मान प्रदान किया गया था। इस काल के महान् कवि हरिषेण था, जिसने प्रयाग प्रशस्ति की रचना की थी। गुप्तकालीन कवि 'कालिदास' की काव्य रचनाएँ 'कुमारसम्भव', 'मेघदूतम्' 'रघुवंशम्', 'ऋतुसंहार:' तथा नाट्य रचनाएँ 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्', 'मालविकाग्निमित्रम्', 'विक्रमोर्वशीयम्' आदि विश्व की महान् कृतियों के रूप में जानी जाती हैं। इस युग के अन्य कवि भारवी थे जिन्होंने 'किरातार्जुनीयम्' की रचना की। इनके अतिरिक्त कवि 'भट्टी' ने 'भट्टी काव्य' तथा मातृगुप्त ने अनेक काव्य-ग्रन्थ लिखे। मातृगुप्त कश्मीर के राजा भी थे। गुप्तकाल में ही 'शूद्रक' और 'विशाखादत्त' ने क्रमश: 'मृच्छकटिकम्' तथा 'मुद्राराक्षस' नामक नाटकों की रचना की। इसी काल में विष्णु शर्मा ने पंचतन्त्र की कहानियाँ लिखीं। 'वासवदत्ता' के लेखक सुबन्धु भी इसी युग में हुए। गुप्तकाल में चन्द्र व्याकरण (चन्द्रागोमिन), अमरकोष (अमरसिंह), 'काव्यादर्श' (दण्डी) नामक व्याकरण ग्रन्थों की भी रचना हुई।

गुप्तकाल में धार्मिक तथा दार्शनिक साहित्य का भी पर्याप्त विकास हुआ। इसी काल में अनेक स्मृतियाँ लिखी गईं, जिनमें याज्ञवल्क्य स्मृति का विशेष महत्त्व है। कामन्दक ने 'नीति सार' नामक ग्रन्थ इसी काल में लिखा। सांख्य दर्शन पर 'साख्य कारिका' प्रोत्साहन (ईश्वर कृष्ण) की रचना गुप्तकाल में ही हुई। इसी काल में वात्स्यायन, वसुबन्धु, दिङ्नाग (प्रमाण समुच्चय), बुद्ध घोष (विशुद्ध मग्ग और सुमंग विलासिनी), सिद्धसेन (न्यायावतार), भद्रबाहुत आदि विद्वानों ने अनेक ग्रन्थों की रचना की। इसके अतिरिक्त, ज्ञान-विज्ञान के अन्य विषयों पर भी इस काल में गहन अध्ययन हुआ और नवीन ग्रन्थों की रचना हुई।

(vi) ललित-कलाओं के चरमोत्कर्ष का युग– गुप्तकाल में कलाओं के क्षेत्र में आश्चर्यजनक उन्नति हुई। वस्तुत: यह विभिन्न कलाओं के उत्थान का युग था। इस युग में विभिन्न कलाओं की उन्नति का विवरण निम्नलिखित है–

(क) वास्तुकला या स्थापत्य कला– गुप्तकाल वास्तुकला की प्रगति का स्वर्ण युग था। इस काल में मन्दिरों, भवनों तथा कुछ स्तूपों का निर्माण हुआ, जो आज भी इस युग की कला का दिग्दर्शन करा रहे हैं। इस काल में बने भव्य मन्दिरों में भूमरा का शिवमन्दिर (मध्य प्रदेश), देवगढ़ का दशावतार मन्दिर (ललितपुर, उ०प्र०), भीतरगाँव का ईटों का मन्दिर (कानपुर, उ०प्र०), टिबुआ या तिगवा का विष्णु मन्दिर (जबलपुर, म०प्र०), नचनाकूथर का पार्वती मन्दिर(अजयगढ़) तथा लरखान (ऐहोल, बीजापुर) का मन्दिर, दाहपरवतिया वन, पार्वती मन्दिर (असम) आदि प्रमुख हैं।

मन्दिर के अतिरिक्त सारनाथ का धमेख स्तूप गुप्तकाल का ही है। अजन्ता की तीन गुफाएँ तथा उदयगिरि की गुफा का निर्माण भी इसी काल में हुआ। गुप्तकाल में अनेक प्रस्तर स्तम्भ भी बनवाए गए, जिनमें स्कन्दगुप्त का काहौम स्तम्भ (गोरखपुर), एरण का स्तम्भ, भिटारी का स्तम्भ और भिलसा का स्तम्भ विशेष प्रसिद्ध हैं।

(ख) मूर्तिकला– इस युग में मूर्तिकला की असाधारण उन्नति हुई। बौद्ध, जैन और हिन्दू धर्म के प्रमुख देवी-देवताओं की अनेक मूर्तियाँ तत्कालीन कलाकारों के द्वारा बनाई गईं। इस काल में निर्मित बुद्ध की तीन प्रतिमाएँ अपनी भग्न अवस्था में 'मथुरा', 'सारनाथ' और 'सुल्तानगंज' में मिली हैं। गुप्तकालीन विष्णु हिन्दू देवताओं की भी बहुत सुन्दर, सजीव और आकर्षक मूर्तियाँ प्राप्त हुई है। ये प्रतिमाएँ अत्यन्त सौम्य मुखाकृति वाली हैं और उनके हाव-भाव अद्वितीय हैं।

2. गुप्त कौन थे? गुप्त वंश के प्रथम प्रसिद्ध शासक चन्द्रगुप्त प्रथम के शासनकाल का संक्षिप्त परिचय दीजिए।

उ०– गुप्त वंश का परिचय– गुप्त शासकों के वंश व जाति के प्रश्नों पर विद्वानों में मतभेद है, किन्तु यह अवश्य है कि द्वितीय शताब्दी के अन्त में भारत में जिस नवीन राजवंश का प्रादुर्भाव हुआ उस वंश के हम 'गुप्त वंश' के नाम से पुकारते हैं। विभिन्न विद्वानों ने गुप्त शासकों के विषय में भिन्न-भिन्न मत व्यक्त किए हैं। कुछ विद्वान गुप्तों को 'क्षत्रिय' मानते हैं, कुछ विद्वान उन्हें 'शूद्र' मानते हैं, कुछ विद्वानों ने उन्हें 'वैश्य माना है तो कुछ विद्वान उन्हें 'ब्राह्मणों' की श्रेणी में रखते हैं।

इस प्रकार विद्वानों के मतों से यह प्रतीत होता है कि गुप्त शासकों की जाति के विषय में अनेक मत-मतान्तर हैं। अत: किसी निश्चित मत पर स्थिर होना कठिन है। अधिकांश विद्वानों ने गुप्त शासकों को क्षत्रिय माना है, जो सर्वाधिक युक्ति संगत भी है।

गुप्तों का मूल निवास स्थान– गुप्तों की प्राचीनता तथा मूल स्थान के विषय में भी विद्वानों के विभिन्न मत है, किन्तु अधिकांश विद्वान गुप्तों का आदिस्थान पूर्वी उत्तर प्रदेश या पश्चिमी मगध मानते हैं। पुराणों में भी कहा गया है की प्रारम्भिक गुप्त राजाओं के राज्य में उत्तर प्रदेश और मगध के ही प्रदेश शामिल थे। अत: यह मत ही अधिक तर्कसंगत प्रतीत होता है।

श्रीगुप्त (275-300 ई०)– गुप्तवंश का संस्थापक श्रीगुप्त (275-300 ई०) था। अभिलेखों में उसे 'महाराज' की उपाधि दी गई है। इस आधार पर कुछ विद्वानों ने यह सम्भावना व्यक्त की है कि वह कोई साधारण सामन्त राजा था। लेकिन किसी सर्वोच्च शक्ति का अस्तित्व इस काल में दृष्टिगोचर नहीं होता। दूसरी ओर हम देखते हैं कि 'महाराज' शब्द का प्रयोग छोटे क्षेत्र के स्वतन्त्र राजाओं द्वारा भी किया जाता रहा है। अत: यह मानना ही अधिक युक्तिसंगत है कि श्रीगुप्त एक सीमित क्षेत्र का स्वतन्त्र राजा था। यह क्षेत्र प्रयाग-साकेत का था और सम्भवत: अयोध्या गुप्तों की प्रारम्भिक राजधानी थी। चीनी यात्री **इत्सिंग** ने श्रीगुप्त के बारे में लिखा है, ''श्रीगुप्त ने नालन्दा से 40 योजन (240 मील) पूर्व की ओर अपने साम्राज्य का विस्तार किया। उसने 'महाराज' की पदवी धारण की।'' **इत्सिंग** ने यह भी लिखा है, ''500 वर्ष पूर्व महाराज श्रीगुप्त ने चीनियों के ठहरने के लिए एक मन्दिर बनवाया था और 240 गाँव दान में दिए।''

घटोत्कच (300 से 319-20 ई०)– श्रीगुप्त का उत्तराधिकारी घटोत्कच था। इसने सम्भवत: 319 या 320 ई० तक शासन किया। इसके शासनकाल की किसी भी घटना की जानकारी नहीं मिलती। इसने भी 'महाराज' की उपाधि धारण की। अनेक अभिलेखों में इसे गुप्त वंश का संस्थापक कहा गया है, परन्तु सर्वमान्य मत और प्रयाग-प्रशस्ति से भी यही विदित होता है कि घटोत्कच गुप्त वंश का दूसरा राजा था। घटोत्कच के नाम का एक सोने का सिक्का मिला है, जिसे **प्रो० एलन** बाद के राजा का मानते हैं। **प्रो० गोयल** के अनुसार गुप्त-लिच्छवि सम्बन्ध इसी समय आरम्भ हुए।

चन्द्रगुप्त प्रथम (319-335 ई०)– चन्द्रगुप्त प्रथम गुप्तवंश का पहला स्वतन्त्र सम्राट और इस वंश का वास्तविक संस्थापक था। चन्द्रगुप्त प्रथम ने ही सर्वप्रथम महाराजाधिराज की उपाधि धारण की थी। इसके पूर्व के राजाओं श्रीगुप्त, घटोत्कच आदि ने केवल राजाधिराज की उपाधि ही ग्रहण की थी। चन्द्रगुप्त की रानी की उपाधि महादेवी थी। महादेवी शब्द अग्रमहिषी पद का प्रतीक है।

(i) चन्द्रगुप्त प्रथम का जीवनवृत्त– चन्द्रगुप्त प्रथम के जीवनवृत्त की अधिक जानकारी उपलब्ध नहीं है। केवल पुराणों, स्वर्णमुद्राओं और अभिलेखों में उसकी उपलब्धियों का वर्णन मिलता है। पुरातात्विक स्रोतों के अनुसार, चन्द्रगुप्त प्रथम की उपलब्धियों ने गुप्त साम्राज्य का गठन किया और भारतीय इतिहास में उसकी प्रतिष्ठा स्थापित की।

(ii) चन्द्रगुप्त प्रथम की उपलब्धियाँ–

(क) गुप्त सम्वत् की स्थापना– चन्द्रगुप्त प्रथम के शासन की प्रमुख घटना अपने राज्यारोहण के समय एक नया सम्वत् आरम्भ करने की थी, जिसे 'गुप्त सम्वत्' के नाम से जाना जाता है। अधिकांश विद्वानों के अनुसार, गुप्त सम्वत् का आरम्भ 319–320 ई० में हुआ था।

(ख) लिच्छवि वंश की कुमारदेवी से विवाह– सम्राट चन्द्रगुप्त के अभिलेख से पता चलता है कि लिच्छवि वंश की राजकुमारी कुमारदेवी से चन्द्रगुप्त प्रथम ने विवाह किया था। लिच्छवि जाति प्राचीन भारत की विख्यात जाति थी।

(ग) चन्द्रगुप्त का राज्य विस्तार– चन्द्रगुप्त प्रथम के राज्य की सीमाओं के निर्धारण पर यद्यपि इतिहासकार एकमत नहीं हैं किन्तु प्राप्त स्रोतों के आधार पर अनुमान लगाया गया है कि चन्द्रगुप्त प्रथम का साम्राज्य प्रयाग से लेकर पूरब में मगध प्रदेश के दक्षिण–पूर्वी भाग या बंगाल के कुछ भागों तक विस्तृत था।

चन्द्रगुप्त प्रथम ने 319-320 ई० से 335 ई० तक शासन किया। चन्द्रगुप्त प्रथम के अन्तिम समय की कोई जानकारी उपलब्ध नहीं है। ऐसा प्रतीत होता है कि उसने राज्य का दायित्व अपने पुत्र समुद्रगुप्त को सौंपकर संन्यास ग्रहण कर लिया था।

3. समुद्रगुप्त की उपलब्धियों पर प्रकाश डालिए। 'या' समुद्रगुप्त की विजयों का वर्णन करते हुए उसके साम्राज्य-विस्तार को प्रदर्शित कीजिए।

उ०– सम्राट समुद्रगुप्त (335 ई० -375 ई०)– सम्राट चन्द्रगुप्त प्रथम की मृत्यु के पश्चात् उसका पुत्र समुद्रगुप्त लगभग 335 ई० में सिंहासन पर आसीन हुआ। भारतीय इतिहास में समुद्रगुप्त के राज्यारोहण की तिथि के सम्बन्ध में भारी मतभेद है। वह एक महान् योद्धा, महत्त्वाकांक्षी शासक, साहसी सेनापति एवं पराक्रमी सम्राट था। उसने भारत को एक शक्तिशाली साम्राज्य के रूप में संगठित करने में अभूतपूर्व सफलता प्राप्त की थी। उसने अपने जीवनकाल में अनेक युद्ध लड़े और लगभग सभी में उल्लेखनीय सफलताएँ प्राप्त कीं। इसी कारण उसे 'भारत का नेपोलियन' नामक विशिष्ट उपाधि से विभूषित किया गया है।

समुद्रगुप्त की विजय यात्रा– समुद्रगुप्त का शासनकाल सैनिक विजयों की दृष्टि से विशेष उल्लेखनीय है। प्रयाग्–प्रशस्ति का लेखक हरिषेण सौ युद्धों में उसके कौशल का उल्लेख करता है, जिसके कारण उसके सारे शरीर पर घावों के निशान बन गए। इस प्रशस्ति में उसकी विजयों की लम्बी सूची मिलती है। समुद्रगुप्त ने सबसे पहले नागवंश के दो राजाओं अच्युत और नागसेन को परास्त किया और उसके बाद कोडकुलज नामक राजा को हराकर पाटलिपुत्र (पुष्पपुर) में प्रवेश किया। पाटलिपुत्र विजय गुप्तों के इतिहास में एक क्रान्तिकारी घटना थी। अब गुप्तों की राजधानी पाटलिपुत्र में आ गई और उसके बाद समुद्रगुप्त का दिग्विजय का अभियान प्रारम्भ हुआ।

(i) आर्यवर्त्त की विजय– समुद्रगुप्त की विस्तारवादी नीति का सर्वाधिक कहर उत्तर के राज्यों पर पड़ा, जिनसे नौ राजाओं के नामों का उल्लेख महत्त्वपूर्ण है। इन्हें हराकर उनके राज्यों को 'प्रसयोद्धरण' (बलपूर्वक जीतकर) नीति के तहत साम्राज्य में विलय कर लिया गया। इनके नाम हैं— रुद्रदेव, मतिल, नागदत्त, चन्द्रवर्मन, गणपतिनाग, नागसेन, नन्दिन, अच्युत और बलवर्मा। इनमें नागदत्त, गणपतिनाग, नागसेन और नन्दिनी नागवंशी राजा जान पड़ते हैं, जिनके मथुरा और पद्मावती दो प्रसिद्ध केन्द्र थे। अच्युत अहिच्छत्र (बरेली जिला, उ०प्र०) का राजा रहा होगा। अन्य राजाओं की सही पहचान नहीं हो सकी है।

समुद्रगुप्त ने अपने दक्षिण अभियान में 12 राज्यों के राजाओं को पराजित कर अपने अधीन कर लिया। चूँकि उत्तरी भारत और दक्षिणी भारत के बीच बहुत अधिक दूरी थी, इसलिए उत्तरी भारत से दक्षिण भारत पर शासन करना न केवल मुश्किल, वरन् असम्भव था, अत: समुद्रगुप्त ने दक्षिण भारत के राजाओं के प्रति भिन्न–भिन्न नीतियों का अनुसरण किया। जहाँ उसने उत्तरी भारत के राज्यों को विदित कर अपने साम्राज्य में मिला लिया था, वहीं दक्षिण में उसने जिन राजाओं को विदित किया उनके राज्यों को उसने वापस कर दिया। पराजित राजाओं ने समुद्रगुप्त को अपना अधीश्वर स्वीकार कर उसे कर देना स्वीकार कर लिया। साथ ही इन राजाओं ने समुद्रगुप्त को उपहारस्वरूप अपार धनराशि, स्वर्ण, हीरे तथा मोती आदि दिए। वस्तुत: समुद्रगुप्त की दक्षिण नीति उसके कुशल राजनीतिज्ञ एवं दूरदर्शी होने का परिचायक है।

(ii) सीमावर्ती राज्यों पर विजय– समुद्रगुप्त की विजयों पर प्रभाव उत्तर–पूर्वी भारत और हिमालय के सीमान्त–राज्यों पर भी पड़ा। प्रयाग–प्रशस्ति में पाँच राज्यों और नौ गणतन्त्रों का उल्लेख है। इनमें अनेक ने समुद्रगुप्त की अधीनता स्वीकार कर ली। प्रयाग–प्रशस्ति में इन राजाओं के नाम तो नहीं है, परन्तु उनके राज्यों का उल्लेख अवश्य हुआ है। ऐसे राज्यों में प्रमुख थे, समतट (बांग्लादेश), डवाक (बांग्लोदश अथवा आसाम में नवगाँव), कामरूप (आसाम) तथा कर्तृपुर (कुमायूँ, गढ़वाल, रुहेलखण्ड अथवा जालंधर का इलाका)। नेपाल भी सम्भवत: समुद्रगुप्त के प्रभाव में आ गया, क्योंकि इसी समय से वहाँ गुप्त सम्वत् का चलन आरम्भ हुआ।

(iii) गणराज्यों पर विजय– समुद्रगुप्त की एक महान उपलब्धि यही भी मानी जाती है कि उसने सदियों से चले आ रहे गणतन्त्रों को अपनी अधीनता मानने को बाध्य किया। उसने मालव, अर्जुनायन, यौधेय, मद्रक, आभीर, प्रार्जुन, सनकानिक,

काक, खार्परिक जैसे गणराज्यों की, जो पंजाब और मध्यभारत में अवस्थित थे, स्वतन्त्रता समाप्त कर दी तथा उन्हें अपना अधीनस्थ बनाकर कर देने को बाध्य किया।

(iv) विदेशी राज्यों से सम्बन्ध– प्रयाग-प्रशस्ति की तेईसवीं एवं चौबीसवीं पंक्ति में उल्लिखित विदेशी शक्तियों के नाम से ज्ञात होता है कि अनेक विदेशी राज्यों ने समुद्रगुप्त की सेवा में उपहार एवं कन्याएँ प्रस्तुत कर उससे मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध स्थापित किए थे। वे उसकी विजयों व बढ़ती शक्ति को देखकर उससे भयभीत हो उठे। इतना ही नहीं, इन शक्तियों में प्रमुख: कुषाण, शक-मुरुण्ड, सिंहल तथा अन्यान्य द्वीपवासी थे, जिन्हें क्रमश: देवपुत्र-शाहि-शाहानुशाही, शक-मुरुण्ड, सिंहलद्वीपवासी तथा सर्वद्वीपवासी के नाम से जाना जाता था।

(v) समुद्रगुप्त द्वारा अश्वमेध यज्ञ– अश्वमेध यज्ञ तत्कालीन भारत में साम्राज्यवाद का प्रतीक था। अश्वमेध यज्ञ करने की योग्यता थी चक्रवती सम्राट होना और समुद्रगुप्त निश्चय ही अपनी विजयों के कारण एक चक्रवती सम्राट था। प्रयाग-प्रशस्ति में अश्वमेध किए जाने का उल्लेख न होना यह सिद्ध करता है कि यह घटना प्रशस्ति के उत्कीर्णन के बाद की है। इस घटना की स्मृति में 'अश्वमेध प्रकार' के स्वर्ण सिक्के प्रचलित किए गए थे। इनके प्रमुख भाग पर यूप (यज्ञ-स्तम्भ) से बधाँ अश्व का चित्र एवं 'अश्वमेध पराक्रम:' अंकित है। कई गुप्त अभिलेखों में उसे 'चिरकाल से न होने वाले अश्वमेध यज्ञ का अनुष्ठान करने वाला' कहा गया है।

(vi) साम्राज्य विस्तार– समुद्रगुप्त ने अपनी अनेकानेक विजयों से एक विशाल साम्राज्य की नींव रखी। समुद्रगुप्त के साम्राज्य में लगभग सम्पूर्ण उत्तरी भारत, छत्तीसगढ़ व ओडिशा के पठार तथा पूर्वी तट के अनेक प्रदेश सम्मिलित थे। इस प्रकार उसका साम्राज्य पूर्व में ब्रह्मपुत्र, दक्षिण में नर्मदा तथा उत्तर में कश्मीर की तलहटी तक विस्तृत था।

4. ''चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य एक कुशल सेनानायक एवं राजपुरुष (प्रशासक) था।'' इस कथन की विवेचना कीजिए।

उ०– चन्द्रगुप्त द्वितीय की गणना भारत के महान् सम्राटों में की जाती है। चन्द्रगुप्त एक कुशल सेनानायक एवं राजपुरुष या इसे निम्नलिखित शीर्षकों में निर्धारित किया जा सकता है–

(i) महान विजेता– चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य कुशल प्रशासक होने के साथ-साथ एक महान विजेता भी था। उसने अपने पिता समुद्रगुप्त की राज्य-सीमाओं का विस्तार किया। उसने पश्चिमी भारत में शकों को पराजित कर देश को विदेशी शासन से मुक्त करा दिया। उसने बलख पर विजय तथा कुषाण राज्य का अन्त करके उत्तर-पश्चिमी सीमा को सुरक्षित किया। इससे भारतीय सैनिक शक्ति का, विदेशी भी लोहा मानने लगे थे, इन विजयों के फलस्वरूप उसने विक्रमादित्य की उपाधि धारण की जिसका वह सर्वथा पात्र था। **आर० सी० मजूमदार** ने चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के विषय में कहा है कि चन्द्रगुप्त प्रथम ने विजयों को जो सिलसिला आरम्भ किया उसे चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य ने पूर्ण किया।

(ii) महान राजनीतिज्ञ– चन्द्रगुप्त द्वितीय अपने पिता की ही भाँति एक नीति-निपुण राजनीतिज्ञ था, जिसने वैवाहिक सम्बन्धों की नीति से साम्राज्य का सृदृढ़ीकरण किया। वाकाटकों से वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित करके उसने भारत की एकमात्र तत्कालीन शक्ति का तटस्थ कर दिया। वास्तव में वह एक महत्त्वाकांक्षी व्यक्ति तथा श्रेष्ठ सेनानी था। इसलिए वह अपने राज्य में पूर्वी पंजाब, काठियावाड़, मालवा, गुजरात को मिलाकर विशाल साम्राज्य का रूप देने में सफल हुआ।

(iii) कुशल प्रशासक– चन्द्रगुप्त द्वितीय एक कुशल प्रशासक था। उसने शासनकाल में प्रजा सुखी और समृद्ध थी। फाह्यान ने चन्द्रगुप्त द्वितीय के प्रशासन की भूरि-भूरि प्रशंसा की है। **विंसेन्ट स्मिथ** के अनुसार, ''चन्द्रगुप्त द्वितीय एक सशक्त शासक था। उसने विशाल साम्राज्य के निर्माण के साथ उसको स्वस्थ प्रशासन देकर अपने आपको इतिहास में प्रसिद्ध कर लिया।''

(iv) धर्म सहिष्णु शासक– चन्द्रगुप्त वैष्णव धर्मावलम्बी था। उसके अभिलेखों एवं मुद्राओं में उसे 'परमभागवत्' कहा गया, परन्तु वह अन्य धर्मों के प्रति सहिष्णु भी था। उसके शासन में अन्य धर्मों के लोग उच्च पदों पर आसीन थे। उसके मंत्री वीरसेन तथा शिखर स्वामी शैव धर्म के अनुयायी थे, जबकि उसका सेनापति आम्रकार्दव बौद्ध था।

(v) साहित्यानुरागी तथा कला प्रेमी– चन्द्रगुप्त द्वितीय की महानता उसके साम्राज्य निर्माण में नहीं बल्कि उसके शानदार बौद्धिक पुनरुत्थान में निहित थी, जो कला, विज्ञान और साहित्यिक क्षेत्र में परिलक्षित हुई। उस सुसंगठित प्रशासनिक तंत्र में निहित थी, जिसमें अद्‌भुत सुख, शान्ति एवं समृद्धि का भोग जनता करती थी। उसके दरबार में महाकवि कालिदास जैसी शिरोमणी विभूति प्रतिष्ठित थी। वस्तुत: चन्द्रगुप्त द्वितीय के शासनकाल में हुए बहुआयामी सांस्कृतिक उत्कर्ष के कारण ही गुप्त काल स्वर्णकाल कहलाने का अधिकारी बना।

5. गुप्तकाल की कला पर निबन्ध लिखिए।

उ०– गुप्तकालीन कलाएँ– कला की दृष्टि से गुप्तकाल बड़े गौरव का युग था। गुप्तकाल की कला में परिष्कृति और संयम का मेल दृष्टिगोचर होता है। गुप्तकालीन कला का विवेचन इस प्रकार से है–

(i) चित्रकला– गुप्तकालीन चित्रकला के उदाहरण अजन्ता तथा बाघ की गुफाओं में मिलते हैं। चित्रों में रंग-संयोजन अत्यधिक प्रभावशाली है। इतनी शताब्दियों के बाद भी इनके रंग आज भी वैसे ही हैं। महात्मा बुद्ध, देवी-देवताओं तथा

पशु-पक्षियों के चित्रों को अत्यन्त कलात्मक रूप से चित्रित किया गया है। चित्रों में भावों का चित्रण देखते ही बनता है। अजन्ता के चित्रों में मैत्री, करुणा, प्रेम, क्रोध, हर्ष, लज्जा, चिन्ता, घृणा आदि सभी के भाव स्पष्ट दिखाई देते हैं। अजन्ता की चित्रकला भारत की प्रतिनिधि कला है। अजन्ता की चित्रकला भारतीय चित्रकला की उन्नत व्यवस्था का प्रतिनिधित्व करती है।

(ii) मूर्तिकला– गुप्तकाल में मूर्तिकला में भी अनेक नवीन आयाम आए। अब पत्थरों पर मानवीय आकृतियों को खोदा जाने लगा था। मूर्तियों पर बाह्य तथा आंतरिक भावों की अभिव्यक्ति दर्शनीय है। गुप्तकालीन कला गान्धार शैली से पृथक् हो गई थी क्योंकि अनेक ऐसी सुन्दर मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं, जो विशुद्ध रूप से भारतीय कला का प्रतिनिधित्व करती हैं।
गुप्तकाल में निर्मित प्रभामण्डल से अलंकृत महात्मा बुद्ध की मूर्तियाँ भी प्राप्त हुई हैं। इस काल की मूर्तियाँ सारनाथ तथा मथुरा से भी प्राप्त हुई हैं। सारनाथ की बुद्धप्रतिमा गुप्तकालीन मूर्तिकला का सर्वोत्कृष्ट उदाहरण है। यह मूर्ति रत्नजड़ित है। इसमें बुद्ध को धर्म-चक्रप्रवर्तन मुद्रा में बैठे हुए दिखाया गया है। इस मूर्ति में बुद्ध के घुँघराले केश, अति महीन वस्त्र तथा आभूषण दर्शकों का मन मोह लेते हैं। गुप्तकाल में निर्मित शिव, विष्णु तथा सूर्य आदि देवताओं की भी सुन्दर मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं।

(iii) संगीत कला– वास्तुकला, मूर्तिकला तथा चित्रकला की भाँति संगीतकला की प्रगति भी इस काल में अत्यधिक हुई। गुप्तकालीन संगीतकला का स्पष्ट परिचय उस समय की मुद्राओं तथा 'प्रयाग प्रशस्ति' से प्राप्त होता है। 'प्रयाग प्रशस्ति' से महान सम्राट समुद्रगुप्त के संगीतज्ञ होने की जानकारी प्राप्त होती है। अनेक मुद्राओं पर सम्राट का वीणा बजाते हुए चित्र अंकित है। समुद्रगुप्त की भाँति चन्द्रगुप्त भी महान संगीत-प्रेमी था।

(iv) धातुकला– गुप्तकाल में धातुकला भी अत्यन्त उन्नत अवस्था में थी। बुद्ध की ताम्र-प्रतिमाएँ तथा दिल्ली के निकट महरौली का लौह स्तम्भ इसके उत्कृष्ट उदाहरण हैं। यह स्तम्भ शताब्दियों से धूप तथा वर्षा में रहने के पश्चात् भी आज तक जंग-विहीन खड़ा हुआ है और धातु-वैज्ञानिकों के लिए एक पहेली भी बना हुआ है।

(v) मुद्रा-कला– गुप्तकालीन सिक्के सोने तथा चाँदी की धातुओं के बने हुए हैं। गुप्तकालीन मुद्रा-कला से ही उस समय के मुद्रा कौशल का पता चलता है। चन्द्रगुप्त द्वितीय तथा कुमारगुप्त के सिक्कों पर भारतीय मुद्रा-कला की स्पष्ट छाप देखने को मिलती है।

(vi) वास्तुकला– पर्सी ब्राउन ने लिखा है, ''भारत में राजनीतिक एकता, प्रशासनिक स्थिरता एवं राज्याश्रय का सर्वाधिक प्रभाव गुप्तकालीन वास्तुकला पर दिखाई देता है।'' गुप्तकालीन स्थापत्य कला के सर्वोत्तम उदाहरण मंदिर थे। इस काल के मंदिर उँचे चबूतरों पर पत्थर व ईंटों से बनाए जाते थे। मंदिरों की छत प्राय: चपटी होती थी। देवगढ़ के दशावतार मंदिर का शिखर शुरू में 40 फुट उँचा था। गुप्तकालीन मन्दिरों के मुख्य आकर्षण केन्द्र मूर्ति स्थान के प्रवेश द्वार थे।

6. ''चन्द्रगुप्त द्वितीय (विक्रमादित्य) की उपलब्धियों का विश्लेषण कीजिए।

उ०– चन्द्रगुप्त द्वितीय ने अपने शासनकाल में निम्नांकित उपलब्धियाँ प्राप्त की थीं—

(i) गणराज्यों का विकास– सबसे पहले चन्द्रगुप्त ने बाह्य आक्रमणों से अपने साम्राज्य की सुरक्षा हेतु प्रयास किया। इस समय विदेशी राज्यों और गुप्त साम्राज्यों के बीच मद्र गण से लेकर दक्षिण के खरपरिक गण तक कई छोटे-छोटे गणराज्य थे। यद्यपि ये सभी गणराज्य स्वतन्त्रताप्रेमी थे, परन्तु उनकी शक्ति इतनी कम थी कि वे किसी बाह्य शक्ति का सामना नहीं कर सकते थे। अतएव चन्द्रगुप्त ने उन पर आक्रमण किया और उन्हें पराजित कर गुप्त साम्राज्य में विलीन कर दिया।

(ii) अवन्ति की विजय– मध्य भारत के गणराज्यों को अपने साम्राज्य में मिलाने के पश्चात् चन्द्रगुप्त द्वितीय ने अवन्ति की ओर ध्यान दिया। इस समय अवन्ति शकों के अधिकार में और वहाँ का शासक शक क्षत्रप रुद्रसिंह तृतीय था। चन्द्रगुप्त ने शीघ्र ही अवन्ति पर आक्रमण कर दिया। रुद्रसिंह उसका सामना न कर सका और अवन्ति एवं उसके समीप के प्रदेश-काठियावाड़, मालवा, गुजरात आदि पर चन्द्रगुप्त का अधिकार हो गया।

(iii) पूर्वी प्रदेशों पर अधिकार– चन्द्रगुप्त ने अपने साम्राज्य को पूर्व दिशा की ओर विस्तृत करने का भी प्रयत्न किया। दिल्ली के महरौली लौह स्तम्भ से ज्ञात होता है कि चन्द्रगुप्त द्वितीय के शत्रु, नृपति, समतट, दवाक और कामरूप के राजा अपनी विशाल सेनाओं के साथ बंगाल में एकत्र हुए। चन्द्रगुप्त ने इसकी सूचना पाते ही सैन्य अभियान करके इन राजाओं को हराकर संघ को भंग कर दिया।

(iv) पश्चिमी प्रदेशों पर अधिकार– इसके पश्चात् चन्द्रगुप्त ने कुषाण जाति पर आक्रमण किया। इस जाति का पश्चिमी प्रदेशों पर अधिकार था। उन्हें परास्त कर उनके प्रदेशों पर चन्द्रगुप्त ने अधिकार कर लिया। महरौली-लौह-स्तम्भ के अनुंसार चन्द्रगुप्त द्वितीय ने सिन्धु और उसकी सहायक नदियों को पार कर सीमान्त प्रदेशों पर भी अपना अधिकार कर लिया था। इस प्रकार उसका पश्चिमी भारत में सम्पूर्ण पंजाब एवं सीमान्त प्रदेशों पर अधिकार स्थापित हो गया था।

(v) **दक्षिण भारत की विजय–** रामगुप्त की कमजोरी का लाभ उठाकर दक्षिणी राज्यों के शासकों ने गुप्त साम्राज्य को वार्षिक कर देना बन्द कर दिया था। चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य इसे सहन न कर सका और उसने उन सभी शासकों को अपने पराक्रम के समक्ष पुन: गुप्त साम्राज्य की प्रभुसत्ता मानने को विवश कर दिया। इस प्रकार, उसने दक्षिण भारत पर भी अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया।

(vi) **साम्राज्य विस्तार–** चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य का साम्राज्य उत्तर में काठियावाड़ तक के समस्त प्रदेशों तक विस्तृत था। इसके अतिरिक्त उत्तर प्रदेश, गुजरात, सौराष्ट्र तथा मालवा आदि प्रदेशों पर भी उसका अधिकार था। शकों एवं कुषाणों को अपने साम्राज्य से निकलने के पश्चात् उसने 'विक्रमादित्य' की उपाधि धारण की। इस प्रकार, वह एक दिग्विजयी सम्राट के रूप में भारतीय इतिहास में अमर है।

(vii) **अश्वमेध यज्ञ–** श्रीरत्नाकर का मत है कि चन्द्रगुप्त द्वितीय ने अश्वमेध यज्ञ किया था, परन्तु अधिकांश विद्वान रत्नाकर के मत से सहमत नहीं हैं।

7. गुप्तकालीन इतिहास पर प्रकाश डालिए।

उ०– **गुप्तकालीन इतिहास के स्रोत–** मौर्य साम्राज्य के बाद भारत के इतिहास का दूसरा महत्वपूर्ण साम्राज्य गुप्त वंश था। गुप्तकाल भारतीय इतिहास का स्वर्ण-युग था क्योंकि इस युग में भारत ने राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, साहित्यिक तथा कालात्मक क्षेत्रों में अभूतपूर्व उन्नति की और भारतीय संस्कृति का व्यापक प्रचार-प्रसार हुआ। यही कारण है कि गुप्तकालीन इतिहास की जानकारी के काफी स्रोत उपलब्ध हैं। इन स्रोतों का संक्षिप्त विवेचन निम्नानुसार है—

(i) **साहित्य–**

(क) **पुराण–** वायु पुराण, मत्स्य पुराण, ब्रह्माण्डपुराण, विष्णु पुराण, भागवत पुराण आदि से गुप्तकालीन सम्राटों की वंशावली, गुप्त साम्राज्य के प्रान्तों और उनकी सीमाओं का पता चलता है।

(ख) **धर्मशास्त्र और स्मृतियाँ–** नारद स्मृति, बृहस्पति स्मृति और 'कामन्दक' के नीतिसार से भी गुप्तकाल के इतिहास की जानकारी मिलती है।

(ग) **काव्य एवं नाट्य साहित्य–** 'सेतुबन्धु काव्य', 'कौमुदी महोत्सव', 'देवीचन्द्रगुप्तम', 'मुद्राराक्षस', मृच्छकटिकम्, मालविकाग्निमित्रम्, कुमारसम्भवम्, रघुवंशम्, हरिवंशपुराण, मंजूश्रीमूलकल्प, वसुबन्धुचरित आदि के द्वारा भी गुप्तकाल के इतिहास के विषय में पर्याप्त जानकारी मिलती है।

(घ) **चीनी ग्रन्थ–** फाह्यान की फो-क्यो-की, युवांगच्यांग का सि-यू-की नामक ग्रन्थ और इत्सिंग आदि चीनी यात्रियों के विवरण भी गुप्तकालीन इतिहास की पर्याप्त जानकारी देते हैं।

(ii) **स्मारक–** गुप्त्कालीन स्मारक इस युग की महानता के प्रतीक हैं। इन स्मारकों में मथुरा, वाराणसी और नालन्दा स्कूल के स्मारक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। सारनाथ में रखी हुई बुद्ध की मूर्ति भारतीय कला का उत्कृष्ट नमूना है। इस युग की मन्दिर निर्माण कला बेजोड़ है। देवगढ़ (ललितपुर), साँची (विदिशा), भीतरगाँव (कानपुर) तथा तिगवा (जबलपुर) के मन्दिर इसके उदाहरण हैं। अजन्ता और एलोरा की चित्रकला तो सारे संसार में प्रसिद्ध हैं।

(iii) **अभिलेख–** गुप्तकालीन इतिहास के सबसे महत्त्वपूर्ण स्रोत अभिलेख हैं। **डा० फ्लीट** ने 1888 ई० में अपनी पुस्तक 'Corpus Incriptionum Indicarum' में गुप्तकालीन अभिलेखों को सूचीबद्ध किया है। इनमें 12 अभिलेख आरम्भिक गुप्त सम्राटों के हैं। 19 वें और 20 वें अभिलेख में गुप्त राजा 'बुद्धगुप्त' और 'भानुगुप्त' का उल्लेख है। समुद्रगुप्त का 'इलाहाबाद स्तम्भ लेख' उसकी विजय के सम्बन्ध में पर्याप्त जानकारी प्रदान करता है। 'एरण शिलालेख' भी समुद्रगुप्त के शासनकाल की जानकारी देता है।

चन्द्रगुप्त द्वितीय के अभिलेखों में मथुरा शिलालेख, साँची शिलालेख, उदयगिरि शिलालेख और गढ़वा शिलालेख विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण हैं। स्कन्दगुप्त के इतिहास की सूचना भीतरी स्तम्भ लेख, जूनागढ़ चट्टान अभिलेख, बिहार स्तम्भ लेख, काहोम स्तम्भ लेख और इन्दौर के ताम्रपत्र आदि से मिलती है। महरौली के लौह स्तम्भ लेख में राजा चन्द्र का वर्णन है, जिसने बंग प्रदेश पर विजय प्राप्त की थी। भीतरी अभिलेखों में कुमारगुप्त प्रथम के काल में हुए स्कन्दगुप्त, पुष्यमित्रों और हूणों के युद्धों का उल्लेख है।

इनके अतिरिक्त कुमारगुप्त द्वितीय का सारनाथ प्रतिमा लेख और भीतरी मुद्रा लेख, बुद्धगुप्त का सारनाथ प्रतिमा लेख दामोदरपुर का ताम्र लेख और एरण स्तम्भ लेख, वैन्यगुप्त का गुणधर ताम्रपत्र लेख, भानुगुप्त का एरण स्तम्भ लेख, आदित्य सेन का अफसद शिलालेख, हूण शासक तोरमाण का एरण लेख, मिहिरकुल का ग्वालियर शिलालेख, वर्धन सम्राट हर्षवर्धन का बांसखेड़ा ताम्रपत्र लेख आदि अभिलेखों से गुप्तकालीन इतिहास पर व्यापक प्रभाव पड़ता है।

(iv) **मुद्राएँ–** वैशाली (मुजफ्फरपुर) से प्रचुर संख्या में मिली मुद्राओं से भी गुप्त्कालीन इतिहास पर प्रकाश पड़ता हैं इन मुद्राओं के भिन्न-भिन्न रूपों के द्वारा हमें गुप्तकाल के प्रान्तीय और स्थानीय प्रशासन की जानकारी प्राप्त होती है। इन मुद्राओं में ध्रुवदेवी की मुद्रा मुख्य है।

(v) **सिक्के–** गुप्त सम्राटों के विभिन्न प्रकार के सिक्के प्रचुर मात्रा में प्राप्त हुए हैं। इनमें समुद्रगुप्त, चन्द्रगुप्त द्वितीय, कुमारगुप्त प्रथम, स्कन्दगुप्त, बुद्धगुप्त नरसिंह गुप्त के सिक्के प्रमुख हैं। इनसे तत्कालीन इतिहास और गुप्तकाल की आर्थिक तथा धार्मिक स्थिति और तिथिक्रम की जानकारी मिलती हैं।

8. गुप्तवंश के पतन के कारणों की विवेचना कीजिए।

उ०– गुप्त साम्राज्य के विघटन के कारण– समुद्रगुप्त तथा चन्द्रगुप्त द्वितीय के पश्चात् गुप्त वंश के अन्य सम्राट, गुप्त साम्राज्य के पूर्व प्रतिष्ठा के अनुरूप शासन न कर सके, जिसके परिणामस्वरूप छठी शताब्दी के प्रारम्भ में गुप्त साम्राज्य के पतन के कारणों का विवेचन निम्नलिखित है।

(i) **अयोग्य एवं दुर्बल उत्तराधिकारी–** गुप्त साम्राज्य का उत्थान समुद्रगुप्त, चन्द्रगुप्त द्वितीय तथा कुमार गुप्त प्रथम के अधीन अपनी चरम सीमा पर था। समुद्रगुप्त के पश्चात् गुप्त साम्राज्य के पतन की प्रक्रिया प्रांरम्भ हो गई।

(ii) **उत्तराधिकार के नियमों का अभाव–** गुप्त साम्राज्य में उत्तराधिकार की समुचित व्यवस्था का अभाव था। जिसके कारण प्रत्येक राजा की मृत्यु के पश्चात् सिंहासन प्राप्ति हेतु संघर्ष आवश्यक था। स्कन्दगुप्त के पूरवर्ती राजाओं के काल में राजदरबार पारस्परिक विवादों, षडयन्त्रों तथा गुप्त योजनाओं का केन्द्र बन गया था।

(iii) **बौद्ध धर्म का उत्तरोत्तर बढ़ता हुआ प्रभाव–** गुप्त साम्राज्य के प्रारम्भिक शासक हिन्दू धर्म के अनुयायी थे। अत: उन्होनें अपने शासनकाल में हिन्दू धर्म को विकसित करने हेतु अथक प्रयास किए थे। लेकिन उनके पश्चात् आने वाले अधिकांश शासक बौद्ध धर्म के प्रति आकृष्ट होने लगे। इनमें बालादित्य तथा बुद्धगुप्त प्रमुख थे।

(iv) **सीमाओं की सुरक्षा की अवहेलना–** गुप्त साम्राज्य के अन्तिम शासकों ने सेना के संगठन तथा सीमाओं की रक्षा की उपेक्षा प्रारम्भ कर दी गई थी। उनके द्वारा सतलज के पार के क्षेत्र को विजित करने का प्रयत्न नहीं किया गया, जबकि यह क्षेत्र सामाजिक दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण था। सीमाओं पर समुचित रक्षा व्यवस्था के अभाव के कारण ही हूण जाति के आक्रमण प्रारम्भ हो गये थे।

(v) **आन्तरिक विद्रोह–** केन्द्रीय सत्ता के निर्बल हो जाने के कारण विद्रोह होने स्वाभाविक थे। अत: साम्राज्य की निर्बलता के कारण अनेक राज्यों में विद्रोह प्रारम्भ हो गए तथा प्रान्तों के गर्वनरों ने भी विद्रोह प्रारम्भ कर दिया। स्कन्दगुप्त को भी इस प्रकार के अनेक आन्तरिक विद्रोहों का सामना करना पड़ा था। गुप्त शासक कुमारगुप्त की मृत्यु भी एक ऐसे ही विद्रोह के अनन्तर हुई थी। इन आन्तरिक विद्रोहों के परिणामस्वरूप अनेक छोटे राज्य; जैसे—कन्नौज, वल्लभी तथा मालवा आदि स्वतन्त्र हो गए थे।

(vi) **साम्राज्य की विशालता–** गुप्त साम्राज्य का विस्तार बहुत अधिक हो गया था, लेकिन उसके अनुरूप साम्राज्य की सुरक्षा व्यवस्था इतनी अधिक सुदृढ़ न थी। दूरस्थ प्रान्तों में हुए विद्रोहों का नियन्त्रण करना बड़ा कठिन कार्य था। उस काल में आवागमन के साधनों का विकास न होने के कारण भी प्रान्तों पर प्रभावी नियन्त्रण कठिन था। अत: साम्राज्य की विशालता ने पतन की प्रक्रिया को और अधिक तीव्र कर दिया।

(vii) **हूणों के आक्रमण–** हूणों के आक्रमण गुंप्त शासक कुमारगुप्त के काल में आरम्भ हो गए थे। वास्तव में हूणों द्वारा किए गए आक्रमण गुप्त साम्राज्य के पतन के मुख्य कारणों में से एक थे। **डॉ० वी० ए० स्मिथ** के अनुसार, ''पाँचवीं और छठी शताब्दी के हूणों के बर्बर आक्रमणों ने उत्तरी और पश्चिमी भारत के राजनीतिक और समाजिक इतिहास में एक विशेष परिवर्तन ला दिया। उन्होंने गुप्त राज्यों को छिन्न-भिन्न करके अनेक नए राज्यों के उदय के लिए क्षेत्र तैयार कर दिया।''

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर यह स्पष्ट होता है कि गुप्त साम्राज्य के पतन के लिए अनेक कारण उत्तरदायी थे। इस सम्बन्ध में **डॉ.० रमेशचन्द्र मजूमदार** ने लिखा है— ''गुप्त राज्य की अवनति और पतन के वही कारण थे, जो पुराने समय में मौर्य राज्य और पिछले समय में मुगल राज्य की अवनति के थे।''

9. विजेता एवं प्रशासक के रूप में समुद्रगुप्त का मूल्यांकन कीजिए।

उ०– समुद्रगुप्त की गिनती भारत के महान विजेताओं और परम पराक्रमी सेनानायकों में की जाती है। उसके सिक्कों पर मुद्रित 'पराक्रमांक' (पराक्रम है पहचान जिसकी), व्याघ्रपराक्रम: (व्याघ्र के समान पराक्रमी) तथा 'अप्रतिरथ' (जिसका कोई प्रतिद्वन्द्वी नहीं है) जैसी उपाधियाँ उसके प्रचण्ड पराक्रम और अद्‌भुत शौर्य को रेखांकित करती हैं। प्रयाग-प्रशस्ति में कहा गया है कि उसे सदैव अपनी भुजाओं के बल और पराक्रम का ही सहारा रहता था। वास्तव में उसने भुजबल से भारतवर्ष के एक बड़े भूखण्ड पर अपना एकछत्र राज्य स्थापित किया और इस प्रकार पुन: देश की राजनीतिक एकता स्थापित की। वह वास्तविक अर्थ में चक्रवर्ती सम्राट था। **रमेशचन्द्र मजूमदार** के शब्दों में, ''समुद्रगुप्त महान प्रभावशाली और व्यक्तित्व का धनी था। उसने भारत के इतिहास में एक नए युग का आरम्भ किया। वह अखिल भारतीय साम्राज्य के उच्चादर्शों से प्रेरित था। उसने छोटे-छोटे राज्यों को संगठित किया तथा आन्तरिक शान्ति स्थापित करने में पूरी तरह सफल रहा।''

समुद्रगुप्त की प्रतिभा बहुमुखी थी। वह बड़ा वीर, साहसी, पराक्रमी, बलवान, शस्त्र-शास्त्रानुरागी, संगीतज्ञ, काव्यकोविद, दयालु, एवं प्रजापालक था। भारत के इतिहास में ऐसा कोई सम्राट नहीं हुआ, जिसमें एक साथ इतनी योग्यताएँ निहित हों। हरिषेण ने प्रयाग-प्रशस्ति (इलाहाबाद) में इन्हीं गुणों का समावेश करते हुए लिखा, ''ऐसा कौन-सा गुण है, जो उसमें न हो?''

धार्मिक सहिष्णुता उसके चरित्र की महान गरिमा थी। वैष्णव धर्म में अपार श्रद्धा रखते हुऐ उसने प्रसिद्ध बौद्ध विद्वान 'वसुबन्धु' को अपना मंत्री बनाया। संगीत तथा काव्य कला में वह पारंगत था। विद्वानों ने उसे 'कविराज' की उपाधि से विभूषित किया। उसमें चन्द्रगुप्त मौर्य के समान सैनिक योग्यता थी एवं वह सम्राट अशोक की भाँति प्रजापालक था, परन्तु साहित्यिक योग्यता में वह दोनों से आगे था।

विन्सेन्ट स्मिथ ने उसकी विजय योजना से प्रभावित हो उसे भारत का नेपोलियन कहा है। नेपोलियन की भाँति उसने युद्ध लड़े और विशाल साम्राज्य का निर्माण किया परन्तु काव्य एवं संगीत समुद्रगुप्त की विशेष योग्यता थी। नेपोलियन को वाटरलू के युद्ध में मुँह की खानी पड़ी थी। समुद्रगुप्त को एक भी युद्ध में पराजय का मुँह नहीं देखना पड़ा। वाटरलू के युद्ध ने तो नेपोलियन को निर्वासित-सा जीवन व्यतीत करने के लिए विवश कर दिया। समुद्रगुप्त को अपनी विजय यात्रा में सर्वदा विजयश्री ही हाथ लगी। नेपोलियन में कूटनीति का अभाव था। वह आवश्यकता से अधिक महत्वाकांक्षी था। नेपोलियन ने रूस पर आक्रमण कर अदूरदर्शिता का परिचय दिया, जबकि समुद्रगुप्त ने दक्षिण के राज्यों को मित्र बनाकर अपनी कूटनीति का उदाहरण प्रस्तुत किया। नेपोलियन को अपने जीवनकाल में अपना तथा अपने राज्य का पतन देखने को मिला, जबकि समुद्रगुप्त जीवनपर्यन्त अपनी विजयों का लाभ उठाता रहा। संक्षेप में भारत के इतिहास में कोई ऐसा सम्राट नहीं हुआ जिसकी योग्यता इतनी बहुमुखी हो, जितनी समुद्रगुप्त की।

10. गुप्तकालीन कलाओं पर विस्तृत रूप से प्रकाश डालिए।

उ०– उत्तर के लिए विस्तृत उत्तरीय प्रश्न संख्या– 5 के उत्तर का अवलोकन करें।

11. गुप्तकालीन सामाजिक जीवन का वर्णन कीजिए।

उ०– गुप्तकालीन सामाजिक जीवन– गुप्तकालीन सामाजिक जीवन का विवेचन निम्नांकित बिन्दुओं के अन्तर्गत किया जा सकता है–

(i) परिवार– गुप्तकाल में परिवार समाज की मूल इकाई मानी जाती थी। संयुक्त परिवार को महत्व दिया जाता था। पिता की मृत्यु के उपरान्त ज्येष्ठ पुत्र को परिवार का प्रधान माना जाता था। पारिवारिक कल्याण तथा समृद्धि हेतु सामाजिक, आर्थिक एवं धार्मिक कार्य किये जाते थे। परिवार में माता, पिता, वधु तथा पुत्री के रूप में स्त्री को प्रमुख स्थान प्राप्त था।

(ii) भोजन व पेय पदार्थ– फाह्यान ने अपने विवरणों में लिखा है कि गुप्तकाल में व्यक्ति सूअर तथा मुर्गियाँ आदि नहीं पालते थे तथा प्याज, लहसुन व शराब का उपयोग भी नहीं करते थे। सामान्य रूप से स्त्रियाँ तथा ब्राह्मण शाकाहारी थे तथा भोजन व खानपान में शुद्धता का ध्यान रखा जाता था। भोजन के उपरान्त पान (ताम्बूल) खाने की प्रथा थी।

(iii) वस्त्र– साधारण वर्ग में प्राय: सूती वस्त्रों का प्रचलन था तथा सम्पन्न वर्ग के व्यक्ति रेशमी, ऊनी व बहुमूल्य वस्त्र पहनते थे। अधोवस्त्र तथा शाल का प्रयोग पुरुषों द्वारा तथा साड़ी, अरीय (दुपट्टा), चोली एवं नीवी (लहँगा) का प्रयोग स्त्रियों द्वारा किया जाता था। पुरुष पगड़ी भी बाँधते थे।

(iv) आभूषण एवं शृंगार सामग्री– गुप्तकालीन साहित्य से विदित होता है कि स्त्री एवं पुरुष सामान रूप से आभूषण-धारण करते थे। स्त्रियाँ माँग के बीचोंबीच टीका पहनती थीं। धार्मिक अनुष्ठानों में स्त्री-पुरुषों द्वारा आभूषण धारण किया जाना शुभ माना जाता था। कर्णफूल, मोती तथा स्वर्ण की मालाएँ, विविध रत्नों से जड़े कंगन, हार (निष्क), चूड़ियाँ (वलय), कड़े, करधनी व पायजेब, भुजबन्धु (केयूर) व आंगुलीयक मुख्य भूषण थे। अजन्ता के चित्रों से ज्ञात होता है कि तत्कालीन केश विन्यास की विधि आकर्षक थी किन्तु जटिल थी। कम बाल वाली स्त्रियाँ कृत्रिम बाल लगाती थीं। आँखों में काजल (कज्जल), शरीर पर अंगराग (पाउडर) तथा चन्दन का लेप, नाखूनों पर 'लाक्षा रस' का प्रयोग भी स्त्रियाँ करती थीं। पुरुष भी शृंगार-प्रिय थे। वे भी अपने वस्त्रों तथा शरीर पर इत्र, सुगन्ध आदि लगाते थे।

(v) मनोरंजन के साधन– गुप्तकालीन मुद्राओं से पता चलता है कि राजा तथा उच्च पदाधिकारियों के मनोरंजन के प्रमुख साधन आखेट आदि थे। पशु-पक्षियों को आपस में लड़ाकर भी मनोरंजन किया जाता था। नट, जादूगर, गायक, भट्ट तथा नाटक दल व्यवसाय के रूप में मनोरंजन के साधन थे। विभिन्न नाटकघरों में नाटकों का आयोजन किया जाता था। गुप्तकालीन साक्ष्यों में कौमुदी महोत्सव, वसन्तोत्सव, दीपोत्सव, रथ यात्रा, उद्यान यात्रा, वनक्रीड़ा आदि के उदाहरण मिलते हैं।

(vi) वर्ण-व्यवस्था– गुप्तकाल में वर्ण-व्यवस्था के नियम कठोर थे। व्यवहारिक रूप में इन नियमों का उल्लघंन किया जाता था। ब्राह्मणों को सर्वोच्च स्थान प्राप्त था। इन्हें 'भूमिदेव' (पृथ्वी के देवता) कहा जाता था। ये राजकर और प्राणदण्ड से पूर्णत: मुक्त थे। क्षत्रियों का मुख्य कार्य प्रजापालन, शासन, रणक्षेत्र, देश और धर्म की रक्षा आदि करना था। वैश्य व्यापार, वाणिज्य के साथ-साथ कृषि, पशुपालन तथा वस्त्र-व्यवसाय आदि करते थे। इस काल में शूद्र सैनिक-वृत्ति भी अपनाने लगे थे, किन्तु फिर भी उन्हें समाज में बहिष्कृत समझा जाता था। गुप्तकाल में वर्ण-परिवर्तन की अनुमति थी। गुप्तकाल में पारशव, आवष्ठ, चाण्डाल आदि जातियाँ भी थीं। चाण्डालों को अस्पृश्य समझा जाता था और उन्हें नगर के बाहर निवास करना पड़ता था।

(vii) वैवाहिक व्यवस्था– गुप्तकाल के प्राप्त लेखों से पता चलता है कि इस समय बहुविवाह और अन्तर्जातीय विवाह का प्रचलन था। उच्च वर्ण के पुरुष निम्न वर्ण में विवाह कर सकते थे, अत: अनुलोम विवाहों का प्रचलन था। इसके साथ-साथ प्रतिलोम विवाह भी प्रचलित थे। शूद्र कन्याओं से भी विवाह होने के कुछ उदाहरण मिलते हैं। अन्तर्जातीय विवाहों के कारण वर्णसंकर जातियों का जन्म हुआ था।

(viii) स्त्रियों की दशा– गुप्तकाल में स्त्री को विलासिता का साधन समझा जाने लगा था। अत: उनकी दशा पहले से निम्न हो गई थी। यद्यपि स्त्रियों को वैदिक शिक्षा ग्रहण करने का पूर्ण अधिकार था, किन्तु फिर भी वे इस क्षेत्र में पर्याप्त शिक्षा प्राप्त करने से वंचित रह जाती थीं। उच्च कुल एवं राजघराने की स्त्रियाँ सुशिक्षित एवं विविध कलाओं में दक्ष होती थीं। इस काल में स्त्रियों को सम्पत्ति का अधिकार प्राप्त था तथा शासकीय कार्यों में भी वे भाग ले सकती थीं। वाकाटक महारानी प्रभावतीगुप्त (चन्द्रगुप्त द्वितीय की पुत्री) ने स्वतन्त्रापूर्वक शासन किया था। गुप्तकाल में सती-प्रथा का प्रचलन शुरू हो गया था, यद्यपि पर्दा-प्रथा के प्रचलन के प्रमाण नहीं मिलते। कुछ विद्वानों ने घूँघट-प्रथा के प्रारम्भ का संकेत माना है। गुप्तकाल में गणिकाओं के बहुत-से उदाहरण मिलते हैं।

12. गुप्तकालीन आर्थिक जीवन के बारे में लिखिए।

उ०– गुप्तकालीन आर्थिक जीवन – इस काल में आर्थिक क्षेत्र में कृषि, उद्योग, व्यापार तथा बैंकिग में बहुत उन्नति हुई। अधिकांश कृषि वर्षा पर निर्भर करती थी। मनुस्मृति में कहा गया है कि भूमि पर उसी का अधिकार होता था, जो सर्वप्रथम जंगल की भूमि को कृषि योग्य बनाता था। उस समय प्रचलन में लगभग 5 प्रकार की भूमि का उल्लेख मिलता है—

(i) क्षेत्र भूमि— कृषि योग्य भूमि।
(ii) वास्तुभूमि— निवास योग्य भूमि।
(iii) चरागाह भूमि— चारे के योग्य भूमि।
(iv) सिल भूमि— ऐसी भूमि जो जोतने योग्य थी।
(v) अप्रहत भूमि— जंगली भूमि।

गुप्तकाल में चावल, गेहूँ, अदरक, सरसों, तरबूज, इमली, नारियल, आड़ू, खूबानी, संतरा, इत्यादि मुख्य अनाज एवं फल थे। गान्धार अभिलेख में कुओं, तालाबों, पीने का पानी एकत्र करना, उद्यानों, झीलों, पुलों आदि नगर की सुविधाओं का उल्लेख किया गया है। इस समय श्रेणियाँ व्यावसायिक उद्यम एवं निर्माण क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते थीं। श्रेणियाँ बैंक का काम करती थी। ब्याज के रूप में प्राप्त धन का उपयोग मन्दिरों में दीपक जलाने में किया जाता था। 437-38 ई० के 'मन्दसौर अभिलेख' में रेशम बुनकरों की श्रेणी द्वारा विशाल सूर्य मन्दिर के निर्माण एवं मरम्मत का उल्लेख मिलता है। ये श्रेणियाँ अपने कानून एवं परम्परा भी अवहेलना करने वालों को सजा दे सकती थीं। 'सार्थवाह' व्यापारिक कारवाँ का नेतृत्व करता था। व्यापारिक समितियों का निगम तथा निगम प्रधान 'श्रेष्ठि' कहलाता था।

गुप्त काल में उज्जैन, भड़ौच, प्रतिष्ठान, विदिशा, प्रयाग, पाटलिपुत्र, वैशाली, ताम्रलिप्ति, मथुरा, अहिच्छत्र, कौशाम्बी आदि प्रमुख व्यापारिक नगर थे। गुप्त शासकों ने सर्वाधिक स्वर्ण मुद्राएँ जारी कीं। इनकी स्वर्ण-मुद्राओं को अभिलेखों में दीनार कहा गया है। फाह्यान के अनुसार, साधारण जनता वस्तु-विनिमय या कौड़ियों से काम चलाती थी। गुप्तकाल में वस्त्र उद्योग सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण था। गुप्तकाल के लोगों का जीवन-स्तर काफी ऊँचा था। यह निश्चय से कहा जा सकता है कि विशेषकर नगरों के लोग समृद्धशाली जीवन व्यतीत करते थे।

विदेशों से आर्थिक अथवा व्यापारिक सम्पर्क– गुप्तकालीन भारत का विदेशी व्यापार पूर्वी तट पर स्थित बन्दरगाहों ताम्रलिप्ति, घंटशाला एवं कटूरा से दक्षिण-पूर्वी एशिया से तथा पश्चिमी तट पर स्थित भड़ौच, कैम्बे, सोपारा, कल्याण आदि बन्दरगाहों से भमध्य सागर एवं पश्चिमी एशिया के साथ व्यापार सम्पन्न होता था। विदेशी व्यापार पतन की ओर अग्रसर था। रेशम की माँग विदेशों में कम हो गयी थी क्योंकि रोमन जनता ने चीनियों से रेशम उत्पादन की तकनीक सीख ली थी। चीन और भारत के मध्य व्यापार सम्भवत: वस्तु विनिमय प्रणाली पर आधारित था क्योंकि न तो चीन ने सिक्के भारत में मिले हैं और न ही भारत के चीन में।

गुप्तकाल में प्रमुख देशों के साथ व्यापार

क्र०सं०	देश	बंदरगाह	निर्यात	आयात
1.	सिंघल (श्रीलंका)	अरिकमेडु, ताम्रलिप्ति	चंदन, लौंग, सुगन्धि (यहाँ से पश्चिमी देशों को भेजे जाते थे)	—
2.	पश्चिमी देश (अरबी व्यापारिक के द्वारा)।	कल्याण, मालाबार तट के बंदरगाह	लाल मिर्च, शीशम की लकड़ी, मोती, रत्न, सुगन्धि, शंख, चन्दन, अगर (एक प्रकार का वृक्ष जिसकी लकड़ी सुगन्धित होती है)	दास, दासियाँ, घोड़े
3.	चीन	ताम्रलिप्ति	चन्दन की लकड़ी, सूती किमखाब (को-ताई) (जावा के द्वारा)	रेशम, (जो श्रीलंका को निर्यात की जाती थी)
4.	हिन्देशिया, मलेशिया, सुवर्णदीप आदि	ताम्रलिप्ति	चावल, वस्त्र	मसाले, सोना-चाँदी

10 सम्राट हर्षवर्धन (Emperor Harshvardhan)

अभ्यास

निम्नलिखित तिथियों के ऐतिहासिक महत्व का उल्लेख कीजिए–

1. 664 ई० 2. 647 ई० 3. 643 ई० 4. 630 ई०
5. 641 ई० 6. 606 ई० 7. 600 ई० 8. 591 ई०

उ०– उत्तर के लिए पाठ्यपुस्तक के पृष्ठ संख्या– 122 पर तिथि सार का अवलोकन करें।

सत्य या असत्य बताइए–

उ०– प्रश्नोत्तर के लिए पाठ्यपुस्तक के पृष्ठ संख्या– 123 का अवलोकन करें।

बहुविकल्पीय प्रश्न

उ०– प्रश्नोत्तर के लिए पाठ्यपुस्तक के पृष्ठ संख्या– 123 का अवलोकन करें।

अतिलघु उत्तरीय प्रश्न

उ०– प्रश्नोत्तर के लिए पाठ्यपुस्तक के पृष्ठ संख्या 123 व 124 का अवलोकन करें।

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. एक प्रशासक के रूप में हर्ष का मूल्यांकन कीजिए।

उ०– एक प्रशासक के रूप में हर्ष का मूल्यांकन निम्न प्रकार है–

(i) हर्ष एक महान विजेता के साथ-साथ सफल विजेता भी था।
(ii) हर्ष एक कुशल प्रशासक भी था। वह अपनी प्रजा के कष्टों को जानने के लिए सदैव उत्सुक रहता था।
(iii) हर्ष एक धर्मपरायण शासक था साथ ही वह बहुत उदार प्रकृति का शासक भी था। उसने धर्मशालाओं में यात्रियों को निशुल्क आवास और भोजन की सुविधा प्रकट की।
(iv) हर्ष विद्या प्रेमी एवं उच्चकोटि का साहित्यकार भी था। उसकी रचनाएँ संस्कृत साहित्य की निधि हैं।
(v) हर्ष ने बौद्ध धर्म के प्रचार-प्रसार में काफी योगदान दिया।

2. सम्राट हर्ष की साहित्यिक अभिरुचि का वर्णन कीजिए।

उ०– हर्षवर्धन विद्वानों का बहुत सम्मान करता था और उनका आश्रयदाता था। हर्ष ने अपने दरबारी कवियों से रचनाएँ लिखने के लिए कहा था, जिनके संग्रह को जातक माला के नाम से जाना जाता था। बाणभट्ट हर्ष का दरबारी लेखक था, जिसने दो महान् ग्रन्थों की रचना की हर्षचरित तथा कादम्बरी। हर्ष ने स्वयं तीन नाटक लिखे–नागानन्द, रत्नावली और प्रियदर्शिका। संस्कृत साहित्य में इस नाटक ग्रन्थों को विशेष स्थान है। स्वयं बाणभट्ट ने हर्ष को सुन्दर काव्य-रचना में प्रवीण बताया है। हर्ष के समय में प्राचीन साहित्य और शास्त्रों का अध्ययन अच्छी तरह प्रचलित था और इस काल में भी काव्य, नाटक, आख्यायिका, कथा, दर्शन, धर्म-विज्ञान, गणित ज्योतिष आदि पर कई ग्रन्थ लिखे गये।

3. 'हर्षचरित' के आधार पर हर्षवर्धन के व्यक्तित्व पर प्रकाश डालिए।

उ०– हर्षवर्धन थानेश्वर के शासक प्रभाकवर्धन का छोटा पुत्र था। इसका जन्म 591 ई० में हुआ। हर्षवर्धन की माता का नाम यशोमती था। सन् 606 ई० में अपने बड़े भाई की मृत्यु के बाद हर्षवर्धन सिंहासन पर बैठा, उस समय हर्षवर्धन की आयु मात्र 16 वर्ष थी। राज्यारोहण के समय हर्ष के सम्मुख कठिन परिस्थितयाँ उपस्थित थीं। वह दुष्ट गौड़ शासक शशांक से अपने भाई की हत्या का बदला लेना चाहता था। इसके अतिरिक्त उसे अपने बहनोई कन्नौज के शासक (गृहवर्मन) की हत्या के बाद कन्नौज को भी सुव्यवस्थित करना था। इतना ही नहीं, उसकी बहन 'राज्यश्री' भी अपने पति की हत्या से क्षुब्ध होकर विन्ध्य के जंगल में किसी अज्ञात स्थान पर चली गई थी।

हर्ष ने सर्वप्रथम एक शक्तिशाली सेना लेकर राज्यश्री की खोज के लिए स्वयं विन्ध्य वन की ओर प्रस्थान किया एवं बौद्ध भिक्षु दिवाकरमित्र की सहायता से राज्यश्री को ढूँढ़ लिया, ठीक उस सयम जब वह अपनी वेदनाओं का अन्त करने के लिए चिता में जलकर मरने जा रही थी। राज्यश्री को काफी समझाने-बुझाने के पश्चात् वह उसे अपने साथ लाने में सफल हुआ। अब उसके

सम्मुख दूसरी विकट समस्या यह थी कि कन्नौज का इस समय कोई शासक नहीं था। राज्यश्री को कोई संतान नहीं थी, अत: ऐसी परिस्थिति में कन्नौज के मंत्रियों ने इस बात की प्रार्थना की कि कन्नौज का शासन-भार भी वह स्वयं ही सँभाल लें। हर्ष कन्नौज के सिंहासन को स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं था। मन्त्रियों के बहुत आग्रह पर उसने अपनी बहन के संरक्षक के रूप में कन्नौज का शासन-भार उठाना स्वीकार किया। अब थानेश्वर तथा कन्नौज के राज्य एक हो गए, जिससे हर्ष की शक्ति बहुत बढ़ गई। हर्ष ने कन्नौज को अपनी राजधानी बनाया।

4. हर्ष के शासन-प्रबन्ध की दो विशेषताओं को वर्णन कीजिए।

उ०– हर्ष के शासन-प्रबन्ध की दो विशेषताएँ निम्नलिखित है—

(i) राजा– शासन-प्रबन्ध में राजा का स्थान सर्वोच्च था। राज्य की सम्पूर्ण शक्ति उसके हाथों में निहित थी। वही कार्यपालिका, व्यवस्थापिका और न्यायपालिका का सर्वोच्च अधिकारी होता था। वह महाराजाधिराज, परमभट्टारक, परमेश्वर, परमदेवता आदि उपाधियाँ धारण करता था। बाणभट्ट ने हर्ष को समस्त देवताओं का एकल अवतार कहा है। उसके अनुसार हर्ष युद्ध में सेना का नेतृत्व स्वयं करता था। उसने जनता के हित के लिए देशभर का दौरा किया था। अशोक की भाँति ही वह जनता के कल्याण के लिए सदैव तत्पर रहता था।

(ii) मन्त्रिपरिषद्– हर्ष को शासन-प्रबन्ध में सहायता देने के लिए एक मन्त्रिपरिषद् थी। मन्त्रिपरिषद् का अध्यक्ष प्रधान सचिव कहलाता था। हर्ष का प्रधान सचिव भिण्डि (पो-नि) था, जो उसका ममेरा भाई और अवन्ति का महासन्धिविग्रहक था। उसका सेनापति सिंहनाद था। मधुबन लेख से हर्ष के अनेक अधिकारियों का पता चलता है, जिनमें प्रमुख थे— (1) महासन्धिविग्रहाधिकृत (युद्ध और शान्ति सचिव), (2) महाबलाधिकृत (सेना का अध्यक्ष), (3) वृहदाश्वाशर (अश्व-सेनाध्यक्ष), (4) कटुक (गज सेनाध्यक्ष), (5) दूत राजस्थानीय (पर-राष्ट्र मन्त्री या राज प्रतिनिधि), (6) महाप्रतिहार (राजमहल का अधिकारी और रक्षक), (7) मीमांसक (न्यायाधीश), (8) उपरिक भट्टराज (प्रान्तीय शासक), (9) भौमिक (भूमिकर अधिकारी) आदि। इसके साथ ही राज्य की महत्त्वपूर्ण घटनाओं को लिपिबद्ध करने के लिए 'महाक्षपटलाधिकृत' (लेखा-जोखा विभाग का अधिकारी) की नियुक्ति की जाती थी। इनके अतिरिक्त वेलग्राही, चामरग्राही, अंगरक्षक, कंचुकी, सेवक, संचारक (सन्देशवाहक) आदि छोटे-छोटे कर्मचारी भी होते थे।

5. हर्ष की प्रारम्भिक कठिनाइयों का वर्णन कीजिए।

उ०– हर्षवर्धन 606 ई० में सिंहासनारूढ़ हुआ। वह प्राचीन भारतीय इतिहास का अन्तिम हिन्दू सम्राट था। उसने गुप्त वंश के पतन के पश्चात् पुन: सम्पूर्ण भारत को संगठित कर राजनीतिक एकता स्थापित की। वह अपने पिता प्रभाकरवर्द्धन, बड़े भाई राज्यवर्द्धन व बहनोई गृहवर्मा की मृत्यु से शोकामग्न था। इस समय उसके सामने तीन प्रमुख समस्याएँ थीं— शशांक को दण्ड, राज्यश्री की मुक्ति और कन्नौज की समस्या; अत: गद्दी पर बैठते ही उसने अपने साम्राज्य का विस्तार करने तथा अपने बड़े भाई के हत्यारे शशांक से बदला लेने की योजना बनाई। सर्वप्रथम उसने कन्नौज की ओर प्रस्थान किया। इस सन्दर्भ में **ह्वेनसांग** लिखता है— ''जैसे ही हर्ष राजा हुआ वैसे ही उसने विशाल सेना लेकर अपने भाई के हत्यारे से प्रतिशोध लेने के उद्देश्य से कन्नौज की ओर प्रस्थान किया। उसकी इच्छा हुई कि पड़ोसी राज्यों को जीतकर अपने अधीन कर लूँ। वह पूर्व की ओर बढ़ा और उसने उन देशों पर आक्रमण किया जिन्होंने उसकी अधीनता मानने से इन्कार कर दिया था। वह 6 वर्षों तक निरन्तर युद्ध करता रहा। इन वर्षों में उसने अभूतपूर्व सफलताएँ प्राप्त की थीं। अनेक छोटे-छोटे राज्य उसे अपना स्वामी बनाकर गौरव का अनुभव करने लगे थे।''

6. हर्ष की साहित्यिक प्रतिभा का उल्लेख कीजिए।

उ०– हर्ष साहित्य का अनन्य प्रेमी एवं प्रकाण्ड विद्वान् था। उसमें तीन ग्रन्थों 'नागानन्द', 'रत्नावली' तथा 'प्रियदर्शिका' की रचना स्वयं की थी। हर्ष अपने राज्य में विद्वानों को राजकीय सम्मान और संरक्षण देता था। उसके दरबार में बाणभट्ट जैसा प्रकाण्ड विद्वान रहता था, जिसने हर्षचरित एवं कादम्बरी जैसी महान् रचनाएँ की थीं। इसके अतिरिक्त, मयूर एवं मातंग दिवाकर आदि हर्ष के दरबार के अन्य विद्वान थे। शिक्षा के उत्थान हेतु उसने तत्कालीन विश्वविद्यालयों को बहुत अधिक दान दिया। वह भूमि-कर का 1/4 भाग शिक्षा और विद्वानों को पुरस्कार देने में ही व्यय किया करता था।

7. हर्ष का मूल्यांकन बौद्ध धर्म के संरक्षक के रूप में कीजिए।

उ०– हर्ष का मूल्यांकन एक बौद्ध धर्म के संरक्षक के रूप में– हर्ष अपनी बहन राज्यश्री के कारण वह बौद्ध धर्म की तरफ आकृष्ट हुआ तथा ह्वेनसांग के प्रभाव के कारण वह बौद्ध धर्म का अनुयायी बन गया। हर्ष के प्रयासों से महायानी बौद्ध धर्म का चीन में प्रचार हुआ। भारत में इसके प्रसार की गति तीव्र हुई। ह्वेनसांग के सम्मान में तथा बौद्ध धर्म के प्रसार के लिए हर्ष ने कन्नौज में एक सभा बुलाई, जिसमें 20 राज्यों के राजा, विभिन्न धर्मों के विद्वान, ब्राह्मण तथा सहस्त्रों हीनयानी और महायानी बौद्ध इकठ्ठे हुए। इस अवसर पर कन्नौज में एक विशाल संघाराम तथा 100 फीट ऊँचा बुर्ज बनवाया गया। इसमें हर्ष के कद के बराबर एक सोने की प्रतिमा (बुद्ध की) स्थापित की गई। इसी अवसर पर संघाराम में आग लगने, हर्ष की हत्या का प्रयास और हर्ष द्वारा 500 ब्राह्मणों के निष्कासन का उल्लेख भी ह्वेनसांग करता है। इस सभा में महायान सम्प्रदाय की श्रेष्ठता स्थापित की। हर्ष ने कश्मीर से बुद्ध का दाँत मँगवाकर कन्नौज में उसे प्रतिष्ठित किया।

बौद्ध धर्म का समर्थक होने के बावजूद ब्राह्मण धर्म में उसकी अभिरुचि कम नहीं हुई। प्रत्येक पाँचवें वर्ष प्रयाग में महामोक्ष-परिषद् का आयोजन कराता था, जिसमें बुद्ध, सूर्य और शिव की पूजा होती थी। इस अवसर पर वह अपने पाँच वर्षों की अर्जित सम्पत्ति, यहाँ तक कि अपने वस्त्र भी दान में दे देता था। ह्वेनसांग ने छठी परिषद् का उल्लेख किया है। इस अवसर पर पाँच लाख व्यक्ति (श्रमण, निर्ग्रन्थ, ब्राह्मण, निर्धन, अनाथ) एकत्र हुए। यह परिषद् 75 दिनों तक चली। इसमें प्रथम दिन बुद्ध की, दूसरे दिन सूर्य की, तीसरे दिन शिव की पूजा होती थी तथा चौथे दिन दान दिया जाता था। इस प्रकार, अपनी प्रजा के भौतिक और आध्यात्मिक उत्थान के लिए हर्ष ने अथक प्रयास किए।

8. हर्षकालीन की दो साहित्यिक साक्ष्यों का उल्लेख कीजिए।

उ०– हर्षकालीन दो साहित्यिक साक्ष्य निम्नलिखित हैं—

(i) हर्षचरित– 'हर्षचरित' की रचना बाणभट्ट ने की थी जो राजा हर्षवर्धन के दरबार में रहने वाले राजकवि थे और संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान थे।

(ii) सी-यू-की– ह्वेनसांग ने हर्षवर्धन के काल की घटनाओं के संबंध में एक पुस्तक 'सी-यू-की' लिखी। वह एक चीनी यात्री था जो बौद्ध धर्म का प्रकाण्ड विद्वान था।

9. हर्ष को महान् सम्राट सिद्ध करने के पक्ष में दो तर्क दीजिए।

उ०– हर्ष को महान् सम्राट सिद्ध करने के पक्ष में दो तर्क निम्नलिखित हैं—

(i) महान् विजेता– हर्ष सिंहासनारूढ़ होने के पश्चात् छह वर्षों तक निरन्तर युद्धों में संलग्न रहा। उसने अपने पिता के छोटे-से राज्य में, भारत के अनेक छोटे-छोटे राज्यों को मिलाकर एक विशाल साम्राज्य का निर्माण किया। गुप्त सम्राटों के पतन के पश्चात् भारत के बिखरे हुए साम्राज्य को हर्षवर्धन ने ही संगठित किया और अपने साम्राज्य में राजनीतिक एकता स्थापित की। अत: एक विजेता और साम्राज्य-निर्माता की दृष्टि से सम्राट हर्ष; अशोक, समुद्रगुप्त और अकबर के समकक्ष महान् था।

(ii) कुशल शासक– हर्ष कुशल प्रशासक भी था। उसने सम्पूर्ण साम्राज्य में अत्यन्त सुसंगठित और सुदृढ़ शासन-व्यवस्था स्थापित की थी। उसकी सेना का प्रबन्ध भी बड़ी कुशलतापूर्वक किया गया था। वह राज्य कर्मचारियों का स्वयं निरीक्षण करता था और अपराधियों को उसी समय स्वयं ही दण्ड देता था। वह राज्य के कार्यों में अत्यधिक व्यस्त रहता था। और सारे दिन अथक परिश्रम करता था। इसीलिए **ह्वेनसांग** ने लिखा है, ''शीलादित्य सम्राट हर्ष इतने अथक् परिश्रमी हैं कि दिन का सम्पूर्ण समय भी उनके लिए पर्याप्त नहीं होता है।''

10. ह्वेनसांग कौन था ? वह किसके शासनकाल में भारत आया था?

उ०– ह्वेनसांग एक चीनी यात्री था। वह बौद्ध धर्म का प्रकाण्ड विद्वान था। और बौद्ध धर्म का विशिष्ट ज्ञान प्राप्त करने हर्षवर्धन के शासनकाल में भारत आया था। उसने हर्षवर्द्धन के काल की घटनाओं के सम्बन्ध में एक पुस्तक 'सी-यू-की' लिखी थी। हर्षवर्धन ह्वेनसांग का बहुत अधिक सम्मान करता था। उसे कन्नौज के धार्मिक सम्मेलन में 'महायान देव' की उपाधि से विभूषित किया गया था।

विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

1. प्रशासक के रूप में हर्ष का मूल्यांकन कीजिए।

उ०– एक प्रशासक के रूप में हर्ष का मूल्यांकन निम्न प्रकार है—

(i) कुशल योद्धा– हर्ष मात्र 16 वर्ष की आयु में सिंहासन पर बैठा और उसका आरम्भिक जीवन कठिनाइयों से भरा था। वह एक कुशल सेनानायक था। उसने अल्पायु में ही हूणों के आक्रमण का सफलतापूर्वक सामना किया। हर्षवर्धन ने उत्तर भारते के अनेक राज्यों को जीता था। दूर-देशों के शासक भी हर्षवर्धन के सम्मुख नतमस्तक होते थे।

(ii) सफल कूटनीतिज्ञ– हर्ष एक सफल कूटनीतिज्ञ था। उसने अपने शक्तिशाली शत्रु शशांक को नष्ट करने हेतु कामरूप के शासक भास्करवर्मन से मित्रता की। हर्ष की यह मित्रता अत्यधिक सफल सिद्ध हुई क्योंकि भास्करवर्मन ने गौड़ राज्य का अन्त कर दिया। यह हर्ष की कूटनीति का ही परिणाम था कि ध्रुवसेन दक्षिण के शक्तिशाली सम्राट पुलकेशिन द्वितीय से मित्रता न कर सका। हर्ष ने शक्ति सन्तुलन बनाए रखने के लिए भी अनेक प्रयास किए तथा चीन से भी मित्रता की।

(iii) महान् साम्राज्य-निर्माता– गुप्त साम्राज्य के पतान के बाद भारत की राजनीतिक एकता प्राय: समाप्त हो गई थी तथा भारत अनेक छोटे-छोटे राज्यों मे विभक्त हो गया था। ऐसी स्थिति में हर्ष ने इन सभी छोटे-छोटे राज्यों को अपनी सैनिक प्रतिभा के बल पर अपने साम्राज्य का एक अभिन्न अंग बनाकर भारत को राजनीतिक एकता प्रदान की। हर्ष का साम्राज्य उत्तर में हिमालय तक, पूर्व में कामरूप तक, दक्षिण में नर्मदा नदी तक तथा पश्चिम में वल्लभी (गुजरात) तक विस्तृत था।

(iv) महान् धर्मपरायण– हर्ष महान् धर्मपरायण शासक था। प्रारम्भ में वह शैव धर्म का कट्टर समर्थक था तथा सूर्य का उपासक था, किन्तु बाद में उसने बौद्ध धर्म को स्वीकार कर लिया। कन्नौज-सभा (कान्यकुब्ज-सभा) में अन्य धर्मों पर बौद्ध धर्म की विजय का प्रतिपादन करके उसने बौद्ध धर्म को एक नवीन मार्ग दिया। यद्यपि उसने धर्म-परिवर्तन कर लिया था तथापि उसका धार्मिक दृष्टिकोण संकीर्ण नहीं था। प्रयाग की पंचवर्षीय सभा में वह अनय धर्मों के अनुयायियों को उदारता से दान

दिया करता था तथा बौद्ध धर्म के सिद्धान्तों पर वाद-विवाद किया करता था। हर्ष ने बौद्ध धर्म के प्रचार हेतु अनेक बौद्ध स्तूपों एवं विहारों का निर्माण करवाया था।

(v) **कुशल शासन-प्रबन्धक–** हर्षवर्धन कूटनीतिज्ञ एवं साहसी होने के साथ-साथ महान शासन-प्रबन्धक भी था। उसने जनकल्याण को अपने राज्य का आदर्श बनाया, जिसके लिए वह सदैव समर्पित रहा। उसने योग्य शासन-प्रबन्ध के द्वारा ही अपने साम्राज्य को दृढ़ता प्रदान की थी।

(vi) **दानवीर सम्राट–** हर्ष के चरित्र की एक मुख्य विशेषता यह थी कि वह दानवीर सम्राट था। हर्ष प्रति पाँचवें वर्ष में अधिक-से-अधिक दान दिया करता था। प्रयाग में हर्ष का दान-यज्ञ एक आश्चर्य का विषय था। उसने जनहित के लिए विश्राम-गृहों का निर्माण करवाया था, जिनमें निर्धनों के लिए भोजन, चिकित्सा आदि की नि:शुल्क व्यवस्था की जाती थी।

(vii) **महान् साहित्य-प्रेमी–** हर्ष स्वयं एक साहित्यकार था तथा साथ ही वह विद्वानों को आश्रय दिया करता था। हर्ष की संस्कृत में की गई रचनाएँ आज भी संस्कृत-साहित्य में अपना विशेष महत्व रखती हैं। उसके द्वारा रचित प्रियदर्शिका, रत्नावली एवं नागानन्द नाटक उसकी साहित्यिक प्रतिभा के परिचायक हैं। साहित्य के क्षेत्र में उसके शासनकाल की मुख्य रचना बाणभट्ट द्वारा रचित कादम्बरी है, जिसका वर्तमान में भी संस्कृत साहित्य में एक प्रतिष्ठित स्थान है।

(viii) **विद्यानुरागी–** साहित्य के साथ हर्ष को विद्या तथा कला में विशेष रुचि थी। उसने स्वयं तीन नाटकों की रचना की थी। बाणभट्ट, मयूर, हरिदत्त, जयसेन, मातंग, दिवाकर आदि प्रसिद्ध कवि उसके दरबार में थे। कुमारिल भट्ट नामक दार्शनिक भी हर्षकालीन था। नालन्दा विश्वविद्यालय उसके संरक्षण में था।

(ix) **अटूट कुटुम्ब-प्रेमी–** हर्ष अपने परिवार के सदस्यों से अटूट प्रेम करता था। अपने माता के प्रति उसे विशेष स्नेह था तथा माता का वह अत्यधिक आदर करता था। अपने अग्रज राज्यवर्धन से उसे बड़ा प्रेम था। उसकी हत्या के उपरान्त हर्ष इतना हतोत्साहित हो गया था कि उसने संन्यास ग्रहण करने का निकाय कर लिया था। वह अपनी बहिन राज्यश्री से अगाध प्रेम करता था। उसने अपनी बहिन को खोजने में कठिन परिश्रम किया तथा अन्त में अपने उद्देश्य में वह सफल हुआ। ये समस्त तथ्य उसके परिवार-प्रेम का उदाहरण हैं।

(x) **महान् त्यागी–** हर्ष की महानता का मुख्य कारण उसकी दानशीलता थी। वह दीन-दुखियों, निर्धनों एवं प्रजा के लिए अपना सर्वस्व त्याग करने के लिए तत्पर रहता था। वैराग्य की भावना का उसके चरित्र का प्रधान गुण था। उसने प्रजा के सुख व आराम के लिए राज्य के समस्त गाँवों, नगरों तथा राजमार्गों पर पुण्यशालाओं का निर्माण करवाया था, जहाँ पर निर्धनों एवं असहाय व्यक्तियों को भोजन एवं औषधियों का नि:शुल्क वितरण किया जाता था।

2. हर्ष की सांस्कृतिक उपलब्धियों का वर्णन कीजिए।

उ०– उत्तर के लिए विस्तृत उत्तरीय प्रश्न संख्या– 1 के उत्तर का अवलोकन करें।

3. हर्ष को महान् सम्राट सिद्ध करने के पक्ष में तर्क दीजिए।

उ०– उत्तर के लिए विस्तृत उत्तरीय प्रश्न संख्या– 1 के उत्तर का अवलोकन करें।

4. हर्ष एक महान् प्रशासक होने के साथ ही धर्मसहिष्णु भी था।''इस कथन का मूल्यांकन कीजिए।

उ०– हर्ष की धार्मिक सहिष्णुता– हर्ष एक धर्मसहिष्णु शासक था। शैव मतावलम्बी होते हुए भी उसने अन्य धर्मों को समान दृष्टिकोण से देखा। वह विभिन्न सम्प्रदायों के विद्वानों को बुलवाकर उनसे धर्म-चर्चा करता था। अपनी बहन राज्यश्री के कारण वह बौद्ध धर्म की तरफ आकृष्ट हुआ तथा ह्वेनसांग के प्रभाव के कारण वह बौद्ध धर्म का अनुयायी बन गया। हर्ष के प्रयासों से महायानी बौद्ध धर्म का चीन में प्रचार हुआ। भारत में इसके प्रसार की गति तीव्र हुई। ह्वेनसांग के सम्मान में तथा बौद्ध धर्म के प्रसार के लिए हर्ष ने कन्नौज में एक सभा बुलाई, जिसमें 20 राज्यों के राजा, विभिन्न धर्मों के विद्वान, ब्राह्मण तथा सहस्त्रों हीनयानी और महायानी बौद्ध इकट्ठे हुए। इस अवसर पर कन्नौज में एक विशाल संघाराम तथा 100 फीट ऊँचा बुर्ज बनवाया गया। इसमें हर्ष के कद के बराबर एक सोने की प्रतिमा (बुद्ध की) स्थापित की गई। इसी अवसर पर संघाराम में आग लगने, हर्ष की हत्या का प्रयास और हर्ष द्वारा 500 ब्राह्मणों के निष्कासन का उल्लेख भी ह्वेनसांग करता है। इस सभा ने महायान सम्प्रदाय की श्रेष्ठता स्थापित की। हर्ष ने कश्मीर से बुद्ध का दाँत मँगवाकर कन्नौज में उसे प्रतिष्ठित किया।

बौद्ध धर्म का समर्थक होने के बावजूद ब्राह्मण धर्म में उसकी अभिरुचि कम नहीं हुई। प्रत्येक पाँचवें वर्ष वह प्रयाग में महामोक्ष-परिषद् का आयोजन कराता था, जिसमें बुद्ध, सूर्य और शिव की पूजा होती थी। इस अवसर पर वह अपने पाँच वर्षों की अर्जित सम्पत्ति, यहाँ तक कि अपने वस्त्र भी दान में दे देता था। ह्वेनसांग ने छठी परिषद् का उल्लेख किया है। इस अवसर पर पाँच लाख व्यक्ति (श्रमण, निर्ग्रन्थ, ब्राह्मण, निर्धन, अनाथ) एकत्र हुए। यह परिषद् 75 दिनों तक चली। इसमें प्रथम दिन बुद्ध की, दूसरे दिन सूर्य की, तीसरे दिन शिव की पूजा होती थी तथा चौथे दिन दान दिया जाता था। इस प्रकार, अपनी प्रजा के भौतिक और आध्यात्मिक उत्थान के लिए हर्ष ने अथक प्रयास किए।

5. हर्ष भारत का अन्तिम महान् हिन्दू शासक था।''इस कथन का विवेचन कीजिए।

उ०– हर्षवर्धन प्राचीन भारतीय इतिहास का अन्तिम हिन्दू सम्राट था। उसने गुप्तवंश के पतन के पश्चात् पुन: सम्पूर्ण भारत को सुसंगठित कर राजनीतिक एकता स्थापित की। हर्ष वर्धन वंश का तीसरा राजा था। उसके जीवन और शासनकाल से सम्बन्धित

घटनाओं का ज्ञान प्राप्त करने के अनेक स्त्रोत उपलब्ध हैं, किन्तु उनमें से दो प्रमुख साहित्यिक और अभिलेखीय स्त्रोत हैं – प्रथम वर्ग के अन्तर्गत महाकवि बाणभट्ट द्वारा रचित हर्षचरित और चीनी यात्री ह्वेनसांग की यात्रा का विवरण सी-यू-की है तथा द्वितीय वर्ग में मधुबन (मऊ, आजमगढ़, 631 ई०), बासँखेड़ा (शाहजहाँपुर, उत्तर प्रदेश, 628 ई०) तथा सोनीपत के अभिलेख हैं।

हर्ष के स्त्रोतों में कादम्बरी (बाणभट्ट), आर्यमंजूश्रीमूलकल्प (महायान बौद्ध ग्रन्थ), नाभानन्द, प्रियदर्शिका और रत्नावली (हर्ष), ह्वेनसांग तथा इत्सिंग के यात्रा वृत्तान्त (A Record of the Buddhist Religion– तक्कुसु), एहोल का लेख (दविकीर्ति, पुलकेशिन द्वितीय), मिट्टी, ताँबे तथा सोने की मुद्राएँ आदि भी उल्लेखनीय हैं।

6. हर्ष की प्रारम्भिक कठिनाईयों का वर्णन करते हुए उसकी विजय यात्रा का वर्णन कीजिए।

उ०– वर्धन वंश का आदि पुरुष पुष्यभूति था, जो शैव धर्म का अनुयायी था, उसका मूल स्थान थानेश्वर था। वर्धन वंश के प्रारम्भिक राजाओं में नरवर्धन, राज्यवर्धन, आदित्यवर्धन और प्रभाकरवर्धन के नाम उल्लेखनीय हैं। प्रभाकरवर्धन से पहले के सभी राजा सामन्त प्रजा थे। प्रभाकरवर्धन ने 'महाराजाधिराज' और 'परम भट्टारक' की उपाधियाँ ग्रहण की थीं। प्रभाकरवधर्सन के दो पुत्र– राज्यवर्धन और हर्षवर्धन तथा एक पुत्री राज्यश्री थी। राज्यश्री का विवाह कन्नौज के राजा गृहवर्मन के साथ हुआ था।

हर्षवर्धन प्राचीन भारतीय इतिहास का अन्तिम हिन्दू सम्राट था। उसने गुप्तवंश के पतन के पश्चात् पुन: सम्पूर्ण भारत को सुसंगठित कर राजनीतिक एकता स्थापित की। हर्षवर्धन वंश का तीसरा राजा था। उसके जीवन और शासनकाल से सम्बन्धित घटनाओं का ज्ञान प्राप्त करने के अनेक स्त्रोत उपलब्ध हैं, किन्तु उनमें से दो प्रमुख साहित्यिक और अभिलेखीय स्त्रोत हैं– प्रथम वर्ग के अन्तर्गत महाकवि बाणभट्ट द्वारा रचित हर्षचरित और चीनी यात्री ह्वेनसांग की यात्रा का विवरण सी-यू-की है तथा द्वितीय वर्ग में मधुबन (मऊ, आजमगढ़, 631 ई०), बासँखेड़ा (शाहजहाँपुर, उत्तर प्रदेश, 628 ई०) तथा सोनीपत के अभिलेख हैं।

हर्ष के स्त्रोतों में कादम्बरी (बाणभट्ट), आर्यमंजूश्रीमूलकल्प (महायान बौद्ध ग्रन्थ), नाभानन्द, प्रियदर्शिका और रत्नावली (हर्ष), ह्वेनसांग तथा इत्सिंग के यात्रा वृत्तान्त (A Record of the Buddhist Religion– तक्कुसु), एहोल का लेख (दविकीर्ति, पुलकेशिन द्वितीय), मिट्टी, ताँबे तथा सोने की मुद्राएँ आदि भी उल्लेखनीय हैं।

हर्ष का जीवन परिचय– हर्ष, थानेश्वर के राजा प्रभाकरवर्धन का छोटा पुत्र था। उसका जन्म 591 ई० को हुआ था। हर्ष की माता का नाम यशोमति था। जिस समय प्रभाकरवर्धन की मृत्यु हुई, हर्षवर्धन का बड़ा भाई राज्यवर्धन हूणों से लोहा ले रहा था। पिता की दु:खद मृत्यु, का समाचार सुनकर राज्यवर्धन ने संन्यास ग्रहण करने का निश्चय किया और हर्ष की गद्दी पर बैठने के लिए कहा। इसी समय उनको सूचना मिली की मालवा के राजा देवगुप्त व बंगाल के गौड़ नरेश शशांक ने मिलकर कन्नौज पर आक्रमण कर दिया है। गृहवर्मा राज्यवर्धन का बहनोई था। अत: अपने बहनोई की हत्या और बहन राज्यश्री के बन्दी बनाए जाने की सूचना पाकर राज्यवर्धन तुरन्त एक विशाल सेना का साथ लेकर शत्रुओं का नाश करने के लिए कन्नौज की ओर चल दिया। युद्ध में मालव नरेश बुरी तरह पाजित हुआ, किन्तु मालवराज ने बंगाल के राजा शशांक की सहायता से, धोखे से राज्यवर्धन की हत्या करवा दी। महाकवि **बाणभट्ट** ने लिखा है कि अपने भाई की हत्या का समाचार पाते ही हर्षवर्धन ने यह प्रण किया कि ''मैं आर्य की चरणराज को स्पर्श करके यह शपथ खाता हूँ कि यदि गौड़ राज्य को उसके अभिभावकों सहित पृथ्वी से न मिटा दूँ तथा समस्त विरोधी राजाओं के पैरों में पड़ी जंजीरों की झंकार से पृथ्वी को झंकृत न कर दूँ, तो मैं स्वयं पतंगे की भाँति अग्नि स्वाहा हो जाऊँगा।''

हर्ष की समस्याएँ, विजयें तथा उपलब्धियाँ (हर्ष विजेता के रूप में)– अपने पिता, भाई व बहनोई की मृत्यु से शोकमग्न हर्ष, 606 ई० में सिंहासन पर आसीन हुआ। इस समय उसके सामने तीन प्रमुख सम्स्याएँ थीं– शशांक को दण्ड, राज्यश्री की मुक्ति और कन्नौज की समस्या। अत: गद्दी पर बैठते ही उसने अपने साम्राज्य का विस्तार करने तथा अपने बड़े भाई के हत्यारे शशांक से बदला लेने की योजना बनाई। सर्वप्रथम उसने कन्नौज की ओर प्रस्थान किया। इस सन्दर्भ में ह्वेनसांग लिखता है– ''जैसे ही हर्ष राजा हुआ वैसे ही उसने विशाल सेना लेकर अपने भाई के हत्यारे से प्रतिशोध लेने के उद्देश्य से कन्नौज की ओर प्रस्थान किया। उसकी इच्छा हुई कि पड़ोसी राज्यों को जीतकर अपने अधीन कर लूँ। वह पूर्व की ओर बढ़ा और उसने उन देशों पर आक्रमण किया। जिन्होंने उसकी अधीनता मानने से इनकार कर दिया था। वह ६ वर्षों तक निरन्तर युद्ध करता रहा। इन 6 वर्षों में उसने अभूतपूर्व सफलताएँ प्राप्त की थीं। बहुत-से छोटे-छोटे राज्य तो उसे अपना स्वामी बनाकर गौरव का अनुभव करने लगे थे।''

(i) कामरूप के राजा भास्करवर्मा से मित्रता– हर्ष ने जब अपना विजय अभियान प्रारम्भ किया, तो कामरूप के राजा भास्करवर्मा ने अपने दूत के माध्यम से उसके समक्ष मित्रता का प्रस्ताव रखा। फलत: दोनों में मित्रतापूर्ण सम्बन्ध स्थापित हो गए। इसी समय हर्ष को राज्यवर्धन के सेनापति भण्डी ने यह सूचना दी कि राज्यश्री बन्दीगृह से मुक्त होकर विन्ध्याचल की पहाड़ियों में सती होने हे लिए चली गई है और शशांक भयभीत होकर कन्नौज छोड़कर भाग गया। अनेक इतिहासकारों का मत है कि हर्ष ने अपनी बहन राज्यश्री को ठीक उस समय पर बचाया था, जब यह चिता में कूदने ही वाली थी। इस तरह हर्ष ने राज्यश्री को बचाकर पुन: अपना विजय विजय अभियान प्रारम्भ कर दिया।

(ii) **कन्नौज पर अधिकार–** गृहवर्मन की मृत्यु के पश्चात् कन्नौज का सिंहासन रिक्त था, क्योंकि राज्यश्री के कोई पुत्र नहीं था। अत: राज्यश्री की प्रार्थना पर हर्ष ने कन्नौज पर अपना पूर्ण अधिकार कर लिया तथा कन्नौज को अपने साम्राज्य की राजधानी बनाया।

(iii) **वल्लभी राज्य–** वल्लभी राज्य हर्ष और पुलकेशिन द्वितीय के राज्य के बीच स्थित था। हर्ष ने वल्लभी के राजा ध्रुवसेन या ध्रुवभट्ट पर आक्रमण किया। ध्रुवसेन ने हर्ष की अधीनता स्वीकार कर ली और हर्ष ने अपनी पुत्री का विवाह उसके साथ कर दिया।

(iv) **बंगाल–** बंगाल का राजा शशांक हर्ष का सबसे बड़ा शत्रु था, क्योंकि उसने मालवराज के साथ मिलाकर उसके बड़े भाई और उसके बहनोई का वध किया था तथा बहन राज्यश्री को कैद में डालकर अनेक यातनाएँ दी थीं। अत: उसने सबसे पहले शशांक पर आक्रमण किया था, किन्तु जब उसे सफलता नहीं मिली तो उसने अपने मित्र भास्करवर्मा की सहायता से शशांक पर पुन: आक्रमण किया। तब उसे सफलता प्राप्त हुई, परन्तु अभिलेखीय साक्ष्यों के आधार पर यह प्रमाणित होता है कि फिर भी वह शशांक का वध करने में सफल नहीं हो सका था।

(v) **विद्रोहों का दमन–** चीनी स्रोतों के अनुसार 618 से 627 ई० तक का काल हर्ष के लिए विपत्तियों का काल था। इस अवधि में विद्रोह हुए और हर्ष ने उनका दमन किया।

(vi) **सिन्धु तथा गुजरात–** बाणभट्ट के अनुसार, हर्ष ने सिन्धु प्रदेश के राजा को भी पराजित कर दिया था और उसकी सम्पत्ति पर अपना अधिकार कर लिया था। इहसी प्रकार, गुजरात को भी उसने शक्ति के बल पर अपने साम्राज्य में मिला लिया था।

(vii) **पुलकेशिन द्वितीय से युद्ध और पराजय–** चीनी यात्री ह्वेनसांग के अनुसार हर्ष ने लगभग 630 ई० में दक्षिणी भारत के चालुक्य **राजा पुलकेशिन द्वितीय** पर आक्रमण किया था। दोनों में घमासान युद्ध हुआ। इस युद्धा में हर्ष को पराजय का मुँह देखना पड़ा तथा उसके साम्राज्य की सीमा नर्मदा नदी तक सीमित होकर रह गई।

(viii) **अन्य विजयें–** कुछ विद्वानों का मत है कि हर्ष ने कश्मीर, काँगोद, नेपाल, उड़ीसा एवं सौराष्ट्र आदि प्रान्तों पर भी विजय प्राप्त की थी। ऐसा प्रतीत होता है कि पुलकेशिन द्वितीय की मृत्यु के उपरान्त उसने 643 ई० में गंजाम प्रदेश पर भी आक्रमण किया था, परन्तु इस आक्रमण के परिणामों का स्पष्ट ज्ञान प्राप्त नहीं हो सका है।

हर्ष का साम्राज्य– डॉ० रमेशचन्द्र मजूमदार, डॉ० हेमचन्द्र राय चौधरी और आर० सी० दत्ता के अनुसार हर्ष की सेना ने उत्तर में बर्फीले पर्वतों से लेकर दक्षिण में नर्मदा तक और पूर्व में गंजाम से लेकर पश्चिम में वल्लभी तक के लगभग सम्पूर्ण उत्तरी भारत को पदाक्रान्त किया था। **डॉ० वी० ए० स्मिथ** के अनुसार, ''मालवा, गुजरात, सौराष्ट्र के अतिरिक्त हिमालय पर्वत से लेकर नर्मदा नदी तक गंगा की सम्पूर्ण तरेठी पर हर्ष का अधिकार स्थापित था।'' **निहार रंजन दे** के अनुसार– ''हर्ष के प्रत्यक्ष शासन के अन्तर्गत वह सम्पूर्ण प्रदेश था, जिसे 'मध्य हिन्द' कहा जाता था, परन्तु उसके प्रभाव के अन्तर्गत सम्पूर्ण उत्तरी भारत था''

हर्ष एक महान् विजेता था। हर्ष के सम्बन्ध में **डॉ० राधाकुमुद मुकर्जी** का यह कथन अक्षरश: सत्य है कि ''हर्ष प्राचीन भारत के इतिहास के श्रेष्ठतम सम्राटों में से एक हैं। उसमें समुद्रगुप्त और अशोक दोनों ही के गुण विद्यमान थे। उसका जीवन पहले की सैनिक सफलताओं और दूसरों की पवित्रता की याद दिलाता है।''

7. ''हर्ष भारत का साम्राज्य निर्माता था।'' इस कथन की विवेचना कीजिए।

उ०– उत्तर के लिए विस्तृत उत्तरीय प्रश्न संख्या– 6 के उत्तर का अवलोकन करें।

8. हर्ष की उपलब्धियों की विवेचना कीजिए।

उ०– हर्ष की उपलब्धियाँ– सम्राट हर्ष की गणना प्राचीन भारत के महान् सम्राटों में की जाती है। वह एक महान् विजेता, धर्म-सहिष्णु शासक, बौद्ध धर्म का संरक्षक और उच्च कोटि का शासन प्रबन्धक था। अनेक विद्वान हर्ष को हिन्दूकाल का अन्तिम साम्राज्य निर्माता और भारत का अन्तिम महान् शासक मानते हैं। वास्तव में हर्ष युग-प्रवर्तक था तथा उसका शासन काल अनेक विशिष्टताओं से परिपूर्ण था। हर्ष के चारित्रिक गुणों को निम्नलिखित शीर्षकों में व्यक्त किया जा सकता है–

(i) **महान् विजेता–** हर्ष सिंहासनारूढ़ होने के पश्चात् छह वर्षों तक निरन्तर युद्धों में संलग्न रहा। उसने अपने पिता के छोटे-से राज्य में, भारत के अनेक छोटे-छोटे राज्यों को मिलाकर एक विशाल साम्राज्य का निर्माण किया और अपने साम्राज्य में राजनीतिक एकता की स्थापना की। अत: एक विजेता और साम्राज्य-निर्माता की दृष्टि से सम्राट हर्ष; अशोक, समुद्रगुप्त और अकबर के समकक्ष महान् थे।

(ii) **कुशल प्रशासक–** हर्ष कुशल प्रशासक भी था। उसने सम्पूर्ण साम्राज्य में अत्यन्त सुसंगठित और सुदृढ़ शासन-व्यवस्था स्थापित की थी। उसकी सेना का प्रबन्ध भी बड़ी कुशलतापूर्वक किया गया था। वह राज्य कर्मचारियों का स्वयं निरीक्षण करता था और अपराधियों को उसी समय स्वयं ही दण्ड देता था। वह राज्य के कार्यों में अत्यधिक व्यस्त रहता था और सारे दिन अथक परिश्रम करता था। इसीलिए **ह्वेनसांग** ने लिखा है, ''शीलादित्य सम्राट हर्ष इतने अथक् परिश्रमी हैं कि दिन का सम्पूर्ण समय भी उनके लिए पर्याप्त नहीं होता है।

(iii) साहित्य-प्रेमी– हर्ष साहित्य का अनन्य प्रेमी एवं प्रकाण्ड विद्वान था। उसने तीन ग्रन्थों 'नागानन्द', 'रत्नावली' तथा 'प्रियदर्शिका' की रचना स्वयं की थी। हर्ष अपने राज्य में विद्वानों को राजकीय सम्मान और संरक्षण देता था। उसके दरबार में बाणभट्ट जैसा प्रकाण्ड विद्वान रहता था, जिसने हर्षचरित एवं कादम्बरी जैसी महान् रचनाएँ की थीं। इसके अतिरिक्त, मयूर एवं मातंग दिवाकर आदि हर्ष के दरबार के अन्य विद्वान थे। शिक्षा के उत्थान हेतु उसने तत्कालीन विश्वविद्यालयों को बहुत अधिक दान दिया। वह भूमि-कर का 1/4 भाग शिक्षा और विद्वानों को पुरस्कार देने में ही व्यय किया करता था।

(iv) धर्मपरायण– हर्ष एक धर्मनिष्ठ सम्राट था। प्रारम्भ में वह शैव-मतावलम्बी था, किन्तु अपने अन्तिम दिनों में वह बौद्ध धर्म का अनुयायी भी बन गया था। उसने बौद्ध धर्म के प्रचार के लिए अथक प्रयास किए थे। हर्ष और अशोक दोनों ही बौद्ध के अनन्य उपासक होते हुए भी धर्मसहिष्णु थे। दोनों की धार्मिक नीति अत्यधिक उदार थी।

(v) प्रजावत्सल एवं दानी– हर्ष अपनी प्रजा से बड़ा स्नेह रखता था। वह दिन-रात शासन-कार्यों में लगा रहता था और अथक परिश्रम करता था। दीन-दु:खियों का दु:ख वह स्वयं ही सुना करता था। रोगियों को नि:शुल्क दवाई मिल सके, इसके लिए उसने अनेक औषधालय खुलवा रखे थे। दान देने में भी वह कुछ कम न था। उसने प्रयाग की महासभा में एक बार अपने वस्त्र तक दान कर दिए थे।

हर्ष अपने लोक-कल्याणकारी कार्यों के कारण इतिहास में एक महत्त्वपूर्ण स्थान रखता हैं हर्ष के चरित्र में समुद्रगुप्त तथा अशोक दोनों के गुणों का समन्वय था। समुद्रगुप्त की भाँति विभिन्न दिशाओं में विजय करके उसने सम्राट का पद प्राप्त किया तथा देश को ऐतिहासिक एकता का पुन: स्थापित किया। इसके बाद युद्ध को सदैव के लिए तिलांजलि देकर अशोक की भाँति अपनी सम्पूर्ण शक्ति को शान्ति स्थापना के कार्यों में लगाया और देश की भौतिक व आध्यात्मिक उन्नति में योग देकर उसके सांस्कृतिक व्यक्तित्व एवं महानता को एकता के सूत्र में बाँधने का प्रयास किया। सत्य तो यह है कि वह भारत का अन्तिम हिन्दू सम्राट था जिसने सम्पूर्ण उत्तरी भारत पर एकच्छत्र राज्य किया।

9. एक विजेता और प्रशासक के रूप में हर्ष का मूल्यांकन कीजिए।

उ०– उत्तर के लिए विस्तृत उत्तरीय प्रश्न संख्या– 1 के उत्तर का अवलोकन करें।

10. हर्ष में समुद्रगुप्त व अशोक दोनों के गुण विद्यमान थे।''इस कथन की विवेचना कीजिए।

उ०– हर्ष की महानता का मुख्य कारण उसकी दानशीलता थी। वह दीन-दुखियों, निर्धनों एवं प्रजा के लिए अपना सर्वस्व त्याग करने के लिए तत्पर रहता था। वैराग्य की भावना उसके चरित्र का प्रधान गुण था। उसने प्रजा के सुख व आराम के लिए राज्य के समस्त गाँवों, नगरों तथ राजमार्गों पर पुण्यशालाओं का निर्माण करवाया जहाँ निर्धनों एवं असहाय व्यक्तियों को भोजन एवं औषधियों का नि:शुल्क वितरण किया जाता था। हर्ष का मूल्याकंन करते समय बहुधा उसकी तुलना चन्द्रगुप्त मौर्य, अशोक और समुद्रगुप्त से की जाती है। परन्तु हर्ष की उपलब्धियों के लिए यह कहना जरूरी है कि न तो हर्ष में अशोक जैसी उदारता और ऊँचा आदर्शवाद था। और न ही चन्द्रगुप्त मौर्य और समुद्रगुप्त जैसी प्रतिभा। ऐसा न होने पर भी भारत के प्राचीन महान शासकों में उसकी गणना करना सर्वथा उचित है। उन्हें भारत के अन्तिम हिन्दू सम्राट की संज्ञा दी जाती है।

11 स्थानीय शक्तियों का उदय– राजपूत युग
(Rise of Provincial Powers : Rajput Age)

अभ्यास

निम्नलिखित तिथियों के ऐतिहासिक महत्व का उल्लेख कीजिए–

1. 650 से 1200 ई० तक
2. 730 से 756 ई० तक
3. 756 से 774 ई० तक
4. 836 से 885 ई० तक
5. 885 से 910 ई० तक
6. 1010 से 1055 ई० तक
7. 1103 से 1113 ई० तक
8. 1090 से 1103 ई० तक
9. 1191 से 1192 ई० तक

उ०– उत्तर के लिए पाठ्यपुस्तक के पृष्ठ संख्या– 135 व 136 पर तिथि सार का अवलोकन करें।

सत्य या असत्य बताइए–

उ०– प्रश्नोत्तर के लिए पाठ्यपुस्तक के पृष्ठ संख्या– 136 का अवलोकन करें।

बहुविकल्पीय प्रश्न

उ०– प्रश्नोत्तर के लिए पाठ्यपुस्तक के पृष्ठ संख्या– 136 का अवलोकन करें।

अतिलघु उत्तरीय प्रश्न

उ०– प्रश्नोत्तर के लिए पाठ्यपुस्तक के पृष्ठ संख्या– 136 व 137 का अवलोकन करें।

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. राजपूतों की उत्पत्ति से संबंधित विभिन्न मतों का उल्लेख कीजिए।

उ०– (i) अग्निकुण्ड का सिद्धान्त– राजपूतों की उत्पत्ति के संबंध में कवि चन्दबरदाई ने 'पृथ्वीराज रासो' में लिखा है, ''वशिष्ठ मुनि ने राक्षसों से देवताओं की रक्षा करने के लिए अग्नि से परमार, चालुक्य, प्रतिहार, और चौहान नाम के चार प्रसिद्ध राजपूत वंशों को उत्पन्न किया था।'' परन्तु अग्निकुण्ड से मानव उत्पन्न हुआ है, यह सिद्धान्त कपोल कल्पित है। डॉ० ईश्वरी प्रसाद इसे केवल कल्पनामात्र मानते हैं। सी० वी० वैद्य चन्दबरदाई की कथा को संदिग्ध मानते हैं; क्योकि किसी प्राचीन ग्रन्थ में ऐसे यज्ञ का वर्णन नहीं मिलता है, जिसके अग्निकुण्ड से प्रतिहार, परमार, चालुक्य और चौहानों की उत्पत्ति हुई हो।

(ii) भारतीय उत्पत्ति का सिद्धान्त– गौरीशंकर ओझा, डॉ० दशरथ, के०एम० मुंशी, डी०सी० गांगुली, बी०एन० पुरी, के०एस० आयंगर, वी०एन० पाठक और सी०वी० वैद्य आदि राजपूजों को भारतीय आर्यों की ही सन्तान मानते हैं इनका विचार है कि ये क्षत्रिय ही कालान्तर में 'राजपूत' या 'राजपुत्र' कहलाने लगे। विलियम क्रुक ने इस सिद्धान्त का खण्डन करते हुए कहा है कि वैदिक क्षत्रियों और राजपूतों में एक बड़ी खाई हैं जिसे पाटा नहीं जा सकता है।

2. गुर्जर प्रतिहार वंश के इतिहास का वर्णन करते हुए इसके प्रमुख राजाओं का परिचय दीजिए।

उ०– गुर्जर प्रतिहारों का इतिहास– वर्धनवंश के पराभाव के बाद गुर्जर शासकों ने उत्तरी भारत पर शासन किया। इनका सबसे प्रतापी सम्राट राजा मिहिरभोज हुआ। गुर्जरों का देश के इतिहास में बड़ा योगदान रहा है। इनकी शूरवीरता के कारण अरबों की सेना सिंध से आगे नहीं बढ़ पाई थी।

गुर्जर प्रतिहार वंश के शासक– गुर्जर प्रतिहार वंश के निम्नांकित शासकों का उल्लेख मिलता है—

(i) नागभट्ट प्रथम (730-756 ई०)– नागभट्ट प्रथम ने 730 से 756 ई० तक शासन किया। यह गुर्जर प्रतिहार वंश का वास्तविक संस्थापक था।

(ii) कुकस्थ प्रथम (756-774 ई०)– नागभट्ट प्रथम की मृत्यु के बाद उसका भतीजा कुकस्थ राजा बना।

(iii) वत्सराज (775-800 ई०)– नागभट्ट का प्रपौत्र वत्सराज प्रतिहार वंश का शक्तिशाली सम्राट था।

(iv) नागभट्ट द्वितीय (800-833 ई०)– वत्सराज की मृत्यु के बाद नागभट्ट द्वितीय प्रतिहार वंश की गद्दी पर बैठा।

(v) रामभद्र (833-836 ई०)– नागभट्ट की मृत्यु के पश्चात् 833 ई० में रामभद्र गद्दी पर बैठा।

(vi) मिहिरभोज (836-885 ई०)– 836 ई० में रामभद्र की हत्या कर उसका पुत्र मिहिरभोज गद्दी पर बैठा।

(vii) महेन्द्रपाल प्रथम (885-910 ई०)– मिहिरभोज की मृत्यु के उपरान्त उसका पुत्र निर्भरराज महेन्द्रपाल प्रथम के नाम से 885 ई० के लगभग शासक बना।

(viii) भोज द्वितीय (910-913 ई०)– महेन्द्रपाल के निधन के बाद अपने सौतेले भाई को हराकर भोज द्वितीय राजगद्दी पर बैठा।

(ix) महिपाल प्रथम (913-945 ई०)– यह महेन्द्रपाल प्रथम का पुत्र था।

3. पृथ्वीराज तृतीय किस वंश का शासक था? उसकी राजनीतिक भूल क्या थी?

उ०– पृथ्वीराज तृतीय चाहमान वंश का प्रतापी राजा था। 1191 ई० में गौरी की सेना ने सरहिन्द पर अधिकार कर लिया। जब पृथ्वीराज की सेना उत्तर में पंजाब पर धावा बोलने लगी तब मुहम्मद गौरी व पृथ्वीराज की सेना के मध्य तराइन में युद्ध हुआ। चौहान शासक पृथ्वीराज तृतीय ने मुहम्मद गौरी को तराइन के मैदान में परास्त कर जीवित ही जाने दिया। इसका परिणाम यह हुआ कि दूसरे ही वर्ष 1192 ई० में मुहम्मद गौरी ने पुन: पृथ्वीराज पर आक्रमण किया। मुहम्मद गौरी इस युद्ध में धोखे से जीत गया और पृथ्वीराज युद्ध में वीरगति को प्राप्त हुआ। इस हार से भारत पर तुर्कों के राज्य की स्थापना का मार्ग प्रशस्त हो गया।

4. जयचन्द कौन था?

उ०– जयचन्द गहड़वाल वंश का अन्तिम शक्तिशाली शासक था। इसने 1170 ई० से 1194 ई० तक राज्य किया था। इसने अनेक शासकों के साथ संघर्ष किया था। पृथ्वीराज चौहान के साथ भी इसका युद्ध हुआ था। चन्दबरदाई के अनुसार, जयचन्द की पुत्री संयोगिता को पृथ्वीराज चौहान स्वयंवर मण्डप से उठा लाया था। जिसके कारण जयचन्द और पृथ्वीराज की शत्रुता अत्यधिक बढ़ गई थी। इस शत्रुता का लाभ उठाकर ही मुहम्मद गोरी ने पहले तराइन के द्वितीय युद्ध में पृथ्वीराज को पराजित किया फिर 1194 ई० में चन्द्रावर के युद्ध में जयचन्द को पराजित करके उसका वध कर दिया।

5. पाल वंश अवनति की ओर कब अग्रसर हुआ? किस शासक ने पाल वंश की खोई हुई समृद्धि वापस लौटाई?

उ०– नारायणपाल के शासनकाल में पाल वंश अवनति की ओर अग्रसर था। परंतु उसमें महिपाल नामक एक वीर राजा के अभ्युदय ने पाल वंश की खोई हुई समृद्धि लौटा दी। इसके शासनकाल में भारतीय संस्कृति की विशेष उन्नति हुई। महिपाल ने अनेक बौद्ध मन्दिरों व विहारों का निर्माण करवाया। कुछ विद्वानों के अनुसार उसने सड़कें भी बनवाई थीं। 1038 ई० में उसकी मृत्यु हो गई।

6. चन्देलों की उत्पत्ति के विषय में लिखिए।

उ०– चन्देलों की उत्पत्ति– चन्देलों की उत्पत्ति के विषय में कोई निश्चित मत नहीं है। परन्तु इसमें सन्देह नहीं है कि बुन्देलखण्ड में नवीं शताब्दी के प्रारम्भ में चन्देल राजा राज्य करते थे। चन्दबरदाई एवं चन्देलों के अभिलेख से ज्ञात होता है कि अत्रि के नेत्र से चन्द्रमा का जन्म हुआ और चन्द्रमा की सन्तान चन्दात्रेय ऋषि हुए। इन्हीं चन्दात्रेय की सन्तान कालान्तार में चन्देल कहलाई।

चन्दबरदाई के मतानुसार चन्देल वंश का जन्म एक ब्राह्मण कन्या हेमवती और चन्द्रमा के संयोग से हुआ। परन्तु कुछ इतिहासकार चन्देलों को राजपूत नहीं मानते। इस वंश के संस्थापक नन्नुक थे, जिन्होंने इस वंश की आधार शिला नवीं शताब्दी में रखी। प्रारम्भ में ये कन्नौज के प्रतिहार के सामन्त थे।

7. परमार वंश के राजा भोज की उपलब्धियों पर एक संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

उ०– भोज परमार वंश का सर्वाधिक महत्वपूर्ण और प्रतापी शासक था। वह एक कुशल सेनानायक तथा कला एवं साहित्य का प्रेमी भी था। उसके शासनकाल में सभी क्षेत्रों में अभूतपूर्व उन्नति हुई। मेरुतुंग के अनुसार सर्वप्रथम उसने तैलप द्वितीय को मारकर मुंज की हत्या का प्रतिशोध लिया। भोज ने लाट के शासक कीर्तिराज को परास्त किया और कोकंण के शासक केशिदेव पर आक्रमण कर कोंकण पर अधिकार कर लिया। भोज ने उड़ीसा, कलचुरि के शासकों से भी युद्ध किया। भोज ने चन्देल शासक विद्याधर से भी लोहा लिया। भोज ने चाहमानों पर भी विजय प्राप्त की। अन्त में भोज चालुक्य नरेश भीम द्वितीय से युद्ध करता हुआ 1055 ई० में वीरगति को प्राप्त हुआ। राजाभोज के शासनकाल में साहित्य, व्याकरण, गणित, औषधि विज्ञान, वास्तुकला आदि की अत्यधिक उन्नति हुई। एक अभिलेख में भोज को कविराज की उपाधि से विभूषित किया गया है। उसने व्याकरण, ज्योतिष अलंकार, विज्ञान, धर्म औषधि विज्ञान आदि पर अनेक ग्रन्थ लिखे थे। उसका दरबार विद्वानों और कलाकारों से भरा रहता था। धनपाल और उसका भाई शोभन तथा कवियित्री सीता उसके दरबार में रहते थे। भोज की रानी अरुन्धती एक विदुषी महिला थी। धारानगरी में उसने एक विश्वविद्यालय स्थापित किया था। इन सभी उपलब्धियों के कारण राजा भोज को 'सरस्वती पण्डित' कहा जाता है। उसने भोपाल के दक्षिण में भोजपुर नामक एक नगर बसाया तथा इस नगर के निकट उसने एक झील का निर्माण भी कराया था। इस प्रकार एक महान् निर्माता और लोक-हितकारी शासक के रूप में भोज को इतिहास में एक गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त है।

8. राजपूतों की पराजय के किन्हीं दो प्रमुख कारणों का वर्णन कीजिए।

उ०– राजपूतों की पराजय के दो प्रमुख कारण निम्नलिखित हैं—

(i) राजपूतों की दुर्बलताएँ– राजपूत शासकों में अनेक ऐसे दुर्गुण विद्यमान थे, जिनसे उनकी शक्ति कम होती जा रही थी। ये लोग मद्यपान करते थे, जिससे स्मृति का लोप हो जाता था तथा भोग-विलास की प्रवृत्तियाँ मुखर हो उठती थीं, परिणामस्वरूप शारीरिक शक्ति का ह्रास हो जाता था। द्यूत क्रीड़ा एवं बहुविवाह से उनके जीवन का नैतिक स्तर गिर रहा था। राजपूत शासक अहंकारी थे, इसलिए वे किसी की उचित सलाह को अपनी अवहेलना मानकर उसे दण्डित करने से भी नहीं चूकते थे।

(ii) रणनीति एवं नवीनतम शस्त्रों की कमी– राजपूत सेनापति अन्य देशों की व्यूह रचना एवं रणनीति से अनभिज्ञ थे। उनके शस्त्र पुराने पड़ गए थे। भाला व तलवार से दूर तक मार नहीं की जा सकती थी, जबकि तुर्कों का जीतने का एक मुख्य कारण उनकी अश्वारोही सेना थी, जिसका मुकाबला राजपूत न कर सके। मुस्लिम आक्रमणकारी सेना का मुख्य शस्त्र तीर था, जिससे दूर से ही राजपूत सेना पर वार किया जा सकता था।

9. राजपूत काल में नारी की क्या स्थिति थी ?

उ०– राजपूत काल में स्त्रियों की दशा में पूर्व काल की अपेक्षा कुछ गिरावट आ गई थी। राजपूत काल में स्त्रियों को समाज में स्वतन्त्रता नहीं थी। राजघरानों में कन्याओं को अपना पति चुनने का सामान्यत: अधिकार नहीं था। किन्तु नाडोल के राजा महेन्द्र की बहन दुर्लभ देवी और राजा जयचन्द की कन्या संयोगिता के स्वयंवरों के उदाहरण मिलते हैं। इस काल में कुछ स्त्रियाँ विदुषी हुई, जैसे– मण्डन मिश्र की पत्नी भारतीय शास्त्रार्थ में, भास्कराचार्य की पुत्री लीलावती गणित में तथा राजशेखर की पत्नी अवन्तिसुन्दरी काव्य शास्त्र में। बहुविवाह, सती प्रथा, कन्या-वध तथा जौहर प्रथा भी राजपूतों में प्रचलित थी। गन्धर्व विवाहों को भी प्रचलन था।

10. राजपूतकालीन भूमि नापने की पाँच प्रणालियाँ कौन-सी थी?

उ०– राजपूतकालीन भूमि नापने की पाँच प्रणालियाँ निम्न थी—

(i) कुल्यावाप– कुल्यावाप प्रणाली गुप्तकाल में अधिक प्रचलन में थी। कुल्या अनाज मापने वाली टोकरी को कहा जाता था। एक कुल्या अनाज को जितनी भूमि में बोया जाता था, उतनी भूमि एक कुल्यावाप मानी जाती थी।

(ii) द्रोणावाप– यह एक कुल्यावाप का आठ गुना होता था। इसका प्रयोग भी अनाज मापने में किया जाता था।

(iii) पाठक– यह कुल्यावाप का पाँच गुणा होता था।

(iv) हल– यह लगभग 10 बीघे भूमि के बराबर होता था।

(v) हस्त– इसका अर्थ सम्भवत: राजा से होता था।

11. अलबरूनी कौन था ? उसका जन्म कब व कहाँ हुआ था?

उ०– अलबरूनी ईरानी मूल का मुसलमान था। इसका जन्म 973 ई० में ख्वारिज्म नगर के उपनगरीय इलाके में हुआ था।

12. राजपूतों के आपसी स्वार्थ से राष्ट्र की क्या हानि हुई ?

उ०– हर्ष की मृत्यु के बाद केन्द्रीय सत्ता के अभाव में विभिन्न राजपूत शासक परस्पर लड़ते-झगड़ते रहे। अपने वंश की श्रेष्ठता एवं कुलगौरव के लिए एक-दूसरे को नीचा समझने लगे। वे अपने मद में इतने मदान्ध हो गए थे कि उनको आसन्न शत्रु के खतरे का

भी भान नहीं रहा। यही कारण है कि राजपूत विदेशी आक्रमणकारियों का सामना नहीं कर सके। मुहम्मद गौरी ने एक-एक करके पृथ्वीराज तृतीय तथा जयचन्द को पराजित किया। पारस्परिक द्वेष भावना राजनीतिक ह्रास का प्रमुख कारण थी। राजनीतिक ह्रास का दूसरा प्रमुख कारण संकीर्ण जाति व्यवस्था थी। युद्ध करने का काम केवल राजपूतों का ही था। उस समय यदि राजपूत पराजित हुआ, तो पूरा देश हार गया। परस्पर सहयोग के अभाव में राजनीतिक ह्रास हुआ।

सामन्त व्यवस्था एवं राजपूतों की चारित्रिक दुर्बलता राजनीतिक ह्रास का तीसरा मुख्य कारण थी। शराब, अफीम आदि मादक द्रव्यों ने राजपूतों को विवेकहीन कर दिया। सामन्त व राजा राग-रंग में मस्त रहने लगे। शत्रु बढ़ते आ रहे थे, वे निश्चिंत ही बैठे रहे। इस सम्बन्ध में **दशरथ शर्मा** ने ठीक लिखा है, ''चालुक्य, चन्देलों व गहड़वालों के पारस्परिक द्वेष ने राजपूतों में ह्रास के बीज बो दिए। पृथ्वीराज की सैनिक भूलों को कभी क्षमा नहीं किया जा सकता। तराइन के दूसरे युद्ध के पहले उसका आचरण कुशल सेनापति के योग्य नहीं था।'' राजपूत राज्यों के पीछे जनाधार नहीं था। राजनीतिक एवं प्रशासनिक रिक्तता के कारण राजनीतिक ह्रास, अनुशासन की कमी और एकता का अभाव राजनीतिक ह्रास के प्रमुख कारण थे।

विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

1. राजपूतों के प्रमुख राजवंशों का संक्षिप्त परिचय दीजिए?

उ०– 650 ई० से 1200 ई० तक काल को भारतीय इतिहास में 'राजपूत काल' के नाम से जाना जाता है। इस काल में भारत के विभिन्न भागों में स्थापित राजपूत राज्यों का संक्षिप्त परिचय निम्नवत् है—

(i) गुर्जर प्रतिहार वंश– गुर्जर प्रतिहारों की तीन शाखाएँ थीं जिन्होंने क्रमशः माण्डव्यपुर-मेदन्तक (राजस्थान), भृगकच्छ-नान्दीपुरी (भड़ौच) और उज्जैन पर शासन किया। गुर्जर प्रतिहार वंश का संस्थापक नागभट्ट प्रथम था। नागभट्ट द्वितीय ने उज्जैन के स्थान पर कन्नौज को अपनी राजधानी बनाया वह भारत के गुर्जर प्रान्त का रहने वाला था तथा उसने सर्वप्रथम कन्नौज राज्य पर अपना अधिकार स्थापित किया था। इसीलिए यह राजवंश भारतीय इतिहास में कन्नौज के गुर्जर प्रतिहार वंश के नाम से प्रसिद्ध है। इस वंश के प्रमुख शासकों में नागभट्ट प्रथम, नागभट्ट द्वितीय, मिहिरभोज व महेन्द्रपाल प्रथम (885-910 ई०) आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। इस वंश का अन्तिम शासक यशपाल था।

(ii) कन्नौज का गहड़वाल वंश– इस का उदय ग्यारहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में मिर्जापुर की पहाड़ियों (गुहाओं) के प्रदेश में हुआ था। पहाड़ी प्रदेश में रहने के कारण यह लोग गहड़वाल अर्थात गुहावाले कहलाए। इस वंश की उत्पत्ति के संबंध में भी इतिहासकार एकमत नहीं है। इस वंश ने कन्नौज पर विजय प्राप्त कर उसे अपनी राजधानी बनाया था। चन्द्रदेव इस वंश का संस्थापक था, जिसने 1090 ई० से 1100 ई० तक शासन किया। इस वंश का सबसे प्रतापी राजा गोविन्दचन्द्र था। जयचन्द कन्नौज का अन्तिम हिन्दू प्रतापी राजा था। 1225 ई० में इल्तुतमिश के द्वारा इस वंश का अन्त कर दिया गया।

(iii) दिल्ली और अजमेर का चौहान वंश– इस वंश की स्थापना साँभर प्रदेश में वासुदेव के द्वारा की गई थी। यह प्रदेश इस समय जोधपुर की सीमा पर स्थित है। इस वंश का सबसे प्रसिद्ध एवं प्रतापी राजा पृथ्वीराज तृतीय था। 1194 ई० के लगभग दिल्ली और अजमेर से चौहान वंश का प्रभुत्व समाप्त हो गया।

(iv) बुन्देलखण्ड का चन्देल वंश– इस राजवंश की स्थापना नवीं शताब्दी में जैजाकभुक्ति (बुन्देलखण्ड) में हुई। इस वंश के राजपूत चन्द्रवंशी क्षत्रिय थे। इस राजवंश का संस्थापक नन्नुक था, लेकिन इसका प्रथम, स्वतंत्र एवं ख्याति-प्राप्त शासक यशोवर्मन था। यशोवर्मन की मृत्यु के बाद उसके पुत्र धंग ने शासन सँभाला। धंग भी अपने पिता के समान योग्य एवं शक्तिशाली था। इस वंश का अन्तिम प्रतापी राजा परमार्दि था। खजुराहों के प्रसिद्ध मन्दिर इसी वंश के शासकों द्वारा बनवाए गए थे।

(v) गुजरात का सोलंकी वंश– इस वंश का मूल स्थान गुजरात था। इस वंश की स्थापना मूलराज प्रथम अथवा मूलराज सोलंकी ने की थी। उसने अन्हिलवाड़ा को अपनी राजधानी बनाया था। इस वंश के अन्य प्रतापी शासक जयसिंह, सिद्धराज एवं कुमारपाल थे। इस वंश का अन्तिम शासक भीम द्वितीय था। 1229 ई० मे अलाउद्दीन खिलजी ने गुजरात को जीत लिया और उसे अपने राज्य में सम्मिलित करके, इस वंश का अन्त कर दिया।

(vi) मालवा का परमार वंश– इस राजवंश की स्थापना आबू पर्वत के निकट हुई थी। बाद में गुजरात से मालवा चले आए इसलिए इन्हें मालवा का परमार कहा जाता है। इस वंश का संस्थापक कृष्णराज था। इस वंश का सबसे प्रसिद्ध राजा भोज था, जो अपनी साहित्यप्रियता एवं दानशीलता के लिए बहुत प्रसिद्ध था। इस वंश का अन्तिम शासक उदयादित्य था।

(vii) त्रिपुरी का कल्चुरि वंश– इस कल्चुरि वंश की राजधानी त्रिपुरी (जबलपुर, मध्य प्रदेश) थी। इस वंश की स्थापना कोक्कल प्रथम ने की थी। इस वंश का सबसे योग्य एवं प्रसिद्ध शासक लक्ष्मीकर्ण था परमार और चन्देल राजाओं के लगातार आक्रमण होते रहने के कारण 13वीं शताब्दी में इस वंश का अन्त हो गया।

(viii) बंगाल के पाल एवं सेन वंश– पाल वंश का उदय बंगाल में हुआ था। हर्ष की मृत्यु के बाद बंगाल की राजनीतिक एकता छिन्न-भिन्न हो गई। कन्नौज के यशोवर्मन, कश्मीर के ललितादित्य और कामरूप के श्रीहर्ष ने बंगाल को खूब लूटा। बंगाल की प्रजा ने वहाँ शान्ति एवं सुव्यवस्था स्थापित करने के लिए गोपाल नामक व्यक्ति को अपना राजा चुन लिया था जिसने पाल वंश की नींव डाली। गोपाल बड़ा ही सफल शासक सिद्ध हुआ। बंगाल की अराजकता को दूर कर वहाँ पर शान्ति तथा

सुव्यवस्था स्थापित की और बिहार पर भी अपना अधिकार स्थापित कर लिया। इस वंश के योग्य तथा प्रतापी शासकों में धर्मपाल और देवपाल प्रमुख थे। इस वंश का अन्तिम शासक मदनपाल था। पालवंश का अन्त करके सेन राजाओं ने बंगाल पर अपना प्रभुत्व जमा लिया। सेन वंश के राजाओं में विजयसेन, बल्लालसेन और लक्ष्मणसेन प्रमुख थे। मुहम्मद बख्तियार खिलजी ने सेन वंश का अन्त करके 1199 ई० में बंगाल पर अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया। लेकिन जब एक ओर से सेन वंश और दूसरी ओर से गहड़वाल वंश के राजपूतों ने आक्रमण कर दिया, तो पाल वंश का अन्त हो गया और वहाँ पर सेन वंश की स्थापना हो गई। 1205 ई० मुसलमानों ने इस राज्य पर आक्रमण करके, सेन वंश का अन्त कर दिया और यहाँ अपने राज्य की स्थापना की।

2. गुर्जर प्रतिहार वंश के इतिहास का वर्णन करते हुए इसके प्रमुख राजाओं का परिचय दीजिए?

उ०– राजपूत राजवंश-गुर्जर प्रतिहार वंश– उत्तर भारत में अनेक राजपूत वंश के राजाओं का शासन रहा, जिनमें गुर्जर प्रतिहार वंश, कन्नौज का गहड़वाल वंश, दिल्ली-अजमेर चौहान या चाहमान वंश, बुन्देलखण्ड का चन्देल वंश, गुजरात का सोलंकी (चालुक्य) वंश, मालवा का परमार वंश, त्रिपुरा का कलचुरि वंश तथा बंगाल के पाल और सेन वंश प्रमुख थे।

गुर्जर प्रतिहारों का परिचय– वर्धनवंश के पराभव के बाद गुर्जर शासकों ने उत्तरी भारत पर शासन किया। इनका सबसे प्रतापी सम्राट राजा मिहिरभोज हुआ। गुर्जरों का देश के इतिहास में बड़ा योगदान रहा है। इनकी शूरवीरता के कारण अरबों की सेना सिंध से आगे नहीं बढ़ पाई थी।

(i) नागभट्ट प्रथम (730-756 ई०)– नागभट्ट प्रथम ने 730 से 756 ई० तक शासन किया। यह गुर्जर प्रतिहार वंश का वास्तविक संस्थापक था। ग्वालियर अभिलेख से पता चलता है कि नागभट्ट ने एक शक्तिशाली म्लेच्छराज की सेना को परास्त कर भड़ौच पर अधिकार कर लिया था। इसके अतिरिक्त अमोघवर्ष प्रथम के संजन दान-पत्र से ज्ञात होता है कि गुर्जरराज को राष्ट्रकूट **दन्तिदुर्ग** ने परास्त किया था। जैन हरिवंश में भी लिखा है कि अवन्ति में वत्सराज का शासन था और यह वत्सराज नागभट्ट द्वितीय का पिता था। अत: इस विवेचन से स्पष्ट है कि प्रतिहार वंश का आरम्भ नागभट्ट प्रथम से हुआ।

(ii) कुकस्थ प्रथम (756-774 ई०)– नागभट्ट प्रथम की मृत्यु के बाद उसका भतीजा कुकस्थ राजा बना परन्तु वह एक निर्बल राजा था, अत: उसके बाद उसका भाई देवराज गद्दी पर बैठा। कुछ विद्वान देवराज को ही नागभट्ट का उत्तराधिकारी मानते हैं। देवराज और कुकस्थ की शासन अवधि 756 से 774 ई० तक मानी जाती है। देवराज ने बहुसंख्यक भूभृतों (राजाओं) और उनके शक्तिशाली पक्षपातियों की गति को समाप्त कर दिया। देवराज वैष्णव धर्म को मानने वाला था।

(iii) वत्सराज (775-800 ई०)– नागभट्ट का प्रपौत्र वत्सराज प्रतिहार वंश का शक्तिशाली सम्राट था। वत्सराज की माता का नाम **मुईका देवी** था। भट्टी जाति को परास्त करने के उपरान्त वत्सराज ने कन्नौज पर आक्रमण किया और वहाँ के राजा **इन्द्रायुध** को परास्त करके उसे अपने अधीन कर लिया। कुछ समय पश्चात वत्सराज को राष्ट्रकूटों से युद्ध करना पड़ा। राष्ट्रकूटों के **राजा ध्रुव** ने वत्सराज को युद्ध में हरा दिया और वह भागकर राजस्थान के मरुस्थल में चला गया। 800 ई० में वत्सराज की मृत्यु हो गई।

(iv) नागभट्ट द्वितीय (800-833 ई०)– वत्सराज की मृत्यु के बाद नागभट्ट द्वितीय प्रतिहार वंश की गद्दी पर बैठा। इसने 33 वर्ष तक शासन किया। इसकी माता का नाम सुन्दरी देवी था। यह एक साहसी शासक था और इसने अपने पूर्वजों के राज्य को पुन: बढ़ाने और दृढ़ करने का घोर प्रयत्न किया।

अपनी अनेक विजयों के उपलक्षय में नागभट्ट ने अनेक उपाधियों को ग्रहण किया था। इन उपाधियों में 'परम भट्टारक', 'महाराजाधिराज', 'परमेश्वर' की उपाधियाँ उल्लेखनीय हैं। 833 ई० में नागभट्ट की मृत्यु हो गई।

(v) रामभद्र (833-836 ई०)– नागभट्ट की मृत्यु के पश्चात् 833 ई० में रामभद्र गद्दी पर बैठा। रामभद्र की माता का नाम इष्टा देवी था। यह बहुत ही दुर्बल शासक था। इसके शासनकाल में साम्राज्य पर बहुत-सी विपत्तियाँ आईं और इसके अधीनस्थ कई प्रदेश स्वतन्त्र हो गए।

चन्द्रप्रभुसूरि कृत 'बप्पभट्टिचरित' में लिखा है कि उसके पुत्र मिहिरभोज ने उसकी हत्या करके 836 ई० में सिंहासन पर अधिकार किया था।

(vi) मिहिरभोज (836-885 ई०)– 836 ई० में रामभद्र की हत्या कर उसका पुत्र मिहिरभोज गद्दी पर बैठा। उसकी माता का नाम **आपादेवी** था। दौलतपुर अभिलेख में उसे प्रभास और ग्वालियर अभिलेख में आदिवराह की उपाधि से विभूषित किया गया है। वह अत्यन्त प्रतापी और पराक्रमी सम्राट था। उसने अपने पूर्वजों के शासन को पुन: संगठित और समृद्ध बनाने का प्रयत्न किया। उसने बुन्देलखण्ड, राजपूताना, पंजाब, पश्चिम भारत, मध्य भारत, राष्ट्रकूटों और पालों से युद्ध किया और उन पर विजय प्राप्त की।

मिहिरभोज प्रतिहार वंश का सबसे प्रतिभाशाली शासक था। उसका राज्य हिमालय की तराई से लेकर बुन्देलखण्ड और कौशाम्बी तथा पूर्व में पाल राज्य की पश्चिमी सीमा से लेकर सौराष्ट्र तक फैला हुआ था। राजस्थान का भी बहुत बड़ा अंश उसके अधीन था। मिहिरभोज के शासनकाल की जो मुद्राएँ प्राप्त हुई हैं, उनमें मिश्रित चाँदी का प्रयोग हुआ है, उसके

शासन में प्रजा सुखी और समृद्ध थी। अरब यात्री सुलेमान ने उसके शासन की बहुत सराहना की है। मिहिरभोज ने मुस्लिम आक्रमण से देश की सफलतापूर्वक रक्षा की थी।

(vii) महेन्द्रपाल प्रथम (885-910 ई०)– मिहिरभोज की मृत्यु के उपरान्त उसका पुत्र निर्भरराज महेन्द्रपाल प्रथम के नाम से 885 ई० के लगभग शासक बना। उसकी माता का नाम 'चन्द्रभट्टारिका देवी' था। विभिन्न अभिलेखों में उसे भिन्न-भिन्न नामों से सम्बोधित किया गया है, जैसे— महेन्द्रपाल, महिषपाल, महेन्द्रायुध, निर्भयनरेन्द्र, रघुकुलचूड़ामणि, निर्भरराज इत्यादि।

वह यह अपने पिता के समान ही वीर योद्धा था और गद्दी पर बैठते ही पाल राजाओं की शक्ति को क्षीण करने के लिए उसने मगध और उत्तरी बंगाल को जीत लिया। सन् 893 ई० के लगभग उसने सौराष्ट्र पर भी अधिकार प्राप्त कर लिया तथा पंजाब में कुरुक्षेत्र तक की भूमि उसने अपने अधीन कर ली। उत्तर के वे प्रान्त, जिन्हें मिहिरभोज ने जीता था, उसके हाथ से निकल गए अन्यथा उसका साम्राज्य-विस्तार पूर्वी पंजाब से लेकर पश्चिम बंगाल तक और हिमालय के क्षेत्र से लेकर नर्मदा नदी तक विस्तृत था।

महेन्द्रपाल का शासन कई दृष्टियों से प्रशंसनीय है। वह विद्वानों का आश्रयदाता और विद्यानुरागी था। उसके समय में संस्कृत का प्रसिद्ध विद्वान राजशेखर हुआ, जिसने कन्नौज की प्रतिष्ठा को सदैव के लिए अमर कर दिया और कई संस्कृत ग्रन्थों कर्पूरमंजरी, भुवनकोष, हरविलास, विद्धसाल, भंजिका, बाल भारत, काव्य मीमांसा आदि की रचना की। सन् 910 ई० के लगभग महेन्द्रपाल की मृत्यु हो गई।

(viii) भोज द्वितीय (910-913 ई०)– महेन्द्रपाल के निधन के बाद अपने सौतेले भाई को हराकर भोज द्वितीय राजगद्दी पर बैठा। इसका शासनकाल केवल 3 वर्ष रहा। दोनों भाइयों के गृहयुद्ध में चेदि राजा कोकल्लदेव प्रथम ने भोज की सहायता की थी।

(ix) महिपाल प्रथम (913-945 ई०)– यह महेन्द्रपाल प्रथम का पुत्र था। क्षेमेश्वर ने अपने प्रसिद्ध नाटक चण्डकौशिकम् में महिपाल की विजयों का उल्लेख किया है। प्रचंड पांडव के ग्रन्थकार राजशेखर और चण्डकौशिकम् के ग्रन्थकार क्षेमेश्वर उसकी राजसभा के कवि थे।

अरब यात्री अलमसूदी द्वारा लिखित वर्णन यह स्पष्ट करता है कि महिपाल का राज्य सिंध तक फैला हुआ था। महिपाल की मृत्यु 945 ई० में हुई। उसके उत्तराधिकारियों के कम दूरदर्शी व कमजोर होने के कारण साम्राज्य पतन की ओर चला गया।

इस वंश का अन्तिम शासक सम्भवत: यशपाल था। **आर०सी० मजूमदार** के अनुसार, ''मुस्लिम विजय से पहले यह उत्तर भारत का अन्तिम महान साम्राज्य था। इसने उत्तरी भारत का राजनीतिक एकीकरण किया। प्रतिहार सेनाओं ने मुस्लिम आक्रमणकारियों को लगभग 300 वर्ष तक रोके रखा।''

3. गुर्जर प्रतिहार कौन थे? मिहिरभोज का परिचय दीजिए।

उ०– उत्तर के लिए विस्तृत उत्तरीय प्रश्न संख्या— 2 के उत्तर का अवलोकन करें।

4. राजपूत कौन थे? उनके पतन के प्रमुख कारणों की विवेचना कीजिए।

उ०– राजपूत जाति के लोग अत्यन्त वीर एवं पराक्रमी योद्धा थे। अपनी मातृभूमि की रक्षा के लिए वे हँसते-हँसते युद्ध भूमि में वीरगति प्राप्त करने को सदैव तैयार रहते थे। उन्होंने अनेक युद्धों में विजयें प्राप्त कीं, लेकिन मुसलमानों के आक्रमणों से वे अपने राज्यों की रक्षा करने में असमर्थ रहे तथा देश की स्वाधीनता को विदेशियों के हाथों में सौंपने को विवश हुए। राजपूतों के पतन के लिए मुख्य रूप से निम्नलिखित कारण उत्तरदायी थे—

(i) राजपूतों की दुर्बलताएँ– राजपूत शासकों में अनेक ऐसे दुर्गुण भी विद्यमान थे, जिनसे उनकी शक्ति कम होती जा रही थी। ये लोग मद्यपान करते थे, जिससे स्मृति का लोप हो जाता था तथा भोग-विलास की प्रवृत्तियाँ मुखर हो उठती थीं, परिणामस्वरूप शारीरिक शक्ति का ह्रास हो जाता था। द्यूत क्रीड़ा एवं बहुविवाह से उनके जीवन का नैतिक स्तर गिर रहा था। राजपूत शासक अहंकारी थे, इसलिए वे किसी की उचित सलाह को अपनी अवहेलना मानकर उसे दण्डित करने से भी नहीं चूकते थे। इससे सही सलाहकारों की आवाज बन्द हो गई थी।

(ii) रणनीति एवं नवीनतम शस्त्रों की कमी– राजपूत सेनापति अन्य देशों की व्यूह रचना एवं रणनीति से अनभिज्ञ थे। उनके शस्त्र पुराने पड़ गए थे। भाला व तलवार से दूर तक मार नहीं की जा सकती थी, जबकि तुर्कों का जीतने का एक मुख्य कारण क्षिप्रगति की अश्वारोही सेना थी, जिसका मुकाबला राजपूत न कर सके। मुस्लिम आक्रमणकारी सेना का मुख्य शस्त्र तीर था, जिससे दूर से ही राजपूत सेना पर वार किया जा सकता था।

(iii) राजनीतिक एकता का अभाव– राजपूतों में परस्पर सहयोग का अभाव था। वे शत्रु का कभी आपस में मिलकर सामना नहीं कर सके। अत: एकता के अभाव में उनका पतन अवश्यम्भावी था। घोर संकट के समय में भी मिल-जुलकर इन्होंने शत्रु का सामना कभी नहीं किया। राजा लोग अपने स्वार्थ एवं कुल गौरव के लिए ही लड़ते रहे, देश के लिए वे कभी मिलकर शत्रु से नहीं लड़े।

(iv) **सैनिक दुर्बलताए–** युद्ध विजय के लिए कुशल व प्रशिक्षित सेना अपना महत्वपूर्ण स्थान रखती है। राजपूतों का सैनिक बल सामन्तों पर निर्भर था। स्थायी सेना रखने की कोई स्थायी व्यवस्था नहीं थी। सैनिकों में युद्ध-कौशल एवं उत्साह का नितान्त अभाव था। सैनिक दुर्बलता राजपूतों के पतन का दूसरा मुख्य कारण था।

(v) **दोषपूर्ण सामाजिक संगठन– दशरथ शर्मा** के अनुसार, ''राजपूत सेना जातीय श्रेष्ठता की भावना से ग्रस्त थी। झूठे अहंकार के कारण उनमें सामूहिक एकता का अभाव था।'' एक दूसरी जाति के साथ उठने-बैठने, खाने-पीने में वे आपत्ति करते थे। इसके विपरीत मुसलमानों में छुआछूत की भावना नहीं थी। सामाजिक एकता के कारण वे सभी मिलजुल कर रहते थे।

(vi) **राजपूतों के त्रुटिपूर्ण फैसले–** राजपूत शासकों ने कुछ ऐसी भयंकर भूलें की हैं, जिनसे इतिहास की धारा ही परिवर्तित हो गई, जैसे चौहान शासक पृथ्वीराज तृतीय ने मुहम्मद गौरी को तराइन के मैदान में 1191 ई० में बुरी तरह परास्त किया, लेकिन उसका वध नहीं किया और उसे आसानी से सुरक्षित लौट जाने दिया। अपनी सेना को भी परास्त होकर भागती मुस्लिम सेना का पीछा न करने का आदेश दिया। इसका परिणाम उसे एक वर्ष पश्चात् ही 1192 ई० में तराइन के द्वितीय युद्ध में भुगतना पड़ा। गौरी ने पृथ्वीराज का वध करके भारत में विदेशी शासन की स्थापना की।

(vii) **राजपूतों द्वारा युद्धों में नैतिकता का पालन–** राजपूत लोग युद्धों में नैतिकता का अनिवार्य रूप से पालन करते थे। इनके युद्ध एक तरह से धर्म-युद्ध कहे जा सकते हैं, जिसके अनुसार ये युद्ध में पीठ दिखाकर भागते हुए सैनिकों का पीछा करना पाप समझते थे। युद्ध-भूमि में यदि शत्रु पक्ष का सैनिक घायल है, तो उस पर भी वार नहीं करते थे तथा अस्त्र-शस्त्रविहीन व्यक्ति पर भी ये लोग प्रहार नहीं करते थे, जबकि मुस्लिम सेना की नीति यह थी कि शत्रु पर कमजोर क्षणों में भीषण प्रहार किया जाए। राजपूतों का यह नैतिक आदर्श हानिकारक सिद्ध हुआ।

(viii) **अपर्याप्त सुरक्षित सेना–** राजपूत युद्ध को एक खेल समझते थे। समस्त सेना एक साथ युद्ध में झोंक देते थे। जबकि विदेशी आक्रमणकारी अपनी सुरक्षित सेना रखते थे, जो थकी हुई सेना का स्थान लेती थी।

(ix) **प्रभावी गुप्तचर व्यवस्था का अभाव–** राजपूतों की पराजय का अन्य कारण प्रभावी गुप्तचर व्यवस्था की कमी थी। तुर्कों का गुप्तचर विभाग अत्यधिक कुशल और संगठित था। वह पहले से ही शत्रु पक्ष की कमजोरियों का पता लगा लेता था। संयोगवश उन्हें कई बार देशद्रोही हिन्दू भी मिल जाते थे, जिन्हें वे अपनी सेना में भर्ती कर लेते थे और फिर उन्हीं की सहायता से आवश्यक जानकारी प्राप्त कर लेते थे। कई बार तो ऐसा हुआ जब तुर्क सेना राज्य की सीमाओं को लाँघकर अन्दर प्रवेश कर गई, तब राजपूत शासकों को जानकारी मिली। **डॉ० के० एस० लाल** ने राजपूतों की निष्प्रभावी गुप्तचर व्यवस्था को तुर्कों की विजय का प्रमुख कारण माना है।

(x) **कुछ दुर्भाग्यपूर्ण संयोग–** राजपूतों की पराजय कई जगह ऐसे कारणों से भी हुई, जो अप्रत्याशित रूप से उस समय उपस्थित हो गए। जैसे जिस समय जयपाल ने सुबुक्तगीन के राज्य पर आक्रमण किया, उस समय लगभग राजपूत जीतने ही वाले थे कि उन पर भारी बर्फ एवं ओलों की बौछार हो गई जिससे कई सैनिक मारे गए। अन्त में उन्हें अपमानजनक सन्धि करनी पड़ी। इसी प्रकार के कुछ अन्य युद्ध और हैं, जिनमें आकस्मिक कारणों से ही राजपूतों को मुँह की खानी पड़ी।

5. भोज परमार वंश का एक कुशल शासक था। इस कथन की समीक्षा कीजिए।

उ०– राजा भोज (1010-1055 ई०)– भोज परमार वंश का सर्वाधिक महत्वपूर्ण और प्रतापी शासक था। वह एक कुशल सेनानायक तथा कला एवं साहित्य का प्रेमी था। उसके शासनकाल में सभी क्षेत्रों में अभूतपूर्व उन्नति हुई। मेरुतुंग के अनुसार सर्वप्रथम उसने तैलप द्वितीय को मारकर मुंज की हत्या का प्रतिशोध लिया। मेरुतुंग का यह कथन विश्वसनीय नहीं है कि क्योंकि तैलप द्वितीय भोज का समकालीन नहीं था और 997 ई० में उसकी मृत्यु हो गई थी तथा भोज 1010 ई० में गद्दी पर बैठा था। भोज ने लाट के शासक कीर्तिराज को परास्त किया और कोंकण के शासक केशिदेव पर आक्रमण कर कोंकण पर अधिकार कर लिया। भोज ने उड़ीसा , कलचुरि के शासकों से भी युद्ध किया। भोज ने चन्देल शासक विद्याधर से भी लोहा लिया। भोज ने चाहमानों पर भी विजय प्राप्त की। अन्त में भोज चालुक्य नरेश भीम द्वितीय से युद्ध करता हुआ 1055 ई० में वीरगति को प्राप्त हुआ। राजा भोज के शासनकाल में साहित्य, व्याकरण, गणित, औषधि विज्ञान, वास्तुकला आदि की अत्यधिक उन्नति हुई। एक अभिलेख में भोज को कविराज की उपाधि से विभूषित किया गया है। उसने व्याकरण, ज्योतिष, अलंकार, विज्ञान, धर्म, औषधि विज्ञान आदि पर अनेक गन्थ लिखे थे। उसका दरबार विद्वानों और कलाकारों से भरा रहता था। धनपाल और उसका भाई शोभन तथा कवियित्री सीता उसके दरबार में रहते थे। भोज की रानी अरुन्धती एक विदुषी महिला थी। धारानगरी में उसने एक विश्वविद्यालय स्थापित किया था। इन सभी उपलब्धियों के कारण राजा भोज को 'सरस्वती पण्डित' कहा जाता है। उसने भोपाल के दक्षिण में भोजपुर नामक एक नगर बसाया तथा इस नगर के निकट उसने एक झील का निर्माण भी कराया था। इस प्रकार, एक महान निर्माता और लोक-हितकारी शासक के रूप में भोज को इतिहास में एक गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त है।

6. चौहान नरेश पृथ्वीराज चौहान तृतीय की उपलब्धियों का उल्लेख कीजिए।

उ०– पृथ्वीराज तृतीय (पृथ्वीराज चौहान (1177-1192 ई०)– विग्रहराज चतुर्थ के बाद उसका पुत्र अपरगांगेय गद्दी पर बैठा,

किन्तु शीघ्र ही जगददेव के पुत्र पृथ्वीराज द्वितीय ने उसकी हत्या कर दी और स्वयं शायक बन बैठा। 1169 ई० तक शासन किया । उसके बाद सोमेश्वर ने 1169 ई० से 1177 ई० तक शासन किया। सोमेश्वर के बाद उसका पुत्र पृथ्वीराज तृतीय चाहमान वंश की राजगद्दी पर आसीन हुआ। जिस समय पृथ्वीराज गद्दी पर बैठा, उस समय उसकी आयु 11 वर्ष ही थी। अत: उसकी माता कर्पूरीदेवी ने संरक्षिका के रूप में मुख्यमंत्री कदम्बवास की सहायता से राज्य कार्य संचालित किया। कदम्बवास बड़ा योग्य और स्वामिभक्त सेवक था। भुवनैक मल्ल नामक चाचा ने भी उसकी सहायता की। पृथ्वीराज की प्रारम्भिक विजयों का श्रेय इन्हीं दोनों मन्त्रियों को दिया जाता है।

सन् 1180 ई० के लगभग पृथ्वीराज चौहान ने शासनसूत्र अपने हाथों में ले लिया। शीघ्र ही पृथ्वीराज को अनेक शाक्तिशाली राजाओं से लोहा लेना पड़ा। पृथ्वीराज ने आक्रामक नीति अपनाकर अपने विरोधियों को नतमस्तक किया। उसकी प्रमुख उपलब्धियाँ इस प्रकार रहीं—

(i) **नागार्जुन के विद्रोह का दमन–** सन् 1180 ई० में विग्रहराज चतुर्थ के पुत्र नागार्जुन ने पृथ्वीराज के विरुद्ध विद्रोह करके गुड़पुर पर अधिकार कर लिया। पृथ्वीराज ने नागार्जुन के विद्रोह का दमन करने में सफलता प्राप्त की। यह पृथ्वीराज का पहला सैनिक अभियान था।

(ii) **भण्डानकों का दमन–** सन् 1182 ई० में भण्डानकों ने विद्रोह कर दिया। इनके राज्य में भिवानी, रिवाड़ी तथा अलवर के कुछ क्षेत्र सम्मिलित थे। पृथ्वीराज ने इनके विद्रोह का दमन करके इन क्षेत्रों पर अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया।

(iii) **चन्देलों से युद्ध–** 'पृथ्वीराजरासो' से ज्ञात होता है कि पृथ्वीराज ने चन्देल राजा परमार्दि पर विजय प्राप्त की थी। परमार्दि और पृथ्वीराज के बीच महोबा का युद्ध हुआ। इस युद्ध में गहड़वाल शासक जयचन्द ने आल्हा और ऊदुल नामक बनाफर सरदारों के साथ परमार्दि की सहायता की थी। मदनपुर अभिलेख से इस तथ्य की पुष्टि होती है। लेकिन पृथ्वीराज की चन्देल साम्राज्य पर विजय अस्थायी रही थी।

(iv) **गुजरात पर आक्रमण–** 'पृथ्वीराजरासो' से पता चलता है कि पृथ्वीराज के पिता सोमेश्वर और चालुक्य नरेश भीम के बीच एक भीषण युद्ध हुआ था, जिसमें भीम द्वितीय ने सोमेश्वर का वध करके नागौर पर अधिकार कर लिया था।

अत: पृथ्वीराज ने राजा बनते ही अपने पिता की हत्या का प्रतिशोध भीम का वध करके लिया। लेकिन पृथ्वीरासरासो का यह विवरण संदिग्ध है, क्योंकि भीम द्वितीय के गद्दी पर बैठने से पूर्व ही सोमेश्वर की मृत्यु हो चुकी थी। चालुक्य अभिलेखों के अनुसार चाहमानों और चालुक्यों के मध्य संघर्ष 1187 ई० के उपरान्त हुआ था।

(v) **गहड़वालों से संबंध–** पृथ्वीराज चौहान का समकालीन गहड़वाल शासक जयचन्द था। राजा जयचन्द एक शक्तिशाली शासक था और उसने अनेक विजयें प्राप्त की थीं। चन्दरबरदाई के अनुसार राजा जयचन्द ने अपनी पुत्री संयोगिता के विवाह के लिए एक स्वयंवर आयोजित किया और पृथ्वीराज चौहान को नीचा दिखाने के लिए उसे स्वयंवर समारोह में आमन्त्रित नहीं किया। इससे क्रुद्ध होकर पृथ्वीराज चौहान ने संयोगिता का अपहरण कर लिया। इससे दोनों के मध्य घोर शत्रुता हो गई, जिसका लाभ कालान्तर में मुहम्मद गोरी ने उठाया।

(vi) **तराइन का प्रथम युद्ध (1191 ई०)–** पृथ्वीराज चौहान और मुहम्मद गोरी के मध्य पहला संघर्ष 1191 ई० में तराइन के मैदान में हुआ। पृथ्वीराज की सेना के विशाल संख्या और भीषण आक्रमण के समक्ष गोरी के सैनिक टिक न सके और शीघ्र ही गोरी की सेना पराजित होकर भागने को बाध्य हुई। स्वयं गोरी भी घायल हुआ, किन्तु वह किसी प्रकार युद्ध-क्षेत्र से भागने में सफल हो गया। पृथ्वीराज ने भागती हुई सेना का पीछा न करके एक भयंकर भूल की और इस भूल का परिणाम उसे शीघ्र ही भुगतना पड़ा।

(vii) **तराइन का द्वितीय युद्ध (1192 ई०)–** मुहम्मद गोरी अपनी अपमानजनक पराजय को न भूल सका और अगले ही वर्ष 1 लाख 30 हजार घुड़सवारों के साथ तराइन के मैदान में आकर डट गया। गोरी ने पृथ्वीराज को सन्देश भेजा की वह इस्लाम धर्म स्वीकार कर ले। इस पर, पृथ्वीराज स्वयं एक विशाल सेना लेकर तराइन के मैदान में पहुँच गया। पृथ्वीराज ने गोरी के पास संदेश भिजवाया कि वह यदि पंजाब और सरहिन्द पर अधिकार करके वापस लौट जाए तो वह गोरी को कोई क्षति नहीं पहुँचाएगा। इस पर गोरी ने चालाकी से काम लेते हुए पृथ्वीराज के पास यह कहलवाया कि वह अपने भाई मुईनुद्दीन की आज्ञा से भारत पर आक्रमण करने आया है अत: इस संबंध में भाई से अनुमति लेनी आवश्यक है तथा मै अपने भाई के पास सन्देश भेज रहा हूँ। इस सूचना को पाकर पृथ्वीराज की सेना विश्राम करने लगी। इसी समय गोरी ने अचानक उस पर आक्रमण कर दिया, फलस्वरूप पृथ्वीराज की सेना में भगदड़ मच गई। इसी समय गोरी ने अचानक उस पर आक्रमण कर दिया फिर भी राजपूत सेना ने तुर्कों से भयंकर युद्ध किया, किन्तु अन्त में उन्हें पराजित होना पड़ा। इस युद्ध में एक लाख भारतीय सैनिक मारे गए और पृथ्वीराज को बन्दी बना लिया गया । बाद में पृथ्वीराज की हत्या कर दी गई। तराइन का दूसरा युद्ध भारतीय इतिहास का एक निर्णायक युद्ध बन गया। जिससे हिन्दुस्तान पर मुस्लिम आक्रमण की सफलता सुनिश्चित कर दी।

तराइन के द्वितीय युद्ध में पृथ्वीराज के पराजित होने के कारणों में मुहम्मद गोरी की धूर्तता तथा छलभरी नीति, जयचन्द से पृथ्वीराज को सहायता न मिलना तथा प्रथम तराइन युद्ध के बाद पृथ्वीराज का विलासी हो जाना था।

वस्तुत: पृथ्वीराज तृतीय एक वीर तथा योग्य सेनापति था। किन्तु उसमें राजनीतिक दूरदर्शिता का अभाव था। यही कारण था कि वह अत्यन्त शक्तिशाली होते हुए भी गोरी से पराजित हो गया। ''तराइन के द्वितीय युद्ध में पृथ्वीराज की पराजय ने न केवल चाहमानों की राजशक्ति को समाप्त कर दिया, वरन भारत के लिए भी दुर्दशा का कारण बनी।'' **डॉ० राय चौधरी** के अनुसार, ''इस युद्ध ने शाकम्भरी के चाहमानों के प्रभुत्व को यथार्थ में समाप्त कर दिया।

(viii) विद्वानों का संरक्षक–'पृथ्वीराज तृतीय विद्वानों का संरक्षक तथा आश्रयदाता था। उसके दरबार में जयानिक, जनार्दन, विद्यापति आदि अनेक विद्वान आश्रय पाते थे। पृथ्वीराज रासो का रचयिता चन्दबरदाई उसका दरबारी कवि था।

7. राजपूतों के पतन के कारणों का वर्णन कीजिए।

उ०– उत्तर के लिए विस्तृत उत्तरीय प्रश्न संख्या संख्या— 4 के उत्तर का अवलोकन करें।

8. राजपूतयुगीन सामाजिक जीवन पर टिप्पणी लिखिए।

उ०– राजपूतयुगीन सामाजिक जीवन– राजपूत युग में सत्ता राजपूतों के हाथ में थी। समाज वर्णों में विभाजित था। ब्राह्मण को समाज में सबसे उच्च माना जाता था। ब्राह्मणों का प्रमुख कर्तव्य धर्मशास्त्रों के अनुसार समाज का मार्गदर्शन करना था। क्षत्रियों को भी उनके देश प्रेम, वीरता व उत्साह आदि गुणों के कारण अधिक सम्मान मिलता था।

इस युग में व्यापार वैश्यों के हाथ में था। शूद्रों का काम खेती करना था। अलबरूनी ने उस समय की सामाजिक स्थिति का वर्णन 'तहकीक-ए-हिन्द' नामक ग्रन्थ में किया है। इस युग में कायस्थों की एक नवीन जाति का विकास हुआ। राजपूत युग में अनेक कायस्थ राजस्व से जुड़े विभिन्न उच्च पदों पर कार्य कर रहे थे।

नारी की स्थिति– स्त्रियों की दशा में पूर्वकाल की अपेक्षा इस काल में कुछ गिरावट आ गई थी। राजपूत काल में स्त्रियों को समाज में स्वतन्त्रता नहीं थी। राजघरानों में कन्याओं को अपना पति चुनने का सामान्यत: अधिकार नहीं था। किन्तु नाडोल के राजा महेन्द्र की बहन दुर्लभ देवी और राजा जयचन्द की कन्या संयोगिता के स्वयंवरों के उदाहरण मिलते हैं। इस काल में कुछ स्त्रियाँ विदुषी हुई, जैसे- मण्डन मिश्र की पत्नी भारती शास्त्रार्थ में, भास्कराचार्य की पुत्री लीलावती गणित में तथा राजशेखर की पत्नी अवन्तिसुन्दरी काव्य शास्त्र में। बहुविवाह, सती प्रथा, कन्या-वध तथा जौहर प्रथा भी राजपूतों में प्रचलित थी। गन्धर्व विवाहों का भी प्रचलन था।

दास प्रथा– राजपूतकाल में दास प्रथा का काफी प्रचलन था। इस काल में दास केवल राजा, सामन्त, गृहस्थ के यहाँ ही नहीं बल्कि बौद्ध मठों, वैष्णवों, शैवों तथा शाक्तों के मन्दिरों में भी रहते थे। दास-दासियों को दान में देने की प्रथा राजपूतकाल में बहुत बढ़ी। बहुत से लोग अपना ऋण चुकाने के लिए स्वयं को भी दास के रूप में बेच देते थे। इस काल में दासों की जान-माल एवं अधिकार की दृष्टि से स्थिति में और गिरावट आई।

हिन्दू समाज की संकीर्णता– इस समय अन्धविश्वास ने समाज पर अपना प्रभाव जमा लिया था। उदार तथा समन्वयकारी नीति समाप्त हो चली थी। **अलबरूनी** के शब्दों में ''उस समय के लोग धर्म, ज्ञान और विज्ञान में अपने को संसार के अन्य लोगों से बढ़ा-चढ़ा मानते थे। उनकी धारणा थी कि संसार की अन्य जाति ज्ञान-विज्ञान में उनकी समता नहीं कर सकती। दूसरी जातियाँ विशेषकर विदेशी जातियों से वे अपना ज्ञान छिपाने का प्रयत्न करते थे। लोग दंभी व अभिमानी हो गए थे।'' इन सबका परिणाम यह निकला कि समाज कुण्ठित हो गया, उसकी मौलिकता तथा प्रगतिशीलता समाप्त हो गई। इसके फलस्वरूप भारतीय समाज दुनिया से पिछड़ गया और हमें पराधीनता के दिन देखने पड़े।

इकाई-2

12

इस्लाम धर्म का उदय
(Rise of Islam Religion)

अभ्यास

निम्नलिखित तिथियों के ऐतिहासिक महत्व का उल्लेख कीजिए–

1. 622 ई०	2. 570 ई०	3. 1000 ई०	4. 1191 ई०
5. 1192 ई०	6. 1025 ई०	7. 1194 ई०	8. 1206 ई०

उ०– उत्तर के लिए पाठ्यपुस्तक के पृष्ठ संख्या— 145 व 146 पर तिथि सार का अवलोकन करें।

सत्य या असत्य बताइए–

उ०– प्रश्नोत्तर के लिए पाठ्यपुस्तक के पृष्ठ संख्या— 146 का अवलोकन करें।

बहुविकल्पीय प्रश्न

उ०– प्रश्नोत्तर के लिए पाठ्यपुस्तक के पृष्ठ संख्या– 146 का अवलोकन करें।

अतिलघु उत्तरीय प्रश्न

उ०– प्रश्नोत्तर के लिए पाठ्यपुस्तक के पृष्ठ संख्या– 146 व 147 का अवलोकन करें।

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. इस्लाम धर्म की चार विशेषताओं का वर्णन कीजिए।

उ०– इस्लाम धर्म की चार विशेषताएँ निम्नलिखित हैं–

(i) इस्लाम धर्म के अनुसार, अल्लाह एक है, वह सर्वशक्तिमान एवं सारे संसार का नियन्ता है। वह दयालु है और उसमें विश्वास से मनुष्य में संतोष व नम्रता आती है। अल्लाह सबकी सुनता है और उनकी आवश्यकताएँ पूरी करता है।

(ii) अल्लाह की नजर में सभी समान हैं। अमीर, गरीब, जाति, रंग, ऊँच-नीच के आधार पर भेद करना इस्लाम के विरुद्ध हैं।

(iii) अच्छे कर्म करने वाला अल्लाह को प्रिय है। उनका विश्वास था कि प्रलय के दिन अच्छे-बुरे कर्मों का फल अवश्य मिलेगा। अच्छे काम करने वालों को स्वर्ग और बुरे करने वालों को नरक मिलेगा।

(iv) कुरान में लिखा है, ''इस्लाम को मानने वाले सभी भाई हैं और भाइयों में एकता रखें। मानव सेवा में ही सच्चा सुख है और अल्लाह इसी से खुश होता है।''

2. भारत में अरबों की सफलता के क्या कारण थे?

उ०– भारत में अरबों की विजय अथवा उनकी सफलता के अनेक कारण बताए जाते हैं। भारतवासियों का सामाजिक भेदभाव, राजा दाहिर की अलोकप्रियता, सिन्ध की उत्तरी भारत से पृथकता, सिन्ध के लोगों का अन्धविश्वास, अरबों का धार्मिक उत्साह, अरब सैनिकों की अधिक संख्या, अरबों की रणकुशलता, मकरान से सहायता, दाहिर की सेना का विश्वासघात, दाहिर की भूलें और मुहम्मद-बिन-कासिम का आकर्षक व्यक्तित्व आदि के कारणों अरबों ने भारत पर सफलतापूर्वक विजय प्राप्त कर ली थी।

3. इस्लाम धर्म के पाँच आदेश लिखिए।

उ०– इस्लाम धर्म के पाँच आदेश है–

(i) कलमा (एकेश्वरवाद व उसके पैगम्बर में विश्वास) (ii) जकात (दान)

(iii) नमाज (दिन में पाँच बार इबादत करना) (iv) रोज़ा

(v) हज

4. मुहम्मद गौरी के आक्रमण के समय भारत की राजनीतिक स्थिति कैसी थी?

उ०– मुहम्मद गौरी के आक्रमण के समय भारत की राजनीतिक स्थिति– मुहम्मद गौरी के समय में उत्तरी भारत की राजनीतिक स्थिति में काफी परिवर्तन हो चुका था। बिहार में पाल वंश का शासन था। बंगाल में सेन वंश का राज्य था। बुन्देलखण्ड पर चन्देलों का प्रभुत्व था। कन्नौज के प्रतिहार वंश का अन्त गहड़वाल वंश द्वारा किया जा चुका था। दिल्ली और अजमेर का शासक पृथ्वीराज चौहान था, जो गहड़वाल नरेश जयचन्द का शत्रु था। गुजरात में भीमदेव राज्य कर रहा था। मुल्तान और सिन्ध में मुसलमान शासक थे। भारत की दयनीय राजनीतिक दशा की गौरी ने भी भरपूर लाभ उठाया।

5. तराइन के द्वितीय युद्ध में पृथ्वीराज चौहान की पराजय के कारणों की समीक्षा कीजिए।

उ०– तराइन के द्वितीय युद्ध में पृथ्वीराज के पराजित होने के प्रमुख कारणों में मुहम्मद गोरी की धूर्तता तथा छलभरी नीति, जयचन्द से पृथ्वीराज को सहायता न मिलना तथा प्रथम तराइन युद्ध के बाद पृथ्वीराज का विलासी हो जाना था।

वस्तुत: पृथ्वीराज तृतीय एक वीर योग्य सेनापति था, किन्तु उसमें राजनीतिक दूरदर्शिता का अभाव था। यही कारण था कि वह अत्यन्त शक्तिशाली होते हुए भी गोरी से पराजित हो गया।

6. एक विजेता के रूप में मुहम्मद गौरी का मूल्यांकन कीजिए।

उ०– मुहम्मद गोरी एक महत्त्वाकांक्षी एवं कट्टर मुसलमान शासक था। वह गजनी और हिरात के बीच स्थित गोर प्रदेश का निवासी था। उसका वास्तविक नाम मुईनुद्दीन मुहम्मद गारी उर्फ शहाबुद्दीन गोरी था। महमूद की मृत्यु के बाद गोरी के भाई ग्यासुद्दीन ने 1173 ई० में गजनी पर अधिकार कर लिया और गजनी के शासन-प्रबन्ध का उत्तरदायित्व मुहम्मद गोरी को सौंप दिया। मुहम्मद गारी जीवन-पर्यन्त अपने भाई ग्यासुद्दीन के प्रति निष्ठावान रहा।

7. महमूद गजनवी के आक्रमणों पर टिप्पणी कीजिए।

उ०– महमूद गजनवी ने सन् 1000 ई० से 1026 ई० के बीच भारत पर कुल सत्रह बार आक्रमण किए, जिनका विवरण निम्न प्रकार है–

(i) सीमावर्ती प्रदेशों पर आक्रमण (ii) पेशावर पर आक्रमण

(iii) भीरा (भटिण्डा) पर आक्रमण (iv) मुल्तान पर आक्रमण

(v) सेवकपाल पर आक्रमण (vi) आनन्दपाल पर आक्रमण

(vii) नगरकोट पर आक्रमण
(viii) मुल्तान पर पुन: आक्रमण
(ix) थानेश्वर पर आक्रमण
(x) लाहौर पर आक्रमण
(xi) कश्मीर पर आक्रमण
(xii) भारत के भीतरी प्रदेशों पर आक्रमण
(xiii) कालिंजर पर आक्रमण
(xiv) पंजाब पर आक्रमण
(xv) ग्वालियर तथा कालिंजर पर पुन:
(xvi) सोमनाथ पर आक्रमण
(xvii) मुल्तान के जाटों पर आक्रमण

विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

1. ''महमूद गजनवी एक लुटेरा मात्र था।'' इस कथन की विवेचना कीजिए।

उ०– महमूद गजनवी गजनी के शासक **सुबुक्तगीन** का पुत्र था। उसका पूरा नाम अबु कासिम महमूद था। उसका जन्म 2 नवम्बर, 971 ई० में रात्रि में हुआ था। उसकी माता गजनी के निकटवर्ती प्रान्त जबुलिस्तान के अमीर की पुत्री थी। इस्माइल, नसूर और युसूफ महमूद के भाई थे। वह तलवार के बल पर इस्माइल को पराजित कर 997 ई० में गजनी का स्वामी बना था। उसने खलीफा अल कादिर बिल्लाह से शासक की मान्यता और यमीनउद्दौला (साम्राज्य की दक्षिण भुजा) तथा 'अमीन-उल-मिल्लत' (धर्मरक्षक) की उपाधियाँ प्राप्त कीं। महमूद पहला मुसलमान शासक था, जिसने सुल्तान (सशक्त या अधिपति) की पदवी धारण की। महमूद के व्यक्तित्व के सन्दर्भ में लेनपूल ने लिखा है, ''महमूद एक महान् सैनिक, अदम्य साहसी, विलक्षण मानसिक तथा शारीरिक शक्ति का स्वामी था''

महमूद गजनवी के भारत पर आक्रमण का उद्देश्य– महमूद गजनवी ने भारत पर बार-बार आक्रमण किए। डॉ० ईश्वरीप्रसाद का मत है, ''उसका उद्देश्य भारत को जीतना नहीं था, अपितु वह यहाँ की अतुल सम्पत्ति को लूटना और अपने धर्म का प्रचार करना चाहता था। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए उसने भारत पर 17 बार हमले किए।'' अधिकांश विद्वानों ने तो उसे मात्र लुटेरा ही माना है। **हैवेल** ने तो यहाँ तक लिख दिया है, ''वह बगदाद को भी निर्दयता से लूट सकता था, यदि उसे वहाँ धन मिलने की सम्भावना होती।'' उसके द्वारा भारत पर किए गए आक्रमणों के सम्बन्ध में भी अधिकाशत: यही कहा जाता है– ''महमूद मात्र एक लुटेरा मात्र था, इसके अतिरिक्त कुछ नहीं।'' इस प्रकार महमूद गजनवी के भारतीय आक्रमणों को उद्देश्य मात्र धनलोलुपता थी।

महमूद गजनवी के भारत पर आक्रमण करने के उद्देश्यों के विषय में विद्वानों में मतभेद हैं, तथापि उसके उद्देश्यों को निम्नलिखित प्रकार से व्यक्त किया जा सकता है–

(i) मूर्तिपूजा का अन्त– महमूद गजनवी इस्लाम धर्म का झण्डा हर देश में फहराना अपना प्रमुख कर्त्तव्य समझता था। भारत एक मूर्तिपूजा देश है। अत: भारत में मूर्तिपूजा को समाप्त करने तथा यहाँ पर इस्लाम धर्म को प्रचार करने के उद्देश्य से उसने भारत पर बार-बार आक्रमण किए।

(ii) धन लूटना– महमूद बचपन से ही भारत की अपार धन-सम्पत्ति के विषय में सुन चुका था। अत: महमूद का भारत पर आक्रमण करने का मुख्य उद्देश्य भारत के विपुल धन को लूटकर गजनी ले जाना था। **डॉ० ईश्वरीप्रसाद** का कथन है, ''जहाँ तक भारत का प्रश्न है, महमूद गजनवी एक लूटेरा मात्र ही था और भारत के धन को लूटना ही उसके आक्रमणों का प्रमुख लक्ष्य था।''

(iii) राज्य-विस्तार की कामना– कुछ इतिहासकारों ने महमूद के आक्रमणों का उद्देश्य भारत मे अपने राज्य का विस्तार करना बताया है, किन्तु यह सत्य प्रतीत नहीं होता। वह भारत में अपना शासन स्थापित करना नहीं चाहता था, क्योंकि उसके आक्रमणों का लक्ष्य राजधानियाँ और सुदृढ़ दुर्गों के स्थान पर समृद्ध नगर तथा सोने-चाँदी से भरपूर मन्दिर होते थे। वह दुर्गों पर आक्रमण तभी करता था, जब ऐसा करना अनिवार्य होता था। मन्दिरों पर आक्रमण करने से उसकी धन प्राप्ति की अभिलाषा पूर्ण होती थी। इसी कारण भारत में उसके अधिकांश आक्रमण उन्हीं नगरों पर हुए जहाँ कोई समृद्ध मन्दिर था अथवा जहाँ मन्दिरों की अधिकता थी।

(iv) धर्म-प्रचार– कुछ इतिहासकारों ने महमूद के आक्रमणों का उद्देश्य इस्लाम धर्म का व्यापक प्रचार करना बताया है। यद्यपि यह बात पूर्णत: सत्य है कि उसने भारतीय आक्रमणों के समय जेहाद (धर्म-युद्ध) का नारा लगाया और मन्दिरों एवं मूर्तियों को तोड़कर स्वयं को 'बुतशिकन' (मूर्ति तोड़ने वाला) सिद्ध किया। महमूद गजनवी द्वारा हिन्दू धर्म को पहुँचाए गए आघात तथा हानि को स्पष्ट करते हुए डॉ० ईश्वरीप्रसाद ने लिखा है, ''अपने समय के मुसलमानों के लिए वह गाजी था, जो काफिर प्रदेशों में आध्यात्मिकता मिटाने में संलग्न रहता था। हिन्दुओं के लिए वह आज तक एक क्रुर हूण है, जिसने अनेक पवित्र मन्दिरों को नष्ट कर दिया था और उनकी आत्माओं को अत्यधिक कष्ट दिया था।''

वस्तुत: महमूद के आक्रमणों का मुख्य उद्देश्य भारत की अपार-धन सम्पदा को लूटना मात्र ही था। उसने धन प्राप्ति के लिए धर्म का नाम का अनुचित उपयोग किया था। **डॉ० नाजिम** का कथन है, ''यद्यपि उसकी विजयों के पीछे-पीछे धर्म-प्रचारक भी गए और कुछ हिन्दुओं ने इस्लाम धर्म स्वीकार कर लिया, परन्तु उसका वास्तविक उद्देश्य धन प्राप्ति ही था।'' **प्रो० जाफर** ने लिखा

है, ''महमूद का उद्देश्य भारत में इस्लाम का प्रचार करना नहीं वरन् धन लूटना था। उसने हिन्दू मन्दिरों पर इसलिए आक्रमण किया, क्योंकि वहाँ विपुल धन संचित था।''

2. इस्लाम धर्म के जन्म व शिक्षाओं का वर्णन कीजिए।

उ०– इस्लाम धर्म का जन्म– इस्लाम धर्म के प्रवर्तक हजरत मोहम्मद साहब के आविर्भाव के समय अरब देश के आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक व धार्मिक स्थिति अत्यन्त खराब थी। वहाँ विभिन्न कबीलों व जातियों का निवास था, जो परस्पर संघर्षरत रहते थे। लोग खानाबदोशों का जीवन जीते थे। अनेक प्रकार के आड़म्बरों व अंधविश्वासों का प्रचलन था। लोग मूर्तिपूजा व भूत-प्रेतों पर विश्वास करते थे। केवल काबा में 360 मूर्तियों की पूजा की जाती थी। अरबरवासी वृक्षों व पत्थरों में देवताओं का निवास मानकर उनकी पूजा करते थे। मोहम्मद साहब ने अरब समाज की कुरीतियों को दूर करने के लिए नए धर्म का प्रचार किया। यह धर्म इस्लाम धर्म था।

इस्लाम धर्म के मूलभूत सिद्धान्त– इस्लाम धर्म के सिद्धान्त सरल है। इस्लाम मानने वालो को मुसलमान कहा जाने लगा। 'कुरान' इस्लाम का धर्म ग्रन्थ है। इस्लाम धर्म के प्रमुख सिद्धान्त निम्नलिखित हैं–

(i) इस्लाम धर्म के अनुसार, अल्लाह एक है, वह सर्वशक्तिमान एवं सारे संसार का नियन्ता है। वह दयालु है और उसमें विश्वास से मनुष्य में संतोष व नम्रता आती है। अल्लाह सबकी सुनता है और उनकी आवश्यकताएँ पूरी करता है।

(ii) अल्लाह की नजर में सभी समान हैं। अमीर, गरीब, जाति, रंग, ऊँच-नीच के आधार पर भेद करना इस्लाम के विरुद्ध है।

(iii) अच्छे कर्म करने वाला अल्लाह को प्रिय है। उनका विश्वास था कि प्रलय के दिन अच्छे-बुरे कर्मों का फल अवश्य मिलेगा। अच्छे काम करने वालों को स्वर्ग और बुरे काम करने वालों को नरक मिलेगा।

(iv) कुरान में लिखा है ''इस्लाम को मानने वाले सभी भाई हैं और भाइयों में एकता रखें। मानव सेवा में ही सच्चा सुख है और अल्लाह इसी से खुश होता है।''

(v) मोहम्मद साहब मूर्तिपूजा के विरोधी थे। उनकी मृत्यु के बाद मुसलमान मूर्तिपूजा के घोर विरोधी हो गए। भारत में वे मूर्ति-भंजक (बुतशिकन) कहलाए।

(vi) आध्यात्मिक उन्नति के लिए वे चरित्र की पवित्रता में विश्वास करते थे। मुनुष्य को सच्चाई के मार्ग पर चलना चाहिए। सभी के प्रति सद्भाव एवं बीमारों और गरीबों की सेवा में तत्पर रहना चाहिए।

(vii) इस्लाम में पैगम्बर के पाँच आदेशों का पालन अनिवार्य है। ये हैं– (क) कलमा पढ़ना– कलमा का अर्थ है, ईश्वर (अल्लाह) एक है और मोहम्मद उसके पैगम्बर हैं, (ख) अपनी आय का कुछ भाग जकात के रूप में (वार्षिक आय का 40 वाँ भाग) दान देना चाहिए, (ग) प्रत्येक मुसलमान को दिन में पाँच बार नमाज पढ़ना चाहिए, (घ) रमजान के महीने में रोजा रखना चाहिए, (ङ) जीवन में एक बार 'हज' (मक्का की यात्रा) अवश्य करनी चाहिए।

इस प्रकार हम देखते हैं कि इस्लाम धर्म के मूलभूत सिद्धान्त एवं शिक्षाएँ सरल हैं। वे व्यक्ति और समाज को उन्नति का मार्ग दिखाती हैं। इस्लाम धर्म का उद्देश्य अरब के आदिम समाज की जड़ता, अन्धविश्वास, लूटमार, खून-खराबे वाले रूप को बदलकर एक प्रगतिशील समाज की रचना करना था। इस्लाम ने अरबों को उनके बद्दू वाले रूप में एक सुसंगठित समाज में बदल दिया।

अरबों का विस्तार– मोहम्मद साहब की मृत्यु के सौ वर्ष के भीतर ही, अरब सेनाओं ने बाईजैन्टाइन और सासानिदों को पराजित कर सत्ता के चरम पर स्थित रोम से भी बड़ा साम्राज्य स्थापित किया। इसका विस्तार बिस्के की खाड़ी से लेकर सिन्धु और चीन की सीमाओं तक, अरब सागर से निचली नील तक था। इसमें दक्षिण-पश्चिम यूरोप, उत्तरी अफ्रीका और पश्चिमी एवं मध्य एशिया शामिल थे।

3. भारत पर महमूद गजनवी के आक्रमणों का संक्षिप्त विवरण दीजिए।

उ०– महमूद गजनवी के भारत पर आक्रमण– महमूद के प्रमुख आक्रमणों का विवरण निम्नलिखित है–

(i) सीमावर्ती प्रदेशों पर आक्रमण– 1000 ई० में महमूद ने भारत के सीमावर्ती प्रदेशों पर आक्रमण किया। उसने इन प्रदेशों के शासकों को पराजित कर वहाँ काफी धन लूटा तथा इन शासकों को अपने अधीन कर लिया।

(ii) जयपाल पर आक्रमण– नवम्बर 1001 ई० में गजनवी ने पंजाब और पेशावर के राजा जयपाल पर आक्रमण किया। राजा जयपाल ने पेशावर के युद्ध में बड़ी वीरता एवं साहस के साथ महमूद का सामना किया, किन्तु दुर्भाग्यवश उसकी हार हुई और उसने निराशा के कारण आत्महत्या कर ली।

(iii) भीरा पर आक्रमण (1004-1005 ई०)– झेलम नदी के किनारे स्थित भीरा राज्य का शासक राजा विजयराज था। विजयराज महमूद की सेना के साथ चार दिन तक घमासान युद्ध करता रहा, लेकिन अन्त में वह पराजित हो गया और उसने आत्मग्लानि के कारण आत्महत्या कर ली।

(iv) मुल्तान पर आक्रमण– महमूद ने 1006 ई० में अपना चौथा आक्रमण मुल्तान पर किया। इस समय करमत सम्प्रदाय का

अनुयायी फतेह दाऊद यहाँ का शासक था। महमूद ने एक विशाल सेना के साथ मुल्तान पर आक्रमण करके उस पर अधिकार कर लिया और वहाँ की जनता से 20,000 दिरहम दण्डस्वरूप वसूल किए।

(v) **सेवकपाल पर आक्रमण–** महमूद का पाँचवाँ आक्रमण सेवकपाल (नवासाशाह) पर हुआ। 1006 ई० में पराजित होने पर सेवकपाल ने इस्लाम धर्म अंगीकार कर लिया था। परन्तु 1007 ई० में सेवकपाल पुन: स्वतन्त्र राजा बन गया था। अत: महमूद ने पुन: सेवकपाल पर आक्रमण किया। इस युद्ध में सेवकपाल पराजित हुआ और महमूद ने उससे 4 लाख दिरहम दण्डस्वरूप प्राप्त किए।

(vi) **आनन्दपाल पर आक्रमण (1008 ई०)–** महमूद का छठा आक्रमण लाहौर के राजा आनन्दपाल पर 1008 ई० में हुआ। आनन्दपाल के इस आक्रमण के विरुद्ध दिल्ली, उज्जैन, ग्वालियर और कन्नौज आदि के राजाओं ने एक संघ निर्मित कर महमूद का सामना किया। प्रारम्भ में ऐसा प्रतीत होता था कि मुसलमान युद्ध में पराजित हो जाएँगे, किन्तु दुर्भाग्य से आनन्दपाल का हाथी युद्धभूमि में अनियन्त्रित हो गया और वह युद्ध-क्षेत्र से भागने लगा। ऐसी स्थिति का लाभ उठाकर महमूद ने हजारों व्यक्तियों की हत्या कर दी। इस स्थिति मे हिन्दुओं की दुर्भाग्यपूर्ण पराजय हुई। महमूद को लूट में विशाल सम्पत्ति प्राप्त हुई जिसमें 200 युद्ध के हाथी भी शामिल थे।

(vii) **नगरकोट पर आक्रमण (1008-1009 ई०)–** आनन्दपाल को नतमस्तक करने के बाद महमूद ने कांगड़ा के दुर्ग पर आक्रमण किया। यह दुर्ग पर्वत की चोटी पर बना हुआ था और यहाँ की मूर्तियों पर भेंट की गई अपार सम्पत्ति एकत्रित थी। इस किले पर विजय प्राप्त कर महमूद ने 7 लाख स्वर्ण दीनारें, 700 मन स्वर्ण एवं चाँदी के बर्तन, 200 मन स्वर्ण मुद्राएँ, 2000 मन चाँदी और 20 मन हीरा-मोती आदि लूट लिए।

(viii) **मुल्तान पर पुन: आक्रमण (1010 ई०)–** महमूद का 8 वाँ आक्रमण मुल्तान पर हुआ। यद्यपि मुल्तान पर महमूद ने पहले भी आक्रमण किया था, किन्तु उसकी यह विजय स्थायी न रह सकी और 1010 ई० में महमूद ने मुल्तान के शासक फतेह दाऊद को पराजित कर वहाँ पुन: अपनी सत्ता स्थापित कर ली।

(ix) **थानेश्वर पर आक्रमण (1014 ई०)–** महमूद का 9 वाँ आक्रमण 1014 ई० में थानेश्वर के मन्दिरों पर हुआ। यहाँ का शासक **राजाराम** नगर छोड़कर भाग गया, किन्तु हिन्दुओं ने वीरता से इस आक्रमण का सामना किया। महमूद ने विजय प्राप्त करने के उपरान्त इस नगर को लूटा और यहाँ की स्त्रियों के साथ दुर्व्यवहार किया।

(x) **लाहौर पर आक्रमण (1014 ई०)–** महमूद ने 10 वाँ आक्रमण पुन: लाहौर पर किया। इस समय यहाँ आनन्दपाल का पुत्र त्रिलोचनपाल शासन कर रहा था। इस बार त्रिलोचनपाल के पुत्र भीमपाल ने वीरता से महमूद का सामना किया। परन्तु वह युद्ध में पराजित होकर कश्मीर भाग गया और महमूद ने पंजाब को गजनी साम्राज्य में मिला लिया।

(xi) **कश्मीर पर आक्रमण (1015 ई०)–** 1015 ई० में महमूद का 11 वाँ आक्रमण कश्मीर पर हुआ। इस आक्रमण का मुख्य उद्देश्य भीमपाल को बंदी बनाना था। उसने इसी उद्देश्य से लौहकोट के दुर्ग को घेर लिया, किन्तु मौसम की खराबी के कारण महमूद को निराश होकर वापस आना पड़ा।

(xii) **भारत के भीतरी प्रदेशों पर आक्रमण (1018-1019 ई०)–** महमूद का 12वाँ आक्रमण भारत के भीतरी प्रान्तों पर हुआ। सिन्ध तथा प्रमुख नदियों को पार करता हुआ महमूद बुलंदशहर (बरन) पहुँचा। वहाँ पर नियुक्त हरिदत्त नामक गवर्नर किले को छोड़कर भाग गया। यहाँ से महमूद को अतुल धनराशि और हाथी प्राप्त हुए। इसके बाद वह महाबन की ओर बढ़ा तथा यहाँ के गवर्नर कुलचन्द्र को पराजित कर उससे 185 हाथी तथा अन्य वस्तुएँ लूट ली। इसके बाद उसने मथुरा को लूटा और पुन: कन्नौज की ओर बढ़ा। कन्नोज का प्रतिहार राजा राज्यपाल भाग गया। महमूद को कन्नोज के मन्दिरों से अपार धन प्राप्त हुआ।

(xiii) **कालिंजर पर आक्रमण (1019 ई०)–** महमूद का 13वाँ आक्रमण 1019 ई० में कालिंजर पर हुआ। इस समय यहाँ पर राजा **गण्ड** का शासन था। उसके पास एक संगठित सेना थी। इस सेना के सामने महमूद को युद्ध करने में कुछ संकोच हुआ, किन्तु दुर्भाग्य से गण्ड स्वयं भयभीत होकर भाग गया। कालिंजर विजय से भी महमूद को बहुत-सा धन प्राप्त हुआ।

(xiv) **पंजाब पर आक्रमण (1020 ई०)–** महमूद का 14वाँ आक्रमण 1020 ई० में पंजाबे पर हुआ। उसने पंजाब के निवासियों को मुसलमान बनने के लिए बाध्य किया। तत्पश्चात् उसने पंजाब पर अपना शासन स्थापित किया और यहाँ प्रान्तपतियों को नियुक्त कर गजनी वापस लौट गया।

(xv) **ग्वालियर तथा कालिंजर पर पुन: आक्रमण (1022 ई०)–** 1022 ई० में महमूद ने ग्वालियर तथा कालिंजर प्रान्तों पर पुन: आक्रमण किया। यहाँ के शासकों ने उसकी अधीनता को स्वीकार कर लिया। यहाँ से बहुत-सा धन प्राप्त करने के पश्चात् वह वापस गजनी लौट गया।

(xvi) **सोमनाथ पर आक्रमण (1025-1026 ई०)–** महमूद का 16वाँ तथा प्रसिद्ध आक्रमण सोमनाथ के मन्दिर पर हुआ। यह मन्दिर काठियावाड़ (गुजरात) के पश्चिमी समुद्र तट पर बना हुआ था तथा अपनी कला एवं अतुल धन-सम्पदा के लिए

प्रसिद्ध था। 1025 ई० में वह सोमनाथ के मन्दिर के द्वार पर पहुँच गया। वहाँ का राजा भीमदेव भाग खड़ा हुआ। इस मन्दिर की रक्षा के लिए गुर्जर-राजपूतों ने महमूद का वीरतापूर्वक सामना किया, किन्तु वे महमूद को मन्दिर में जाने से नहीं रोक सके। महमूद गजनवी ने मन्दिर की शिव मूर्ति के टुकड़े-टुकड़े कर दिए और मन्दिर के स्थान पर एक मस्जिद की नींव डाली, मन्दिर की लूट से उसे अपार धन और सोने की प्राप्ति हुई।

(xvii) मुल्तान के जाटों पर आक्रमण– महमूद का अन्तिम (17वाँ) आक्रमण 1027 ई० में मुल्तान के जाटों पर हुआ। इन जाटों ने महमूद की सेना को अत्यधिक परेशान किया था। अत: दण्ड देने के उद्देश्य से उसने जाटों पर आक्रमण कर दिया। अनेक जाटों को उसने नदी में डुबो दिया और उनके बच्चों को पकड़ लिया। यह महमूद का अन्तिम आक्रमण था। इस आक्रमण के तीन वर्ष बाद 1030 ई० में महमूद की मृत्यु हो गई।

महमूद के आक्रमणों का भारत पर प्रभाव– महमूद द्वारा किए गए 17 आक्रमणों का भारत पर व्यापक प्रभाव पड़ा। इस प्रभाव का विवरण निम्नलिखित है—

(i) भारत की विपुल सम्पदा लुट जाने के कारण भारत आर्थिक दुष्टि से बहुत दुबल हो गया।

(ii) महमूद के आक्रमण से राजपूतों की सैनिक दुर्बलता स्पष्ट हो गई।

(iii) भारतीय साहित्य एवं कला की अपार क्षति हुई, क्योंकि महमूद ने लूट के साथ-साथ मन्दिरों, मूर्तियों आदि को नष्ट कर दिया था और वह देश की दुर्लभ अनेक कलाकृतियों को अपने साथ गजनी ले गया था।

(iv) पंजाब को गजनी राज्य में मिला लिए जाने से भविष्य के लिए मुसलमान आक्रमणकारियों का भारत में आने तथा अपना साम्राज्य स्थापित करने का मार्ग प्रशस्त हो गया।

इस प्रकार, महमूद के आक्रमणों के फलस्वरूप भारत को आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से बहुत अधिक हानि उठानी पड़ी थी। इस सम्बन्ध में अलबरूनी ने लिखा है, ''महमूद ने देश की समृद्धि को पूर्ण रूप से नष्ट कर दिया है और आश्चर्यजनक कार्यों का सम्पादन किया जिससे हिन्दुओं को बालू के कणों की भाँति बिखरा दिया गया। उनके बिखरे अवशेष वास्तव में मुसलमानों से घोर घृणा करने लगे थे।''

4. इस्लाम धर्म के राजनीतिक स्वरूप पर प्रकाश डालिए।

उ०– इस्लाम धर्म का राजनैतिक स्वरूप– मोहम्मद साहब की मृत्यु के बाद इस्लाम धर्म का प्रचार-प्रसार खिलाफत के चार खलीफाओं (अबू बक्र, उमर, उस्मान और हजरत अली) ने किया। इनमें मुस्लिम साम्राज्य के वास्तविक संस्थापक खलीफा उमर थे।

खलीफा उमर में इराक, फारस, सीरिया, जेरुसलम, मेसोपोटामिया व मिस्त्र पर विजय प्राप्त की। इस्लाम धर्म के प्रचार के पश्चात् अरबवासियों में एकता की भावना जग गई थी। कभी कबीलों में विभक्त रहने वाला समुदाय अब इस्लाम के झंडे के नीचे एक राज्य के रूप में अवतरित हुआ। मोहम्मद साहब की मृत्यु के पश्चात् 100 वर्षों के अन्दर ही खलीफाओं ने अपनी शक्ति के द्वारा इस्लाम धर्म का प्रचार सीरिया, अफगानिस्तान, पुर्तगाल आदि देशों में किया। अरबों के आक्रमण का मुख्य उद्देश्य इस्लाम धर्म का प्रचार करना होता था।

अरबों का विस्तार– मोहम्मद साहब की मृत्यु के सौ वर्ष के भीतर ही, अरब सेनाओं ने बाईजैन्टाइन और सासनिदों को पराजित कर सत्ता के चरम पर स्थित रोम से भी बड़ा साम्राज्य स्थापित किया। इसका विस्तार बिस्के की खाड़ी से होकर सिन्धु और चीन की सीमाओं तक, अरब सागर से निचली नील तक था। इसमें दक्षिण-पश्चिम यूरोप, उत्तरी अफ्रीका और पश्चिमी एवं मध्य एशिया शामिल थे।

अरबों का सिन्ध पर आक्रमण– अरबों के सिन्ध पर आक्रमण के समय भारत सांस्कृतिक और आर्थिक दृष्टि से अत्यन्त सम्पन्न था। आक्रमण के इस अभियान से पूर्व ही अरबवासियों का व्यापार के माध्यम से भारतीयों के निकटतम सम्पर्क स्थापित था। अरब व्यापारी भारत के दक्षिण-पश्चिमी तटों में व्यावसायिक उद्देश्य से भारत आया करते थे। इस्लाम धर्म के प्रचार एवं प्रसार का धार्मिक उन्माद अरबों को भारत की ओर आकर्षित कर रहा था। खलीफाओं की साम्राज्यवादी नीति की पूर्ति भी भारत पर आक्रमण के लिए प्रेरक रही। अरबों को सिन्ध पर आक्रमण करने का तात्कालिक बहाना भी मिल गया।

लंका से आ रहे कुछ अरब जहाजों को सिन्ध के देवल नामक स्थान पर कुछ भारतीय समुद्री डाकुओं ने लूट लिया। खलीफा ने सिन्ध के राजा दाहिर से इस दुर्घटना की क्षतिपूर्ति की माँग की, किन्तु राजा दाहिर ने इसका समुचित उत्तर नहीं दिया। अत: इराक के गवर्नर अल हज्जाज ने खलीफा की आज्ञा प्राप्त कर सिन्ध पर आक्रमण करने की योजना को मूर्त रूप प्रदान किया। 711 ई० में अभियान सफल सिद्ध न हुए।

5. इस्लाम धर्म के मूलभूत सिद्धान्तों की व्याख्या कीजिए।

उ०– उत्तर के लिए विस्तृत उत्तरीय प्रश्न संख्या– 2 के उत्तर का अवलोकन करें।

6. अरबों के विरुद्ध राजपूत की हार के क्या कारण थे?

उ०– ग्यारहवीं तथा बारहवीं शताब्दी में मुस्लिम आक्रमणकारियों को भारत में अभूतपूर्व सफलता प्राप्त हुई और राजपूत तथा उनके

आक्रमणों को रोकने में असफल रहे और उनकी पराजय हुई **डॉ० स्मिथ, लेनपूल** तथा **एलफिस्टन** आदि इतिहासकारों का मत है कि ''राजपूतों की पराजय इसलिए हुई कि उनकी तुलना में तुर्क कहीं अधिक अच्छे सैनिक थे क्योंकि वे शीत प्रदेशों के निवासी थे, मांस खाते थे और युद्धप्रिय थे।''

परन्तु उक्त मत सत्य प्रतीत नहीं होता, क्योंकि सम्पूर्ण भारतीय इतिहास में भारतीय सैनिकों की वीरता एवं श्रेष्ठता स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है। दासता और पतन के युग से भी भारतीय सैनिक विश्व के विभिन्न युद्ध-क्षेत्रों में अपनी यौद्धिक प्रतिभा का परिचय दे चुके हैं। इतिहासकारों का कहना है कि ''पारस्परिक फूट और हाथियों के उपयोग के कारण राजपूत मुसलमानों से हार गए। परन्तु यह मत भी असंगत लगता है क्योंकि महमूद गजनवी ने हाथियों की शक्ति पर ही मध्य एशिया पर विजय प्राप्त की थी और भारत की भाँति ही मध्य एशिया में अनेक छोटे-छोटे राज्य थे, जिनमें पारस्परिक ईर्ष्या और द्वेष की भावना भी विद्यमान थी। फिर भी डॉ० आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव तथा डॉ० अवधविहारी लाल पाण्डेय ने राजपूतों की पराजय के कुछ मूल कारणों का उल्लेख किया, जिनका विवरण निम्नलिखित है—

(i) राजनीतिक कारण–

(क) राजपूतों में एकता का अभाव– तुर्कों के विरुद्ध राजपूतों की पराजय का प्रमुख कारण उनमें एकता का अभाव था। सम्पूर्ण भारत उस समय अनेक छोटे-छोटे स्वतन्त्र राज्यों में बँटा हुआ था। प्रत्येक राज्य दूसरे के प्रति संघर्ष करने की भावना से ओतप्रोत था। अत: तुर्कों ने एक-एक करके सभी राज्यों पर बड़ी सुगमता से अधिकार कर लिया और अनेक राजपूत वंशों का अन्त कर दिया।

(ख) वंश परम्परागत शासक होना– राजपूतों में एक शासक की मृत्यु के उपरान्त सिंहासन के उत्तराधिकारी वंश परम्परागत होते थे। इससे अनेक बार जब राज्य अयोग्य के हाथ में चला जाता था, तब तुर्क आक्रमणकारी अवसर पर लाभ उठाकर उस राज्य में अपना अधिकार कर लेते थे।

(ग) सीमान्त प्रदेशों की सुरक्षा की उपेक्षा– राजपूत काल में वर्तमान समय की भाँति सीमान्त प्रदेशों की सुरक्षा की व्यवस्था नहीं थी। अत: मुसलमानों को भारत में प्रवेश करने में किसी प्रकार की असुविधा नहीं होती थी।

(घ) परस्पर ईर्ष्या एवं द्वेष– राजपूत शासकों में पारस्परिक द्वेष की भावना इतनी अधिक थी कि वे संकट के समय में भी एकजुट होकर बाहरी शत्रुओं से सामना न कर सके और साथ ही दूसरे राजा को नीचा दिखाने के लिए उन्होंने तुर्कों का साथ दे दिया।

(ङ) राष्ट्रीय भावना का अभाव– उस समय प्रत्येक राजपूत शासक अपने राज्य की रक्षा करना ही अपने कर्त्तव्य की इतिश्री समझता था। वे राष्ट्रीय भावना के महत्त्व को नहीं समझ सके। यही कारण था कि वे तुर्कों से पराजित हो गए।

(ii) सामाजिक कारण–

(क) जाति-प्रथा– इस समय जाति-प्रथा बहुत ही जटिल एवं दोषपूर्ण हो गई थी। समाज की शक्ति विभिन्न जातियों में बँट गई थी और युद्ध करने का उत्तरदायित्व केवल क्षत्रियों पर ही रह गया था। दूसरी ओर राजपूत शासक समस्त वर्गों पर अपना एकाधिकार स्थापित करना चाहते थे। अन्य वर्गों के व्यक्तियों को महत्त्वहीन समझा जाता था। इस प्रकार, तीन-चौथाई जनता का युद्ध में भाग न लेना भी राजपूतों की पराजय का प्रमुख कारण बना।

(ख) राजपूतों का नैतिक पतन– उस समय राजपूत अपने कर्त्तव्यों से विमुख हो गए। उनका चारित्रिक पतन प्रारम्भिक हो गया थां नाच-गाने तथा भोग-विलास में व्यस्त रहते थे और अपने राज्यों की सुरक्षा का ध्यान भी ठीक तरह से नही दिखते थे। इस स्थिति का महमूद गजनवी और मुहम्मद गोरी जैसे वीर, साहसी एवं चतुर आक्रमणकारियों ने लाभ उठाया और अपनी प्रभुता स्थापित करने में सफल हुए।

(ग) अहंकार की अधिकता– राजपूत अहंकार की भावना से ओत-प्रोत थे। उन्हें अपनी वीरता, साहस एवं रण-कौशल पर बड़ा अभिमान था। वे सोचते थे कि उन्होंने स्वयं अपने बल पर अपने ही राज्य की स्थापना की है। अत: अन्य शासकों से सहायता लेना वे अपना अपमान समझते थे। ऐसी अहंकार की स्थिति में विदेशियों के आक्रमण करने पर, उनकी पराजय निश्चित थी।

(घ) मुसलमानों में धार्मिक जोश तथा एकता की भावना– मुसलमान आक्रमणकारियों में धार्मिक जोश तथा एकता की प्रबल भावना थी। उनकी एकता की इस भावना ने ही राजपूतों को पराजित करने में विशेष योगदान दिया।

(iii) सैनिक कारण–

(क) राजपूतों की सेनाओं का दोषपूर्ण संगठन– राजपूतों की सेना में सैनिक संगठन की श्रेष्ठता का अभाव था। उनकी सेनाएँ अव्यवस्थित होती थीं। उनकी सेनाओं में या तो सैनिक हाथियों पर बैठकर युद्ध-स्थल में आते थे या पैदल। दोनों ही मुसलमानों की अश्वारोही सेना के सामने टिक नहीं पाते थे, क्योंकि भारतीय हाथी प्राय: युद्ध स्थल पर जाकर बिगड़ जाते थे और कभी-कभी तो जिस हाथी पर सेनापति बैठा होता था वही बिगड़कर युद्ध-स्थल से भाग जाता था जिसे देखकर शेष

सेना में ही भगदड़ मच जाती थी। इस स्थिति में तुर्क सरलता से विजयी हो जाते थे। महमूद गजनवी ने तो अनेक युद्ध हाथियों की भगदड़ का लाभ उठाकर ही जीते थे। इसलिए यह कथन भी सही है कि राजपूत सेना में हाथियों को प्रयोग बहुत ही विनाशकारी सिद्ध हुआ था।

(ख) सुरक्षित (रिजर्व) सेना का अभाव– राजपूत सेना में आजकल की तरह सुरक्षित सेना की व्यवस्था नहीं की। समस्त सेना एक-साथ ही युद्ध-क्षेत्र में पहुँच जाती थी, किन्तु तुर्क सेनाओं की व्यवस्था बहुत अच्छी थी। वे एक पृथक् सेना सुरक्षित सेना के रूप में भी रखते थे। जब राजपूत योद्धा थक जाते थे, तब तुर्क लोग अपनी सुरक्षित सेना को युद्ध-स्थल में उतार देते थे जिसका सामना थके राजपूत सैनिक नहीं कर पाते थे और लड़खड़ा कर वहीं धराशायी हो जाते थे।

(ग) सैनिकों की संख्या कम होना– राजपूतों की पराजय का एक प्रमुख कारण यह भी था कि उनके पास सैनिक शक्ति अर्थात् सैनिकों की संख्या तुर्कों एवं मुसलमानों की तुलना में बहुत ही कम थी। इसका कारण यह था कि वर्ण-व्यवस्था के अनुसार केवल राजपूत जाति को ही युद्ध करने का अधिकार प्राप्त था। इसके विपरित, मुसलमानों में कोई भी जाति युद्ध में भाग ले सकती थी।

(घ) आधुनिक अस्त्र-शस्त्रों का अभाव– मुसलमानों के पास युद्ध के अधिकतम एवं नवीनतम अस्त्र-शस्त्र होते थे। दूसरी ओर राजपूत अपने बाहुबल पर युद्ध करने में विश्वास रखते थे। वे ढाल और तलवार का प्रयोग करते थे, किन्तु मुसलमान तीर-कमानों का प्रयोग करते थे। तुर्क लोग दूर से ही निशाना साधकर तीर छोड़ देते थे, किन्तु राजपूतों को बिलकुल उनके निकट जाकर लड़ना पड़ता था। इससे वे शत्रुओं के तीरों से शीघ्र घायल हो जाते थे।

(iv) धार्मिक कारण–

(क) हिन्दुओं का ईश्वरीय शक्ति में अन्धविश्वास– राजपूत अनेक देवी-देवताओं की आराधना करते थे। संकट के समय उनके आराध्य देव उनकी सहायता अवश्य करेंगे, इस विश्वास के कारण वे ईश्वरीय शक्ति पर अधिक विश्वास करते थे और अपनी सैन्य शक्ति की ओर अधिक ध्यान नहीं देते थे। इतना ही नहीं, अपनी असीम शक्ति-भावना के कारण वे मन्दिरों का निर्माण करवाते थे और वहाँ पर असीम धन एकत्र करके रखते थे। इसीलिए सोमनाथ के मन्दिर पर महमूद गजनवी ने आक्रमण करके उसे खूब लूटा था। सोमनाथ मन्दिर के पुजारियों का विश्वास था कि भगवान स्वयं ही आकर उनकी रक्षा करेगा।

(ख) युद्ध के सिद्धान्त की प्रमुखता– राजपूत धार्मिक युद्ध के पक्षपाती थे अर्थात् युद्ध के सिद्धान्तों को अत्यधिक मानते थे और वे शत्रु को धोखे से मारना या शरणागत की हत्या करना अपने धर्म के विरुद्ध समझते थे। वे सत्य और दया के पक्षपाती थे, किन्तु तुर्क आक्रमणकारी अवसरवादी थे। उनका सिद्धान्त था कि युद्ध में किसी भी प्रकार विजय प्राप्त करना ही है, विजय ही उनका एकमात्र धर्म है।

(ग) मुसलमानों की जेहाद-भावना– मुसलमान सैनिक किसी भी युद्ध को इस्लाम धर्म की रक्षा के लिए लड़ते थे। युद्ध में अपनी जान देकर वे समझते थे कि हमने धर्म की रक्षा की है। यह जेहाद की भावना ही मुसलमानों की विजय का प्रमुख कारण थी।

(v) तात्कालिक कारण– कुछ तात्कालिक कारणों ने भी राजपूतों की विजय को पराजय में बदल दिया। उदाहरण के लिए; जब पृथ्वीराज चौहान हाथी से उतरकर घोड़े पर चढ़ा तो सेना ने समझा कि वह मारा गया और वह भाग खड़ी हुई। राजा जयचन्द की आँख में अचानक तीर लग गया और राजपूत सेना में भगदड़ मच गई। इसी प्रकार के कुछ अन्य कारण भी राजपूतों की पराजय में सहायक हुए।

7. मुहम्मद गौरी का परिचय देते हुए उसके भारत आक्रमण के उद्देश्य बताइए।

उ०– मुहम्मद गोरी एक महत्त्वाकांक्षी एवं कट्टर मुसलमान शासक था। वह गजनी और हिरात के बीच स्थित गोर प्रदेश का निवासी था। उसका वास्तविक नाम मुईनुद्दीन मुहम्मद गोरी उर्फ शहादुद्दीन गोरी था। महमूद की मृत्यु के बाद गोरी के भाई ग्यासुद्दीन ने 1173 ई० में गजनी पर अधिकार कर लिया और गजनी के शासन-प्रबन्ध का उत्तरदायित्व मुहम्मद गोरी को सौंप दिया। मुहम्मद गारी जीवन-पर्यन्त अपने भाई ग्यासुद्दीन के प्रति निष्ठावान रहा।

भारत की राजनीतिक दशा तथा आक्रमण के उद्देश्य– मुहम्मद गौरी के समय में उत्तरी भारत की राजनीतिक स्थिति में काफी परिवर्तन हो चुका था। बिहार में पाल वंश का शासन था। बंगाल में सेन वंश का राज्य था। बुन्देलखण्ड पर चन्देलों का प्रभुत्व था। कन्नौज के प्रतिहार वंश का अन्त गहड़वाल वंश द्वारा किया जा चुका था। दिल्ली और अजमेर का शासक पृथ्वीराज चौहान था, जो गहड़वाल नरेश जयचन्द का शत्रु था। गुजरात में भीमदेव राज्य कर रहा था। मुल्तान और सिन्ध में मुसलमान शासक थे। भारत की दयनीय राजनीतिक दशा का गौरी ने भी भरपूर लाभ उठाया।

महमूद गजनवी के समान मुहम्मद गौरी भी अत्यन्त महत्वाकांक्षी और धर्मान्ध शासक था। उसने कुछ प्रमुख उद्देश्यों से प्रेरित होकर ही भारत पर आक्रमण करने की योजना बनाई थी। उसके उद्देश्य निम्नांकित थे—

(i) मुहम्मद गौरी अपने भाई की इच्छानुसार गोर साम्राज्य का विस्तार करना चाहता था।

(ii) महमूद के समान भारत से अतुल धन-सम्पत्ति प्राप्त करना भी उसका एक प्रमुख लक्ष्य था।
(iii) गौरी सीमावर्ती राज्य मुल्तान पर प्रभुत्व स्थापित करना चाहता था।
(iv) गौरी महमूद गजनवी के अन्तिम अधिकारी **मलिक खुसरो** को हटाना चाहता था। वह पेशावर का शासक था।
(v) गौरी मध्य एशिया में अपने शत्रु ख्वारिज्म के शासक को नीचा दिखाने के लिए भारत में सुदृढ़ मुस्लिम राज्य स्थापित करना चाहता था।
(vi) भारत में इस्लाम धर्म का प्रसार करना एवं मूर्तिपूजा का विनाश करना भी उसका उद्देश्य था।

8. महमूद गजनवी के भारत आक्रमण व उसके प्रभावों का वर्णन कीजिए।

उ०– उत्तर के लिए विस्तृत उत्तरीय प्रश्न संख्या– 3 के उत्तर का अवलोकन करें।

13 दिल्ली सल्तनत का विस्तार-I (Expansion of Delhi Sultanate-I)

अभ्यास

निम्नलिखित तिथियों के ऐतिहासिक महत्व का उल्लेख कीजिए–

1. 1206 ई० 2. 1208 ई० 3. 1210 ई० 4. 1211 ई०
5. 1221 ई० 6. 1229 ई० 7. 1266 ई० 8. 1287 ई०

उ०– उत्तर के लिए पाठ्यपुस्तक के पृष्ठ संख्या– 155 व 156 पर तिथि सार का अवलोकन करें।

सत्य या असत्य बताइए–

उ०– प्रश्नोत्तर के लिए पाठ्यपुस्तक के पृष्ठ संख्या– 156 का अवलोकन करें।

बहुविकल्पीय प्रश्न

उ०– प्रश्नोत्तर के लिए पाठ्यपुस्तक के पृष्ठ संख्या– 156 का अवलोकन करें।

अतिलघु उत्तरीय प्रश्न

उ०– प्रश्नोत्तर के लिए पाठ्यपुस्तक के पृष्ठ संख्या– 157 का अवलोकन करें।

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. कुतुबद्दीन ऐबक के शासनकाल की प्रमुख घटनाओं का वर्णन कीजिए।

उ०– कुतुबुद्दीन ऐबक ने भारत वियज में मुहम्मद गौरी के साथ अनेक युद्धों में भाग लिया था। गौरी के प्रतिनिधि के रूप में उसने भारत में अनेक सफलताएँ अर्जित कीं। मुहम्मद गौरी के स्वदेश जाने के पश्चात् ऐबक ने रणथम्बौर तथा अजमेर पर अपना अधिकार किया। 1195 ई० में उसने अलीगढ़ विजित किया। इसके बाद उसने अहिन्लवाड़ को लूटा तथा नष्ट किया। 1196 ई० में उसने मेड़ों को पराजित किया जो चौहानों की सहायता कर रहे थे। 1197-98 ई० में उसने बदायूँ, चन्दावर और कन्नौज पर अधिकार किया। 1202-03 ई० में चन्देलों को परास्त क बुन्देलखण्ड तक अपने साम्राज्य का विस्तार किया। गौरी की मृत्यु से पूर्व ऐबक ने लगभग समस्त उत्तरी भारत पर अपना अधिकार स्थापित कर लिया था।

2. कुतुबुद्दीन ऐबक का एक शासक के रूप में मूल्यांकन कीजिए।

उ०– कुतुबुद्दीन ऐबक एक महान् चरित्र और व्यक्तित्व का स्वामी था। वह एक कुशल प्रशासक, कुशल राजनीतिज्ञ, वीर योद्धा, साम्राज्य-निर्माता, सफल कूटनीतिज्ञ, लोकहितकारी शासक और कला एवं साहित्य का संरक्षक था। ''वह मुस्लिम साम्राज्य का वास्तविक संस्थापक था।'' ''वीर एवं शक्तिशाली तथा मुस्लिम आदर्शों के अनुसार विचारशील व न्यायपरायण ऐबक इस्लाम का दृढ़ भक्त था और विदेश में रणबांकुरी जातियों के बीच एक विशाल राज्य का संस्थापक होने के कारण वह भारत के महानतम मुस्लिम विजेताओं की पंक्ति में स्थान पाने का अधिकारी है।''

3. कुतुबुद्दीन ऐबक की उपलब्धियों का वर्णन कीजिए।

उ०– कुतुबुद्दीन ऐबक ने निम्नलिखित उपलब्धियाँ प्राप्त की–

(i) विरोधियों का दमन (ii) एल्दौज का दमन
(iii) दासत-मुक्ति का प्रमाण पत्र (1208 ई०) (iv) बंगाल के विद्रोह का दमन
(v) हिन्दुओं के विद्रोह का दमन

4. सल्तनत काल में दिल्ली के सुल्तानों द्वारा मंगोलों के आक्रमण को रोकने के लिए क्या उपाए किए गए?

उ०– मंगोलों से सल्तनत की रक्षा– इल्तुतमिश ने मंगोलों के खतरे को बड़ी बुद्धिमत्ता से टाल दिया था किन्तु बलबन के समय यह खतरा पुन: बढ़ गया। उसने मंगोलों से सल्तनत की रक्षा के लिए निम्नलिखित उपाय किए—

(i) उत्तर-पश्चिमी सीमा पर निगरानी के लिए सुल्तान राजधानी में ही रहने लगा।

(ii) मंगोलों द्वारा आक्रमण के लिए अपनाए जाने वाले मार्गों पर उसने दुर्गों का निर्माण करवाकर सुरक्षा सैनिक नियुक्त किए।

(iii) उसने सीमान्त प्रदेशों तथा मुल्तान के दुर्गों पर, जो दिल्ली साम्राज्य के अधिकार में थे, सैनिक नियन्त्रण और अधिक बढ़ा दिया।

(iv) सीमा प्रान्त में कुशल सेनापति एवं योग्य सैनिकों को नियुक्त किया।

(v) मंगोलों से सामना करने के लिए बलबन ने अच्छे-से-अच्छे वस्त्र तैयार करवाने के लिए उचित प्रबन्ध किया।

(vi) 1279 ई० में मंगोलों ने हमला करके दिल्ली के समीप पहुँचने का प्रयास किया, किन्तु शाही सेनाओं ने कुशलता से उनको पीछे हटा दिया। अगले पाँच वर्षों तक मंगोल आगे नहीं बढ़ सके। 1285 ई० में तैमूर खाँ ने विशाल सेना के साथ सुल्तान पर आक्रमण किया। युवराज मुहम्मद ने बड़ी वीरता से शत्रु को हराया, परन्तु वह युद्ध में मारा गया। अपने योग्य पुत्र की मृत्यु के शोक में स्वयं बलबन का भी 1287 ई० में देहान्त हो गया।

5. इल्तुतमिश की दो प्रमुख समस्याओं का उल्लेख कीजिए।

उ०– इल्तुतमिश की दो प्रमुख समस्याएँ निम्नलिखित हैं—

(i) तुर्की अमीरों की समस्या– कुतुबी और मुइज्जी इल्तुतमिश को सिंहासन से हटाकर स्वयं गद्दी पर बैठने के लिए बेचैन थे।

(ii) राजपूत राजाओं का विरोध– हिन्दू राजपूत राजा अपनी स्वतन्त्रता के लिए तड़प रहे थे। आरामशाह के सिंहासनारूढ़ होने पर साम्राज्य में फैली अराजकता का लाभ उठाकर चौहान, चन्देल तथा प्रतिहार राजपूत राज स्वतन्त्र हो गए थे और वे मुस्लिम साम्राज्य को समाप्त करने के लिए प्रयत्नशील थे।

6. बलबन की प्रारम्भिक कठिनाइयों की व्याख्या कीजिए।

उ०– बलबन की प्रारम्भिक कठिनाइयाँ निम्न प्रकार है—

(i) ताज की प्रतिष्ठा का अन्त– बलबन के पूर्व तुर्की अमीरों की महत्त्वाकांक्षाओं के कारण दिल्ली सल्तनत के पद प्रतिष्ठा का पुर्णतया अन्त हो चुका था; अत: बलबन को ताज की प्रतिष्ठा पुन: स्थापित करनी थी।

(ii) हिन्दू व राजपूतों का विद्रोह– राजपूताना, बुन्देलखण्ड तथा रुहेलखण्ड आदि क्षेत्रों में राजपूत सरदारों ने अपनी स्वतन्त्र सत्ता स्थापित कर ली थी और वे मुस्लिम शासकों के विरुद्ध विद्रोह करने के लिए तत्पर थे।

(iii) आर्थिक संकट– दास वंश के सुल्तान बलबन की अपेक्षा अधिक खर्चीले थे; अत: राजकोष धन से रिक्त हो गया था और बिना धन के शासन-व्यवस्था का संचालन असम्भव था।

(iv) चालीस गुलामों के दल की समस्या– इल्तुतमिश के समय संगठित किए गए चहलगान के चालीस गुलाम भी उसके लिए समस्या बन गए थे; क्योंकि इनकी महत्त्वाकांक्षा और शक्ति काफी बढ़ चुकी थी और वे चाहते थे कि सुल्तान उनकी कठपुतली बनकर रहे।

विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

1. गुलाम वंश के कुतुबुद्दीन ऐबक की उपलब्धियों पर प्रकाश डालिए।

उ०– कुतुबुद्दीन ऐबक की उपलब्धियाँ– ऐबक ने अपने शासनकाल में निम्नांकित उपलब्धिाँ प्राप्त कीं—

(i) विरोधियों का दमन– सर्वप्रथम ऐबक ने विरोधियों का दमन करने के लिए अपने समर्थकों का एक शक्तिशाली दल बनाया। उसने अपनी पुत्री का विवाह इल्तुतमिश के साथ, बहन का नासिरुद्दीन कुबाचा के साथ और अपना विवाह ताजुद्दीन एल्दौज की पुत्री के साथ कर अपनी स्थिति काफी मजबूत कर ली।

(ii) एल्दौज का दमन– गजनी का शासक एल्दौज, गजनी में अपनी स्वतन्त्र सत्ता स्थापित करके मुल्तान तथा उच्छ पर हमला कर भारत का सुल्तान बनने के सपने सँजोए हुए था। एल्दौज की महत्वाकांक्षा को देखकर ऐबक ने उस पर आक्रमण कर दिया और उसे पराजित करके गजनी पर अधिकार कर लिया और दिल्ली लौट आया। इस हमले के बाद एल्दौज ने ऐबक को भारत का सुल्तान मान लिया और उसका विरोध करना छोड़ दिया।

(iii) दासता-मुक्ति का प्रमाण पत्र (1208 ई०)– याहिया बिन अहमद ने अपनी पुस्तक तारीख-ए-मुबारकशाही में लिखा है कि ऐबक ने अपने गजनी प्रवास के समय गौरी के उत्तराधिकारी ग्यासुद्दीन मुहम्मद को पत्र लिखा कि यदि वह उसे दासता-मुक्ति का प्रमाण-पत्र देकर भारत का स्वतन्त्र सुल्तान मान ले, तो वह उसकी ख्वारिज्म के शाह के विरुद्ध सहायता करेगा। ग्यासुद्दीन मुहम्मद ने सोचा कि ख्वारिज्म की शक्ति के कारण वह ऐबक की सत्ता पर नियन्त्रण तो न रख सकेगा,

परन्तु ऐबक को स्वतन्त्र करने से उसे ख्वारिज्म के विरुद्ध सहायता अवश्य मिल जाएगी। अत: 1208 ई० में उसने ऐबक के पास राजदण्ड, खिलअत तथा दासता-मुक्ति का प्रमाण-पत्र भेज दिया। इस प्रकार दासता-मुक्ति प्रमाण-पत्र प्राप्त करके ऐबक भारत का वैधानिक दृष्टि से निरंकुश सुल्तान बन गया।

(iv) बंगाल के विद्रोह का दमन– बंगाल में बख्तियार खिलजी की मृत्यु के बाद अलीमर्दान खाँ ने अपनी स्वतन्त्र सत्ता स्थापित कर ली थी, परन्तु खिलजी सरदार उसकी सत्ता के प्रबल विरोधी थे, जिससे बंगाल में बड़ी अराजकता तथा अव्यवस्था फैली हुई थी। अत: ऐबक ने कैमाज रुमी को बंगाल के खिलजी सरदारों के विद्रोह का दमन करने का आदेश दिया। उसने खिलजी सरदारों का दमन करके बंगाल में शान्ति तथा सुव्यवस्था की स्थापना की। ऐबक ने अलीमर्दान खाँ को बंगाल का शासक बना रहने दिया तथा अलीमर्दान ने सुल्तान को वार्षिक कर देने का वचन दिया।

(v) हिन्दुओं के विद्रोह का दमन– मुहम्मद गौरी की मृत्यु का लाभ उठाकर अनेक हिन्दू सरदारों ने विद्रोह कर दिया था। चन्देल शासक त्रिलोक्य वर्मा ने कालिंजर पर पुन: अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया। प्रतिहारों ने तुर्कों को भगाकर ग्वालियर के दुर्ग पर अधिकार कर लिया। गहड़वालों और सेन वंश के लोगों ने भी विद्रोह आरम्भ कर दिया। जयचन्द के पुत्र **हरिश्चन्द्र** ने बदायूँ तथा फर्रुखाबाद के प्रदेशों पर अधिकार कर लिया। अत: एल्दौज का दमन करने के बाद ऐबक ने इन विद्रोहों का दमन करने का प्रयास किया। उसने बदायूँ को जीतकर इल्तुतमिश को वहाँ का सूबेदार नियुक्त कर दिया, परन्तु वह कालिंजर तथा ग्वालियर को विजय करने में असफल रहा।

2. ''कुतुबुद्दीन ऐबक भारत में तुर्की शासन का संस्थापक था।'' विवेचना कीजिए।

उ०– कुतुबुद्दीन का प्रारम्भिक जीवन– कुतुबुद्दीन ऐबक तुर्कमेनिस्तान के एक तुर्क परिवार से सम्बन्धित था। कुतुबुद्दीन के समय में तुर्कमेनिस्तान में दास व्यापार प्रचलन में था। इसी के चलते बचपन में कुतुबुद्दीन ऐबक को भी एक काजी द्वारा खरीद लिया गया था। काजी में ऐबक को उचित शिक्षा भी दिलवाई, इसी शिक्षा-दीक्षा ने ऐबक की बाद में भारत में तुर्क साम्राज्य स्थापित करने में मदद भी की।

काजी की मृत्यु के बाद ऐबक को मोहम्मद गोरी के हाथों में बेच दिया गया। मोहम्मद गोरी ने कुतुबुद्दीन ऐबक के साहस व स्वामिभक्त से प्रभावित होकर उसे अमीर-ए-अखूर के पद पर नियुक्त करके ऐबक की उपाधि प्रदान की। यह एक सम्मानित पद था और इस पद के मिलने के पश्चात् कुतुबुद्दीन सैन्य युद्धों व अभ्यासों में बढ़-चढ़कर भाग लेने लगा।

कुतुबुद्दीन ऐबक भारत में मुहम्मद गोरी के प्रतिनिधि के रूप में– 1192 ई० में हुए तराईन के युद्ध में मुहम्मद गौरी को विजय प्राप्त हुई। लेकिन इस युद्ध के बाद मुहम्मद गौरी कुतुबुद्दीन ऐबक को पंजाब व अपने द्वारा जीते गये अन्य राज्यों का हाकिम बनाकर वापस लौट गया। ऐबक ने दिल्ली के निकट इन्द्रप्रस्थ को अपनी राजधानी बनाकर शासन का संचालन किया। यही से दिल्ली सल्तनत व गुलाम वंश की नींव रखी गयी।

कुतुबुद्दीन ऐबक ने सन् 1192 से 1206 तक मुहम्मद गौरी के भारतीय प्रतिनिधि के रूप में अनेक महत्वपूर्ण सफलताएँ प्राप्त कर ली थी। इस दौरान उसने अजमेर, झाँसी, मेरठ तथा दिल्ली पर अधिकार किया व कन्नौज पर आक्रमण कर उसे अपने नियन्त्रण में लिया। अजमेर, कांलिजर, गुजरात पर भी कुतुबुद्दीन ऐबक ने आक्रमण कर वहाँ उठने वाले विद्रोहों को कुचला व गुजरात से काफी मात्रा में धन लूट कर अपने खजानें में भी वृद्धि की। मुहम्मद गौरी की मृत्यु के पूर्व ही कुतुबुद्दीन ऐबक समस्त उत्तरी भारत पर अपना अधिकार स्थापित कर चुका था लेकिन अभी भी कुतुबुद्दीन ऐबक भारत में केवल मुहम्मद गौरी के प्रतिनिधि के रूप में ही कार्य कर रहा था।

कुतुबुद्दीन ऐबक, स्वतन्त्र शासक के रूप में– मुहम्मद गौरी ने अपनी मृत्यु के पूर्व अपना उत्तराधिकारी घोषित नहीं किया था। इससे मुहम्मद गोरी के कुछ खास दासों में खुद को उसका उत्तराधिकारी बनाने की होड़ लग गयी। इन्हीं दासों में एक नाम ग्यासुद्दीन मुहम्मद का भी था। ऐबक ने अपने गजनी प्रवास के दौरान ग्यासुद्दीन मुहम्मद को पत्र लिखा कि यदि वह उसे दासता-मुक्ति का प्रमाण पत्र देकर भारत का स्वतन्त्र सुल्तान मान ले तो वह ग्यासुद्दीन की मदद करेगा। अंतत: 1208 में ऐबक को ग्यासुद्दीन मुहम्मद ने खिलअत, राजदण्ड व दासता-मुक्ति का प्रमाण-पत्र भेज दिया। इस प्रकार ऐबक भारत का वैधानिक दृष्टि से निरंकुश सुल्तान बन गया।

हालाँकि कुतुबुद्दीन ऐबक ने कभी सुल्तान की उपाधि नहीं धारण की लेकिन भारत में गुलाम वंश की स्थापना कुतुबुद्दीन ऐबक ने ही की।

3. इल्तुतमिश के व्यक्तित्व एवं कार्यों का मूल्यांकन कीजिए।

उ०– इल्तुतमिश (1211-1236 ई०)– जीवन परिचय– इल्तुतमिश इल्बरी कबीले का तुर्क था। इल्तुतमिश का पिता इस्लाम खाँ अपने कबीले का प्रधान था। उसके भाइयों ने ईर्ष्यावश इसे बुखारा के एक व्यापारी को बेच दिया था। बुखारा के व्यापारी से इसे जमालुद्दीन ने खरीद लिया और उससे इल्तुतमिश को ऐबक ने खरीदा। ऐबक उसके गुणों से अत्यधिक प्रभावित था। वह उसे अपना पुत्र कहता था। उसने अपनी तीन कन्याओं में से एक का विवाह उसके साथ कर दिया था। कुतुबुद्दीन की मृत्यु के समय वह बदायूँ का गवर्नर था। उसने कुतुबुद्दीन के पुत्र आरामशाह को हराकर 1211 ई० में दिल्ली की गद्दी प्राप्त की। उसका पूरा नाम **शम्सुद्दीन इल्तुतमिश** था।

इल्तुतमिश की प्रारम्भिक समस्याएँ– डॉ० ईश्वरी प्रसाद उसकी योग्यता की प्रशंसा करते हुए लिखते है, ''वह एक दास का दास था और अपनी योग्यता के बल पर ही वह इतनी ऊँची स्थिति को प्राप्त करने में सफल हुआ था।''

जिस समय इल्तुतमिश दिल्ली के सिंहासन पर आसीन हुआ, उस समय दिल्ली सल्तनत की स्थिति बड़ी शोचनीय थी। इस समय उसके समक्ष निम्नलिखित समस्याएँ थीं–

(i) **तुर्की अमीरों की समस्या–** कुतुबी और मुइज्जी अमीर इल्तुतमिश को सिंहासन से हटाकर स्वयं गद्दी पर बैठने के लिए बेचैन थे। इल्तुतमिश ने सर्वप्रथम इनके विरोध का दमन किया।

(ii) **राजपूत राजाओं का विरोध–** हिन्दू राजपूत राजा अपनी स्वतन्त्रता के लिए तड़प रहे थे। आरामशाह के सिंहासनारूढ़ होने पर साम्राज्य में फैली अराजकता का लाभ उठाकर चौहान, चन्देल तथा प्रतिहार राजपूत राजा स्वतन्त्र हो गये थे और वे मुस्लिम साम्राज्य को समाप्त करने के लिए प्रयत्नशील थे। इल्तुतमिश के सामने इन राजपूत सरदारों के विद्रोह का दमन करने की भी समस्या थी।

(iii) **साम्राज्य का विभाजन–** इल्तुतमिश का प्रबल विरोधी नासिरुद्दीन कुबाचा सिन्ध व मुल्तान का गर्वनर और ताजुद्दीन एल्दौज गजनी का सूबेदार था। बिहार और बंगाल पर अलीमर्दान खाँ का अधिकार स्थापित था। ये सभी प्रान्तीय गर्वनर इल्तुतमिश को हराकर दिल्ली पर अपना आधिपत्य स्थापित करना चाहते थे।

(iv) **असंगठित और दुर्बल राज्य–** वास्तव में, कुतुबुद्दीन ऐबक ने जिस साम्राज्य का निर्माण किया था, उसे वह अपने अल्प शासनकाल में सुव्यवस्थित नहीं कर पाया था। ऐसे अव्यवस्थित और दुर्बल साम्राज्य को स्थायी बनाना भी इल्तुतमिश के लिए एक जटिल समस्या थी।

(v) **सीमा सुरक्षा की समस्या–** इन समस्याओं के अतिरिक्त इल्तुतमिश के समक्ष उत्तर-पश्चिमी सीमा की सुरक्षा की समस्या तथा खोखर जाति के विद्रोह की समस्या और भी अधिक प्रबल थी। मंगोल आक्रमणकारी चंगेज खाँ के आक्रमणों का भय भी निरन्तर बढ़ता जा रहा था।

समस्याओं का समाधान– इल्तुतमिश बहुत वीर और धैर्यवान सुल्तान था। **डॉ० ईश्वरी प्रसााद ने लिखा है,** ''इल्तुतमिश विकट परिस्थितियों से हार मानकर बैठ जाने वाला व्यक्ति नहीं था। वह शीघ्र ही दृढ़ता एवं तत्परता के साथ इस संकटापन्न स्थिति को निश्चयात्मक रूप से सुलझा देने के लिए जुट गया।'' इल्तुतमिश ने अपनी समस्याओं का समाधान इस प्रकार से किया–

(i) **अमीरों का दमन–** तुर्की अमीर सरदार उसे एक शासक के रूप में स्वीकार करने के लिए राजी नहीं हो रहे थे; अत: सर्वप्रथम इल्तुतमिश ने उनका दमन करके, उन्हें दूरस्थ स्थानों को भेज दिया।

(ii) **ताजुद्दीन एल्दौज का दमन–** इल्तुतमिश का प्रबल प्रतिद्वन्द्वी एल्दौज गजनी का शासक था। 1215 ई० में ख्वारिज्म के शाह ने उसे गजनी से भागने पर विवश कर दिया। वह भारत आया और उसने अवसर पाकर पश्चिमी पंजाब पर अपना अधिकार जमा लिया। इल्तुतमिश को यह सहन न हुआ और उसने 1216-17 ई० में ताजुद्दीन एल्दौज पर आक्रमण करके उसे पराजित कर दिया और बन्दी बनाकर बदायूँ के दुर्ग में रखा, जहाँ उसकी मृत्यु हो गई।

(iii) **कुबाचा का दमन–** नासिरुद्दीन कुबाचा ऐबक का बहनोई एवं गोरी का एक प्रमुख दास था। इसलिए वह इल्तुतमिश के अधीन होना पसन्द नहीं करता था। 1217 ई० में इल्तुतमिश ने कुबाचा पर आक्रमण कर उसे अपने अधीन कर लिया। लेकिन इसके पश्चात् कुबाचा ने ख्वारिज्म के शाह को पराजित कर अपनी शक्ति में वृद्धि कर ली। फलस्वरूप इल्तुतमिश को 1228 ई० में उस पर पुन: आक्रमण करना पड़ा। कुबाचा उससे पराजित होकर भागा और सिन्धु नदी में डूबकर मर गया।

(iv) **मंगोल आक्रमण से साम्राज्य की रक्षा–** चंगेज खाँ मध्य एशिया का क्रूर एवं बर्बर मंगोल नेता था। 1221 ई० में चंगेज खाँ के नेतृत्व में मंगोलों ने भारत पर आक्रमण कर दिया।

ख्वारिज्म के शाह जलालुद्दीन मगबर्नी का पीछा करता हुआ मंगोल आक्रमणकारी चंगेज खाँ सिन्ध प्रदेश तक पहुँच गया, लेकिन इल्तुतमिश ने चंगेज खाँ की सहानुभूति प्राप्त करने के लिए जलालुद्दीन को अपने यहाँ शरण नहीं दी। इस प्रकार, वह अपनी दूरदर्शिता के कारण मंगोल आक्रमण से अपने साम्राज्य को बचाने में सफल रहा। अन्त में चंगेज खाँ भारत पर आक्रमण किए बिना ही वापस चला गया।

इल्तुतमिश की सफलताएँ (उपलब्धियाँ)– इल्तुतमिश ने अपने शासनकाल में निम्नलिखित महत्त्वपूर्ण सफलताएँ प्राप्त कीं–

(i) **राजपूतों पर विजय–** इल्तुतमिश ने सर्वप्रथम रणथम्भौर को जीता। 1231 ई० में उसने ग्वालियर के विद्रोही शासक मलयवर्मन देव का दमन किया। तत्पश्चात् कालिंजर, नागौर, बयाना, अजमेर, चित्तौड़ और गुजरात आदि के राजाओं पर उसने विजय प्राप्त की।

(ii) **बंगाल पर विजय–** अलीमर्दान खाँ की मृत्यु के बाद बंगाल में 'हिसामुद्दीन एवाज' नाम का एक अमीर सिंहासनारूढ़ हुआ। उसने ग्यासुद्दीन आजम की उपाधि ग्रहण की और बिहार, कामरूप, तिरहुत एवं जाज नगर आदि पर अपनी स्वतन्त्र सत्ता स्थापित कर ली। इल्तुतमिश ने बंगाल पर विजय प्राप्त करने के लिए अनेक बार प्रयत्न किए। इल्तुतमिश के पुत्र ने एवाज को अपने अधीन कर लिया। इसी समय एवाज की मृत्यु के पश्चात् शाह बल्का ने बंगाल पर अधिकार कर लिया। सन् 1230-31 ई० में इल्तुतमिश ने शाह बल्का को अपने अधीन कर लिया।

(iii) **चालीस गुलामों के दल का निर्माण–** इल्तुतमिश ने अपने स्वामिभक्त और विश्वासपात्र गुलामों में से चालीस योग्य एवं बुद्धिमान गुलामों का एक संगठित दल बनाया, जो इतिहास में 'चहलगान' या चालीसा के नाम से प्रसिद्ध है।

(iv) **खलीफा से प्रमाण-पत्र–** इल्तुतमिश ने दिल्ली की सल्तनत उत्तराधिकार के रूप में नहीं वरन् अपने बाहुबल से प्राप्त की थी। इसलिए शान्ति एवं व्यवस्था को स्थापित करने के उद्देश्य से, उसने बगदाद के अब्बासी खलीफा अल-मुस्तसीर बिल्लाह से 1229 ई० में दिल्ली का सुल्तान होने का प्रमाण-पत्र माँगा। बगदाद के खलीफा ने इल्तुतमिश को भारत की मान्यता प्राप्त सम्राट के रूप में अपनी स्वीकृति दी और शासक की उपाधि सुल्तान-ए-हिन्द एवं शाही पोशाक भी प्रदान कर दी। वैधानिक शासक के रूप में उसने अपने नाम के सिक्के ढलवाए और खलीफा का नाम भी खुतबे में लिखवाया। इस प्रकार, इल्तुतमिश अपनी योग्यता, विजयों और खलीफा के प्रमाण-पत्र से, दिल्ली सल्तनत का वैधानिक शासक बन गया था।

उसकी इन सफलताओं के आधार पर ही **डॉ० रमाशंकर त्रिपाठी** ने लिखा है, ''भारत में मुस्लिम सम्प्रभुता का प्रारम्भ वास्तविक रूप में इल्तुतमिश के समय से ही होता है।''

इल्तुतमिश का चरित्र एवं मूल्यांकन– इल्तुतमिश का मूल्यांकन निम्नलिखित शीर्षकों के आधार पर किया जा सकता है—

(i) **मानव के रूप में–** इल्तुतमिश में मानवता के गुण विद्यमान थे। मिनहाज-उस-सिराज ने लिखा है, ''उसके समान गुणवान, दयालु और सन्तों तथा विद्वानों के प्रति श्रद्धा रखने वाला अन्य कोई सुल्तान दिल्ली के सिंहासन पर नहीं बैठा।''
डॉ० ईश्वरी प्रसाद ने उसके चरित्र व योग्यता का मूल्यांकन करते हुए लिखा है, ''यदि 1211 ई० में दिल्ली की गद्दी पर इल्तुतमिश आसीन न होता तो सम्भव था कि ऐबक द्वारा छोड़े गए असंगठित प्रदेश पूर्णतया छिन्न-भिन्न हो जाते और दास वंश के अधीन एक कुशल केन्द्रीय सरकार की व्यवस्था भी न होती।''

(ii) **राजनीति के रूप में–** इल्तुतमिश एक महान् शासक भी था, जिसका प्रमाण हमें दो उदाहरणों से मिलता है। पहला, उसने दूरदर्शी राजनीतिज्ञ की भाँति खलीफा से प्रमाण-पत्र प्राप्त किया। दूसरा यह है कि उसने जलालुद्दीन को अपने राज्य में शरण न देकर दिल्ली की सल्तनत को मंगोलों के भयानक आक्रमण से बचाया।

(iii) **न्यायप्रिय सुल्तान– इब्नेबतूता** ने लिखा है, ''इल्तुतमिश एक न्यायप्रिय सुल्तान था। उसने अपने महल के मुख्य द्वार के दोनों बुर्जों पर दो संगमरमर के बने हुए शेर लगवा रखे थे जिनके गले में जंजीर लटकी रहती थी। प्रार्थी द्वारा जंजीर खींचकर घण्टा बजाने पर सुल्तान स्वयं आकर उसकी फरियाद सुनता और निष्पक्ष निर्णय देता था।''

(iv) **साहित्य एवं कला का संरक्षक–** इल्तुतमिश ने साहित्य को विशेष संरक्षण प्रदान किया। उसके दरबार में लेखक, कवि, साहित्यकार और विद्वान आश्रय पाते थे। मिनहाज-उस-सिराज, रुहानी फकदुल मुल्क हासामी जैसे विद्वान इल्तुतमिश के विशेष कृपापात्र थे। इल्तुतमिश कला-प्रेमी सुल्तान भी था। उसने बदायूँ में एक मसजिद बनवाई और ऐबक द्वारा निर्माणाधीन कुतुबमीनार को पूर्ण करवाया था। शिक्षा के विकास की ओर भी उसने ध्यान दिया। इसके समय में दिल्ली इस्लामी शिक्षा का प्रमुख केन्द्र बन गई थी।

(v) **दास वंश का वास्तविक संस्थापक– डॉ० ईश्वरी प्रसाद** ने इल्तुतमिश को गुलाम वंश का वास्तविक संस्थापक मानते हुए लिखा है, ''निःसन्देह इल्तुतमिश गुलाम वंश का वास्तविक संस्थापक था। यही वह व्यक्ति था जिसने अपने स्वामी कुतुबद्दीन की विजयों को संगठित किया था।''

लेनपूल ने भी उसे ही दास वंश का संस्थापक स्वीकार करते हुए लिखा है, ''इल्तुतमिश दास वंश के उच्च शासकों का संस्थापक है, जिसको सुव्यवस्थित करने का अवसर कुतुबद्दीन ऐबक को नहीं मिला था।''

वस्तुतः इल्तुतमिश गुलाम वंश का सर्वश्रेष्ठ सुल्तान था। इसलिए सर वूज्जले हेग ने इल्तुतमिश को दास वंश के मुसलमानों में सर्वोच्च स्थान प्रदान किया है। इस सम्बन्ध में सबसे महत्त्वपूर्ण बात तो यह है कि इल्तुतमिश ने भारत मे जिस मुस्लिम सत्ता की स्थापना की, वह 1526 ई० तक किसी-न-किसी रूप में चलती रही। यही बात उसकी महानता को सिद्ध कर देती है और यह प्रमाणित कर देती है कि इल्तुतमिश दास वंश के सुल्तानों में सर्वश्रेष्ठ था।

4. ''इल्तुतमिश गुलाम वंश (दिल्ली सल्तनत) का वास्तविक शासक था।'' इस कथन की विवेचना कीजिए।

उ०– उत्तर के लिए विस्तृत उत्तरीय प्रश्न संख्या– 3 के उत्तर का अवलोकन करें।

5. इल्तुतमिश के व्यक्तित्व व कार्यों का उल्लेख कीजिए।

उ०– उत्तर के लिए विस्तृत उत्तरीय प्रश्न संख्या– 3 के उत्तर का अवलोकन करें।

6. इल्तुतमिश के सामने कौन-सी कठिनाइयाँ थीं? उसकी प्रमुख उपलब्धियाँ की विवेचना कीजिए?

उ०– उत्तर के लिए विस्तृत उत्तरीय प्रश्न संख्या– 3 के उत्तर का अवलोकन करें।

7. बलबन की राजनीतिक उपलब्धियों का मूल्यांकन कीजिए।

उ०– सुल्तान बलबन (1266-1287 ई०)– बलबन गुलाम वंश के सुल्तानों में सबसे योग्य और शक्तिशाली सुल्तान था। **सर वूज्जले हेग** ने उसकी प्रशंसा करते हुए लिखा है, ''सुल्तान के रूप में बलबन का चरित्र आन्तरिक विद्रोह एवं बाह्य खतरों के विरुद्ध एक संघर्ष था। उसने तानाशाही की स्थापना की जिसका स्थायित्व उसके व्यक्तिगत चरित्र की शक्ति पर था।'' इसी प्रकार **लेनपूल** का कथन है, ''गुलाम, भिश्ती, शिकारी, सेनाध्यक्ष, राजनीतिज्ञ तथा सुल्तान आदि विभिन्न रूपों में कार्य करने वाला बलबन दिल्ली शासकों की दीर्घ परम्परा में सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण सुल्तानों में से एक है।

बलबन का प्रारम्भिक जीवन– ग्यासुद्दीन बलबन (वास्तविक नाम बहाउद्दीन) इल्बरी कबीले का एक तुर्क था। उसका पिता दस हजार परिवारों का मुखिया (सरदार) था। बलबन स्वयं को पौराणिक तुर्की और तूरान का 'आफिसियाब वंश' से सम्बन्धित बताता था। बचपन से ही उसे मंगोलों द्वारा बन्दी बना लिया था और बसारा के ख्वाजा जमालुद्दीन को बेच दिया था। जमालुद्दीन ने उसे शिक्षित किया और 1232 ई० में इल्तुतमिश को बेच दिया। इल्तुतमिश ने बलबन की योग्यता एवं विलक्षण बुद्धि देखकर उसे अपने चालीस गुलामों में सम्मिलित कर लिया। प्रारम्भ में, उसे भिश्ती का काम करना पड़ा, परन्तु शीघ्र ही वह इल्तुतमिश का खासबरदार (अंगरक्षक) बन गया। इससे पूर्व रजिया के शासनकाल (1236-1240 ई०) में वह अमीर-ए-शिकार के पद पर नियुक्त हुआ। बहरामशाह के काल (1240-1242 ई०) में उसे रेवाड़ी की जागीर दी गई। उसने रेवाड़ी पर बड़ी कुशलतापूर्वक शासन किया। बहरामशाह के बाद मसूदशाह सुल्तान बना। उसने उसे अमीर-ए-हाजिब (उच्च सैनिक) की उपाधि प्रदान की। जब मंगोलों ने उच्छ किले को घेरा तो बलबन ने अमीरों की फूट को समाप्त करके सेना को संगठित किया और मंगोलों को अपना घेरा उठा लेने के लिए बाध्य किया। मसूदशाह को शासक के रूप में अयोग्य जानकर उसने नासिरुद्दीन महमूद को सुल्तान बनने में सहायता प्रदान की तथा अपनी पुत्री का विवाह भी सुल्तान नासिरुद्दीन के साथ कर दिया। इसके बदले में सुल्तान नासिरुद्दीन ने सिंहासनारूढ़ होने पर उसे अनेक उपाधियों से अंलकृत किया और उसे नाइब-ए-मुमालिकत (प्रधानमंत्री) के पद पर नियुक्त कर दिया। सुल्तान नासिरुद्दीन की मृत्यु के बाद 1266 ई० में बलबन अपनी योग्यता से स्वयं दिल्ली का शासक बन गया।

बलबन की कठिनाइयाँ या समस्याएँ–

(i) ताज की प्रतिष्ठा का अन्त– बलबन के पूर्व तुर्की अमीरों की महत्त्वाकांक्षाओं के कारण दिल्ली सुल्तान के पद की प्रतिष्ठा का पूर्णतया अन्त हो चुका था, अत: बलबन को ताज की प्रतिष्ठा पुन: स्थापित करनी थी।

(ii) हिन्दू व राजपूतों का विद्रोह– राजपूताना, बुन्देलखण्ड तथा रुहेलखण्ड आदि क्षेत्रों में राजपूत सरदारों ने अपनी स्वतन्त्र सत्ता स्थापित कर ली थी और वे मुस्लिम शासकों के विरुद्ध विद्रोह करने के लिए तत्पर थे।

(iii) आर्थिक संकट– दास वंश के सुल्तान बलबन की अपेक्षा अधिक खर्चीले थे; अत: राजकोष धन से रिक्त हो गया था और बिना धन के शासन-व्यवस्था का संचालन असम्भव था।

(iv) चालीस गुलामों के दल की समस्या– इल्तुतमिश के समय संगठित किए गए चहलगाम के चालीस गुलाम भी उसके लिए समस्या बन गए थे, क्योंकि इनकी महत्त्वाकांक्षा और शक्ति काफी बढ़ चुकी थी और वे चाहते थे कि सुल्तान उनके हाथ की कठपुतली बनकर रहे।

(v) साम्राज्य मे अराजकता एवं अशान्ति का वातावरण– बलबन के सिंहासनारूढ़ होने के समय दिल्ली सल्तनत में चारों ओर अशान्ति एवं अराजकता का बोलबाला था। लोग सरकार के भय को अपने हृदय से निकाल चुके थे। सरकार की शक्ति का भय जो सुशासन का आधार और राज्य के यश तथा गौरव का स्त्रोत है, लोगों के हृदय से जाता रहा था और देश की दशा शोचनीय हो गई थी।

(vi) मंगोलों के आक्रमण– मंगोलों ने भारत की उत्तर-पश्चिमी सीमाओं पर निरन्तर आक्रमण करके सीमान्त प्रदेशों में अपने शासक नियुक्त कर दिए थे; अत: उसे किसी भी समय मंगोलों के आक्रमणों का सामना करना पड़ सकता था।

प्रशासक के रूप में बलबन की सफलताएँ– एक प्रशासक के रूप में बलबन की सफलताओं का संक्षिप्त विवरण निम्नलिखित है–

(i) राजा के दैवी अधिकार के सिद्धान्त का समर्थक– बलबन नीतिकुशल और निरंकुश सुल्तान था। वह राजा के दैवी अधिकार के सिद्धान्त का प्रबल समर्थक था। उसने लोगों पर शाही आतंक स्थापित करने और सुल्तान की शक्ति को निरंकुशता को स्थापित करने के लिए आम जनता में यह घोषणा करवाई कि ''सुल्तान पृथ्वी पर ईश्वर का प्रतिनिधि

(नियामत-ए-खुदाई) और ईश्वर का प्रतिबिम्ब (जिल्ले अल्लाह) है और इसका स्थान पैगम्बर के पश्चात् है.... जनसाधारण या सरदारों को उसके कार्यों की आलोचना करने का कोई अधिकार नहीं है।''

(ii) सुल्तान पद के गौरव को प्रतिष्ठित करना– बलबन ने अपने पद को अधिक सम्मानपूर्ण बनाने हेतु अनेक कार्य किए। उसने बड़ी भयंकर आकृति वाले व्यक्तियों को अपना अंगरक्षक बनाया, जो उसके सिंहासन के दोनों ओर हाथों में नंगी तलवार लेकर खड़े होते थे। वह बिना शाही पोशाक के दरबार में भूलकर भी नहीं आता था। बलबन ने 'सिजदा' (भूमि पर लेटकर अभिवादन करना) और 'पैबोस (सुल्तान के चरणों को चूमना) की रीतियाँ आरम्भ की। उसने अपने व्यवहार को कठोर बनाय, जिसमें कि प्रजा उसकी बोली से ही भय खाए। इस सन्दर्भ में जियाउद्दीन बरनी ने लिखा है, ''बलबन बार-बार कहा करता था कि जो सुल्तान साम्राज्य के नियमों तथा रीतियों के अनुसार व्यवहार नहीं करता एवं उनको स्थापित नहीं करता, अपने दरबार की सुव्यवस्था की ओर ध्यान नहीं देता, समारोह में शान-शौकत का प्रदर्शन नहीं करता या जिसका व्यवहार और कथन राजकीय महानता के प्रतीक नहीं होते हैं, उसका भय जनता नहीं मानती है।''

(iii) प्रान्तों पर कठोर नियन्त्रण– बलबन ने अपने साम्राज्य के प्रान्तों पर कठोर नियन्त्रण स्थापित किया और उसने शासन के उच्च पदों पर केवल उच्च वंश के लोगों को ही नियुक्त किया।

(iv) चालीस गुलामों के दल का विनाश– बलबन ने इल्तुतमिश के चालीस गुलामों के दल (चहलगान) के सदस्यों का अत्यन्त क्रुरतापूर्वक दमन कर दिया। उसने बदायूँ के सूबेदार मलिक बरबक को कोड़ों से इतना पिटवाया कि उसकी मृत्यु हो गई। इसी प्रकार, अवध के सूबेदार हैबात खाँ को भी कोड़े लगवाए और फिर अपने चचेरे भाई शेर खाँ को जहर देकर मरवा दिया। इसी प्रकार, उसने अन्य गुलामों का भी अन्त कर दिया।

(v) गुप्तचर विभाग का संगठन– बलबन ने अपनी निरकुंश नीति को क्रियान्वित करने के लिए एक सुसंगठित गुप्तचर विभाग की स्थापना की। उसके गुप्तचर राज्य भर में होने वाली घटनाओं की जानकरी सुल्तान को भेजते रहते थे। बलबन की निरकुश नीति की सफलता का मुख्य कारण उसका संगठित गुप्तचर विभाग ही था, जिस पर उसने भारी धन और समय व्यय किया था।

(vi) सेना का संगठन– बलबन की निरंकुश सभा का आधार सैन्य शक्ति थी इसलिए उसने अपनी सेना मे अनेक सुधार करके उसका पुनर्गठन किया, उसने अपने विश्वासपात्र, योग्य तथा दूरदर्शी व्यक्ति इमाद-उल-मुल्क को सेनापति (दीवान-ए-आरिज) का पद प्रदान किया। उसके प्रयासों से तुर्की सेना कम समय में ही बहुत शक्तिशाली बन गई।

(vii) विद्रोह का दमन– बलबन ने राज्य की अराजकता का अन्त करने के लिए दमन-चक्र की नीति को अपनाया और अनेक विद्राहियों का क्रूरतापूर्वक दमन किया, जो इस प्रकार है–

(क) दोआब के मेवातियों का दमन– बलबन के समय में दोआब के हिन्दू लुटेरे प्राय: दिल्ली और निकटवर्ती क्षेत्रों के व्यापारियों को दिन-दहाड़े लूट लेते थे और लोगों को अपहरण कर लेते थे। बलबन ने इन लुटेरों का दमन करने के उद्देश्य से दिल्ली के निकट के वनों को कटवा डाला। साथ ही उसने जनता की सुरक्षा के लिए भोजपुर, पटियाली, कम्पिल तथा जलाली में सैनिक चौकियाँ स्थापित की और अनेक सुरक्षित दुर्ग भी बनवाएँ। इन दुर्गों में बर्बर अफगान सैनिक नियुक्त किए गए।

(ख) कटेहर के विद्रोहियों का दमन– उसने कटेहर के विद्रोहियों का दमन भी बड़ी क्रूरता के साथ किया और उन पर अमानुषिक अत्याचार किए। **जियाउद्दीन बरनी** ने लिखा है, ''विद्रोहियों का रक्त नाले के रूप में बह निकला। गाँवों तथा जंगलों में मुर्दों को ढेर लगा गया और मुर्दों की दुर्गन्ध गंगा नदी तक पहुँच गई।'' इन बर्बर उपायों से सुल्तान ने वहाँ के निवासियों में आतंक की स्थापना की और समस्त प्रदेश उजाड़ दिया गया। एक लम्बे समय तक कटेहर निवासियों ने सिर नहीं उठाया और यह प्रदेश सभी के लिए सुरक्षित हो गया।

(ग) तुगरिल बेग के विद्रोह का दमन– सुल्तान बलबन की वृद्धावस्था के समय बंगाल के सूबेदार तुगरिल बेग ने उसके विरुद्ध विद्रोह किया। सुल्तान ने कई सेनाएँ इस विद्रोह के दमन हेतु भेजीं, परन्तु उन्हें कोई विशेष सफलता नहीं मिली। अत: बलबन क्रोधित होकर स्वयं एक विशाल सेना लेकर तुगरिल के दमन हेतु पहुँचा। तुगरिल बेग अपने साथियों सहित पकड़ा गया और उसकी हत्या कर दी गई। उसने वहाँ के विद्रोहियों को भी बड़ा ही कठोर दण्ड दिया। बलबन ने अपने पुत्र बुगरा खाँ को बंगाल का सूबेदार नियुक्त किया और उसे चेतावनी देते हुए कहा कि यदि उसने भी किसी के बहकावे में आकर सल्तनत के विरुद्ध विद्रोह किया तो उसको तथा उसके परिवार को कठोर दण्ड भुगतना होगा।

(viii) मंगोलों के आक्रमण के विरुद्ध सुरक्षात्मक कार्य– बलबन ने मंगोलों के आक्रमण से दिल्ली सल्तनत को सुरक्षित रखने के लिए निम्नलिखित उपाय किए–

(क) बलबन ने मंगोल आक्रमणकारियों के मार्ग को रोकने के लिए भटिण्डा, भटनेर, सिरसा तथा अबोहर आदि स्थानों पर नए दुर्गों का निर्माण करवाया और वहाँ शक्तिशाली सैनिक चौकियाँ स्थापित कीं।

(ख) बलबन ने सीमान्त प्रदेश में स्थित प्राचीन दुर्गों की मरम्मत करवा कर वहाँ पर सैनिक नियुक्त किए।

(ग) सुल्तान ने सीमान्त प्रदेश में सेनाओं को अस्त्र-शस्त्रों से पूर्णतया सुसज्जित कर दिया।

(घ) बलबन ने शेर खाँ, मुहम्मद तथा बुगरा खाँ जैसे योग्य तथा अनुभवी व्यक्तियों को सीमान्त प्रदेश का सूबेदार नियुक्त किया।

इन उपायों के कारण शेर खाँ की योग्यता के फलस्वरूप 1270 ई० तक सीमान्त प्रदेश में शान्ति बनी रही और मंगोलों ने देश पर कोई आक्रमण नहीं किया। शेर खाँ की मृत्यु के बाद बलबन ने मंगोलों के विरुद्ध सुरक्षा के लिए अपने पुत्रों बुगरा खाँ और मुहम्मद के नेतृत्व में वहाँ विशाल सेना नियुक्त की। लेकिन 1285 ई० में मंगोलों के आक्रमण में उसका पुत्र मुहम्मद मारा गया। शहजादा मुहम्मद की मृत्यु के शोक में 1287 ई० में बलबन की भी मृत्यु हो गई।

बलबन का शासन प्रबन्ध– बलबन एक निरकुंश एवं स्वेच्छाचारी सुल्तान था। उसने अपने साम्राज्य का शासन प्रबन्ध बड़ी योग्यता एवं कठोरता के साथ किया। **डॉ० ईश्वरी प्रसाद** के अनुसार– ''उसका शासन अर्द्धनागरिक तथा अर्द्धसैनिक था। वह स्वयं सम्पूर्ण शक्ति का स्रोत था ओर वह अपने आदेशों का दृढ़तापूर्वक पालन करवाता था। उसने अपने पुत्रों को भी, जिनके अधिकार में महत्त्वपूर्ण प्रान्त थे, अपने विवेक से कोई काम करने का अधिकार प्रदान नहीं किया। उनको भी महत्त्वपूर्ण विषयों पर राजकीय आज्ञा प्राप्त करनी पड़ती थी, जिसका पालन दृढ़ता से किया जाता था।''

वास्तव में बलबन ने अपने शासन काल में रचनात्मक कार्य नहीं किए गए। उसने प्रजा की भलाई के लिए कोई उचित कदम नहीं उठाया और न ही उनके लिए उपयोगी संस्थाओं की स्थापना की। उसने केवल एक सैन्य राज्य की स्थापना की और सेना के बल पर उस पर शासन किया।

बलबन का मूल्यांकन– नि:सन्देह बलबन मध्यकालीन भारत का एक शक्तिशाली सुल्तान था। उसने अपनी योग्यता और बाहुबल से दिल्ली साम्राज्य में व्याप्त अशान्ति और अराजकता को दूर किया। ताज की प्रतिष्ठा पुन: स्थापित की, मंगोलों से देश को सुरक्षित किया और दिल्ली सल्तनत को दृढ़ता एवं शान्ति प्रदान की।

बलबन के चरित्र का मूल्यांकन करते हुए **डॉ० ईश्वरी प्रसाद** ने लिखा है, ''बलबन एक महान् योद्धा, शासक एवं नीति-निपुण था। उसने घोर संकटमय स्थिति में पड़े हुए अल्पव्यस्क मुस्लिम राज्य को सुरक्षित रखा और उसे नष्ट होने से बचाया, इसलिए उसका मध्यकालीन भारतीय इतिहास में सदैव एक महान् चरित्र रहेगा।''

लेनपूल के अनुसार– ''बलबन एक दास, भिश्ती, शिकारी, सेनापति, राजनीतिज्ञ और सुल्तान था। जो दिल्ली के सुल्तानों की लम्बी पंक्ति में खड़े महान् व्यक्तियों में एक अत्यन्त ही चामत्कारिक व्यक्ति था, जो एक दास की तुच्छ दशा से उठकर भारत का एक शक्तिशाली सुल्तान बन गया था।''

डॉ० आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव के अनसुार– ''बलबन ने तुर्की सल्तनत की रक्षा का सुप्रबन्ध किया और उसे नया जीवन प्रदान किया, यही उसका सबसे महान् कार्य था। उसने ताज की प्रतिष्ठा को पुन: स्थापित किया यह उसकी दूसरी सफलता थी। राज्य में सर्वत्र पूर्ण शान्ति तथा व्यवस्था की स्थापना करना उसका अन्य महत्त्वपूर्ण कार्य था। गुलाम सुल्तानों में इल्तुतमिश के बाद उसका स्थान सर्वोच्च है।''

8. बलबन की प्रशासनिक उपलब्धियों का वर्णन कीजिए।

उ०– उत्तर के लिए विस्तृत उत्तरीय प्रश्न संख्या– 5 के उत्तर का अवलोकन करें।

9. दास वशं के पतन के मुख्य कारणों की विवेचना कीजिए।

उ०– दास वंश ने 84 सालों (1206-1290 ई०) तक दिल्ली पर शासन किया। इन 84 वर्षों में 10 सुल्तानों ने दिल्ली पर राज किया। परन्तु एक शताब्दी में ही इस वंश का अंत हो गया। इसके मुख्य कारण उत्तराधिकार के नियम का अभाव, सुल्तानों का विदेशी होना, शक्तिशाली केन्द्रीय शक्ति का अभाव आदि थे। निम्नलिखित विवरण से दास वंश के पतन के कारणों का स्पष्टीकरण मिलता है–

(i) असक्षम प्रशासनिक व्यवस्था– गुलाम वंशीय शासन में प्रशासनिक व्यवस्था उच्च श्रेणी की नहीं थी। बलबन के अतिरिक्त किसी अन्य शासक ने उसको संगठित एवं सुव्यस्थित करने का प्रयास भी नहीं किया।

(ii) उत्तराधिकार के नियम का अभाव– इल्तुतमिश ने अपने वंश के अधिकार को दिल्ली के सिंहासन पर सुरक्षित रखने के लिए खलीफा से स्वीकृति ली और वह अपने वंश के अधिकार को वैध बनाने में पर्याप्त सफल भी हुआ। परन्तु इस सम्पूर्ण काल में तुर्कों में स्वयं मुसलमान के पद को प्राप्त करने के लिए संघर्ष रहा और उत्तराधिकार का कोई एक नियम विकसित नहीं हुआ। ऐबक से लेकर बलबन के समय तक तलवार की शक्ति ने सुल्तान का निश्चय किया। ऐसी स्थिति में खिलजियों ने भी सिंहासन प्राप्त करने के लिए तलवार की सहायता ली और अन्त में सफल हुए।

(iii) गुलाम शासकों की भूलें– अनेक गुलाम शासकों ने भयंकर गलतियाँ की, जिसका दुष्परिणाम गुलाम शासन के पतन के रूप में हुआ। इल्तुतमिश ने 'चालीस गुलामों' के दल का संगठन किया, किन्तु उनकी शक्तियों पर अंकुश न रह पाने के

कारण वे आगामी शासकों के लिए सिरदर्द का कारण बन गए। रजिया ने भी गैर तुर्कों का दल बनाया, जिससे राजनीतिक समस्या और बढ़ी तथा उसका पतन हुआ। रजिया द्वारा याकूत के प्रति असाधारण अनुराग रखना भी उसकी भूले थी। बलबन ने भी अनेक भूलें की। **प्रो० हबीबुल्ला** ने लिखा है कि, ''उसका सबसे बड़ा दोष यह था कि उसने मुसलमानों के प्रभाव को राजनीति और शासन में स्वीकार नहीं किया।''

(iv) मंगोल आक्रमणों का भय– गुलाम शासकों को सदैव मंगोल आक्रमणों का भय बना रहता था। इनका सामना करने के लिए धन की आवश्यकता थी, जिसका गुलाम शासकों के पास अभाव होता जा रहा था। यद्यपि बलबन ने मंगोलों का सामना करने के लिए कुछ कदम उठाए थे, किन्तु उसके लिए भी उसे अपार धन खर्च करना पड़ा था।

(v) गुलाम-सुल्तानों का विदेशी होना– गुलाम-सुल्तान विदेशी तुर्क थे। भारतीय जनता हिन्दू थी तथा इनसे घृणा करती थी। बलबन तुर्की नस्ल की श्रेष्ठता में विश्वास करते हुए भारतीय मुसलमानों को शासन में स्थान देने के लिए तत्पर नहीं था। इस प्रकार गुलाम-शासकों ने न केवल हिन्दुओं को उनके राज्यों से वंचित किया वरन् अपनी नस्ल, संस्कृति और धर्म की श्रेष्ठता को भी बनाए रखने का प्रयत्न किया। बरनी ने लिखा है, ''बलबन ब्राह्मणों का बड़ा शत्रु था तथा उनका समूल नाश करना चाहता था क्योंकि वह उन्हें कुफ्र की जड़ समझता था।'' नि:सन्देह, गुलाम-सुल्तान ऐसे सार्वजनिक भलाई के कार्य करने में अधिकतर असफल रहे, जो उन्हें बहुसंख्यक हिन्दुओं की सहानुभूति दिलाने में समर्थ होते।

(vi) बलबन का उत्तरदायित्व– बलबन ने अपने तुर्की अमीरों की शक्ति को पूर्णत: नष्ट कर दिया, परन्तु ऐसा करते हुए उसने न केवल अपने वंश के अपितु दिल्ली के सिंहासन पर तुर्कों के अधिकार को भी नष्ट कर दिया। मध्यकालीन युग में, मुख्यत: उत्तर भारत की उन अस्थिर परिस्थितियों में तलवार ही सिंहासन के अधिकार का निर्णयों कर सकती थी और करती रही। इस कारण गुलाम वंश को नष्ट करके खिलजियों द्वारा अपने राज्य को स्थापित करना अस्वाभाविक नहीं था। ऐसा बाद में भी हुआ। दिल्ली सल्तनत के समय में हुए विभिन्न राजवंशों के परिवर्तन का कारण तलवार की शक्ति ही रही।

10. बलबन के पश्चात् के उत्तराधिकारियों का विस्तृत वर्णन कीजिए।

उ०– बलबन के उत्तराधिकारी निर्बल साबित हुए। उसने अपने बड़े पुत्र मुहम्मद के पुत्र कैखुसरो को अपना उत्तराधिकारी घोषित किया। किन्तु बलबन की मृत्यु के बाद अमीरों ने बलबन के छोटे पुत्र बुगरा खाँ के पुत्र कैकूबाद को राज सिंहासन पर बैठा दिया।

कैकूबाद– सुल्तान कैकूबाद की आयु केवल 17 वर्ष की थी और उसका पालन-पोषण बलबन के कठोर नियन्त्रण में हुआ था, फलत: उसने न तो किसी सुन्दरी का मुख देखा था, न मनोविनोद में भाग लिया था और ने ही मदिरा का स्वाद चखा था। अत: सुल्तान बनते ही वह सुन्दर महिलाओं की संगत और मदिरा के सागर में डूब गया। उसकी भोग-विलासिता और उदासीनता का लाभ उठाकर कोतवाल फखरुद्दीन ने शासन-सत्ता पर अपने एकाधिकार स्थापित कर लिया। कोतवाल का दामाद निजामुद्दीन बड़ा ही कुचक्री और षड्यन्त्रकारी तथा कुख्यात व्यक्ति था। उसने बड़ी चालाकी से अपनी शक्ति का पंजा सल्तनत पर जमा दिया और सुल्तान कैकूबाद उसके हाथ की कठपुतली बन गया। साम्राज्य की इस गड़बड़ी का लाभ उठाकर तैमूर खाँ के नेतृत्व में मंगोल आक्रमणकारी पंजाब तथा समाना तक आ पहुँचे, परन्तु सल्तनत के सौभाग्य से **गाजी मलिक** ने लाहौर के निकट उन्हें बुरी तरह पराजित करने में सफलता प्राप्त कर ली।

निजामुद्दीन के षड्यंत्रों के कारण राजधानी में कुचक्र रचे जाने लगे और राज्य की दशा निरन्तर खराब होने लगी। कैकूबाद के पिता बुगरा खाँ को जब अपने पुत्र के विलासी जीवन की सूचना मिली तो वह बंगाल से उससे मिलने के लिए आया। 1288 ई० में घाघरा के तट पर पिता-पुत्र की भेंट हुई। बुगरा खाँ अपने पुत्र को सावधान रहने की शिक्षा देकर बंगाल वापस लौट गया। कुछ समय तक कैकूबाद ने अपने पिता की शिक्षा को ध्यान में रख और सावधानीपूर्वक शासन किया। उसने निजामुद्दीन को जहर देकर मार दिया। परन्तु वह जल्दी ही अपने पिता के वचनों को भूलकर पुन: भोग-विलास में लिप्त हो गया।

निजामुद्दीन के मरने के बाद कैकूबाद ने एक खिलजी अमीर जलालुद्दीन फिरोज खिलजी को बरन (बुलन्दशहर) की जागीर प्रदान की, जिससे दरबार के खिलजी और तुर्की अमीरों में घोर मतभेद हो गया। इसी समय कैकूबाद को अत्यधिक विलासिता के कारण लकवा मार गया और वह शासन-कार्य करने में पूर्णतया असमर्थ हो गया। इस पर दरबार के तुर्की अमीरों ने उसके तीन-वर्षीय पुत्र शमसुद्दीन कयूमर्स **को** दिल्ली की गद्दी पर बिठा दिया और जलालुद्दीन खिलजी की हत्या करने का षड्यंत्र रचा। लेकिन जलालुद्दीन को समय के पूर्व ही उनके षड्यंत्र का पता चल गया और उसने बड़ी सावधानी से कैकूबाद को मारकर यमुना नदी में फिंकवा दिया और शिशु सुल्तान का संरक्षक बनकर सल्तनत का अधिकारी बन गया। कुछ समय के बाद उसने शमसुद्दीन कयूमर्स को भी मार डाला और मार्च 1290 ई० में दिल्ली का एकछत्र सुल्तान बनकर खिलजी वंश की नींव डाल दी। इस प्रकार दिल्ली सल्तनत के इतिहास में दास-वंश का अन्त हो गया।

14 दिल्ली सल्तनत का विस्तार-II (Expansion of Delhi Sultanate-II)

अभ्यास

निम्नलिखित तिथियों के ऐतिहासिक महत्व का उल्लेख कीजिए–

1. 1290 ई० 2. 1296 ई० 3. 1316 ई० 4. 1320 ई०
5. 1325 ई० 6. 1326 ई० 7. 1351 ई० 8. 1414 ई०

उ०– उत्तर के लिए पाठ्यपुस्तक के पृष्ठ संख्या– 177 पर तिथि सार का अवलोकन करें।

सत्य या असत्य बताइए–

उ०– प्रश्नोत्तर के लिए पाठ्यपुस्तक के पृष्ठ संख्या– 178 का अवलोकन करें।

बहुविकल्पीय प्रश्न

उ०– प्रश्नोत्तर के लिए पाठ्यपुस्तक के पृष्ठ संख्या– 178 व 179 का अवलोकन करें।

अतिलघु उत्तरीय प्रश्न

उ०– प्रश्नोत्तर के लिए पाठ्यपुस्तक के पृष्ठ संख्या– 179 का अवलोकन करें।

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. खिलजी वंश की उत्पत्ति के विषय में विद्वानों के विभिन्न मतों पर टिप्पणी लिखिए।

उ०– खिलजी की उत्पत्ति किस प्रकार हुई, इस बारे में सब विद्वानों के अलग-अलग मत हैं। कुछ इतिहासकारों बरनी, बदायूँनी और फरिश्ता ने अलग-अलग मत व्यक्त किए हैं। किन्तु आलोचनात्मक अध्ययन करने पर यह निष्कर्ष निकलता है कि खिलजी तुर्क थे, जो 10वीं शताब्दी के पूर्व तुर्किस्तान से आकर अफगानिस्तान के खल्ज प्रदेश में बसे गये थे। तारीख-ए-फखरुद्दीन मुबारकशाही के लेखक फखरुद्दीन ने भी खिलजियों को तुर्क कहा है। उसने 64 तुर्की कबीलों की जो सूची दी है, उसमें वह खिलजी कबीले को भी सम्मिलित करता है। हिस्ट्री ऑफ दी खिलजीज के लेखक डॉ० के० एस० लाल भी खिलजी को तुर्की कबीला समझते हैं। इस प्रकार सरलता से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि खिलजी तुर्क थे किन्तु दीर्घकाल से अफगानिस्तान में रहने के कारण उन्होंने उस देश की आदतों और रीति-रिवाजों को अपना लिया था। इस कारण वे तुर्कों की अपेक्षा अफगान माने गए।

2. दिल्ली सल्तनत के पतन के दो कारणों का उल्लेख कीजिए।

उ०– दिल्ली सल्तनत के पतन के दो कारण निम्नलिखित है।

(i) उत्तराधिकार के नियम का अभाव– सल्तनत युग में उत्तराधिकारी का कोई निश्चित नियम नहीं था। योग्य व्यक्ति अपनी वीरता और तलवार के बल पर गद्दी प्राप्त करते रहे थे। इल्तुतमिश, जलालुद्दीन फिरोज खिलजी, अलाउद्दीन खिलजी, ग्यासुद्दीन तुगलक ओर बहलोल लोदी ने अपनी वीरता एवं योग्यता के आधार पर ही गद्दी पर अधिकार किया था लेकिन कालान्तर में दिल्ली के सिंहासन पर बैठने वाले अयोग्य और शक्तिहीन सुल्तान दिल्ली को सुरक्षित रखने में असफल रहे।

(ii) सैनिक शासन– दिल्ली सल्तनत के अन्तर्गत सम्पूर्ण शासन सैनिक शक्ति पर आधारित था। लेकिन बलबन और अलाउद्दीन के अतिरिक्त सभी सुल्तान सैनिक व्यवस्था को सुव्यवस्थित और सुदृढ़ बनाने में असफल रहे। फलस्वरूप सैनिक शक्ति पर आधारित दिल्ली साम्राज्य शीघ्र ही नष्ट हो गया।

3. अलाउद्दीन के प्रशासनिक सुधारों का संक्षेप में वर्णन कीजिए।

उ०– अलाउद्दीन खिलजी के प्रशासनिक सुधार निम्नलिखित थे–

(i) जागीरों का अपहरण, (ii) अमीरों के आपसी मिलन पर प्रतिबन्ध,
(iii) मद्य निषेध और (iv) गुप्तचर विभाग की स्थापना।

4. मुहम्मद-बिन-तुगलक की दो महत्त्वाकांक्षी योजनाओं का वर्णन कीजिए।

उ०– मुहम्मद तुगलक की शासन-सम्बन्धी दो महत्वाकांक्षी योजनाएँ निम्नलिखित हैं–

(i) राजधानी का परिवर्तन– सिंहासनारूढ़ होने के पश्चात् (1327 ई०) मुहम्मद तुगलक ने अपनी राजधानी को दिल्ली से देवगिरि बदल गया, परन्तु जब दिल्ली के लोगों को वहाँ अनेक कष्टों का सामना करना पड़ा, तो फिर राजधानी देवगिरि (दौलताबाद) से दिल्ली घोषित कर दी गई।

(ii) ताँबे के सिक्कों का प्रचलन– सुल्तान ने सोने और चाँदी के सिक्कों के स्थान पर ताँबे के सिक्के प्रचलित कराए, परन्तु

जब बाजार में जाली सिक्कों की भरमार हो गई तो सुल्तान ने यह योजना समाप्त कर दी और ताँबे के सिक्कों को सोने-चाँदी के सिक्कों में बदल दिया।

5. फिरोजशाह तुगलक के चार प्रमुख सुधारों का उल्लेख कीजिए।

उ०– फिरोजशाह तुगलक के चार प्रमुख सुधार निम्नलिखित हैं–

(i) फिरोज के प्रारम्भिक सुधार– सबसे पहले फिरोज ने अपनी प्रजा की सहानुभूति प्राप्त करने के लिए उन्हें राजकीय ऋण से मुक्त करने का निश्चय किया। उसके आदेश पर फारूखशाही ने ऋणी लोगों के खातों को मँगाकर दरबार में जनता के समक्ष नष्ट कर दिया।

(ii) सिंचाई सम्बन्धी सुधार– फिरोज तुगलक ने कृषि को प्रोत्साहन देने के लिए नहरों और कुओं का निर्माण करवाया। इन नहरों के निर्माण से राज्य की लगभग हजारों वर्गमील भूमि सींची जाने लगी और कृषि की उपज काफी बढ़ गई। फिरोज के इस कार्य ने जनता के अकाल से बचाने का विशेष प्रबन्ध कर दिया।

(iii) न्याय सम्बन्धी सुधार– सुल्तान ने न्याय-व्यवस्था में भी महत्वपूर्ण सुधार किए। उसने कुरान के नियमों के आधार पर राज्य में न्याय-प्रणाली स्थापित की। उसके समय में मुफ्ती कानून की व्याख्या करते और काजी निर्णय देते थे। यदि कोई यात्री मार्ग में मर जाता था तो स्थानीय अधिकारी काजी को बुलाते थे और उसकी रिपोर्ट के बाद उस यात्री को दफना दिया जाता था।

(iv) वित्तीय सुधार– फिरोज कट्टर सुन्नी मुसलमान था, इसलिए उसने उलेमाओं का परामर्श को मानकर राज्य की कर-नीति (वित्तीय-नीति) में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन किए। उसने इस्लामी विरोधी 23 करों को समाप्त कर दिया। और जनता पर जजिया, जकात, खराज और खम्स कर ही लगाए।

6. अलाउद्दीन खिलजी की आर्थिक नीति की समीक्षा कीजिए।

उ०– अलाउद्दीन दिल्ली के सुल्तानों में सबसे अधिक योग्य शासक था। उसने राज्य की आर्थिक स्थिति सुधारने तथा व्यय की पूर्ति हेतु राजकोष में अधिकाधिक धन का एकत्र करना आवश्यक समझा: उसने इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए निम्नलिखित आर्थिक सुधार किए–

(i) सम्पत्ति को जब्त करना– सुल्तान ने सोचा कि जिस उपाय से भी सम्भव हो, अमीरों, जागीरदारों, हिन्दू जमींदारो, कर-वसूल करने वाले अधिकारियों एवं व्यापारियों आदि से उनकी एकत्र की गई धन-सम्पत्ति को छीन कर उसे राज्य की सम्पत्ति बना दिया जाए। अत: सभी अमीर व्यक्तियों से उनकी भूमि तथा दान में दी गई समस्त भूमि जब्त कर ली।

(ii) करो में वृद्धि– सुल्तान ने कर वसूल करने वालों को आज्ञा दी कि वे अधिक सजगता से कर वसूल करें। परिणामस्वरूप राजकोष धन से भर गया। **जियाउद्दीन बरनी** के अनुसार, ''प्रचुर मात्रा में धन-सम्पत्ति अधिकतर लोगों के पास शेष न रही, केवल कुछ बड़े-बड़े पदाधिकारियों, मुल्तानियों (व्यापारियों) तथा साहुओं के पास कुछ हजार टंके रह गए। समस्त प्रजा विद्रोह को भूलकर पेट की चिन्ता में लग गई।'' अलाउद्दीन ने गृह-कर, खिराज, चराई-कर, करही-कर, जजिया, खम्स, जकात व आयात-निर्यात कर लगाकर जनसाधारण को निर्धन बना दिया और हिन्दुओं की दशा तो अत्यन्त दयनीय हो गई।

(iii) कर अधिकारियों पर नियन्त्रण– अलाउद्दीन ने लगान और राजस्व वसूल करने के लिए अनेक नवीन अधिकारियों की नियुक्ति की। कर विभाग का प्रमुख अधिकारी 'दीवान-ए-मुस्तखराज' कहलाता था। इसकी अधीनता में खुत, मुकद्दम, चौधरी, कारकुन तथा आमिल आदि कर्मचारी कर वसूल किया करते थे।

अलाउद्दीन की कठोर आर्थिक व्यवस्था का दुष्परिणाम यह हुआ कि उसके द्वारा लगाए गए भारी करों से किसानों और निर्धन वर्ग की स्थिति अत्यधिक दयनीय हो गई। फिर भी अलाउद्दीन ने कर-अधिकारियों की बेईमानी और दुष्टता से जनता को राहत पहुँचाई थी।

7. अलाउद्दीन के दो आर्थिक सुधारों का उल्लेख कीजिए।

उ०– अलाउद्दीन खिलजी के दो आर्थिक सुधारों का संक्षिप्त विवेचन निम्नलिखित है–

(i) सम्पत्ति का अपहरण– सुल्तान ने अमीरों, जागीरदारों, हिन्दू जमींदारों, कर-वसूल करने वाले अधिकारियों एवं व्यापारियों आदि से उनकी एकत्र की गई धन-सम्पत्ति को छीनकर उसे राज्य की सम्पत्ति घोषित कर दिया। फलस्वरूप समस्त भूमि जब्त कर ली गई, इससे लगान न मिलने पर राज्य को जो हानि होती थी, वह समाप्त हो गई। साथ ही राजकोष में नया लगान आने से धन की वद्धि होने लगी।

(ii) करों में वृद्धि– सुल्तान ने कर वसूल करने वालों को आज्ञा दी कि वे अधिक कठोरता से कर वसूल करें; परिणामस्वरूप राजकोष की आमदनी बड़ी तेजी से बढ़ने लगी और राजकोष अपार धन से भर गया।

8. फिरोज तुगलक की धार्मिक नीति का संक्षिप्त विवरण दीजिए।

उ०– दिल्ली के सुल्तानों में फिरोज पहला सुल्तान हुआ जिसने इस्लाम के कानूनों और उलेमा वर्ग को राज्य के शासन में प्रधानता प्रदान की। फिरोज ने कट्टर सुन्नी वर्ग का समर्थन प्राप्त करने के लिए इस्लाम के सिद्धान्तों को अपने राज्य की नीति का आधार बनाया तथा अनेक अवसर पर उलेमा वर्ग से सलाह ली। इस दृष्टि से उसका सिद्धान्त बाद के मुगल बादशाह औरंगजेब की भाँति रहा। इस प्रकार फिरोज की धार्मिक नीति धर्मान्धता और असहिष्णुता की रही।

फिरोज अपनी बहुसंख्यक हिन्दू प्रजा के प्रति अत्यधिक कठोर रहा। उसने इस्लाम के प्रचार को अपना प्रमुख कर्त्तव्य माना और हिन्दुओं को अपना धर्म छोड़कर मुसलमान बनने के लिए अनेक प्रोत्साहन दिये। उसने अपनी आत्मकथा में लिखा है, ''मैंने अपनी काफिर प्रजा को पैगम्बर का धर्म स्वीकार करने के लिए बाध्य किया और यह घोषणा की कि जो भी अपने धर्म को छोड़कर मुसलमान बन जायेगा उसे जजिया-कर से मुक्त कर दिया जायेगा।'' अनेक स्थलों पर उसने हिन्दू मन्दिरों को नष्ट करने, हिन्दू मेलों को भंग करने, हिन्दुओं को मुसलमान बनाने अथवा उनका वध करने का वर्णन किया है। इस प्रकार यह सत्य है कि फिरोज ने हिन्दुओं के प्रति कठोर धार्मिक नीति का पालन किया। **डॉ० आर०सी० मजूमदार** ने लिखा है, ''फीरोज इस युग का सबसे महान् धर्मान्ध सुल्तान और इस क्षेत्र में सिकन्दर लोदी तथा औरंगजेब का अग्रगामी थी।'' फिरोज की यह धर्मान्धता की नीति राज्य के लिए हानिकारक सिद्ध हुई और यह तुगलक वंश के पतन में उसका योगदान रहा।

9. फिरोज तुगलक के दो आर्थिक सुधारों को वर्णन कीजिए।

उ०– फिरोज तुगलक के दो आर्थिक सुधार निम्नलिखित थे–

(i) राजस्व विभाग में सुधार– फिरोज तुगलक ने सर्वप्रथम दिल्ली सल्तनत की आर्थिक दशा को ठीक करने के लिए राजस्व विभाग की स्थापना की। उसने राजस्व विभाग के अधिकारियों को यह निर्देश दिया कि वे कर संग्रह करते समय किसी भी प्रकार का अत्याचार न करें।

(ii) मुद्रा पद्धति में सुधार– फिरोज तुगलकर ने अपनी गरीब जनता की सुविधा के लिए छोटे-छोटे सिक्के चलाए। उसने इस सभी सिक्कों के ढलवाने में शुद्ध धातु का प्रयोग किया।

10. फिरोज तुगलक की असफलता के क्या कारण थे?

उ०– फिरोज तुगलक की असफलता के कारण निम्नलिखित थे–

(i) जागीर-प्रथा को पुन: प्रारम्भ करना– फिरोज तुगलक ने जागीर-प्रथा को पुन: आरम्भ कर दिया। इससे जागीरदारों के पास पर्याप्त धन एकत्र हो गया और वे अपनी आर्थिक सम्पन्नता का अनुचित लाभ उठाकर विद्रोह करने लगे तथा सुदूर प्रदेशों के सूबेदारों ने अपनी स्वतन्त्र सत्ता स्थापित कर ली।

(ii) दासों के प्रति उदारता की दोषपूर्ण नीति– फिरोज अपनी दासों से विशेष प्रेम करता था, उनके आवास एवं भोजन की समुचित व्यवस्था हेतु उसने एक अलग विभाग स्थापित किया था। इसका परिणाम यह हुआ कि दास लोग अहंकारी हो चले और स्वतन्त्र सत्ता की स्थापना के लिए षड्यन्त्र रचने लगे।

(iii) सैनिक पदों पर वंशानुगत आधार पर नियुक्ति– फिरोज ने सैनिक पदों को भी वंशानुगत कर दिया था। इससे सेना में कुशल सैनिकों की संख्या कम हो गई। इसके परिणामस्वरूप उसकी सैन्य-शक्ति दुर्बल हो गई थी।

(iv) धार्मिक असहिष्णुता की नीति– फिरोज तुगलक एक कट्टर सुन्नी मुसलमान था; अत: उसने अपने धर्म-प्रचार हेतु गैर-मुस्लिम जनता एवं शिया लोगों पर अनेक अत्याचार किए जिसके परिणामस्वरूप ये लोग उसके विरुद्ध होने के लिए बाध्य हुए।

11. अलाउद्दीन की बाजार-नियन्त्रण नीति का संक्षेप में वर्णन कीजिए।

उ०– अलाउद्दीन ने केन्द्र पर एक बड़ी सेना रखी और उसे नकद वेतन दिया। उस सेना का व्यय बहुत अधिक था। बरनी के अनुसार, ''यदि उतनी बड़ी सेना को साधारण वेतन भी दिया जाता तो राज्य का खजाना पाँच या छ: वर्षों में ही समाप्त हो जाता है। अत: उलाउद्दीन ने सेना के खर्च में कमी करने के लिए सैनिकों के वेतन में कमी की। सुल्तान की सैनिक व्यवस्था की सफलता उसकी बाजार नियन्त्रण पर निर्भर थी। इस उद्देश्य को पूरा करने के लिए उसने अनाज, कपड़ा तथा जीवन की अन्य आवश्यक वस्तुओं पर मूल्य घटाकर उन्हें इतना सस्ता कर दिया कि एक सैनिक नाममात्र के वेतन में आराम से जीवन-निर्वाह कर सकता था। उसने अनाज, कपड़ा तथा अन्य वस्तुओं का मूल्य साधारण बाजार की दर से बहुत कम निश्चित किया। बाजार नियन्त्रण को सफल बनाने के उद्देश्य से सुल्तान ने चार प्रमुख कार्य किए–

(i) वस्तुओं के मूल्यों का निर्धारण,
(ii) वस्तुओं की पूर्ति की व्यवस्था,
(iii) वस्तुओं का उचित वितरण,
(iv) बाजारों का प्रबन्ध।

अलाउद्दीन ने बाजार व्यवस्था की देखभाल के लिए 'दीवाने-रियासते' और 'शहना-ए-मण्डी' तथा न्याय के लिए 'सराय-अदल' नाम के बड़े अधिकारियों की नियुक्ति की। अलाउद्दीन ने जिस बाजार नियन्त्रण नीति को अपनाया था, उसका पालन न करने वाले व्यक्तियों को कठोर दण्ड दिया जाता था। **बरनी** ने लिखा है कि ''कभी कोई व्यापारी कम तौलता था तो उतने ही भार का उसके शरीर से मांस काट लिया जाता था।

12. अलाउद्दीन खिलजी के चार सैनिक सुधारों का उल्लेख कीजिए।

उ०– अलाउद्दीन खिलजी के चार सैनिक सुधार थे–

(i) स्थायी सेना का संगठन,
(ii) सैनिकों को नकद वेतन,
(iii) सैनिकों की भर्ती व निरीक्षण,
(iv) घोड़ों को दाग लगाने की प्रथा।

13. तैमूर के आक्रमण के प्रभावों का संक्षेप में वर्णन कीजिए।

उ०– तैमूर के आक्रमण के निम्नलिखित प्रभाव पड़े–

(i) तुगलक वंश का पतन– तैमूर के भारतीय आक्रमण का सबसे घातक प्रभाव तुगलक वंश पर पड़ा। उसकी शक्ति और प्रतिष्ठा धूल में मिल गई और 1414 ई० में मुहम्मद तुगलक की मृत्यु के पश्चात् तुगलक वंश का अन्त हो गया।

(ii) दिल्ली सल्तनत का विघटना– तैमूर का आक्रमण दिल्ली सल्तनत के लिए पक्षाघात का रोग सिद्ध हुआ। दिल्ली सल्तनत को ऐसा धक्का लगा कि इसके बाद उसकी स्थिति में सुधार न हो पाया। जौनपुर, मालवा, गुजरात और अन्य प्रान्त स्वतन्त्र हो गए। सम्पूर्ण भारत छोटे-छोटे राज्यों में विभक्त हो गया। केन्द्रीय शक्ति पूर्णत: नष्ट हो गई तथा अव्यवस्था फैल गई।

(iii) अकाल तथा रोगों का प्रकोप– तैमूर ने कई नगरों तथा गाँवों को लूटा तथा उन्हें उजाड़ दिया। उसने हजारों लोगों को मार डाला जिससे चारों ओर अकाल तथा रोगों का प्रकोप छा गया।

(iv) कला पर प्रभाव– तैमूर के आक्रमण से भारतीय कला और साहित्य की प्रगति अवरुद्ध हो गई। तैमूर अनेक बहुमूल्य कलाकृतियों और शिल्पियों को अपने साथ समरकन्द ले गया, किन्तु इससे भारतीय कला और शैली का विस्तार मध्य एशिया तक अवश्य हुआ।

(v) आर्थिक प्रभाव– तैमूर के आक्रमण से उत्तरी भारत की आर्थिक व्यवस्था छिन्न-भिन्न हो गई, तैमूर अपने साथ भारत का बहुत-सा धन ले गया। तैमूर के आक्रमण से कृषि की व्यवस्था भी बिगाड़ गई।

14. इब्नबतूता कौन था? वह क्यों प्रसिद्ध है?

उ०– इब्नबतूता अफ्रीका का पर्यटक था जो कि मुहम्मद तुगलक के शासनकाल में 1333 ई० में भारत आया था। दिल्ली आने पर उसका भव्य स्वागत हुआ। मुहम्मद तुगलक ने उसे अपनी राज्यसभा का सदस्य बनाया और उसे दिल्ली का काजी नियुक्त कर दिया। आठ वर्ष तक उसने इस पद पर कार्य किया। 1342 ई० में उसे राजदूत बनाकर चीन भेजा गया, परन्तु एक दुर्घटना के कारण उसे वापस लौटना पड़ा। अन्त में, दिल्ली से विभिन्न स्थानों का भ्रमण करता हुआ वह स्वदेश (अफ्रीका) लौट गया।

इब्नबतूता ने अपनी भारत-यात्रा का वृत्तान्त लिखा है, जो 'किताब-उल-रहेला' के नाम से प्रसिद्ध है। यह ग्रन्थ अरबी भाषा में लिखा गया था और उसमें मुहम्मद तुगलक के शासनकाल की घटनाओं का विस्तृत वर्णन किया गया है।

15. मंगोलों के प्रभाव को स्पष्ट कीजिए।

उ०– मंगोलों के आक्रमण के निम्नलिखित प्रभाव हुए–

(i) मंगोलों के आक्रमणें को रोकने में व्यस्त रहने के कारण सुल्तान प्रशासकीय कार्यों के प्रति जागरूक न रह सके।
(ii) इन्हीं आक्रमणों के कारण प्रान्तीय सूबेदार स्वतन्त्र रूप से विद्रोह करते रहे, क्योंकि सुल्तान इन मंगोल आक्रमणों को दबाने में लगे रहते थे।
(iii) सुल्तानों को विवश होकर दमन नीति का आश्रय लेना पड़ा था, जिसके कारण प्रजा सुल्तानों से अप्रसन्न रही।

कुछ सुल्तानों ने सीमा नीति की अपेक्षा भी की, जिससे मंगोलों के आक्रमण निरन्तर जारी रहे और विद्रोहों की भी अधिकता रही। इतना ही नहीं, एक सुल्तान की मृत्यु पर दूसरे सुल्तान का सिंहासनारोहण तलवार के द्वारा ही सम्भव था, इन कारणों से मंगोलों को भारतीय आक्रमणों के समय कभी-कभी अपार सफलता मिलती थी, जो उन्हें भावी आक्रमण के लिए प्रेरणा देती थी।

16. मलिक काफूर कौन था?

उ०– मलिक काफूर, अलाउद्दीन खिलजी का महान् सेनापति एवं प्रधानमंत्री था। वह हिन्दू था और खम्भात (गुजरात) की लूट में अलाउद्दीन के हाथ लगा था। उसे एक हजार दीनार देकर खरीदा गया था, इसलिए उसका नाम 'हजार दीनारी' भी पड़ गया था।

17. फिरोज तुगलक के काल में 'दारुल-शफा' तथा 'दीवान-ए-खैरात' क्या थे?

उ०– दारुल-शफा– सुल्तान ने राजधानी में एक दारुल शफा खुलवाया था, जिसमें योग्य वैद्य तथा डॉक्टर यात्रियों तथा रोगियों का इलाज करते तथा मुफ्त दवाएँ देते थे। दारुल शफा के व्यय के लिए सुल्तान ने कुछ गाँवों की मालगुजारी निश्चित कर दी थी।

दीवान-ए-खैरात– सुल्तान ने दिल्ली में एक नए विभाग की स्थापना की, जिसे दीवान-एव-खैरात (दान-विभाग) कहा जाता था। इस विभाग का कार्य अनाथों तथा विधवाओं की देखभाल करना था और मुसलमान कन्याओं के विवाह के लिए निर्धनों को धन प्रदान करना था।

18. जियाउद्दीन बरनी कौन था? वह किसलिए प्रसिद्ध है?

उ०– जियाउद्दीन बरनी सल्तनत काल का प्रसिद्ध साहित्यकार था। वह अपने ऐतिहासिक ग्रन्थ 'तारीख-ए-फिरोजशाही' की रचना के लिए प्रसिद्ध है।

19. मुहम्मद तुगलक द्वारा राजधानी परिवर्तन पर प्रकाश डालिए।

उ०– सुल्तान ने दिल्ली की समस्त जनता को अपने सामान सहित दौलताबाद जाने के आदेश दिए और दिल्ली उजाड़ हो गयी। **बरनी** ने लिखा है कि ''तबाही इतनी भयानक थी कि शहर की इमारतों, उसके महलों और उसके आसपास के क्षेत्रों में एक बिल्ली अथवा कुत्ता भी दिखाई नहीं देता था। इसी प्रकार **इब्नबतूता** ने लिखा है, ''सुल्तान के आदेश पर खोज करने पर उसके गुलामों को एक लंगड़ा और अन्धा व्यक्ति प्राप्त हुए। लंगड़े को मार दिया गया और अन्धे को घसीटकर दौलताबाद ले जाया गया जहाँ उसकी केवल एक टाँग ही पहुँच सकी।'' इसी प्रकार इतिहासकार **इसामी** ने लिखा है ''उसने (मुहम्मद तुगलक) ने शहर (दिल्ली) को जला देने और सभी जनता को उससे बाहर निकाल देने की आज्ञा दी।'' परन्तु **ए०एल० श्रीवास्तव** के अनुसार ये कहानियाँ वास्तव में बाजारू गप्पों के अतिरिक्त और कुछ नहीं है।

दिल्ली से दौलताबाद की दूरी 700 मिल (प्राय: 950 किमी) थी जहाँ लम्बी सड़क पर छायादार वृक्ष लगाये गये। जनता के लिए प्रत्येक दो मील पश्चात् रुकने और खाने-पीने की व्यवस्था की गयी। इनके अतिरिक्त जनता के लिये अनेक सुविधाएँ करनी पड़ी, किन्तु सुल्तान की यह योजना पूर्णत: असफल रही। सुल्तान ने जब यह देखा कि योजना विफल हो गयी है उससे लोगों को दौलताबाद से दिल्ली अपने घरों को लौटने की आज्ञा दी। किन्तु दिल्ली अब केवल आंशिक रूप से ही पुन: बस सकी और अनेक वर्षों तक अपनी समृद्धि और वैभव को प्राप्त नहीं कर सकी।

20. तुगलक वंश के पतन के दो प्रमुख कारण लिखिए।

उ०– तुगलक वंश के पतन के दो प्रमुख कारण निम्नलिखित थे—

(i) मुहम्मद तुगलक की विशिष्ट योजनाओं के परिणामस्वरूप जनता को अपार कष्ट पहुँचा और वह विद्रोह में लिप्त हो गई। उसके समय से ही साम्राज्य में विद्रोहों का प्रारम्भ हुआ।

(ii) मुहम्मद तुगलक ने उलेमाओं का राजनीति से पूर्णतया बहिष्कार कर दिया था, जिसके परिणामस्वरूप उन्होंने क्रोधित होकर विनाशकारी षड्यन्त्र रचे और साम्राज्य की शक्ति को खोखला कर दिया।

21. तुगलक वंश के दो शासकों के नाम लिखिए।

उ०– (i) मुहम्मद तुगलक, (ii) फिरोज तुगलक।

22. मुहम्मद-बिन-तुगलक की शासन सम्बन्धी चार योजनाओं का वर्णन कीजिए।

उ०– मुहम्मद-बिन-तुगलक की शासन-सम्बन्धी चार योजनाएँ निम्नलिखित हैं—

(i) निरंकुश एवं स्वेच्छाचारी शासन-व्यवस्था– सुल्तान को अपने अयोग्य अमीरों पर कोई विश्वास नहीं था। इसीलिए उसने विदेशियों को उच्च पद प्रदान करने आरम्भ किए। उसके दरबार में ईरानी, खुरासानी तथा मध्य एशियाई प्रदेशों के व्यक्तियों को सम्मानित स्थान प्राप्त थे।

(ii) न्याय-व्यवस्था में सुधार– वह स्वयं न्याय का सर्वोच्च अधिकारी था तथा छोटी अदालतों की अपीलें सुनता था। उसके पश्चात् न्याय का प्रमुख पदाधिकारी काजी-उल-कुजात होता था, जिसके अधीन काजी होते थे।

सुल्तान ने आज्ञा दी थी कि अपराध करने पर अमीरों तथा उलेमाओं को भी साधारण व्यक्ति के समान ही दण्ड दिया जाए। सुल्तान ने स्वयं को भी इस नियम से मुक्त नहीं रखा था, अपराध करने पर उस पर भी अभियोग लगाया जा सकता था।

(iii) धर्मनिरपेक्ष राज्य की स्थापना– मुहम्मद तुगलक प्रथम मुस्लिम सुल्तान था, जिसका धार्मिक दृष्टिगोचर उदार एवं सहिष्णु था। उसी ने भारत में सर्वप्रथम धर्म अप्रभावित राज्य स्थापित किया। अपनी जिस धार्मिक सहिष्णुता की नीति के कारण अकबर महान कहलाया, उस नीति का जन्मदाता मुहम्मद तुगलक ही था।

(iv) साहित्य एवं कला को संरक्षण– मुहम्मद तुगलक स्वयं विभिन्न विषयों को प्रकाण्ड विद्वान था। उसने बहुत-से विद्वानों, साहित्यकारों, इतिहासकारों, धर्मशास्त्र के ज्ञाताओं, कवियों, सूफी-सन्तों आदि को संरक्षण प्रदान किया था। उसके दरबार में **बरनी** और **इब्नबतूता** जैसे विद्वान रहते थे। सुल्तान स्वयं सुफी सन्त **निजामुद्दीन औलिया** का शिष्य था।

23. फिरोज तुगलक के मानवतावादी सुधारों की विवेचना कीजिए।

उ०– फिरोज तुगलक के मानवतावादी सुधार निम्नलिखित हैं—

(i) फिरोज तुगलक ने राजस्व विभाग के अधिकारियों को यह निर्देश दिया कि वे कर संग्रह करते समय किसी भी प्रकार का अत्याचार न करें।

(ii) उसने अस्थायी सेना को राजकोष से नकद वेतन देना शुरू किया।

(iii) सैनिक के पद को वंशानुगत कर दिया गया।

(iv) फिरोज तुगलक ने अपनी गरीब जनता की सुविधा के लिए छोटे-छोटे सिक्के चलाए। उसने इन सभी सिक्कों के ढलवाने में शुद्ध धातु का प्रयोग किया।

(v) दरिद्रों की सहायता के लिए सुल्तान ने जो प्रबन्ध किया, वह निश्चय ही प्रशंसनीय है। दरिद्र मुसलमानों की कन्याओं के

विवाह की सहायता देने के लिए सुल्तान ने 'दीवान-ए-खैरात' (दान विभाग) नामक एक संस्था बनाई, जो प्रत्येक प्रार्थी के मामले पर निष्पक्ष रूप से विचार करती और फिर उसे सहायतार्थ धन देने की सिफारिश करती थी।

(vi) फिरोज ने भवन-निर्माण और कलाकृतियों के जीर्णोद्धार की ओर विशेष ध्यान दिया जाता था। फिरोज तुगलक ने अपने शासनकाल में चालीस मसजिदों, तीस विद्यालयों, बीस महलों, दो सौ नगरों, सौ सरायों, सौ औषधालयों, सौ सार्वजनिक स्नानागारों, दस कीर्ति-स्तम्भों तथा एक सौ पचास पुलों का निर्माण अथवा जीर्णोद्धार करवाया था।

(vii) सुल्तान ने अपने राज्य में अनेक विद्वानों को आश्रय प्रदान किया था।

(viii) उसने 'दारूल उल शफा' नामक एक सार्वजनिक औषधालय खुलवाया था, जहाँ रोगियों को नि:शुल्क औषधि बाँटने का प्रबन्ध किया था।

(xi) सुल्तान फिरोज तुगलक को दास रखने का बहुत शौक था। इसलिए उसके समय में शाही दासों की संख्या 1 लाख 80 हजार तक पहुँच गई थी।

24. मुहम्मद तुगलक द्वारा सांकेतिक मुद्रा का प्रचलन क्यों किया गया था?

उ०– मुहम्मद तुगलक ने अपने समय में विभिन्न प्रकार के सुन्दर सिक्के चलाये और उन सभी का उचित मूल्य निश्चित किया, परन्तु सांकेतिक मुद्रा को चलाना उसकी एक विशिष्टता रही। इसके अनेक कारण माने जाते हैं—

(i) राजकोष में बहुमूल्य धातुओं का अभाव था।

(ii) अकाल तथा दोआब में कठोर कर नीति से सुल्तान की आय में कमी हो गयी थी।

(iii) भारत के दूरस्थ प्रान्तों तथा कुछ बाह्य देशों को जीतने के उद्देश्य से वह अपने राजस्व में वृद्धि करना चाहता था।

(iv) मुहम्मद को नये प्रयोगों का बहुत शौक था और वह भारतीय मुद्रा के इतिहास में एक नया अध्याय प्रारम्भ करना चाहता था।

(v) शायद उसे चीनी और ईरानी शासकों से प्रेरणा मिली थी जिन्होंने 13 वीं शताब्दी में अपने-अपने देशों में सांकेतिक मुद्रा जारी की।

25. मुहम्मद तुगलक की राजधानी परिवर्तन की योजना के पीछे दो प्रमुख उद्देश्य बताइए।

उ०– मुहम्मद तुगलक की राजधानी परिवर्तन की योजना के पीछे दो प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित थे—

(i) देवगिरी का साम्राज्य के केंद्र में होना। (ii) दक्षिण भारत की समृद्धि का लालच।

विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

1. बाजार-नियन्त्रण के विशेष सन्दर्भ में अलाउद्दीन खिलजी की आर्थिक नीति की विवेचना कीजिए।

उ०– बाजार-नियन्त्रण के सन्दर्भ में अलाउद्दीन खिलजी की आर्थिक नीति की विवेचना–

(i) अलाउद्दीन-एक अर्थशास्त्री के रूप में– अलाउद्दीन खिलजी दूरदर्शी व एक कुशल राजनीतिज्ञ सुल्तान था। उसने इतिहास में पहली बार आर्थिक क्षेत्र में बाजार-नियन्त्रण की व्यवस्था की ओर अपने कठोर अध्यादेशों द्वारा उसको लागू भी करवाया। दिल्ली सल्तनत के इतिहास में अलाउद्दीन के आर्थिक सुधारों का बहुत महत्त्व है। इन सुधारों के कारण ही आधुनिक इतिहासकारों ने उसे एक साहसी राजनीतिक अर्थशास्त्री तथा मूल्य नियन्त्रक की संज्ञा दी।

समकालीन इतिहासकार बरनी और आधुनिक इतिहासकारों के मतानुसार, अलाउद्दीन की बाजार-नियन्त्रण की नीति राजनीतिक और सैनिक कारणों से प्रेरित थी। साम्राज्य विस्तार और मंगोल आक्रमणों को रोकने के लिए सुल्तान ने एक विशाल स्थायी सेना गठित की। फरिश्ता के अनुसार, इनकी संख्या 4,75,000 थी। इस सेना पर अपार धन व्यय होता था और इसके अतिरिक्त राज्य के अधिकारियों, स्थानीय कर्मचारियों तथा दासों आदि, जिनकी संख्या 50,000 से अधिक थी, पर भी विपुल धन खर्च होता था। भारी कर लगाने के बाबजूद भी सुल्तान ने यह अनुभव कर लिया था कि इन समस्त व्ययों को भुगतान करते रहने से सम्पूर्ण राजकोष केवल 5 से 6 वर्षों में खाली हो जाएगा। इस स्थिति में सुल्तान ने वस्तुओं के मूल्य कम और निश्चित करने की योजना बनाई, जिससे थोड़ी आय में भी सैनिक अपनी जीविकोपार्जन सुगमता-से कर सकें।

(ii) बाजार नियन्त्रण की विशेषताएँ– अलाउद्दीन खिलजी की बाजार-नियन्त्रण व्यवस्था की प्रमुख विशेषताएं निम्नलिखित थीं—

(क) अनाज नियन्त्रण– सर्वप्रथम अलाउद्दीन ने विभिन्न प्रकार के अनाजों का मूल्य निश्चित करके अनाज पर नियन्त्रण स्थापित किया। इतिहासकारों के मतानुसार अलाउद्दीन के समय में मूल्य बहुत अधिक कम तो नहीं थे, परन्तु मूल्यों पर नियन्त्रण अवश्य था और यही अलाउद्दीन के काल की सबसे बड़ी सफलता थी।

(ख) गल्ला मण्डी– सुल्तान ने अनाज बेचने तथा खरीदने के लिए दिल्ली में एक विशाल गल्ला मण्डी की स्थापना की और सरकारी गल्ला भण्डार खुलवा दिये थे। इस मण्डी से जनता तथा व्यापारी दोनों को माल खरीदने की सुविधा हुई। इससे पूर्व व्यापारी मनमाफिक लाभ उठाने की चेष्टा किया करते थे, परन्तु इन नियमों के कारण उन पर लगाम लगी हुई थी।

(ग) गल्ला भण्डार– प्राकृतिक प्रकोपों, अकाल तथा अतिवृष्टि के कारण कृषि की उपज में कमी हो सकती है और उपज के

कम होने पर मूल्यों में वृद्धि हो जाना एक स्वाभाविक बात है। इस संकट से बचने के लिए अलाउद्दीन ने बड़े-बड़े गोदामों का निमार्ण करवाया, जिनमें भारी मात्रा में गल्ला संचित किया जाता था।

(घ) राशनिंग– अलाउद्दीन खिलजी ने दिल्ली की जनता को अकाल के कष्टों से बचाने के लिए राशन-प्रणाली की व्यवस्था भी शुरू की। सामान्य परिस्थितियों में व्यक्ति अपनी इच्छानुसार अनाज खरीद सकते थे, परन्तु अकाल के समय दिल्ली की जनता को शाही गोदामों से अनाज लिया जाता था।

(ङ) बाजार के अधिकारी– अलाउद्दीन ने अपने बाजार-नियन्त्रण को सफल बनाने के लिए अनेक कठोर और निर्दयी अधिकारी नियुक्त किए। पहला अधिकारी अमीर याकूब दीवान-ए-रियासत था, दूसरा अधिकारी मलिक कबूल अथवा मालिक मकबूल था जो कि उलूग खाँ का विश्वासपात्र सेवक था और शहना-ए-मण्डी (खाद्यान्न बाजार) था, जिसे बाजार-नियन्त्रण व्यवस्था की जिम्मेदारी दी गई थी। उनके अधीनस्थ कर्मचारी और घुड़सवार सैनिकों की एक बड़ी संख्या भी थी। इस अधिकारी को बड़ा महत्त्वपूर्ण उतरदायित्व सौंपा गया था और उसे विस्तृत अधिकारी भी दिए गए थे। शहना-ए-मण्डी प्रतिदिन बाजार की रिपोर्ट सुल्तान के पास भेजा करता था। सुल्तान उसकी रिपोर्ट की जाँच अन्य कर्मचारियों द्वारा भेजी गई रिर्पोटों से करता था। यदि शहना-ए-मण्डी और कर्मचारियों की सूचनाओं में अन्तर होता था, तो उसकी गहरी जाँच की जाती थी और झूठी सूचना देने वालो को कठोर दण्ड दिया जाता था।

गल्ला मण्डी के अन्य अधिकारियों में एक मुख्य अधिकारी बरीद-ए-मण्डी कहलाता था। इस अधिकारी का कार्य वस्तुओं के मूल्य तथा तौल की जाँच करना और प्रतिदिन सुल्तान को रिपोर्ट भेजना था। इसके अतिरिक्त बहुत से गुप्तचर, जिन्हें मुनहियान कहा जाता था, भी मण्डी में घूम-फिर कर सुल्तान को हर समय रिपोर्ट भेजा करते थे।

(च) कपड़ा बाजार– कपड़ा बाजार बदायूँ द्वार के अन्दर अदल सराय नामक भवन में स्थित था। इस बाजार का सर्वोच्च अधिकारी मलिक याकूब था, जिसे बाजार की दीवान-ए-रियासत कहा जाता था। यह कपड़ा बाजार के अतिरिक्त अन्य बाजारों का भी निरीक्षण करता था और इसका पद **शहना-ए-मण्डी** मलिक कबूल से ऊँचा था।

(छ) दासों का बाजार– दास, दासियों तथा गायों का अलग बाजार था, जिनके मूल्य निर्धारित कर दिए गए थे।

(ज) घोड़ो का बाजार– सुल्तान ने घोड़ों के बाजार पर भी कठोर नियन्त्रण स्थापित कर दिए थे। दलाल लोग बाहर से घोड़े लाकर राजधानी में बेचा करते थे। सुल्तान ने घोड़ों के मूल्य भी निर्धारित कर दिए थे। इन निर्धारित मूल्यों से अधिक पर घोड़े बेचने वाले दलालों को सुल्तान कठोर दण्ड देता था। गुप्तचर इस बाजार की बड़ी सावधानी से जाँच करते थे और सुल्तान को रिपोर्ट भेजा करते थे।

(झ) कठोर-दण्ड-व्यवस्था– बाजार सम्बन्धी ये नियम बहुत ही कठोर थे और इनका पालन कराना एक कठिन कार्य था। लेकिन अलाउद्दीन ने कठोर दण्ड विधान की व्यवस्था करके अपने आर्थिक नियमों को लागू करवाया। दीवान-ए-रियासत, शहना-ए-मण्डी, बरीद-ए-मण्डी आदि अधिकारी बड़ी चौकसी तथा कठोरता के साथ बाजारों का निरीक्षण करते थे और नियम के विरुद्ध कार्य करने वाले व्यापारियों को कठोर दण्ड देते थे। सुल्तान स्वयं बाजार नियन्त्रण को लागू करने के लिए कृत संकल्प था। उसने बाजार के अधिकारियों को विस्तृत अधिकार प्रदान किए थे, उसने उन्हें बेईमान व्यापारियों को कोड़े लगाने, कष्ट देने और सजा देने के पूर्ण अधिकार दे रखे थे।

(iii) बाजार-नियन्त्रण के प्रभाव– अलाउद्दीन के आर्थिक सुधार अथवा बाजार-नियन्त्रण सम्बन्धी नियम अत्यधिक सफल और उपयोगी सिद्ध हुए। इसके निम्नलिखित प्रभाव पड़े—

(क) इन सुधारों के कारण ही अलाउद्दीन एक विशाल स्थायी सेना रखने में सफल हुआ और उसे सैनिकों को वेतन भी कम देना पड़ा।

(ख) सेना के बल पर वह मंगोल आक्रमणों को रोकने तथा साम्राज्य का विस्तार करने में सफल रहा।

(ग) इसके परिणामस्वरूप लोगों के अन्दर विद्रोह की भावना समाप्त हो गई और वे अनुशासित हो गए। कालाबाजारी तथा मुनाफाखोरी का अन्त हो गया। कठोर नियमों व दण्डों के प्रावधान के कारण व्यापारियों ने बेईमान का परित्याग कर दिया।

(घ) वस्तुएँ सस्ती हो जाने से जनजीवन सुखी हो गया।

(ङ) इन सुधारों से देश की अर्थव्यवस्था पर सरकार का कठोर नियन्त्रण स्थापित हो गया।

(iv) बाजार-नियंत्रण के कुप्रभाव– इन सुधारों के कुछ कुप्रभाव भी हुए, जो निम्न प्रकार हैं—

(क) इन सुधारों का साधारण जनता पर अच्छा प्रभाव नहीं पड़ा।

(ख) इन सुधारों के परिणामस्वरूप कृषक वर्ग की दशा अत्यधिक शोचनीय हो गई थी।

(ग) अलाउद्दीन के आर्थिक सुधार वास्तव में लोकहित के लिए नहीं थे। उसने अपने सैनिकों को सुविधा देने के लिए बाजार-नियन्त्रण लागू किया था।

(घ) इन सुधारों ने देश के व्यापार को भी क्षति पहुँचाई। व्यापारियों को सस्ते मूल्य पर वस्तुएँ बेचनी पड़ती थी। कठोर दण्डों के

भय से व्यापारी हेरा-फेरी भी नहीं कर पाते थे और इससे लाभ के स्थान पर हानि होने के कारण वे व्यापार के प्रति उदासीन होने लगे, जिससे व्यापार ठप्प होने लगा था।

इन सुधारों से किसान की दशा अत्यधिक शोचनीय हो गई। उन्हें अपनी उपज का आधा भाग भूमि-कर के रूप में देना पड़ता था। अन्य करों के द्वारा भी सरकार उनकी अधिकांश आय हड़प लेती थी। शेष थोड़ा-बहुत अनाज, जो जीविका निर्वाह हेतु उनको पास रह जाता था, उसका अधिकांश भाग उन्हें कम मूल्य पर सरकार के हाथों बेचना पड़ता था। इस स्थिति से उनका जीवन बड़ा कष्टमय हो गया था।

(ङ) अलाउद्दीन की यह व्यवस्था बड़ी कठोर थी। छोटे-छोटे अपराधों के लिए व्यापारियों को कठोर दण्ड दिए जाते थे।

(च) अलाउद्दीन के ये आर्थिक नियम अस्थायी रहे और उसकी मृत्यु के साथ ही उनका भी अन्त हो गया।

2. 'फिरोज तुगलक एक सुधारक था।' विवेचना कीजिए।

उ०– इसमें सन्देह नहीं है कि फिरोज तुगलक एक कुशल शासन-प्रबन्धक तथा सुधारक था, परन्तु उसकी धर्मान्धता ने उसके सुधारों का उल्टा परिणाम निकाला और उसके प्रशासनिक सुधार कालान्तर में सल्तनत के स्थायित्व के लिए बड़े घातक सिद्ध हुए।

(i) फिरोज के प्रारम्भिक सुधार– सबसे पहले फिरोज ने अपनी प्रजा की सहानुभूति प्राप्त करने के लिए उन्हें राजकीय ऋण से मुक्त करने का निश्चय किया। उसके आदेश पर फारूखशाही ने ऋणी लोगों के खातों को मँगाकर दरबार में जनता के समक्ष नष्ट कर दिया।

(ii) सिंचाई सम्बन्धी सुधार– फिरोज तुगलक ने कृषि को को प्रोत्साहन देने के लिए नहरों और कुओं का निर्माण करवाया। इन नहरों के निर्माण से राज्य की लगभग हजारों वर्गमील भूमि सींची जाने लगी और कृषि की उपज काफी बढ़ गई। फिरोज के इस कार्य ने जनता को अकाल से बचने का विशेष प्रबन्ध कर दिया।

(iii) कृषि सम्बन्धी सुधार– फिरोज तुगलक के गद्दी पर बैठने के समय राज्य के किसानों की दशा बड़ी शोचनीय थी और कृषि-प्रबन्ध की व्यवस्था सरकारी कर्मचारियों की लूट-खसोट के कारण छिन्न-भिन्न हो चुकी थी। फिरोज ने कृषि-विभाग में निम्नलिखित सुधार किए–

(क) जिन किसानों ने मुहम्मद तुगलक के समय अकाल के कारण सरकार से ऋण लिए थे, उनके ऋणों को माफ कर दिया गया।

(ख) **ख्वाजा हिसामुद्दीन** ने 6 वर्ष के कठोर परिश्रम के बाद सम्पूर्ण भूमि की जाँच-पड़ताल की और लेखे-जोखे तैयार किए।

(ग) भूमि-कर की दर इतनी कम कर दी गई कि किसान सुविधापूर्वक अपना कार्य ही करने लगे और मालगुजारी अदा करने लगे।

(घ) कृषि सिंचाई की समुचित व्यवस्था की गई, जिससे अधिकांश भूमि पर खेती की जाने लगी।

(ङ) नहरों से सींची जाने वाली भूमि की उपज के 1/10 भाग पर सिंचाई कर वसूल किया जाने लगा।

इन सुधारों से कृषि की दशा में भारी सुधार हो गया और किसानों की आर्थिक दशा अच्छी हो गई। लेकिन इन सुधारों के साथ-साथ फिरोज तुगलक ने जागीरदारी प्रथा को प्रचलित कर एक हानिकारक कार्य किया, क्योंकि जागीरदारी प्रथा ही कालान्तर में साम्राज्य के विघटन का एक प्रमुख कारण बनी।

(iv) न्याय सम्बन्धी सुधार– सुल्तान ने न्याय-व्यवस्था में भी महत्वपूर्ण सुधार किया। उसने कुरान के नियमों के आधार पर राज्य में न्याय-प्रणाली स्थापित की। उसके समय में मुफ्ती कानून की व्याख्या करते और काजी निर्णय देते थे। यदि कोई यात्री मार्ग में मर जाता था तो स्थानीय अधिकारी काजी को बुलाते थे और उसकी रिपोर्ट के बादे उस यात्री को दफना दिया जाता था। न्याय-विभाग में उलेमाओं को विशिष्ट स्थान प्राप्त था। सुल्तान ने मुसलमानों को कठोर दण्ड (अंग-भंग आदि) देना बन्द करवा दिया था और बहुत कम अपराधों के लिए ही मृत्यु-दण्ड दिया जाता था। सुल्तान की इस उदारता के कारण यद्यपि अपराधी उद्दण्ड होने लगे, किन्तु फिरोज को मुस्लिम जनता में काफी लोकप्रियता प्राप्त हुई।

(v) वित्तीय सुधारक– फिरोज कट्टर सुन्नी मुसलमान था, इसलिए उसने उलेमाओं के परामर्श को मानकर राज्य की कर-नीति (वित्तीय-नीति) में महत्वपूर्ण परिर्वतन कर दिया। उसने इस्लाम विरोधी 23 करों को समाप्त कर दिया और जनता पर जजिया, जकात, खराज और खम्स कर ही लगाए। उसके पूर्वाधिकारी लूट के माल का 4/5 राजकोष में रखते थे और 1/5 सैनिकों में बाँट देते थे, परन्तु फिरोज ने इसे इस्लाम के विरुद्ध समझा और उसने 1/5 स्वयं रखा तथा 4/5 सैनिकों में वितरित करने का आदेश दिया।

(vi) सैन्य प्रशासन में सुधार– सुल्तान ने अलाउद्दीन खिलजी की भाँति स्थानीय सेना रखने की प्रथा और सैनिकों को नकद वेतन देने की व्यवस्था को बन्द कर दिया। उसने सैनिक वर्ग को सन्तुष्ट करने के लिए उन्हें सैनिक सेवा के बदले बड़ी-बड़ी जागीरें देनी प्रारम्भ कर दीं और उसने सेना में वंशानुगत अधिकार के आधार पर नियुक्ति की प्रथा प्रचलित की।

सुल्तान के इन अध्यादेशों के कारण सेना का संगठन निरन्तर शिथिल होने लगा। अनुभवहीन तथा निकम्मे व्यक्ति सेना में

भर गए। योग्य सैनिक भी धीरे-धीरे आलसी हो गए और युद्ध-क्षेत्र में पीठ दिखाने लगे। सुल्तान ने उन्हें कोई कठोर दण्ड नहीं दिया, जिससे सैनिकों का भय दूर हो गया और उनमें अनुशासनहीनता आ गई। इसके अतिरिक्त सुल्तान ने स्वयं ही सेना में रिश्वतखोरी को प्रोत्साहन दिया। जब सेना की दशा काफी बिगड़ गई, तब सुल्तान ने मलिक राजी को सेना को संगठित करने का आदेश दिया। मलिक राजी ने सैनिकों के घोड़े, हथियारों आदि की कठोरतापूर्वक जाँच करने की व्यवस्था की और सेना में अनुशासन स्थापित करने का प्रयास किया, परन्तु सुल्तान की उदार नीति के कारण सेना में कोई विशेष सुधार न हो सका और सेना का संगठन छिन्न-भिन्न होने लगा। सेना की यह दुर्बलता सल्तनत की स्थिरता के लिए विनाशकारी सिद्ध हुई।

(vii) मुद्रा-सुधार– सुल्तान फिरोज ने राज्य की मुद्रा-प्रणाली में कुछ सुधार किए। अफीफ तथा अन्य मुस्लिम इतिहासकारों ने अनेक सिक्कों का उल्लेख किया है, जिनका प्रचलन फिरोज तुगलक ने किया था, परन्तु उसके समय के अधिकांश सिक्के मुहम्मद तुगलक के शासनकाल के ही थे। केवल शाशगनी (छह जीतल) नामक मुद्रा ही नई प्रचलित की गई थी। इब्नबतूता ने भी इस मुद्रा का वर्णन किया है। सुल्तान ने राज्य की टकसाल व्यवस्था में कोई विशेष सुधार नहीं किया था, फलस्वरूप भ्रष्टाचार प्रचलित था। उसने चाँदी और ताँबे को मिलाकर एक जीतल के सिक्के का निर्माण किया था। यदि कोई व्यक्ति जाली सिक्के बनाने का प्रयत्न करता था तो उसे इससे कोई लाभ नहीं हो सकता था।

(viii) सार्वजनिक निर्माण कार्य– सुल्तान फिरोज ने जनता के हित के लिए अनेक महत्वपूर्ण कार्य किए। सुल्तान ने मीर-ए-इमारत मलिक गाजी साहना तथा अब्दुल हक की सहायता से अनेक किले, मस्जिदें तथा सराय बनवाईं और प्राचीन इमारतों की मरम्मत करवाई तथा नए नगर बसाए।

सुल्तान ने फिरोजाबाद, हाँसी तथा जौनपुर आदि नगर बसाए। उसने कुतुबमीनार की मरम्मत करवाई और सम्राट अशोक के दो स्तम्भों को मेरठ तथा खिज्राबाद से उखड़वाकर दिल्ली में लगवाया।

(ix) दास प्रथा– फिरोज तुगलक दासों से विशेष अनुराग रखता था। उसने राज्य के बेरोजगारों को दास बनाने की प्रथा चलाई और अपने अधिकारियों को आदेश दिया कि जहाँ कहीं भी युद्धबन्दी अथवा अन्य स्थानों पर दास मिलें, राज्य की सेवा में भेज दिए जाएँ। जिन अमीरों ने दासों को जमा करने में तत्परता दिखाई, उन पर सुल्तान ने विशेष कृपा रखी और अमीरों से पाने वाले दासों का मूल्य देना आरम्भ कर दिया। अत: दासों की संख्या बढ़ते-बढ़ते एक लाख अस्सी हजार के तक पहुँच गई, जिनमें से 40 हजार दास केवल राजमहल में ही रहने लगे। इन दासों के प्रबन्ध के लिए सुल्तान ने एक पृथक विभाग 'दीवाने बंदगान' स्थापित करवाया। दासों को योग्यतानुसार अनेक श्रेणियों में विभक्त किया गया और उनकी शिक्षा-दीक्षा आदि की समुचित व्यवस्था की गई। बहुत-से दासों को शाही कारखानों, बागों तथा घरेलू-कार्यों में नियुक्त किया गया और बहुत-से दास अमीरों को दे दिए गए। सुल्तान की दास-प्रथा साम्राज्य के हित में बड़ी घातक सिद्ध हुई।

(x) विद्या एवं शिक्षा को संरक्षण– सुल्तान फिरोज तुगलक स्वयं एक प्रकाण्ड विद्वान और विद्वानों का संरक्षक था। उसने शिक्षा को प्रोत्साहन देने के लिए अनेक मदरसे खुलवाए थे, जिनमें योग्य शिक्षक शिक्षा प्रदान करते थे। इन शिक्षकों को राज्य की ओर से भारी वेतन मिलता था। मेधावी छात्रों को राज्य की ओर से छात्रवृत्ति भी मिलती थी।

सुल्तान के दरबार में बरनी तथा अफीफ जैसे इतिहासकारों को संरक्षण प्राप्त था। उसके समय में बरनी ने फतवा-ए-जहाँदारी और अफीफ ने तारीख-ए-फिरोजशाही नामक ग्रन्थ लिखे। सुल्तान ने स्वयं अपनी आत्मकथा फुतूहात-ए-फिरोजशाही के नाम से लिखी। कुछ संस्कृत ग्रन्थों का उसने फारसी में अनुवाद करवाया। उनमें से एक ग्रन्थ का नाम 'दलायत-ए-फिरोजशाही' रखा गया। सुल्तान ने कानून, धर्मशास्त्रों एवं इस्लामी विद्या की विभिन्न शाखाओं के अध्ययन को प्राथमिकता दी।

(xi) परोपकारी कार्य– सुल्तान बड़ा उदार, दानी और परोपकारी शासक था। उसने जनता को सुख और सुविधाएँ देने के लिए निम्नलिखित कार्य किए–

(क) शाही कारखानों की स्थापना– सुल्तान ने अनेक कारखाने खुलवाए, जिनका प्रबन्ध करने के लिए विभिन्न अधिकारी नियुक्त किए। प्रत्येक कारखाने का अपना आर्थिक विभाग होता था, जो आय-व्यय का पूर्ण विवरण रखता था। इस विवरण की जाँच **दीवान-ए-वजारत** करता था।

(ख) दीवान-ए-खैरात की स्थापना– सुल्तान ने दिल्ली में एक नए विभाग की स्थापना की, जिसे दीवान-ए-खैरात (दान-विभाग) कहा जाता था। इस विभाग का कार्य अनाथों तथा विधवाओं की देखभाल करना था और मुसलमान कन्याओं के विवाह के लिए निर्धनों को धन प्रदान करना था।

(ग) दारुल शफा या सिफ्तखाना– सुल्तान ने राजधानी में एक दारुल शफा खुलवाया था, जिसमें योग्य वैद्य तथा डॉक्टर यात्रियों तथा रोगियों का इलाज करते और मुफ्त दवाएँ देते थे। दारुल शफा के व्यय के लिए सुल्तान ने कुछ गाँवों की मालगुजारी निश्चित कर दी थी।

(घ) बेराजगारी का अन्त– सुल्तान ने यह अध्यादेश जारी किया कि राज्य के समस्त बेकार व्यक्ति उसकी सेवा में भेजे जाएँ। जब कोई भी व्यक्ति उसके पास आता या भेजा जाता था, तब सुल्तान उन्हें कारखानों में काम दिलवा देता था और योग्य व्यक्तियों को **खान-ए-जहाँ मकबूल** के पास भेज देता था। इस प्रकार राज्य में बेरोजगारी का अन्त हो गया।

3. ''अलाउद्दीन खिलजी एक जन्मजात सेनानायक तथा योग्य शासनकर्ता था।'' इस कथन की विवेचना कीजिए।

उ०– अलाउद्दीन खिलजी एक जन्मजात सेनानायक तथा योग्य शासनकर्ता था। उसने अपने शासनकाल में सैन्य व्यवस्था की ओर अत्यधिक ध्यान दिया, क्योंकि उसकी शासन सत्ता 'तलवार की शक्ति' पर आधारित थी। उसने परम्परागत चली आ रही त्रुटिपूर्ण सैन्य व्यवस्था में अनेक सुधार भी किए, जो निम्न प्रकार थे—

(i) स्थायी सेना का संगठन– अलाउद्दीन ने अपनी शासन-व्यवस्था सुदृढ़ करने, मंगोल आक्रमणों को रोकने और साम्राज्य निर्माण के उद्देश्यों से एक स्थायी सेना का गठन किया था। उसकी सेना में पर्याप्त संख्या में अश्वारोही एवं पैदल योद्धा थे। **हिन्दू बेग फरिश्ता** के अनुसार, ''अलाउद्दीन खिलजी पहला शासक था, जिसने स्थायी सेना की नींव डाली। उसकी स्थायी सेना में 4,75,000 घुड़सवार थे, जो भली प्रकार सुसज्जित थे।'' उसने अनेक अच्छी नस्लों के घोड़ों को खरीदा, जिससे कि सेना में बीमार व दुर्बल घोड़े न रहें, इस उद्देश्य से उसने अपनी घुड़सवार सेना में 'दाग-व्यवस्था' भी प्रचलित की थी।

(ii) सैनिकों की भर्ती एवं निरीक्षण– सुल्तान स्वयं सैनिकों की भर्ती करता था, जिससे सेना में योग्य व्यक्ति ही भर्ती हों। वह सैनिकों की स्थिति का स्वयं समय-समय पर निरीक्षण करता था। सुल्तान ने रजिस्टर में सैनिकों की हुलिया लिखने की भी व्यवस्था की थी, ताकि बाहर का कोई व्यक्ति आकर किसी प्रकार की छलपूर्ण नीति को प्रयुक्त न करे और अयोग्य व्यक्ति सेना में भर्ती न हो सकें। सैन्य प्रबन्ध के लिए दीवान-ए-आरिज नामक वजीर (मन्त्री) की नियुक्ति की गई थी।

(iii) सैनिकों को नकद वेतन देने की व्यवस्था– अलाउद्दीन ने अपने सैनिकों को नकद वेतन देने की भी व्यवस्था की थी। उससे पूर्व सैनिकों को नकद वेतन नहीं दिया जाता था, वरन् वेतन के रूप में सैनिकों को जागीरें दी जाती थीं। उसके समय में सैनिकों को 234 टंका प्रतिवर्ष वेतन मिलता था। जो सैनिक दो घोड़े रखता था, उसे 78 टंका अतिरिक्त वेतन मिलता था।

(iv) दुर्ग एवं गुप्तचर विभाग– अलाउद्दीन ने अनेक दुर्गों का निर्माण करवाया और उनमें योग्य एवं अनुभवी अधिकारियों की नियुक्ति की, जिससे सीमान्त प्रदेशों पर होने वाले मंगोलों के आक्रमणों से उसे मुक्ति मिल गई। इसके साथ ही उसने एक विशेष गुप्तचर विभाग की स्थापना भी की जो राज्य की छोटी-छोटी घटना एवं सरदारों तथा अमीरों के षड्यन्त्र की सूचना सुल्तान को देता था।

(v) सेना का सर्वोच्च अधिकारी– सुल्तान ने सेना में अनेक उच्चाधिकारी नियुक्त किए थे, किन्तु वह स्वयं सेना का सर्वोच्च अधिकारी था। वह स्वयं ही युद्धों में जाता था और युद्ध-स्थल में सेना का संचालन-कार्य सँभालता था।

उपुर्यक्त विवरण के आधार पर यह स्पष्ट होता है कि अलाउद्दीन के सैनिक और प्रशासकीय सुधारों के परिणामस्वरूप उसके साम्राज्य की स्थिति बड़ी सुदृढ़ हो गई थी। वस्तुत: यह निर्विवाद तथ्य है कि अलाउद्दीन खिलजी एक जन्मजात सेनानायक तथा योग्य शासनकर्ता था।

4. तुगलक वंश के पतन के कारणों का प्रकाश डालिए।

उ०– तुगलक वंश के पतन के कारण– उत्थान एवं पतन प्रकृति का शाश्वत् नियम है। फिर भी किसी विशाल साम्राज्य के पतन के कुछ विशिष्ट कारण अवश्य होते हैं। यद्यपि तुगलक साम्राज्य पूर्व-मध्यकाल में सबसे अधिक विस्तृत साम्राज्य था, तो भी कालचक्र के कारण अन्तत: तुगलक साम्राज्य का भी पतन हो गया।

वस्तुत: मुहम्मद तुगलक के समय से ही तुगलक साम्राज्य का विघटन प्रारम्भ हो गया था, लेकिन मुहम्मद तुगलक की मृत्यु के बाद फिरोज तुगलक के कुछ दोषपूर्ण कार्यों एवं नीतियों ने तुगलक वंश के पतन को अनिवार्य बना दिया।

संक्षेप में, तुगलक वंश के पतन के लिए उत्तरदायी विभिन्न कारणों को निम्नलिखित सन्दर्भों में जाना जा सकता है—

(i) मुहम्मद तुगलक की असफल नीतियाँ– तुगलक वंश के पतन के लिए एक सीमा तक स्वयं मुहम्मद तुगलक उत्तरदायी था। उसकी कुछ असफल नीतियाँ ऐसी थीं जिनके कारण तुगलक साम्राज्य को पर्याप्त हानि उठानी पड़ी और इस साम्राज्य की नींव बहुत खोखली हो गई थी। मुहम्मद तुगलक की इन नीतियों का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है—

(क) उसने अपने साम्राज्य को उत्तर एवं दक्षिण दो विपरित दिशाओं में बढ़ाया। अत: जब वह उत्तर में होता था, तो दक्षिण में विद्रोह होते थे और जब दक्षिण में होता था, तो उत्तर में विद्रोह होते थे। यातायात के साधनों के अभाव के कारण वह एक स्थान से दूसरे स्थान पर शीघ्र नहीं पहुँच पाता था। इसके परिणामस्वरूप धीरे-धीरे तुगलक साम्राज्य की शक्ति क्षीण होती गई।

(ख) मुहम्मद तुगलक की विशिष्ट योजनाओं के परिणामस्वरूप जनता का अपार कष्ट पहुँचा और वह विद्रोह में लिप्त हो गई। उसके समय से ही साम्राज्य में विद्रोह की क्रमबद्ध श्रृंखला शुरू हो गई थी।

(ग) तुगलक की अदूरदर्शिता के कारण ताँबे के सिक्कों के चलन और सेना को अग्रिम वेतन देने से उसके शासनकाल में ही राजकोष लगभग खाली हो गया था। अत: रिक्त राजकोष की स्थिति में राज्य का संचालन असम्भव था।

(घ) मुहम्मद तुगलक ने उलेमाओं का राजनीति से पूर्णतया बहिष्कार कर दिया था, जिसके परिणामस्वरूप उन्होंने क्रोधित होकर अनेक षड्यन्त्र रचे और साम्राज्य की शक्ति को खोखला कर दिया।

(ङ) तुगलक ने सीमान्त प्रदेशों की सुरक्षा की ओर भी ध्यान नहीं दिया जिसके कारण मंगोल आक्रमणकारियों को साम्राज्य पर आक्रमण करने में बड़ी सहायता मिली।

(ii) फिरोज तुगलक की दोषपूर्ण नीतियाँ– फिरोज तुगलक की निम्नलिखित नीतियाँ भी इस वंश के पतन का कारण बनी थीं–

(क) फिरोज तुगलक ने जागीर-प्रथा को पुन: आरम्भ कर दिया। इससे जागीरदारों के पास पर्याप्त धन एकत्र हो गया और वे अपनी आर्थिक सम्पन्नता का लाभ उठाकर विद्रोह करने लगे तथा इसी के फलस्वरूप सुदूर प्रदेशों के सूबेदारों ने अपनी स्वतन्त्र सत्ता स्थापित कर ली। इससे साम्राज्य की शक्ति का ह्रास होने लगा।

(ख) फिरोज अपने दासों से विशेष प्रेम करता था। उनके रहने एवं खाने की समुचित व्यवस्था हेतु उसने एक अलग विभाग भी स्थापित किया था। इसका परिणाम यह हुआ कि दास लोग अहंकारी हो गए और स्वतन्त्र सत्ता की स्थापना के लिए षड्यन्त्र रचने लगे।

(ग) फिरोज ने सैनिक पदों को भी वंशानुगत कर दिया था। इससे सेना में कुशल सैनिकों की संख्या कम और अयोग्य सैनिकों की संख्या अधिक हो गई। इसके परिणामस्वरूप उसकी सैन्य शक्ति दुर्बल हो गई थी।

(घ) फिरोज तुगलक की सर्वाधिक त्रुटिपूर्ण नीति उसकी धर्मान्धता थी वह एक कट्टर सुन्नी मुसलमान था। अत: उसने अपने धर्म-प्रचार हेतु गैर-मुस्लिम जनता एवं शिया लोगों पर अनेक अत्याचार किए, जिसके परिणामस्वरूप ये लोग कष्टों से कराह उठे और अन्त में विद्रोह करने के लिए बाध्य हुए।

फिरोज तुगलक की इन नीतियों की असफलता के कारण ही प्राय: यह कहा जाता है कि ''फिरोज तुगलक की नीतियाँ ही तुगलक वंश के पतन का कारण बनी।''

(iii) अयोग्य उत्तराधिकारी– दिल्ली के पूववर्ती सुल्तानों की भाँति तुगलकों की शासन-व्यवस्था का मुख्य आधार निरंकुशवाद था। ऐसी अवस्था उस समय तक ही भली-भाँति चल सकती थीं, जबकि शासन का अधिकारी कोई योग्य एवं चरित्रवान व्यक्ति हो। लेकिन तुगलक वंश के अन्तिम सुल्तान भोग-विलास में लिप्त रहने के कारण शक्तिशाली अमीरों के हाथ की कठपुतली बनते चले गये थे। ये अमीर राज-कार्यों की उपेक्षा करके अपने स्वार्थों की पूर्ति में प्रयत्नशील रहते थे। परिणामस्वरूप यह हुआ कि मलिक सरवर, जिसे 'सुल्तान-उल-शर्क' की उपाधि दी गई थी, जौनपुर में स्वतन्त्र शासक बन गया और उसने शर्की राजवंश की नींव डाल दी। गुजरात में जाफर खाँ ने दिल्ली से सम्बन्ध विच्छेद करके अपनी स्वतन्त्र सत्ता स्थापित कर ली। मालवा और खानदेश भी स्वतन्त्र हो गए और पंजाब से खोखर भी उप्रदव करने लगे। दूसरी ओर, योग्य मन्त्रियों के अभाव में शाही दरबार में अनेक गुट बन गए और उनमें गृह-युद्ध छिड़ गया, परिणामस्वरूप तुगलक साम्राज्य का पतन निश्चित हो गया। वस्तुत: तुगलक वंश के विनाश का मुख्य कारण फिरोज तुगलक का निर्बल शासन ही था।

(iv) अमीरों का नैतिक पतन– तुगलक वंश के सुल्तानों के दरबार में सुखी एवं ऐश्वर्यपूर्ण जीवन-यापन करते हुए दरबार के अमीर आलसी, स्वार्थी, विलासी एवं विश्वासघाती बन गए थे और उनका नैतिक पतन भी प्रारम्भ हो गया था। वे अपने स्वार्थ की पूर्ति के लिए षड्यन्त्र रचने लगे, जिन्होंने तुगलक वंश को पतन की ओर अग्रसरित कर दिया।

(v) राजपूतों का स्वदेश-प्रेम– अनेक राजपूत राजा विवशता के कारण पराधीन हो गए थे, किन्तु फिर भी वे स्वतन्त्र होने का अवसर निरन्तर खोजते रहे और जब उन्होंने देखा कि तुगलक साम्राजय की शक्ति का ह्रास होता जा रहा है, तो उन्होंने भी अपनी स्वतन्त्रता के लिए विद्रोह करने प्रारम्भ कर दिए।

(vi) तैमूर का आक्रमण– समरकन्द के शासक तैमूर लंग के आक्रमण ने तुगलक साम्राज्य को पतन के कगार पर पहुँचा दिया। उसने दिल्ली में खूब लूट मचाई, गाँवों को जलाकर नष्ट कर दिया और निरपराध स्त्रियों एवं बच्चों को मौत के घाट उतार दिया। उसने दिल्ली को पाँच दिन तक लूटा और 1,00,000 कैदियों का कत्लेआम किया। इस प्रकार, छिन्न-भिन्न तुगलक साम्राज्य की अन्तेष्टि करके वह अपने देश लौट गया। अन्तत: 1414 ई० में तुगलक साम्राज्य का नामोनिशान ही मिट गया।

5. ''मुहम्मद तुगलक अपने समय का बुद्धिमानतम मूर्ख था।'' विश्लेषण कीजिए।

उ०– मुहम्मद तुगलक अपने समय का बुद्धिमान मूर्ख था इसका विश्लेषण निम्न मतों के अनुसार किया जा सकता है। **एलफिन्सटन** के मतानुसार ''मुहम्मद तुगलक में पागलपन का कुछ अंश था।'' कुछ अन्य यूरोपियन इतिहासकारों; जैसे– लेनपूल, इरविन, स्मिथ, हैवेल आदि ने भी इस मत को स्वीकार किया है। परन्तु आधुनिक इतिहासकार इस मत को स्वीकार नहीं करते। नि:सन्देह मुहम्मद तुगलक अपराधियों, विरोधियों और विद्रोहियों को जो अमानवीय और नृशंस बन जाते थे, कठोरतम दण्ड देता था। इब्नबतूता जो एक विदेशी यात्री था, ऐसे अनेक उदाहरण देता है जब सुल्तान ने अमानुषिक दण्ड दिए थे। इससे यह संकेत होता है कि सुल्तान क्रूर था, अत: कतिपय इतिहासकारों द्वारा उसे क्रूरता के दोष से मुक्त करने का प्रयत्न तो सफल नहीं माना जा

सकता, परन्तु इसी आधार पर सुल्तान को रक्तपिपासु अथवा मूर्ख कहना भी सर्वथा अनुपयुक्त है। **डॉ० ईश्वरी प्रसाद** ने लिखा है, ''मुहम्मद पर पागल होने का दोष मुल्लाओं द्वारा लगाया गया था, जिनके प्रति सुल्तान का व्यवहार स्पष्टतया उपेक्षापूर्ण रहा था।'' इसी प्रकार **डॉ० ए०एल० श्रीवास्तव** भी उसे पागलपन के दोषों से सर्वथा मुक्त मानते हैं। वह लिखते हैं, ''मुहम्मद साधारण अपराधों के लिए मृत्युदण्ड इसलिए नहीं दिया करता था कि वह पागल था, बल्कि इसलिए कि उसमें साधारण और भीषण अपराधों में अन्तर समझने की विवेकपूर्ण बुद्धि न थी। उसकी गलतियों का कारण उसका पागलपन न होकर सन्तुलन का अभाव था।'' इसी प्रकार अन्य अधिकांश आधुनिक इतिहासकार भी मुहम्मद तुगलक को पागलपन या मूर्खता के दोष से सर्वदा मुक्त करते हैं।

स्मिथ ने मुहम्मद के बारे में लिखा है कि, ''वह विरोधी तत्वों का मिश्रण था, जैसा कि बाद के समय में जहाँगीर हुआ।'' परन्तु **डॉ० ईश्वरी प्रसाद** इस विचार से सहमत नहीं हैं। वह लिखते हैं, ''केवल सरसरी दृष्टि से देखने पर ही हमें मुहम्मद आश्चर्यजनक विरोधी तत्वों का मिश्रण प्रतीत होता है अन्यथा वास्तविकता में वह ऐसा नहीं था।'' डॉ० मेहँदी हसन और के०ए० निजामी भी मुहम्मद को विरोधी तत्वों का मिश्रण नहीं मानते। परन्तु अन्य आधुनिक इतिहासकार ऐसे भी हैं, जो मुहम्मद तुगलक में विरोधी तत्वों का मिश्रण मानते हैं। यह मुहम्मद के कार्यों से स्पष्ट हो जाता है। उनके अनुसार सुल्तान छोटे से लोगों से घृणा करता था परन्तु इस पर भी उसने उन्हें उच्च पद प्रदान किए। वह नम्र होते हुए भी घमण्डी था। कभी-कभी तो वह एक सामान्य व्यक्ति की भाँति दण्ड भुगतने के लिए स्वयं काजी के सामने उपस्थित हो जाता था। वह बड़ा विद्वान् और प्रतिभाशाली था, परन्तु उसमें व्यावहारिक बुद्धि का अभाव था। उसने धर्मपरायण होते हुए भी मुस्लिम धार्मिक वर्ग की उपेक्षा की।'' **आर०सी० मजूमदार** के अनुसार, ''मुहम्मद तुगलक न तो रक्त पिपासु दैत्य था और न पागल, जैसा कि कुछ व्यक्तियों ने कहा है। परन्तु उसमें विरोधी गुणों का मिश्रण था, इसमें कोई सन्देह नहीं है।''

अत: मुहम्मद का विभिन्न नजरियों से मूल्यांकन करने के बाद उसका इतिहास में प्रमुख स्थान है। मुहम्मद तुगलक की श्रेष्ठता उसकी सफलता अथवा असफलताओं के कारण नहीं है बल्कि उसकी विद्वता और चरित्र के कुछ विशेष गुणों की वजह से है।

6. अलाउद्दीन खिलजी की दक्षिण नीति के कारणों एवं परिणामों का वर्णन कीजिए।

उ०– अलाउद्दीन ने उत्तर भारत की विजय का सफल अभियान पूर्ण करके दक्षिण भारत की विजय का कार्य प्रारम्भ किया। वास्तव में यह अत्यन्त साहसिक कार्य था क्योंकि खिलजी से पूर्व किसी भी मुस्लिम शासक ने नर्मदा पार करने का प्रयत्न नहीं किया था। अलाउद्दीन निम्नलिखित कारणों से दक्षिण पर विजय प्राप्त करना चाहता था—

(i) अमीर खुसरो के अनुसार, अलाउद्दीन दक्षिण में इस्लाम का प्रचार करना चाहता था।

(ii) उसने दक्षिण की विशाल सम्पदा के विषय में सुन रखा था। अत: वह उसे प्राप्त करना चाहता था।

(iii) वह अपनी विशाल सेना को क्रियाशील रखना चाहता था।

(iv) वह दक्षिण के राजाओं को हराकर उनसे वार्षिक कर प्राप्त करना चाहता था, जिससे उसका खजाना खाली न हो।

(i) वारंगल में उसकी विफलता– 1294 ई० में देवगिरि के यादव राज्य को अलाउद्दीन ने अपने अधीन करके उसके राजा को सामन्त बना लिया था और उससे बहुत-सा धन वसूल किया था। 1303 ई० में उसने दक्षिण के दूसरे राज्य तेलंगाना को लूटने तथा अधीन करने के लिए नुसरत खाँ के भतीजे तथा उत्तराधिकारी छज्जू को भेजा। सेना ने बंगाल तथा उड़ीसा में विजय अभियान करके वारंगल पर आक्रमण किया। किन्तु काकतीय राजा प्रताप रुद्रदेव ने उसे पराजित करके अव्यवस्थित रूप से पीछे लौटने पर बाध्य किया।

(ii) देवगिरि की विजय– 1306-07 ई० में अलाउद्दीन ने मलिक काफूर को देवगिरि के शासक रामचन्द्र पर आक्रमण करने के लिए भेजा। अल्प खाँ को भी काफूर के साथ भेजा गया। सर्वप्रथम इस सेना की मुठभेड़ राजा कर्ण से हुई। कर्ण पराजित हुआ और उसकी पुत्री देवल देवी काफूर के हाथों में आई, जिसे उसने सुल्तान के पास दिल्ली भेजा दिया। वहाँ उसका विवाह सुल्तान के बड़े पुत्र खिज्र खाँ के साथ कर दिया गया। इसके बाद देवगिरि के शासक रामचन्द्र पर आक्रमण किया। उसने बगैर युद्ध किए ही हार मान ली और काफूर के परामर्श से बहुत-से उपहार लेकर दिल्ली पहुँचा। वहाँ सुल्तान ने उसका स्वागत किया। वह वहाँ छ: माह रुकने के बाद पुन: देवगिरि चला गया।

(iii) तेलंगाना विजय– 1303 ई० में तेलंगाना के आक्रमण की विफलता अलाउद्दीन के हृदय में खटक रही थी और वह जल्दी ही उस कलंक को धोने की चिन्ता में था। सुल्तान द्वारा भेजी गई सेना 1 नवम्बर, 1309 को मलिक काफूर के नेतृत्व में लूटमार करती हुई वारंगल जा पहुँची। काफी समय तक वहाँ के शासक प्रताप रुद्रदेव ने शत्रु का सामना किया, किन्तु अन्त में विवश होकर दिल्ली साम्राज्य की अधीनता स्वीकार ली। उसने युद्ध क्षतिपूर्ति के रूप में एक सौ हाथी, सात सौ घोड़े तथा बहुत-सी बहुमूल्य वस्तुएँ दीं। इसके अतिरिक्त उसने वार्षिक कर देना भी स्वीकार कर लिया। कहा जाता है कि मलिक काफूर ने जो बहुमूल्य हीरे प्रताप रुद्रदेव से प्राप्त किए थे, उनमें प्रसिद्ध हीरा 'कोहिनूर' भी था।

(iv) द्वारसमुद्र की विजय– अलाउद्दीन ने मलिक काफूर तथा ख्वाजा हाजी के नेतृत्व में एक सेना होयसल राज्य पर आक्रमण

हेतु भेजी। फरवरी 1311 ई० में काफूर देवगिरि पहुँचा। होयसल के राजा वीर बल्लाल इस समय पाण्ड्य राज्य के गृह युद्ध में वीर पाण्ड्य की सहायता के लिए दक्षिण गया हुआ था। शत्रु के आक्रमण की सूचना प्राप्त होते ही वह शीघ्रता से द्वारसमुद्र आया, जो उसकी राजधानी थी। उसने युद्ध किया, लेकिन विजय की आशा न देखकर उसने सन्धि कर ली। काफूर ने राजधानी को लूटा और मन्दिरों को ध्वस्त कर दिया। राजा बल्लाल ने सुल्तान की अधीनता स्वीकार कर ली और उसे अतुल धनराशि भेंट की।

(v) पाण्ड्य राज्य पर विजय– द्वारसमुद्र के पराजित शासक के साथ लेकर काफूर ने पाण्ड्य राज्य पर आक्रमण किया। वहाँ सिंहासन प्राप्ति के लिए दो भाइयों में संघर्ष चल रहा था। इस संघर्ष में वीर पाण्ड्य विजयी हुआ। पराजित सुन्दर पाण्ड्य ने सुल्तान से सहायता माँगी। काफूर ने इस फूट का लाभ उठाते हुए माबर पर आक्रमण किया। वीर पाण्ड्य ने शत्रु को पराजित करने के लिए पूरी शक्ति लगा दी, किन्तु उसे सफलता हाथ नहीं लगी। क्रोधित काफूर ने मदुरी को जमकर लूटा। उसने रामेश्वरम् के मन्दिर को भी लूटा और नष्ट किया। इस सारी लूट से मलिक काफूर को इतना धन हाथ लगा, जितना इससे पूर्व उसे कभी प्राप्त नहीं हुआ था।

(vi) देवगिरि पर दूसरा आक्रमण– 1312 ई० में देवगिरि के राजा रामचन्द्र की मृत्यु उसका पुत्र शंकर देव गद्दी पर बैठा। उसने गद्दी पर बैठते ही अलाउद्दीन को कर भेजना बन्द कर दिया। अलाउद्दीन ने उसको दण्डित करने के लिए 1313 ई० में मलिक काफूर को पुन: भेजा। शंकर देव युद्ध में मारा गया। मलिक काफूर ने अगले दो वर्ष दक्षिण के अन्य राज्यों पर अभियान में बिताए। वह 1315 ई० में उसे खिलजी द्वारा दिल्ली बुला लिया गया।

इस प्रकार दक्षिण की विजय पूर्ण हो गई और लगभग समस्त दक्षिणी भारत पर दिल्ली का प्रभुत्व स्थापित हो गया, किन्तु दक्षिणी भारत को दिल्ली सल्तनत में सम्मिलित नहीं किया गया। केवल कुछ महत्वपूर्ण नगरों में रक्षा के लिए तुर्की सेनाएँ रख दी गईं।

7. अलाउद्दीन खिलजी की दक्षिण नीति की समीक्षा कीजिए।

उ०– उत्तर के लिए विस्तृत उत्तरीय प्रश्न संख्या– 6 के उत्तर का अवलोकन करें।

8. मुहम्मद-बिन-तुगलक की प्रमुख योजनाओं तथा उनकी असफलताओं के कारणों की विवेचना कीजिए।

उ०– मुहम्मद-बिन-तुगलक ने अपने साम्राज्य के कल्याण हेतु जिन प्रमुख योजनाओं को कार्यान्वित किया, उनका संक्षिप्त विवरण निम्नवत् है–

(i) दोआब में कर-वृद्धि (1325-1326 ई०)– सुल्तान की प्रथम योजना दोआब क्षेत्र में कर की वृद्धि करना था। विभिन्न मतों के अनुसार कर में वृद्धि के उद्देश्य इस प्रकार थे–

(क) बदायूँनी तथा वूज्लगे हेग के अनुसार, ''दोआब की विद्रोही जनता पर नियन्त्रण स्थापित करने तथा उसे दण्डित करने के उद्देश्य से कर लगाया था।''

(ख) हाजी उद-दबीर के अनुसार, ''सुल्तान ने रिक्त राजकोष को भरने के लिए कर लगाया था।''

उद्देश्य चाहे जो भी रहा हो, चाहे जितना कर बढ़ाया गया हो, लेकिन इस कर-वृद्धि से प्रजा को असहनीय एवं अपार कष्ट उठाने पड़े। बरनी ने इस कर-वृद्धि के दुष्परिणाम की ओर संकेत करते हुए लिखा है, ''इससे न केवल देश की बरबादी की, वरन् जनता को भी अवनति की ओर अग्रसर कर दिया।''

लेकिन इस कर-वृद्धि करने में सुल्तान का कोई विशेष दोष नहीं था, क्योंकि दोआब की भूमि बहुत उपजाऊ थी। और वहाँ के हिन्दू बहुत समृद्ध अवस्था में थे। दुर्भाग्यवश जब उसने कर में वृद्धि की, उसी वर्ष अकाल पड़ गया। सुल्तान के कर्मचारियों ने इस बात की चिन्ता की नहीं की और बड़ी निर्दयतापूर्वक कर वसूल किया। जब वहाँ के लोग हाहाकार कर उठे, तब सुल्तान को होश आया और उसने वहाँ कर की वसूली बन्द करवा दी। साथ ही उस क्षेत्र के निवासियों को बीज, बैल, खाद आदि सुलभ कराए एवं कुएँ भी खुदवाए, लेकिन दुर्भाग्य से ये सभी उपाय व्यर्थ सिद्ध हुए। अत: इस कर-वृद्धि के परिणामों की दृष्टि से मुहम्मद तुगलक दोषी नहीं था। दुर्भाग्य के कारण ही वह अपनी इस योजना में असफल हुआ था।

(ii) राजधानी परिवर्तन (1326- 1327 ई०)– मुहम्मद तुगलक की दूसरी योजना राजधानी परिवर्तन की थी। उसने दक्षिण भारत में स्थित देवगिरि को अपनी राजधानी बनाने का विचार किया और उसका नाम दौलताबाद रख दिया। **इब्नबतूता** ने सुल्तान के इस कठोर आदेश के सम्बन्ध में लिखा है, ''सुल्तान के आदेश से खोज करने पर एक अन्धा और एक लँगड़ा व्यक्ति मिला। लँगड़े को मार दिया गया और अन्धे को गाड़ी से बाँधकर घसीटकर ले जाया गया, लेकिन दौलताबाद तक उसकी टाँग ही पहुँच सकी थी।'' वहाँ उसने कर्मचारियों की सुविधा के लिए नए भवनों, सरायों, धर्मशालाओं आदि पर भारी धन व्यय किया, किन्तु उसकी यह योजना भी असफल सिद्ध हुई। 700 मील लम्बी यात्रा में अधिकांश लोग मार्ग में ही मर गए। इस दु:खद स्थिति को देखकर सुल्तान ने पुन: राजधानी दौलताबाद से दिल्ली परिवर्तन करने की आज्ञा दी। इस प्रकार, दिल्ली को पुन: राजधानी बनाने में अपार धनराशि खर्च हुई और जनता को भी अपार कष्ट हुआ।

इस राजधानी परिवर्तन के पीछे उसका उद्देश्य यह रहा था कि दक्षिण के प्रेदेशों पर उसका पूर्ण नियन्त्रण बना रहेगा, साथ ही उसकी राजधानी मंगोलों के आक्रमणों के खतरों से भी मुक्त बनी रहेगी। देवगिरि नगर उसके साम्राज्य के लगभग बीचों-बीच में ही स्थित था; अत: उसको राजधानी बनाने पर सम्पूर्ण साम्राज्य पर सरलता से राज्य एवं नियन्त्रण हो सकेगा, ऐसा सोचकर ही उसने राजधानी परिवर्तित की थी, किन्तु अपनी इस योजना में ही वह पूर्णत: असफल रहा। वास्तव में, उसे अपने राजकीय कार्यालय ही देवगिरि को स्थानान्तरित करने चाहिए थे, जनता का स्थानान्तरण नहीं करना चाहिए था।

(iii) ताँबे के सिक्कों का प्रचलन (1330 ई०)– मुहम्मद तुगलक ने 1330 ई० में सिक्कों के प्रचलन के सम्बन्ध में एक नया आदेश जारी किया। इसके अनुसार जनता को यह आदेश दिया गया कि लोग सोने-चाँदी के सिक्कों के स्थान पर उसके द्वारा चलाए गए सांकेतिक ताँबे के सिक्कों का दैनिक जीवन में प्रयोग करें। ऐसा करते समय उससे यह भूल हो गयी थी कि उसने ताँबें के सिक्कों पर किसी प्रकार का शाही चिह्न नहीं खुदवाया, परिणामस्वरूप लोग अपने घरों में ही ताँबे के जाली सिक्के बनाने लगे। प्रत्येक सुनार आभूषण बनाने की बजाय ताँबे के सिक्के ढालने लगा। शीघ्र ही बाजारों में नकली ताँबे के सिक्कों की भरमार हो गई और ऐसी स्थिति उत्पन्न हो गई कि लोगों ने इन सिक्कों से वस्तु-विनिमय करने से इनकार कर दिया। जब व्यापार ठप होने लगा तब सुल्तान को चिन्ता हुई; अत: उसने इस आर्थिक विकृति को दूर करने के लिए पुन: यह आदेश जारी किया कि लोग ताँबे के सिक्कों के बदले राजकोष से सोने-चाँदी के सिक्के ले जाएँ। इस प्रकार सिक्कों के परिवर्तन से राज्य को आर्थिक दृष्टि से अत्यधिक हानि उठानी पड़ी।

कुछ लोगों का मत है कि इस योजना के लागू करने के पीछे मुख्य कारण राज्य की आर्थिक स्थिति का दुर्बल होना था, लेकिन यह मत असत्य है, क्योंकि यदि ऐसा होता तो वह इतनी शीघ्र ताँबे के सिक्कों के बदले सोने-चाँदी के सिक्के कहाँ से देता। वात्सव में, इस योजना के पीछे उसका उद्देश्य सांकेतिक मुद्रा का प्रचलन कर, राजकोष को संकटकाल के लिए भरना था। वह अपनी इस सांकेतिक मुद्रा की योजना में, जनता के असहयोग और शासकीय कर्मचारियों की अयोग्यता के कारण ही असफल हुआ।

(iv) विजय योजनाएँ (1326-1327 ई०)– मुहम्मद तुगलक एक महत्त्वाकांक्षी सुल्तान था। वह अपने साम्राज्य का विस्तार करना चाहता था; अत: सैनिकों को प्रोत्साहन देने के उद्देश्य से उसने उन्हें एक वर्ष का अग्रिम वेतन दे दिया। साथ ही 3 लाख 70 हजार सैनिकों की एक विशाल सेना संगठित कर, खुरासान (फारस) तथा चीन पर आक्रमण करने की योजना बनाई। बाद में मार्ग की कठिनाइयों का अनुमान लगाकर उसने खुरासान पर आक्रमण नहीं किया। फिर उसने चीन पर भी आक्रमण करने का विचार त्याग दिया, क्योंकि उसे इस बात का आभास हो गया था कि हिमाच्छादित हिमालय पर्वत की श्रेणियों को पार कर चीन पर आक्रमण करना सरल नहीं है। उसकी इस योजना के फलस्वरूप भी धन व जन की अपार क्षति हुई।

मुहम्मद तुगलक की योजनाओं की असफलता पर प्रकाश डालते हुए **डॉ० आगा मेंहदी** हुसैन ने लिखा है– ''उसने एक अनुभवहीन सर्जन की भाँति अपने साम्राज्यरूपी शरीर से दूषित रक्त निकालने के लिए अनेक बार ऑपरेशन किए, परन्तु हर ऑपरेशन में उसे असफलता मिली और बुराई आई।''

मुहम्मद तुगलक की असफलता के कारण– मुहम्मद तुगलक की असफलता के प्रमुख कारण निम्नलिखित थे–

(i) मुहम्मद तुगलक परिस्थितियों का शिकार हुआ, क्योंकि उनकी सभी योजनाएँ विपरित परिस्थितियों के कारण ही विफल हो गई थीं।

(ii) मुहम्मद तुगलक का साम्राज्य काफी विशाल हो गया था, जिस पर नियन्त्रण रख पाना उसकी सामर्थ्य के बाहर था।

(iii) मुहम्मद तुगलक की योजनाओं के कारण जनता में असन्तोष व विद्रोह की भावना व्याप्त हो गई थी और उसकी सैनिक शक्ति भी क्षीण हो गई थी।

(iv) मुहम्मद तुगलक ने अपनी अदूरदर्शी योजनाओं के कारण राजकोष को धन से रिक्त कर दिया था।

(v) सीमान्त प्रदेशों की असुरक्षा के कारण मंगोलों के आक्रमण भी मुहम्मद तुगलक की दुर्बलता के कारण बने थे।

(vi) मुहम्मद तुगलक ने उलेमा वर्ग को असन्तुष्ट करके साम्राज्य में विद्रोहों को बढ़ावा दिया था।

9. फिरोज तुगलक की उपलब्धियों का वर्णन कीजिए।

उ०– फिरोज तुगलक के सुधार– मुहम्मद तुगलक की मृत्यु के पश्चात् उसका चचेरा भाई फिरोज तुगलक 1351 ई० में दिल्ली के सिंहासन पर आसीन हुआ। उस समय तुगलक साम्राज्य में सर्वत्र अशान्ति और अराजकता व्याप्त थी तथा आर्थिक संकटों के कारण प्रजा अत्यन्त दु:ख भोग रही थी। अत: फिरोज तुगलक ने सर्वप्रथम इस ओर ध्यान दिया। उसने लोकहित सम्बन्धी अनेक सुधार करके स्वयं को अकबर का अग्रगामी बना लिया। उसके सुधारों से हिन्दुओं तथा मुसलमानों दोनों को लाभ हुआ। फिरोज तुगलक ने इन सुधारों का संक्षिप्त विवरण निम्न प्रकार है–

(i) आर्थिक सुधार–

(क) राजस्व विभाग में सुधार– फिरोज तुगलक ने सर्वप्रथम दिल्ली सल्तनत की आर्थिक दशा को ठीक करने के लिए राजस्व विभाग की स्थापना की। उसने राजस्व विभाग के अधिकारियों को यह निर्देश दिया कि वे कर संग्रह करते समय किसी भी प्रकार का अत्याचार न करें।

(ख) कर-प्रणाली में सुधार– फिरोज तुगलक ने सिंहासन पर बैठते ही करों की व्यवस्था की ओर विशेष ध्यान दिया। मुहम्मद तुगलक के समय में करों की संख्या बहुत बढ़ गई थी; अत: उसने तत्कालीन कर-प्रणाली में प्रमुख सुधार किए—
(अ) फिरोज ने सम्पूर्ण कृषि योग्य भूमि की जाँच करवाई और भूमि-कर में बहुत कमी कर दी, जिससे कृषकों ने काफी राहत अनुभव की। (ब) उसने इस्लाम के विरुद्ध लगे करों को समाप्त कर दिया। (स) उसने खिराज, खम्स, जजिया तथा जकात करों को बनाए रखा और इसके साथ ही ब्राह्मणों पर भी जजिया कर लगा दिया। (द) कर वसूली के लिए योग्य कर्मचारियों की नियुक्ति की और उनको जागीरें प्रदान की गई, जिससे वे जनता पर अत्याचार न कर सकें। (य) फिरोज तुगलक ने उपज का 1/10 भाग, सिंचाई कर के रूप में निर्धारित किया। (र) फिरोज ने लगभग 24 प्रकार के कठोर करों को समाप्त कर दिया।

फिरोज तुगलक के आर्थिक सुधारों के परिणामों की समीक्षा करते हुए तत्कालीन इतिहासकार **शम्सेसिराज अफीफ** ने लिखा है, **''फिरोज के शासनकाल में किसान इतने समृद्ध हो गए थे कि उनके घर में सोने-चाँदी और खाने-पीने की वस्तुओं का अभाव नहीं था।**

(ग) कृषि सम्बन्धी सुधार– फिरोज ने कृषि की उन्नति की ओर समुचित ध्यान दिया। उसने चार बड़ी नहरें बनवाईं तथा अनेक कुएँ खुदवाए। **शम्सेसिराज अफीफ** के अनुसार, उसने 5 नहरों, 150 कुओं, 30 जलाशयों तथा 50 बाँधों का निर्माण करवाया। उसने झेलम, यमुना, सतलज नदियों का जल नहरों द्वारा खेतों में पहुँचाने की व्यवस्था की। उसके कार्य की प्रशंसा करते हुए **डॉ० के० एम० पणिक्कर** ने लिखा है, ''सुल्तान का यह कृषि-प्रबन्ध उसकी दूरदर्शिता तथा उदारता की सराहनीय यादगार और उसके शासनकाल की एक महान् सफलता है।''

(ii) सैन्य व्यवस्था में सुधार– फिरोज के समय में दिल्ली साम्राज्य में चारों ओर अशान्ति एवं अव्यवस्था उत्पन्न हो गई थी; अत: एक संगठित सेना के निर्माण में उसने सैन्य-व्यवस्था में भी अनेक परिवर्तन किए—

(क) फिरोज ने स्थायी सैनिकों को नकद वेतन देने के स्थान पर जागीरें देने की प्रथा आरम्भ की।
(ख) उसने अस्थायी सेना को राजकोष से नकद वेतन देना शुरू किया।
(ग) सैनिकों के पद को वंशानुगत कर दिया गया।

सुल्तान अपने सैनिकों के साथ उदारता का व्यवहार करता था, किन्तु उसकी उदारता का लोगों ने अनुचित लाभ उठाया, जिसके परिणामस्वरूप वह सैनिक दृष्टि से अपने जीवन में असफल रहा।

(iii) मुद्रा-पद्धति में सुधार– फिरोज तुगलक ने अपनी गरीब जनता की सुविधा के लिए छोटे-छोटे सिक्के चलाए। उसने इन सभी सिक्कों के ढलवाने में शुद्ध धातु का प्रयोग किया, किन्तु बेईमान कर्मचारियों के कारण उसे अपने इस कार्य में सफलता नहीं मिली।

(iv) जनहित कार्य– सुल्तान ने अपनी प्रजा की भलाई के लिए अनेक सार्वजनिक कार्य किए, जिनका विवरण निम्नलिखित है—

(क) निर्धनों और बेकारों को सुविधाएँ– दरिद्रों की सहायता के लिए सुल्तान ने जो प्रबन्ध किया, वह निश्चय ही प्रशंसनीय है। प्रजा के हित का उसे इतना ध्यान था कि उसने कोतवालों से बेरोगजारों की संख्या ज्ञात की तथा उन लोगों से प्रार्थना-पत्र प्राप्त करके, उन्हें योग्यता के आधार पर काम दिलाने की व्यवस्था की। (दरिद्र मुसलमानों की कन्याओं के विवाह में सहायता देने के लिए सुल्तान ने 'दीवान-ए-खैरात' (दान-विभाग) नामक एक संस्था बनाई, जो प्रत्येक प्रार्थी के मामले पर निष्पक्ष रूप से विचार करती और फिर उसे सहायतार्थ धन देने की सिफारिश करती थी।

(ख) सार्वजनिक संस्थाओं और भवन-निर्माण के कार्य– दिल्ली सल्तनत के महान् सुल्तानों में फिरोजह तुगलक की गणना एक महान् निर्माणकर्त्ता के रूप में की जाती है। वास्त्व में, फिरोज ने भवन-निर्माण और कलाकृतियों के जीर्णोद्धार की ओर विशेष ध्यान दिया था। उसके निर्माण-कार्यों की प्रशंसा करते हुए **सर वूज्लगे हेग** ने लिखा है, ''उसे निर्माण-कार्यों का इतना शौक था कि इस दृष्टि से वह रोमन सम्राट ऑस्टस से यदि बढ़ा-चढ़ा नहीं तो कम-से-कम उसके समान अवश्य था।'' उसने फिरोजाबाद, हिसार, फिरोजपुर तथा जौनपुर आदि नगरों का निर्माण करवाया था। कहा जाता है कि लोकहितकारी सुल्तान फिरोज तुगलक ने अपने शासनकाल में चालीस मसजिदों, तीस विद्यालयों, बीस महलों, दो सौ नगरों, सौ सरायों, सौ औषधालयों, सौ सार्वजनिक स्नानागरों, दस कीर्ति-स्तम्भों तथा एक सौ पचास पुलों का निर्माण अथवा जीर्णोद्धार करवाया था।

(ग) विद्वानों का आश्रयदाता– सुल्तान एक महान् विद्वान था। ऐतिहासिक दृष्टि से उसकी आत्मकथा **फतूहोते फिरोजशाही** एक महत्त्वपूर्ण रचना मानी जाती है। सुल्तान ने अपने राज्य में अनेक विद्वानों को आश्रय प्रदान किया था, जिनमें तारीख-ए-फिरोजशाही का लेखक **शम्सेसिराज अफीफ** प्रमुख था।

(घ) नि:शुल्क औषधालय– उसने 'दारुल उल शफा' नामक एक सार्वजनिक औषधालय खुलवाया था, जहाँ रोगियों को नि:शुल्क औषधि बाँटने का प्रबन्ध किया गया था।

(ङ) दासों को महत्त्व– सुल्तान फिरोज तुगलक को दास रखने का बहुत शौक था। इसलिए उसके समय में शाही दासों की संख्या 1 लाख 80 हजार तक पहुँच गई थी। फिरोज ने इन दासों के आवास, भोजन और शिक्षा आदि के प्रबन्ध के लिए एक पृथक् विभाग की स्थापना की थी।

उपर्युक्त सुधार कार्यों से स्पष्ट है कि फिरोज तुगलक एक मानवतावादी और जन-हितैषी सुल्तान था। **सर हेनरी इलियट** ने लिखा है, ''वह चौदहवीं शताब्दी का अकबर था।''

10. ''मुहम्मद-बिन-तुगलक विरोधाभासों का सम्मिश्रण था।'' इस कथन के आलोक में उसके व्यक्तित्व का परीक्षण कीजिए।

उ०– कुछ इतिहासकारों के अनुसार, उसका व्यक्तित्व अनेक परस्पर विरोधी गुणों का सम्मिश्रण था। इस सन्दर्भ में कुछ मत उल्लेखनीय हैं–

(i) वह आदर्शवादी व्यक्तित्व का स्वामी अवश्य था, किन्तु उसे अपनी योग्यता एवं शक्ति पर बड़ा अहंकार था।

(ii) **जियाउद्दीन बरनी** के अनुसार, ''मुहम्मद तुगलक में विभिन्न गुणों का सम्मिश्रण था। वह एक निर्दयी और अविवेकपूर्ण सुल्तान था। वह रक्त-पिपासु भी था और उदार भी। सुल्तान की शारीरिक एवं मानसिक शक्तियाँ असीम गुणसम्पन्न नहीं समझी जा सकतीं और उसकी असाधारण दयालुता अथवा उसकी सैयद व इस्लाम भक्ति, मुसलमानों को मृत्युदण्ड देने की उत्कण्ठा तथा उसकी आस्तिकता, गर्म एवं ठण्डी साँस लेने के समान प्रतीत होती हैं। वह एक ऐसा रहस्यमय व्यक्ति है, जो बुद्धि में भ्रम उत्पन्न कर देता है।'' बरन का उपर्युक्त कथन उसकी योजनाओं और कार्यों के प्रकाश में सत्य प्रतीत होता है।

(iii) इतिहासकार **डॉ० वी०ए० स्मिथ** का मत है, ''यद्यपि मुहम्मद तुगलक ने ऐसे कार्य किए जिनका उल्लेख करने में कलम हिचकिचाती है, तथापि उसको पूरी तरह से अन्यायी नहीं कहा जा सकता। वह विरोधी गुणों का समूह था, जैसा कि आगे चलकर जहाँगीर भी हुआ।

(iv) **डॉ० आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव** के शब्दों में, ''हमारे मध्ययुगीन इतिहास में कोई ऐसा व्यक्ति नहीं हुआ है जिसका चरित्र इतना मनोरंजक तथा विवादग्रस्त हो जितना कि मुहम्मद-बिन-तुगलक का था। वह कल्पना के जगत् में उड़ा करता था।''

(v) **सेवेल** के मतानुसार, ''मुहम्मद तुगलक शैतान और सन्त दोनों ही था।''

मुहम्मद तुगलक वास्तव में पागल नहीं था; हाँ, उसके कुछ कार्य अवश्य मूर्खतापूर्ण थे, जिनके आधार पर एलफिन्स्टन जैसे इतिहासकारों ने उसे पागल कहा है। सुनिश्चित रूप से उसमें अनेक गुण भी विद्यमान थे। फिर भी यह सच है कि उसका चरित्र थोड़ा रहस्यपूर्ण अवश्य था, जैसा कि **डॉ० रमेशचन्द्र मजूमदार** ने लिखा है, ''वह न रक्त-पिपासु दैत्य था और न ही पागल, जैसा कुछ व्यक्तियों ने कहा है, लेकिन उसमें विरोधी तत्वों का मिश्रण था। उसके व्यक्तित्व का पूर्ण एवं सही ज्ञान हमें उसके कार्यों का अवलोकन करने पर प्राप्त हो जाएगा।

डॉ० ईश्वरी प्रसाद के अनुसार, ''मुहम्मद तुगलक मध्यकालीन भारतीय इतिहास का एक विचित्र बादशाह था। उसकी योग्यता, विद्वता, सैनिक कुशलता और न्यायप्रियता असंदिग्ध थी तथापि उसके चरित्र की कुछ आधारभूत दुर्बलताओं ने उसकी बुद्धिमत्तापूर्ण प्रशासनिक योजनाओं को असफल बना दिया। बरनी तथा इब्नबतूता जैसे समकालीन इतिहासकार उसके चरित्र को समझ न सके और अपने-अपने ढंग से उसके चरित्र का वर्णन कर डाला। यूरोपीय इतिहासकारों और भारतीय विद्वानों ने समकालीन ग्रन्थों को ही आधार बनाकर अपने तर्क सम्मत मत प्रस्तुत किए, किन्तु उनके मत भी निष्पक्ष न रह सके। समस्त इतिहासकारों ने सुल्तान को ध्यान में रखकर उसके चरित्र का विश्लेषण किया और उसके चरित्र की अन्तर्निहित शक्तियों को उजागर करने में असफल रहे। यदि मुहम्मद तुगलक को अपनी योजनाओं में सफलता मिल गई होती, तो सम्भवत: उसका चरित्र इतना विवादास्पद विषय कदापि न होता । सुल्तान के चरित्र का मापदण्ड यही हो सकता है कि योग्यता, विद्वता और विभिन्न गुणों का स्वामी होते हुए भी एक अभागा शासक था।''

11. अलाउद्दीन खिलजी की मंगोल नीति की विवेचना कीजिए।

उ०– मंगोल का शाब्दिक अर्थ 'दिलेर' या 'बहादुर' होता है। मंगोल मध्य एशिया की एक असभ्य और बर्बर जाति थी। इस जाति के लोग बड़े, वीर, लड़ाकू, साहसी, अत्याचारी और निर्दयी होते थे। उन्हें व्यक्तियों के सिरों की मीनार बनाने, नगरों को जलाकर राख करने में बड़ा आनन्द आता था। उनकी आकृति भयानक, रंग पीला, चेहरा चपटा और चौड़ा, बाल काले, आँखें तिरछी, गाल की हड्डियाँ उभरी हुई, कान बड़े और खोपड़ी गोल होती थी। इनका प्रमुख नेता चंगेज खाँ था जिसके नेतृत्व में मंगोलों ने कुछ ही वर्षों में बल्ख, बुखारा, समरकन्द, चीन तथा मध्य एशिया के अन्य अनेक राज्यों को लूटकर और जलाकर पूरी तरह नष्ट-भ्रष्ट कर दिया था।

अलाउद्दीन की मंगोल नीति– मंगोल आक्रमणों का दिल्ली की राजनीति पर बहुत गहरा असर हुआ। हालाँकि अलाउद्दीन

मंगोल आक्रमणों को रोकने में सफल रहा तथापि उसे इस खतरे से सल्तनत को सुरक्षित रखने के लिए निम्नलिखित ठोस कदम उठाने पड़े—

(i) सुल्तान को एक विशाल स्थायी सेना (4,75,000) की व्यवस्था करनी पड़ी।
(ii) सेना की व्यवस्था करने के लिए उसने बाजार-नियन्त्रण प्रणाली अपनाई।
(iii) उसने तोपों का निर्माण करवाया तथा अपनी युद्ध-नीति में भी परिवर्तन किया।
(iv) दिपालपुर, समाना, लाहौर, मुल्तान, आदि स्थानों पर नए किलों का निर्माण करवाकर उनमें सेनाएँ रखीं।
(v) उनमें जफर खाँ, उलूग खाँ, नुसरत खाँ, मलिक काफूर तथा गाजी मलिक जैसे अनुभवी और योग्य सेनापति रखे।
(vi) राजधानी की सुरक्षा के लिए भी अनेक कदम उठाए गए।
(vii) विशेष गुप्तचरों की नियुक्ति की गई।
(viii) इन कार्यों पर अपार धन व्यय हुआ। इस कारण सुल्तान ने जनता के करों में भारी वृद्धि कर दी। और अमीरों के धन पर भी कब्जा कर लिया।

12. अलाउद्दीन खिलजी ने साम्राज्य विस्तार हेतु अद्वितीय प्रयास किया।'' विवेचना कीजिए।

उ०– अलाउद्दीन ने उत्तर भारत की विजय का सफल अभियान पूर्ण करके दक्षिण भारत की विजय का कार्य प्रारम्भ किया। वास्तव में यह अत्यन्त साहसिक कार्य था क्योंकि खिलजी से पूर्व किसी भी मुस्लिम शासक ने नर्मदा पार करने का प्रयत्न नहीं किया था। अलाउद्दीन निम्नलिखित कारणों से दक्षिण पर विजय प्राप्त करना चाहता था—

(i) अमीर खुसरो के अनुसार, अलाउद्दीन दक्षिण में इस्लाम का प्रचार करना चाहता था।
(ii) उसने दक्षिण की विशाल सम्पदा के विषय में सुन रखा था। अत: वह उसे प्राप्त करना चाहता।
(iii) वह अपनी विशाल सेना को क्रियाशील रखना चाहता था।
(iv) वह दक्षिण के राजाओं को हराकर उनसे वार्षिक कर प्राप्त करना चाहता था, जिससे उसका खजाना खाली न हो।

(i) वारंगल में उसकी विफलता– 1294 ई० में देवगिरि के यादव राज्य को अलाउद्दीन ने अपने अधीन करके उसके राजा को सामन्त बना लिया था और उससे बहुत-सा धन वसूल किया था। 1303 ई० में उसने दक्षिण के दूसरे राज्य तेलंगाना को लूटने तथा अधीन करने के लिए नुसरत खाँ के भतीजे तथा उत्तराधिकारी छज्जू को भेजा। सेना ने बंगाल तथा उड़ीसा में विजय अभियान करके वारंगल पर आक्रमण किया। किन्तु काकतीय राजा प्रताप रुद्रदेव ने उसे पराजित करके अव्यवस्थित रूप से पीछे लौटने पर बाध्य किया।

(ii) देवगिरि की विजय– 1306-07 ई० में अलाउद्दीन ने मलिक काफूर को देवगिरि के शासक रामचन्द्र पर आक्रमण करने के लिए भेजा। अल्प खाँ को भी काफूर के साथ भेजा गया। सर्वप्रथम इस सेना की मुठभेड़ राजा कर्ण से हुई। कर्ण पराजित हुआ और उसकी पुत्री देवल देवी काफूर के हाथों में आई, जिसे उसने सुल्तान के पास दिल्ली भेजा दिया। वहाँ उसका विवाह सुल्तान के बड़े पुत्र खिज्र खाँ के साथ कर दिया गया। इसके बाद देवगिरि के शासक रामचन्द्र पर आक्रमण किया। उसने बगैर युद्ध किए ही हार मान ली और काफूर के परामर्श से बहुत-से उपहार लेकर दिल्ली पहुँचा। वहाँ सुल्तान ने उसका स्वागत किया। वह वहाँ छ: माह रुकने के बाद पुन: देवगिरि चला गया।

(iii) तेलंगाना विजय– 1303 ई० में तेलंगाना के आक्रमण की विफलता अलाउद्दीन के हृदय में खटक रही थी और वह जल्दी ही उस कलंक को धोने की चिन्ता में था। सुल्तान द्वारा भेजी गई सेना 1 नवम्बर, 1309 को मलिक काफूर के नेतृत्व में लूटमार करती हुई वारंगल जा पहुँची। काफी समय तक वहाँ के शासक प्रताप रुद्रदेव ने शत्रु का सामना किया, किन्तु अन्त में विवश होकर दिल्ली साम्राज्य की अधीनता स्वीकार ली। उसने युद्ध क्षतिपूर्ति के रूप में एक सौ हाथी, सात सौ घोड़े तथा बहुत-सी बहुमूल्य वस्तुएँ दीं। इसके अतिरिक्त उसने वार्षिक कर देना भी स्वीकार कर लिया। कहा जाता है कि मलिक काफूर ने जो बहुमूल्य हीरे प्रताप रुद्रदेव से प्राप्त किए थे, उनमें प्रसिद्ध हीरा 'कोहिनूर' भी था।

(iv) द्वारसमुद्र की विजय– अलाउद्दीन ने मलिक काफूर तथा ख्वाजा हाजी के नेतृत्व में एक सेना होयसल राज्य पर आक्रमण हेतु भेजी। फरवरी 1311 ई० में काफूर देवगिरि पहुँचा। होयसल के राजा वीर बल्लाल इस समय पाण्ड्य राज्य के गृह युद्ध में वीर पाण्ड्य की सहायता के लिए दक्षिण गया हुआ था। शत्रु के आक्रमण की सूचना प्राप्त होते ही वह शीघ्रता से द्वारसमुद्र आया, जो उसकी राजधानी थी। उसने युद्ध किया, लेकिन विजय की आशा न देखकर उसने सन्धि कर ली। काफूर ने राजधानी को लूटा और मन्दिरों को ध्वस्त कर दिया। राजा बल्लाल ने सुल्तान की अधीनता स्वीकार कर ली और उसे अतुल धनराशि भेंट की।

(v) पाण्ड्य राज्य पर विजय– द्वारसमुद्र के पराजित शासक के साथ लेकर काफूर ने पाण्ड्य राज्य पर आक्रमण किया। वहाँ सिंहासन प्राप्ति के लिए दो भाइयों में संघर्ष चल रहा था। इस संघर्ष में वीर पाण्ड्य विजयी हुआ। पराजित सुन्दर पाण्ड्य ने सुल्तान से सहायता माँगी। काफूर ने इस फूट का लाभ उठाते हुए माबर पर आक्रमण किया। वीर पाण्ड्य ने शत्रु को

पराजित करने के लिए पूरी शक्ति लगा दी, किन्तु उसे सफलता हाथ नहीं लगी। क्रोधित काफूर ने मदुरी को जमकर लूटा। उसने रामेश्वरम् के मन्दिर को भी लूटा और नष्ट किया। इस सारी लूट से मलिक काफूर को इतना धन हाथ लगा, जितना इससे पूर्व उसे कभी प्राप्त नहीं हुआ था।

(vi) देवगिरि पर दूसरा आक्रमण– 1312 ई० में देवगिरि के राजा रामचन्द्र की मृत्यु उसका पुत्र शंकर देव गद्दी पर बैठा। उसने गद्दी पर बैठते ही अलाउद्दीन को कर भेजना बन्द कर दिया। अलाउद्दीन ने उसको दण्डित करने के लिए 1313 ई० में मलिक काफूर को पुन: भेजा। शंकर देव युद्ध में मारा गया। मलिक काफूर ने अगले दो वर्ष दक्षिण के अन्य राज्यों पर अभियान में बिताए। वह 1315 ई० में उसे खिलजी द्वारा दिल्ली बुला लिया गया।

इस प्रकार दक्षिण की विजय पूर्ण हो गई और लगभग समस्त दक्षिणी भारत पर दिल्ली का प्रभुत्व स्थापित हो गया, किन्तु दक्षिणी भारत को दिल्ली सल्तनत में सम्मिलित नहीं किया गया। केवल कुछ महत्वपूर्ण नगरों में रक्षा के लिए तुर्की सेनाएँ रख दी गईं।

उत्तर भारत की विजयें– उत्तर भारत में अलाउद्दीन खिलजी ने निम्नलिखित विजयें प्राप्त कीं–

(i) मुल्तान ने सिन्ध प्रदेशों पर विजय– अलाउद्दीन के निर्देश पर उसके सेनापति नुसरत खाँ ने 1269 ई० से 1297 ई० के मध्य मुल्तान व सिन्ध प्रदेशों पर विजय प्राप्त की।

(ii) गुजरात पर विजय (1299 ई०)– इसके पश्चात् अलाउद्दीन ने गुजरात राज्य पर विजय प्राप्त की। गुजरात का राजा रायकर्ण बघेला भयभीत होकर भाग गया और उसकी सुन्दर महारानी कमला देवी को अलाउद्दीन ने अपनी रानी बना लिया।

(iii) रणथम्भौर पर विजय (1301 ई०)– अलाउद्दीन ने 1301 ई० मे रणथम्भौर पर आक्रमण कर उसे जीता। रणथम्भौर के राजा राणा हम्मीरदेव युद्ध में मारे गए और राजपूत रानियों ने जौहर कर लिया।

(iv) मेवाड़ (चित्तौड़) पर आक्रमण (1303 ई०)– अलाउद्दीन खिलजी ने मेवाड़ के राजा रतनसिंह की महारानी पद्मिनी को प्राप्त करने के उद्देश्य से 1303 ई० में मेवाड़ पर आक्रमण किया। रानी पद्मिनी राणा के शरीर के साथ जलकर सती हो गयी थी, लेकिन कुछ इतिहासकार इस घटना का खण्डन करते हैं।

(v) अन्य विजय– उसने मालवा, माण्डू, उज्जैन, चन्देरी, मारवाड़, सिवाना तथा जालौर आदि पर 1305 ई० से 1311 ई०के मध्य आक्रमण करके उन्हें भी जीत लिया।

इस प्रकार, 1311 ई० तक सम्पूर्ण उत्तरी भारत पर अलाउद्दीन का अधिकार हो गया।

13. मुहम्मद-बिन-तुगलक की महत्वाकांक्षी योजनाओं का आलोचनात्मक विवेचन कीजिए।

उ०– उत्तर के लिए विस्तृत उत्तरीय प्रश्न संख्या– 8 के उत्तर का अवलोकन करें।

14. मुहम्मद तुगलक की विविध नीतियों का मूल्यांकन कीजिए। क्या वह सन्तुलित मस्तिष्क का व्यक्ति था? कारण सहित उत्तर दीजिए।

उ०– कुछ इतिहासकारों के अनुसार, उसका व्यक्तित्व अनेक परस्पर विरोधी गुणों का सम्मिश्रण था। इस सन्दर्भ में कुछ मत उल्लेखनीय हैं–

(i) वह आदर्शवादी व्यक्तित्व का स्वामी अवश्य था, किन्तु उसे अपनी योग्यता एवं शक्ति पर बड़ा अहंकार था।

(ii) **जियाउद्दीन बरनी** के अनुसार, ''मुहम्मद तुगलक में विभिन्न गुणों का सम्मिश्रण था। वह एक निर्दयी और अविवेकपूर्ण सुल्तान था। वह रक्त-पिपासु भी था और उदार भी। सुल्तान की शारीरिक एवं मानसिक शक्तियों असीम गुणसम्पन्न नहीं समझी जा सकतीं और उसकी असाधारण दयालुता अथवा उसकी सैयद व इस्लाम भक्ति, मुसलमानों को मृत्युदण्ड देने की उत्कण्ठा तथा उसकी आस्तिकता, गर्म एवं ठण्डी साँस लेने के समान प्रतीत होती हैं। वह एक ऐसा रहस्यमय व्यक्ति है, जो बुद्धि में भ्रम उत्पन्न कर देता है।'' बरनी का उपर्युक्त कथन उसकी योजनाओं और कार्यों के प्रकाश में सत्य प्रतीत होता है।

(iii) इतिहासकार **डॉ० वी० ए० स्मिथ** का मत है, ''यद्यपि मुहम्मद ने ऐसे कार्य किए जिनका उल्लेख करने में कलम हिचकिचाती है, तथापि उसको पूरी तरह से अन्यायी नहीं कहा जा सकता। वह विरोधी गुणों का समूह था। जैसा कि आगे चलकर जहाँगीर भी हुआ।''

(iv) **डॉ० आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव** के शब्दों में, ''हमारे मध्ययुगीन इतिहास में कोई ऐसा व्यक्ति नही हुआ है जिसका चरित्र इतना मनोरंजन तथा विवादग्रस्त हो जितना कि मुहम्मद-बिन-तुगलक का था। वह कल्पना के जगत् में उड़ा करता था।''

(v) **सेवेल** के मतानुसार, ''मुहम्मद तुगलक शैतान और सन्त दोनों ही था।''

मुहम्मद तुगलक वास्तव में पागल नहीं था; हाँ, उसके कुछ कार्य अवश्य मूर्खतापूर्ण थे, जिनके आधार पर एलफिन्स्टन जैसे इतिहासकारों ने उसे पागल कहा है। सुनिश्चित रूप से उसमें अनेक गुण भी विद्यमान थे। फिर भी यह सच है कि उसका चरित्र थोड़ा रहस्यपूर्ण अवश्य था, जैसा कि **डॉ० रमेशचन्द्र मजूमदार** ने लिखा है, ''वह न रक्त-पिपासु दैत्य था ओर न पागल, जैसा

कुछ व्यक्तियों ने कहा है, लेकिन उसमें विरोधी तत्वों का मिश्रण था। उसके व्यक्तित्व का पूर्ण एवं सही ज्ञान हमें उसके कार्यों का अवलोकन करने पर प्राप्त हो जाएगा।''

डॉ० ईश्वरी प्रसाद के अनुसार, ''मुहम्मद तुगलक मध्यकालीन भारतीय इतिहास का एक विचित्र बादशाह था। उसकी योग्यता, विद्वत्ता, सैनिक कुशलता और न्यायप्रियता असंदिग्ध थी तथापि उसके चरित्र की कुछ आधारभूत दुर्बलताओं ने उसकी बुद्धिमत्तापूर्ण प्रशासनिक योजनाओं को असफल बना दिया। बरनी तथा इब्नबतूता जैसे समकालीन इतिहासकार उसके चरित्र को समझ न सके और अपने-अपने ढंग से उसके चरित्र का वर्णन कर डाला। यूरोपीय इतिहासकारों और भारतीय विद्वानों ने समकालीन ग्रन्थों को ही आधार बनाकर अपने तर्क समस्त मत प्रस्तुत किए, किन्तु उनके मत भी निष्पक्ष न रह सके। समस्त इतिहासकारों ने सुल्तान को ध्यान में रखकर उसक चरित्र का विश्लेषण किया और उसके चरित्र की अन्तर्निहित शक्तियों को उजागर करने में असफल रहे। यदि मुहम्मद तुगलक को अपनी योजनाओं में सफलता मिल गई होती, तो सम्भवत: उसका चरित्र इतना विवादास्पद विषय कदापि न होता। सुल्तान के चरित्र का मापदण्ड यही हो सकता है कि योग्यता, विद्वता और विभिन्न गुणों का स्वामी होते हुए भी एक अभागा शासक था।''

15. मुहम्मद-बिन-तुगलक की असफलता के कारणों का मूल्यांकन कीजिए।

उ०– उत्तर के लिए विस्तृत उत्तरीय प्रश्न संख्या– 8 के उत्तर का अवलोकन करें।

16. फिरोज तुलगक के सुधारों का वर्णन कीजिए।

उ०– उत्तर के लिए विस्तृत उत्तरीय प्रश्न संख्या– 9 के उत्तर का अवलोकन करें।

17. फिरोज तुलगक के सुधार उसके पतन के लिए कहाँ तक उत्तरदायी थे।

उ०– उत्तर के लिए विस्तृत उत्तरीय प्रश्न संख्या– 9 के उत्तर का अवलोकन करें।

18. तुगलक साम्राज्य के पतन में फिरोज तुगलक कहाँ तक उत्तरदायी था?

उ०– उत्तर के लिए विस्तृत उत्तरीय प्रश्न संख्या– 9 के उत्तर का अवलोकन करें।

19. ''फिरोज तुगलक एक मानवतावादी तथा कुशल प्रकाशक था।'' विवेचना कीजिए।

उ०– उत्तर के लिए विस्तृत उत्तरीय प्रश्न संख्या– 9 के उत्तर का अवलोकन करें।

20. दिल्ली सल्तनत के समय होने वाले मंगोल आक्रमणों तथा उनके परिणामों पर एक निबन्ध लिखिए।

उ०– दिल्ली सुल्तानों की मंगोल नीति– भारत एक दुर्ग के समान है। इसमें प्रवेश करने का एक मात्र स्थल मार्ग उत्तर-पश्चिम से ही है। इसी मार्ग से भारत पर सिकन्दर, महमूद गजनवी तथा मुहम्मद गोरी आदि ने आक्रमण किए थे। सल्तनत काल का आरम्भ होने के समय से ही इस सीमा से प्रविष्ट होने वाले मंगोलों के आक्रमण होने लगे थे। ख्वारिज्म के शाह ने पंजाब को अपने साम्राज्य का अंग बना लिया था। मंगोलों ने अफगानिस्तान, गजनी तथा पेशावर तक अपनी विजय-पताका फहराकर भारत पर सुनियोजित ढंग से आक्रमण करना आरम्भ कर दिया था। अतएव दिल्ली सल्तनत काल के आरम्भ से ही, मंगोलों के आक्रमण से सीमा को सुरक्षित रखने की समस्या सुल्तानों के समक्ष उत्पन्न हुई। इस समस्या को हल करने के लिए विभिन्न राजवंशों के सुल्तानों ने अपनी विभिन्न नीतियों का प्रयोग किया।

(i) दास वंश– दास वंश के शासकों के समय हुए मंगोल आक्रमणों और इन आक्रमणों को रोकने हेतु दास वंश के शासकों द्वारा किए गए प्रयासों का संक्षिप्त विवरण निम्नवत् है–

(क) इल्तुतमिश का शासनकाल– दास वंश का प्रथम शासक कुतुबद्दीन ऐबक था। अल्प समय में ही मृत्यु हो जाने के कारण वह शासन के कार्यों को भली-भांति न देख सका। उसके उत्तराधिकारी इल्तुतमिश के शासनकाल (1221 ई०) में मंगोल नेता चंगेज खाँ, ख्वारिज्म के शाह जलालुद्दीन मगबर्नी का पीछा करता हुआ भारत की ओर आया था। शाह जलादुद्दीन ने सिन्ध को पार करके दोआब प्रदेश को अपना शरण-स्थल बनाना चाहा था, किन्तु दूरदर्शी इल्तुतमिश ने शाह जलादुद्दीन को सहायता नहीं दी। अत: इल्तुतमिश ने कूटनीति से कार्य करते हुए चंगेज खाँ से शत्रुता मोल नहीं ली थी। अत: चंगेज खाँ ने सिन्धु नदी को पार नहीं किया और वह वापस लौट आया। इस प्रकार, मंगोलों की भयंकर आँधी टल गई।

(ख) रजिया का शासनकाल– चंगेज खाँ के चले जाने के बाद मंगोलों ने अफगानिस्तान को केन्द्र बनाकर भारत पर आक्रमण किया। मंगोलों ने सिन्धु नदी के पार स्थित प्रदेशों पर अनेक आक्रमण किए। इन प्रदेशों ने रजिया से समझौता करना चाहा, किन्तु दूरदर्शी सुल्ताना रजिया ने तटस्थ नीति का पालन किया और अपने साम्राज्य को मंगोलों के आक्रमणों से बचाए रखा।

(ग) रजिया के उत्तराधिकारियों का शासनकाल– रजिया का पतन 1240 ई० में अमीरों की दलबन्दी के कारण हुआ। उसके शासनकाल के उपरान्त 1241 ई० में मंगोल सरदार बहादुर ताहिर ने लाहौर को लूटा। 1245 ई० में मुल्तान पर हसन कार्लूग ने और सिन्ध पर कबीर खाँ के वंशजों ने अधिकार कर लिया। 1247 ई० में मंगोल नेता सली बहादुर ने मुल्तान को

घेरकर लाहौर पर आक्रमण किया। लाहौर के अमीरों ने सली बहादुर के सामने आत्म-समर्पण कर दिया। इस प्रकार, मुल्तान व सिन्ध के प्रदेश सल्तनत से कुछ समय तक कट गए। 1250 ई० में इन पर पुन: दासवंशीय शासकों की विजय पताका फहराने लगी, फिर भी प्रान्तीय सूबेदारों के षड्यन्त्र मंगोलो के साहस में निरन्तर वृद्धि करते रहे।

(घ) मंगोल सरदार हलाकू का अभियान– सुल्तान नासिरुद्दीन के शासनकाल में मंगोल नेता हलाकू ने दिल्ली से मित्रता बनाए रखी, किन्तु बलबन के सुल्तान होते ही मंगोलों ने भारत पर पुन: आक्रमण करने आरम्भ कर दिए। बलबन ने हलाकू के आक्रमणों को रोकने के लिए सीमान्त प्रदेशों पर छावनियों की व्यवस्था का कार्य अपने पुत्रों को सौंप दिया। उन्होंने इन प्रदेशों में मंगोलों की गतिविधियों को रोकने के लिए विशाल दुर्गों का निर्माण कराया।

(ङ) तैमूर खाँ का आक्रमण– 1285 ई० में मंगोल सरदार तैमूर खाँ ने आक्रमण किया। इस आक्रमण में बलबन का पुत्र मुहम्मद मारा गया था।

(ii) खिलजी व अन्य वंश– खिलजी वंश तथा तुगलक वंश के शासकों के समय में होने वाले मंगोल आक्रमणों का उल्लेख निम्नवत् हैं–

(क) खिलजी शासनकाल– अलाउद्दीन खिलजी के शासनकाल में मंगोलों ने बार-बार आक्रमण किए। 1299 ई० में साल्दी व कुतलुग ख्वाजा, 1303 ई में तार्गी और 1305 ई० में अलीबेग, 1306 ई० में कूबक और 1307 ई० में इकबाल मन्दा के नेतृत्व में मंगोलों ने आक्रमण किए, किन्तु अलाउद्दीन की विशाल सेना के सामने इन मंगोल आक्रमणकारियों को सदैव नतमस्तक होना पड़ा।

(ख) निर्बल सुल्तान का काल– अलाउद्दीन खिलजी के बाद दिल्ली सल्तनत का पतन आरम्भ हो गया। तुगलक शासकों के काल में भी मंगोलों के आक्रमणों का ताँता बँधा रहा। इस काल में तरमाशीरीन के नेतृत्व में मंगोलों का आक्रमण महत्त्वपूर्ण रहा। कालान्तर में 1398 ई० में तैमूर लंग ने दिल्ली को तहस-नहस कर डाला और वहाँ भयंकर रक्तपात किया। इन महीनों तक दिल्ली उजाड़ श्मशान-सी दिखाई देती रही। अन्तत: मंगोलों के आक्रमण दिल्ली सल्तनत के विघटन का एक महत्त्वपूर्ण कारणस सिद्ध हुए।

मंगोलों के आक्रमण का प्रभाव– मंगोलों के आक्रमण के निम्नलिखित प्रभाव हुए–

(i) मंगोलों के आक्रमणों को राकने में व्यस्त रहने के कारण सुल्तान प्रशासकीय कार्यों के प्रति जागरूक न रह सके।

(ii) इन्हीं आक्रमणों के कारण प्रान्तीय सूबेदार स्वतन्त्र रूप से विद्रोह करते रहे, क्योंकि सुल्तान इन मंगोल आक्रमणों को दबाने में लगे रहते थे।

(iii) सुल्तानों को विवश होकर दमन नीति का आश्रय लेना पड़ा था, जिसके कारण प्रजा सुल्तानों से अप्रसन्न रही।

कुछ सुल्तानों ने सीमा नीति की उपेक्षा भी की, जिससे मंगोलों के आक्रमण निरन्तर जारी रहे और विद्रोहों की भी अधिकता रहीं इतना ही नहीं, एक सुल्तान की मृत्यु पर दूसरे सुल्तान का सिंहासनरोहण तलवार के द्वारा ही सम्भव था। इन कारणों से मंगोलों को भारतीय आक्रमणों के समय कभी-कभी अपार सफलता मिलती थी, जो उन्हें भावी आक्रमण के लिए प्रेरणा देती थी।

इकाई-3

15 दिल्ली सल्तनत का विघटन काल (Disintegration of Delhi Sultanate)

अभ्यास

निम्नलिखित तिथियों के ऐतिहासिक महत्व का उल्लेख कीजिए–

1. 1414 ई०
2. 1421 ई०
3. 1434 ई०
4. 1445 ई०
5. 1451 ई०
6. 1489 ई०
7. 1504 ई०
8. 1517 ई०
9. 1526 ई०

उ०– उत्तर के लिए पाठ्यपुस्तक के पृष्ठ संख्या– 188 पर तिथि सार का अवलोकन करें।

सत्य या असत्य बताइए–

उ०– प्रश्नोत्तर के लिए पाठ्यपुस्तक के पृष्ठ संख्या– 189 का अवलोकन करें।

बहुविकल्पीय प्रश्न

उ०– प्रश्नोत्तर के लिए पाठ्यपुस्तक के पृष्ठ संख्या– 189 का अवलोकन करें।

अतिलघु उत्तरीय प्रश्न

उ०– प्रश्नोत्तर के लिए पाठ्यपुस्तक के पृष्ठ संख्या– 189 का अवलोकन करें।

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. लोदी वंश के उत्थान व पतन के कारणों का संक्षेप में वर्णन कीजिए।

उ०– सल्तनत युग में दिल्ली के सिंहासन पर राज्य करने वाले राजवंशों में लोदी वंश अन्तिम था। बहलोल लोदी ने इस वंश की स्थापना की, सिकन्दर लोदी ने उसकी शक्ति और प्रतिष्ठा में वृद्धि की तथा इब्राहीम लोदी इस दिशा में प्रगति करने के लिए प्रयत्नशील था तब बाबर ने भारत पर आक्रमण किया और दिल्ली के लोदी सुल्तानों की सत्ता को समाप्त करके मुगल वंश की नींव डाली।

लोदी वंश को 75 वर्ष के शासनकाल में अनेक संघर्षों का सामना करना पड़ा। लोदी वंश के शासकों के लिए यह संघर्ष त्रिमुखी था। सर्वप्रथम उन्हें जौनपुर, मालवा, गुजरात और मेवाड़ के शक्तिशाली पड़ोसी राज्यों से अपने अस्तित्व की सुरक्षा और शक्ति-विस्तार के लिए संघर्ष करना पड़ा। लोदी वंश का दूसरा संघर्ष उन जमीदारों और अमीरों से था जो दुर्बल सुल्तानों के समय में प्राय: अर्द्ध-स्वतन्त्र हो गये थे। लोदी सुल्तानों की तीसरा और मुख्य संघर्ष अपने अफगान सरदारों से हुआ। वे अफगान सरदार जो उनकी शक्ति का मूल आधार थे, उनके साम्राज्य के संगठन और एक केन्द्रीय राज्य की स्थापना के मुख्य शत्रु थे।

2. लोदी वंश का अन्तिम शासक कौन था? वह किस निर्याणक युद्ध में मारा गया?

उ०– लोदी वंश का अन्तिम शासक इब्राहीम लोदी था। वह पानीपत के प्रथम युद्ध (1526 ई०) में मुगल बादशाह बाबर के हाथों मारा था।

3. सैयद वंश के दो शासकों का परिचय दीजिए?

उ०– सैयद वंश के दो शासक हैं–

(i) बहलोल लोदी (1451-1489 ई०) तथा (ii) सिकन्दर लोदी (1489-1517 ई०)।

4. सैयद वंश की स्थापना कब और किसने की?

उ०– सैयद वंश की स्थापना 1414 ई० में खिज्र खाँ ने की थी।

विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

1. ''सिकन्दर लोदी, लोदी-शासकों में सर्वश्रेष्ठ एवं योग्यतम था।'' इस कथन से आप कहाँ तक सहमत हैं?

उ०– सिकन्दर लोदी का शासनकाल (1489-1517 ई०)– बहलोल लोदी ने 1451 ई० में दिल्ली सल्तनत पर अधिकार कर लिया और लोदी वंश की नींव डाली थी। बहलोल लोदी की मृत्यु 1489 ई० में हुई थी। उसके निधन के पश्चात् उसके दो पुत्रों में सिंहासन के लिए युद्ध हुआ। एक दल बहलोल लोदी के तीसरे लड़के निजाम खाँ को सुल्तान बनाना चाहता था और दूसरे दल का समर्थन बहलोल लोदी के पुत्र बारबकशाह को प्राप्त था, जो जौनपुर का शासक था। इस संघर्ष में निजाम खाँ के समर्थकों को सफलता मिली और उन्होंने निजाम खाँ को सिकन्दरशाह के नाम से 1489 ई० में दिल्ली के सिंहासन पर बैठाया।

सिकन्दर लोदी की उपलब्धियाँ– सिकन्दर लोदी की उपलब्धियों तथा उसके शासनकाल की मुख्य घटनाओं का संक्षिप्त विवरण निम्नवत् है–

(i) आलम खाँ का दमन– आलम खाँ सिकन्दरशाह लोदी का चाचा था। वह सिंहासन-प्राप्ति के लिए सिकन्दर लोदी के विरुद्ध षड्यन्त्र कर रहा था। उसने सिकन्दरशाह के शत्रु ईसाखाँ (बहलोल का चचेरा भाई) से गठबन्धन कर लिया, क्योंकि ईसाखाँ भी अपने को दिल्ली की गद्दी का दावेदार समझता था। ईसाखाँ ने निजाम खाँ की माता से अशिष्टतापूर्ण शब्दों में कहा भी था ''सुनार की पुत्री का पुत्र, सुल्तान के पद के योग्य नहीं है।'' सिकन्दर ने इन दोनों शत्रुओं को हटाने के लिए एक चाल चली। उसने इटावा की सूबेदारी देकर आलम खाँ को अपनी ओर मिला लिया और ईसाखाँ को युद्ध में पराजित कर दिया। ईसाखाँ अपनी पराजय से निराश होकर शीघ्र ही मृत्यु को प्राप्त हो गया।

(ii) आजम हुमायूँ का दमन– आजम हुमायूँ भी सिकन्दरशाह का भतीजा होने के नाते अपने को दिल्ली के सिंहासन का अधिकारी समझता था और सिकन्दरशाह के विरुद्ध षड्यन्त्र कराने में लगा हुआ था। सिकन्दर लोदी ने इसको हराकर अपने रास्ते से हटा दिया और मुहम्मद लोदी को कालपी का सूबेदार नियुक्त कर दिया।

(iii) तातार खाँ का दमन– सिकन्दरशाह ने अपने प्रबल विरोधी तातार खाँ की ओर भी ध्यान दिया और उसको भी युद्ध में पराजित किया। बाद में उसने तातर खाँ की जागीर उसे ही वापस कर दी।

(iv) बारबकशाह का दमन– जौनपुर की समस्या बहलोल लोदी के समय से भी एक प्रमुख समस्या रही थी। उसने जौनपुर के शासक हुसैनशाह को पराजित करके उसके स्थान पर अपने ज्येष्ठ भ्राता बारबकशाह को जौनपुर का शासक बनाया था।

सिकन्दर ने बारबकशाह से सन्धि करके जौनपुर की समस्या को हल करना चाहा, किन्तु जौनपुर के अपदस्थ शासक हुसैनशाह ने बारबकशाह को भड़काकर दोनों भाईयो की सेना को आमने-सामने लाकर खड़ा कर दिया। सिकन्दरशाह ने बारबकशाह को पराजित कर दिया और भाई होने के नाते उसे क्षमा करके पुन: जौनपुर का शासक बना रहने दिया। कालान्तर में हुसैनशाह से प्रेरित होकर बाबरकशाह ने फिर विद्रोह कर दिया। इस बार सिकन्दर लोदी ने उसकी बन्दी बना लिया और जौनपुर पर अपना आधिपत्य स्थापित करके वहाँ की शासन-व्यवस्था का संचालन अपने हाथों में ले लिया।

(v) अमीरों पर नियन्त्रण– सुल्तान सिकन्दर लोदी अत्यन्त ईमानदार और एक कठोर शासक था। उसने उन लोगों को कठोर दण्ड दिया था, जो सरकारी हिसाब-किताब ने भ्रष्टाचार के दोषी थे। उसने गुप्तचरों की सहायता से अमीरों पर भी कठोर नियन्त्रण रखा। उसने जन-कल्याण की अनेक योजनाएँ बनाईं और आवश्यकता की सभी वस्तुओं के भाव सस्ते करवा दिए। सिकन्दर लोदी साम्राज्य में होने वाली छोटी-से-छोटी घटना की भी जानकारी रखता था।

(vi) हिन्दुओं पर अत्याचार– सिकन्दर लोदी कट्टर मुसलमान था। उसने हिन्दुओं को यमुना के घाटों पर स्नान करने से रोक दिया था। सुल्तान ने अपनी धार्मिक कट्टरता का परिचय उस समय दिया था, जब उसने नागरकोट में ज्वालादेवी के मन्दिर की पवित्र मूर्ति को तोड़ दिया था और उसक टुकड़े-टुकड़े करके कसाईयों में बाँट दिए थे। इन टुकड़ों को कसाई मांस तौलने में बाँट के स्थान पर प्रयोग करते थे। सिकन्दर लोदी की इस धार्मिक कट्टरता के कारण ही यह कहा जाता है कि ''सिकन्दर लोदी धार्मिक कट्टरता में औरंगजेब का अग्रगामी था।''

(vii) साम्राज्य-विस्तार– सुल्तान सिकन्दर लोदी एक महत्त्वाकांक्षी सुल्तान था। उसने अपने शासनकाल में साम्राज्य-विस्तार के लिए निम्नलिखित अभियान किए—

(क) बिहार अभियान– जौनपुर का भूतपूर्व शासक हुसैनशाह अभी भी सुल्तान के विरुद्ध बिहार के जमीदारों को भड़का रहा था। जमींदारों के नेता भीम (जुगा) को हुसैनशाह सहायता दे रहा था। सुल्तान ने राजा भीम पर आक्रमण कर दिया। उसने हुसैनशाह तथा भीम दोनों को ही पराजित कर बिहार को सल्तनत में मिला लिया।

(ख) बंगाल की सन्धि– बंगाल ने अलाउद्दीन हुसैनशाह का शासन था। बिहार में सुल्तान सिकन्दरशाह की बढ़ती हुई शक्ति से वह भयभीत हो गया था। अपने पुत्र **दानियाल** के नेतृत्व में एक सेना दिल्ली की शक्ति में गतिरोध उत्पन्न करने के लिए भेज दी थीं। सिकन्दरशाह लोदी ने बिना युद्ध किए ही बंगाल के शासक से सन्धि कर ली। दोनों ने एक-दूसरे को संकटकाल में सहायता देने का वचन दिया, साथ ही बंगाल के शासक अलाउद्दीन हुसैनशाह ने सुल्तान सिकन्दरशाह को यह आश्वासन भी दिया कि वह सुल्तान के विरोधियों को अपने यहाँ शरण नहीं देगा।

(ग) धौलपुर तथा ग्वालियर पर आक्रमण– 1502 ई० में सुल्तान ने धौलपुर और ग्वालियर पर आक्रमण करके उनको अपना आधिपत्य स्वीकार करने के लिए विवश किया। 1506 ई० में नरवर के हिन्दुओं तथा इटावा, बयाना और कोइल आदि के शासकों का भी दमन किया।

(घ) आगरा की स्थापना– सुल्तान ने इटावा, बयाना, कोइल (कोल), ग्वालियर और धौलपुर के सूबेदारों पर नियन्त्रण रखने के उद्देश्य से इस स्थान पर जहाँ आज आगरा नगर है, एक सैनिक छावनी स्थापित की। इस प्रकार उसने आगरा नगर की 1504 ई० में नींव डाली। परन्तु अगले वर्ष 6 जुलाई, 1505 ई० को एक भयंकर भूकम्प आने से अनेक भवन नष्ट हो गए। एक तत्कालीन इतिहासकार लिखता है, ''वास्तव में यह इतना भीषण था कि पहाड़ तक उलट गए और विशाल भवन विध्वंस हो गए। बचे हुए लोग समझने लगे कि कयामत का दिन आ गया है और मरे हुए सोचने लगे कि उनकी मुक्ति का दिन आ पहुँचा है। ऐसा भूकम्प पहले कभी नहीं आया था। इससे अपार क्षति हुई।''

2. दिल्ली सल्तनत के विघटन के कारण लिखिए।

उ०– दिल्ली सल्तनत के अन्तर्गत पाँच राजवंशों ने शासन किया लेकिन सभी राजवंशों का शासन अल्पकालीन और अस्थिर रहा। दिल्ली सल्तनत के पतन के लिए निम्नलिखित कारण उत्तरदायी थे—

(i) उत्तराधिकार के नियम का अभाव– सल्तनत युग में उत्तराधिकार का कोई निश्चित नियम नहीं था। योग्य व्यक्ति अपनी वीरता और तलवार के बल पर गद्दी प्राप्त करते रहे थे। इल्तुतमिश, जलालुद्दीन फिरोज खिलजी, अलाउद्दीन खिलजी, ग्यासुद्दीन तुगलक और बहलोल लोदी ने अपनी वीरता एवं योग्यता के आधार पर ही गद्दी पर अधिकार किया था लेकिन कालान्तर में दिल्ली के सिंहासन पर बैठने वाले अयोग्य और शक्तिहीन सुल्तान दिल्ली को सुरक्षित रखने में असफल रहे।

(ii) केन्द्रीय सरकार की दुर्बलता– दिल्ली सल्तनत की केन्द्रीय सरकार कानून पर आधारित न होकर सुल्तान के व्यक्तिगत शासन पर आधारित थी। सुल्तान की प्रतिभा, शक्ति, व्यक्तित्व तथा कार्यकुशलता ही केन्द्रीय शासन का आधार थी। अत: इल्तुतमिश की मृत्यु के उपरान्त रुकनुद्दीन फिरोज, रजिया, बहरामशाह तथा अलाउद्दीन मसूदशाह के शासनकाल में सर्वत्र अराजकता, विश्वासघात, हत्या तथा षड्यन्त्र का साम्राज्य स्थापित हो गया। कैकूबाद की विलासिता ने शासन सत्ता को कोतवाल निजामुद्दीन के दामाद के हाथ में पहुँचा दिया। इसी प्रकार, आगे चलकर अलाउद्दीन खिलजी ने अपने चाचा

जलालुद्दीन का धोखे से वध करवाया और अपना निरंकुश तथा स्वेच्छाचारी शासन स्थापित किया। अलाउद्दीन के पश्चात् दिल्ली सल्तनत का शासन उसके सेनापति मलिक काफूर के षड्यन्त्र का शिकार बन गया। बाद में, ग्यासुद्दीन तुगलक ने खुसरो को मारकर तुगलक वंश की की स्थापना की। यद्यपि तुगलक वंश के काल में साम्राज्य का अत्यधिक विस्तार हो गया, परन्तु मुहम्मद तुगलक की योजनाओं तथा फिरोज तुगलक की धार्मिक नीति ने साम्राज्य को पतन के शिखर तक पहुँचा दिया; अत: केन्द्रीय शासन केवल सुल्तान की इच्छा पर आधारित होने से दिल्ली सल्तनत का पतन हो गया। **डॉ० आगा मेंहदी हुसैन** के अनुसार, ''दिल्ली सल्तनत में एक संविधान, एक स्थायी कार्यपालिका या न्यायपालिका की कमी थी, जिस प्रकार इंग्लैण्ड में मध्यकालीन संसद थी। परिणामस्वरूप राजवंशों का द्रुतगति से उत्थान और पतन हो गया।'' इसी प्रकार, यह कथन भी उचित ही है कि ''केन्द्रीय शासन की दुर्बलता ही दिल्ली सल्तनत के पतन का कारण बनी।''

(iii) सैनिक शासन– दिल्ली सल्तनत के अन्तर्गत सम्पूर्ण शासन सैनिक शक्ति पर आधारित था। लेकिन बलबन और अलाउद्दीन के अतिरिक्त सभी सुल्तान सैनिक व्यवस्था को सुव्यवस्थित और सुदृढ़ बनाने में असफल रहे। फलस्वरूप सैनिक शक्ति पर आधारित दिल्ली साम्राज्य शीघ्र ही नष्ट हो गया।

(iv) मंगोल आक्रमण– मंगोलों के बार-बार होने वाले आक्रमणों ने भी दिल्ली सल्तनत का पतन अवश्यम्भावी बना दिया था। **डॉ० आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव** का मत है, ''बार-बार होने वाले मंगोल आक्रमणों ने भी, जिनका प्रारम्भ 1240 ई० में रजिया की मृत्यु के बाद हुआ, दिल्ली सल्तनत के भाग्य और नीति पर गहरा प्रभाव डाला।''

सल्तनत काल में मध्य एशिया की बर्बर मंगोल जाति ने भारत पर अनेक आक्रमण किए। बलबन के काल में मंगोलों ने उसके योग्य पुत्र शहजादा मुहम्मद को मार दिया था। अलाउद्दीन के काल में मंगोलों ने छह बार भारत पर आक्रमण किया। मुहम्मद तुगलक के काल में भी तरमाशीरीन के नेतृतव में मंगोल भारत पर चढ़ आए। इन **मंगोलों** के आक्रमणों ने दिल्ली सल्तनत को अत्यन्त क्षति पहुँचाई थी।

(v) स्थायी सेना का अभाव– दिल्ली सल्तनत की अपनी कोई सेना नहीं थी। संकट के समय सुल्तान अमीरों और प्रान्तीय शासकों की सेनाओं की सहायता प्राप्त करते थे, जो सुल्तान के प्रति वफादार ने होकर अपने मालिक की भक्त होती थी और अपने मालिक के आदेश पर प्राय: सुल्तान के विरुद्ध विश्वासघात भी कर दिया करती थी।

(vi) शासन-व्यवस्था की शिथिलता– अयोग्य तथा दुर्बल सुल्तानों के समय में सल्तनत की शासन-व्यवस्था अत्यन्त शिथिल हो जाती थी और अधिकारीगण षड्यन्त्रों और कुचक्रों में लीन रहते थे। फिरोज तुगलक की मृत्यु के पश्चात् शासन की शिथिलता का लाभ उठाकर ही तैमूर लंग ने 1398 ई० में भारत पर आक्रमण किया था। इस आक्रमण ने दिल्ली सल्तनत की जड़ें खोखली कर दीं और उसका पतन अनिवार्य कर दिया।

(vii) धर्म-सापेक्ष राज्य– दिल्ली सल्तनत एक धर्म-सापेक्ष राज्य था। मुस्लिम सुल्तान कुरान, हदीस और शरियत के नियमों के अनुसार ही शासन करते थे। यह कोई बुरी बात नहीं थी। परन्तु अलाउद्दीन, फिरोज तुगलक और सिकन्दर लोदी इस्लाम धर्म की स्थापना के बहाने हिन्दुओं पर मनमाने और कठोर अत्याचार करते थे। इतना ही नहीं, उलेमाओं का भी राजनीति पर गहरा प्रभाव रहा था। ऐसी दशा में इस्लाम-विरोधी व्यक्तियों ने अवसर पाकर दिल्ली सल्तनत का अन्त करने से कोई कसर न रखी थी।

(viii) दास प्रथा– सल्तनत काल में प्रचलित दास-प्रथा भी राजवंशों के पतन का प्रमुख कारण सिद्ध हुई। सभी सुल्तानों के दास इल्तुतमिश, बलबन, मलिक काफूर के समान योग्य तथा शक्तिशाली सिद्ध न हुए। **डॉ० मेंहदी हुसैन** के अनुसार, ''13 वीं शताब्दी के पश्चात् दासों की स्थिति, चरित्र तथा महत्त्वाकांक्षाओं में भी भीषण परिवर्तन आ गया।'' दासों की अयोग्यता एवं विलासिता ने षड्यन्त्रों को भी प्रोत्साहन दिया। फिरोज तुगलक के शासनकाल में दासों की संख्या 1 लाख 80 हजार तक पहुँच गई और अन्तत: षड् यन्त्रकारी दास ही दिल्ली सल्तनत के पतन का प्रमुख कारण बने।

(ix) हिन्दुओं और राजपूतों के विद्रोह– सल्तनत काल मे हिन्दुओं तथा राजपूतों ने मुसलमानों के विरुद्ध अनेक विद्रोह किए। बलबन तथा अलाउद्दीन जैसे सुल्तानों ने तो इनके विद्रोहों को दबाने में सफलता प्राप्त कर ली, लेकिन अयोग्य और दुर्बल सुल्तान इनके विद्रोह का दबाने में असफल रहे।

(x) जनता का विरोध– सल्तनत काल के मुस्लिम सुल्तानों ने देश की बहुसंख्यक हिन्दू जनता के साथ बड़ी कठोरता का व्यवहार किया जिससे वह उनके शासनकाल में उनकी प्रबल विरोधी बनी रही। जनता के इस असन्तोष और विरोध ने भी दिल्ली सल्तनत का पतन अनिवार्य कर दिया।

3. सिकन्दर लोदी की राजनीतिक एवं प्रशासनिक उपलब्धियों का वर्णन कीजिए।

उ०– उत्तर के लिए विस्तृत उत्तरीय प्रश्न संख्या– 1 के उत्तर का अवलोकन करें।

4. ''इब्राहीम लोदी भारत में मुगल सत्ता की स्थापना के लिए उत्तरदायी था।'' इस कथन को स्पष्ट कीजिए।

उ०– सिकन्दर लोदी के पश्चात् 21 नवम्बर, 1517 ई० को अमीरों ने सर्वसम्मति से उसके पुत्र इब्राहीम को इब्राहीमशाह लोदी के नाम

से सिंहासन पर बैठाया। सुल्तान की शक्तियाँ व निरंकुशता को कम करने हेतु उन्होंने जौनपुर में इब्राहीम के भाई जलाल खाँ को जलालुद्दीन के नाम से शासक बनाया। इब्राहीम ने बड़ी कूटनीति से अमीरों को अपनी ओर मिलाया व जलाल खाँ का वध करवा दिया। 1517 ई० में इब्राहीम ने ग्वालियर पर मानसिंह के उत्तराधिकारी विक्रमादित्य पर आक्रमण किया व उससे सन्धि करके ग्वालियर का दुर्ग प्राप्त किया। मेवाड़ के राणा सांगा (संग्राम सिंह) के विरुद्ध भी सुल्तान ने अभियान छेड़ा। मगर वह उसे पराजित न कर सका और राणा सांगा ने चंदेरी पर अधिकार कर लिया।

इब्राहीम लोदी के काल की उल्लेखनीय बात यह थी कि उसने अमीरों की शक्ति को सीमित करने का प्रयास किया। फलस्वरूप अमीर उसके विरुद्ध हो गये। यह नीति इब्राहीम लोदी के लिए घातक सिद्ध हुई। **आशीर्वादी लाल श्रीवास्तव** ने लिखा है कि ''स्वयं अफगान होते हुए भी वह अफगान चरित्र तथा भावनाओं से अपरिचित था।'' अफगान सरदारों ने बिहार के गर्वनर दरिया खाँ लोहानी के नेतृत्व में विद्रोह कर दिया। दौलत खाँ लोदी (पंजाब का सूबेदार) तथा सुल्तान के चाचा आलम खाँ (बहलोल का पुत्र) ने काबुल के शासक बाबर को इब्राहीम के विरुद्ध आक्रमण का नियन्त्रण दिया। आलम खाँ ने अफगान सरदारों की सहायता से स्वयं को सुल्तान घोषित कर दिया। इब्राहीम लोदी के शासनकाल की अन्तिम और महत्त्वपूर्ण घटना पानीपत का प्रथम युद्ध है। बाबर ने इब्राहीम को पराजित करके दिल्ली और आगरा पर अधिकार करके 'मुगल वंश' की नींव डाली।

यद्यपि सुल्तान इब्राहीम एक योग्य, परिश्रमी साहसी और कुशल सेनापति था। **फरिश्ता** ने लिखा है ''वह मृत्युपर्यन्त लड़ा और एक सैनिक की भाँति मारा गया।'' सुल्तान इब्राहीम के अतिरिक्त भारत का अन्य कोई सुल्तान युद्धस्थल में नहीं मारा गया। इस प्रकार साहस, शौर्य और दृढ़-निश्चय की दृष्टि से इब्राहीम अद्वितीय था। किन्तु बाबर का योग्य सैनिक संचालन, कुशल व सधे हुए सैनिक, तोपखाने का प्रयोग व तुगलक जैसी युद्ध आदि नीति के सामने उसकी एक लाख की अफगानी सेना टिक न सकी। इब्राहीम की हत्या कर दी गई और उसकी मृत्यु के साथ ही दिल्ली का 'सल्तनत काल' समाप्त हुआ और 'मुगल काल' का श्रीगणेश हुआ।

16 दक्षिण भारत के राज्य (States of South India)

अभ्यास

निम्नलिखित तिथियों के ऐतिहासिक महत्व का उल्लेख कीजिए–

1. 1347-1517 ई०
2. 1336-1486 ई०
3. 1486-1505 ई०
4. 1505-1570 ई०
5. 1570-1650 ई०
6. 1565 ई०
7. 1231 ई०
8. 973 ई०

उ०– उत्तर के लिए पाठ्यपुस्तक के पृष्ठ संख्या– 210 पर तिथि सार का अवलोकन करें।

सत्य या असत्य बताइए–

उ०– प्रश्नोत्तर के लिए पाठ्यपुस्तक के पृष्ठ संख्या– 211 का अवलोकन करें।

बहुविकल्पीय प्रश्न

उ०– प्रश्नोत्तर के लिए पाठ्यपुस्तक के पृष्ठ संख्या– 211 व 212 का अवलोकन करें।

अतिलघु उत्तरीय प्रश्न

उ०– प्रश्नोत्तर के लिए पाठ्यपुस्तक के पृष्ठ संख्या– 212 व 213 का अवलोकन करें।

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. चोलों के स्थानीय स्वशासन का वर्णन कीजिए।

उ०– चोल शासनकाल में ग्रामों में स्थानीय स्वशासन की व्यवस्था की गई थी। ग्रामों की सभाएँ जनतन्त्रात्मक ढंग से संचालित होती थीं। प्रशासकीय कार्यों के लिए विभिन्न समितियाँ बनाई गई थीं, जिन्हें बेरियम कहा जाता था। विभिन्न समितियों में ग्राम की स्थायी-समिति, तड़ाग-समिति, कृषि-समिति, उपवन-समिति, न्याय-समिति आदि मुख्य थीं। विभिन्न समितियों के चुनाव के लिए प्रत्येक ग्राम को 30 वार्डों में बाँटा जाता था। विभिन्न समितियों के उम्मीदवारों की योग्यताएँ भी निर्धारित कर दी गई थीं। **लाट** के द्वारा निर्वाचन होता था। विभिन्न उम्मीदवारों के नाम अलग-अलग पत्तियों में लिखकर किसी बर्तन में डाल दिए जाते थे। उसके बाद किसी निष्पक्ष व्यक्ति या बालक से निश्चित संख्या की पत्तियाँ निकालने के लिए कहा जाता था। जिन व्यक्तियों की पत्तियाँ निकल जाती थीं, वे नियुक्त घोषित कर दिए जाते थे।

ग्राम सभाओं के अनेक कार्य होते थे। वे तालाबों, नहरों और कूपों का प्रबन्ध करती थीं, भूमि कर वसूलती थीं, मन्दिरों की व्यवस्था करती थीं और शिक्षा का प्रसार करती थीं। दैवी विपत्ति के समय सहायता कोषों की व्यवस्था करना, पीड़ितों को सहायता पहुँचाना, चिकित्सा एवं स्वास्थ्य प्रबन्ध करना आदि कार्य भी इन ग्राम सभाओं के द्वारा ही सम्पन्न होते थे। वास्तव में इन

सब कार्यों की रूपरेखा राजा के द्वारा निर्धारित कर दी जाती थी और ग्राम सभाएँ ही इन सब कार्यों को पूरा करती थीं। साधारणतया राजा, ग्राम सभाओं के कार्यों में हस्तक्षेप नहीं करता था। परन्तु ग्राम-सभाओं पर निगाह रखने के लिए राजा द्वारा पदाधिकारी नियुक्त किए जाते थे। यदि किसी गाँव की ग्राम-सभा में कोई अनियमितता बरती जाती थी तो उसकी सूचना राजा को तुरन्त दे दी जाती थी। यद्यपि ये ग्राम-सभाएँ न्याय आदि के कार्यों को सम्पन्न करती थीं परन्तु बहुत-से ऐसे कार्य भी होते थे, जिनमें राजा की पूर्व अनुमति लेना अनिवार्य था। ग्राम-सभा को किसी भी व्यक्ति को मृत्यु-दण्ड देने का अधिकार नहीं था।

2. राजेन्द्र चोल की उपलब्धियाँ बताइए।

उ०– राजेन्द्र द्वितीय की मृत्यु के पश्चात् उसका भाई वीर राजेन्द्र प्रथम 1064 ई० में राजा बना। उसने तुंगभद्रा नदी के तट पर चालुक्य नरेश सोमेश्वर को हरा दिया। इस विजय के उपलक्ष्य में उसने तुंगभद्रा नदी के किनारे एक विजय-स्तम्भ का निर्माण कराया। सोमेश्वर की मृत्यु के पश्चात् उसका पुत्र सोमेश्वर द्वितीय चालुक्यों का राजा हुआ तथा उसको भी वीर राजेन्द्र प्रथम के आक्रमणों का सामना करना पड़ा। इसी समय सोमेश्वर द्वितीय को अपने छोटे भाई के विद्रोह का भी सामना करना पड़ा। वीर राजेन्द्र ने कूटनीति का प्रयोग करते हुए सोमेश्वर द्वितीय के छोटे भाई विक्रमादित्य से अपनी लड़की का विवाह कर दिया। वीर राजेन्द्र का लंका नरेश विजयबाहु से भी युद्ध हुआ। 1070 ई० में वीर राजेन्द्र की मृत्यु हो गई।

3. राजराज चोल प्रथम की सैनिक सफलताओं का वर्णन कीजिए।

उ०– राजराज प्रथम (985-1014 ई०)– राजराज प्रथम के बचपन का नाम अरिमोलिवर्मन था। वह 985 ई० के लगभग सिंहासनारूढ़ हुआ तथा उसने राजराज की उपाधि धारण की। राजराज प्रथम ने अपने प्रयासों से चोलों के खोए हुए प्रदेशों एवं वैभव को पुन: प्राप्त करने का प्रयत्न किया। जिस समय वह सिंहासन पर बैठा, उस समय चोल साम्राज्य की स्थिति डाँवाडोल थी। सबसे पहले उसने केरल के राजाओं की नौसेना को प्राप्त किया। तत्पश्चात् उसने पाण्ड्य वंश के शासक अमर भुजंग को पराजित किया तथा कोल, उदंग व कुर्ग पर अधिकार कर लिया। राजराज प्रथम ने लंका पर आक्रमण करके महिन्द पंचम की राजधानी अनुराधापुर को भी नष्ट कर दिया तथा उत्तरी लंका पर अधिकार कर लिया। उसने गंगवाड़ी, नीलम्बबड़ी, तांदिगबड़ी आदि पर आक्रमण करके उन्हें भी अपने अधिकार में ले लिया। वेंगी पर भी उसने विजय प्राप्त की तथा जराबोड़भूमि को सिंहासन से उतारकर शक्तिमान को वहाँ का शासक बनाया। वेंगी पर अधिकार कर लेने से चालुक्यों एवं चोलों में संघर्ष हुआ। इस संघर्ष में राजराज प्रथम की पराजय हुई। राजराज ने अपने शासन के अन्तिम दिनों में कलिंग, लक्कद्वीप, मारद्वीप आदि पर विजय प्राप्त की। इस प्रकार उसका साम्राज्य मद्रास प्रेसीडेन्सी के दुर्ग, मैसूर व सिंहलद्वीप के उत्तरी भाग तक विस्तृत हो गया। आन्ध्र प्रदेश पर भी उसका आधिपत्य था। राजराज प्रथम ने 1014 ई० तक शासन किया था।

4. विजयनगर साम्राज्य के पतन के कोई चार कारण लिखिए।

उ०– विजयनगर साम्राज्य के पतन के चार कारण निम्नलिखित हैं—

(i) उत्तराधिकारियों के मध्य वैमनस्य की भावना।
(ii) मुसलमान सेनाओं के संयुक्त आक्रमण।
(iii) विजयनगर के प्रधानमंत्री के भाई तिरुमाल की दूषित महत्त्वांक्षा।
(iv) अरबिन्दु वंश के शासकों की बढ़ती हुई शक्ति।

5. निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए–

(i) निकोलो कोण्टी, **(ii) अब्दुर्रज्जाक**

उ०– निकोली कोण्टी– विजयनगर की स्थापना विश्व के इतिहास में धनी लोगों में होती है। इटली निवासी निकोली कोण्टी के अनुसार, ''नगर का घेरा 60 मील तक था, जिसमें प्राय: 90 हजार व्यक्ति शस्त्र धारण करने योग्य थे। राजा भारत के अन्य सभी राजाओं से शक्तिशाली है।''

अब्दुर्रज्जाक– अब्दुर्रज्जाक एक ईरानी पर्यटक था। विजय-नगर के बारे में वह लिखता है कि, ''देश इतना अच्छा बसा हुआ है कि संक्षेप में उसका चित्र प्रस्तुत करना असम्भव है। राजा के कोषगृह में, जिनमें गड्ढे खुदे हुए है, उनमें पिघला हुआ सोना भर दिया गया है, जिसकी ठोस शिलाएँ बन गई है।''

6. पल्लवकालीन कला का वर्णन कीजिए।

उ०– पल्लव-काल उच्चकोटि की कला के लिए अत्यन्त प्रसिद्ध है। पल्लव-काल में स्थापत्य और शिल्प के क्षेत्र में महान् उन्नति हुई। पल्ल्व-काल में वास्तुकला की निम्नलिखित चार शैलियों का विकास हुआ—

(i) महेन्द्रवर्मन शैली– इस शैली के अन्तर्गत स्तम्भयुक्त मण्डपों का निर्माण हुआ। इस शैली के अन्तर्गत ठोस चट्टानों को काटकर मन्दिर बनाए जाते थे जिनका रूप सरल होता था। इस शैली का विकास 600 ई० से 625 ई० तक हुआ।

(ii) नरसिंहवर्मन शैली– इस शैली का विकास काल 625 ई० से 675 ई० तक माना जाता है। इस शैली की स्थापना पल्लव-नरेश नरसिंहवर्मन ने की थी। मुख्यत: नरसिंहवर्मन ने एक ही पत्थर को काटकर रथ शैली के मन्दिरों का निर्माण कराया था।

(iii) राजसिंह शैली– इस शैली का विकास काल 700 ई० से 900 ई० तक माना जाता है। इस शैली के अन्तर्गत स्वतन्त्र रूप से

पाषाण रूप से षाषाण-खण्डों की सहायता से मन्दिरों का निर्माण किया गया। मामल्लपुरम का मन्दिर और काँची का कैलास मन्दिर इस शैली के अनुपम उदाहरण हैं।

(iv) अपराजित शैली– इस शैली का विकास पल्लवों के काल के अन्तिम चरण में हुआ। बहुर का मन्दिर इस शैली का प्रमुख उदाहरण है। इस शैली में स्तम्भों के शीर्ष भाग का अत्यधिक विकास हुआ।

7. पल्लवकालीन साहित्य का संक्षेप में वर्णन कीजिए।

उ०– पल्लव नरेश विद्याप्रेमी थे और उन्होंने अनेक विद्वानों को राजकीय संरक्षण प्रदान किया था। पल्लव नरेश महेन्द्रवर्मन प्रथम स्वयं भी एक उच्चकोटि का विद्वान् था और उसने मत्तविलास प्रहसन नामक ग्रन्थ की रचना की थी, जो हास्य रस से सरोबार था। पल्लव-नरेश नरहिंसवर्मन ने आगमप्रिय की उपाधि धारण की थी। उसकी राजसभा में दण्डिन नामक एक प्रसिद्ध विद्वान् निवास करता था। गोपालन ने अपनी पुस्तक काँची के पल्लवों का इतिहास में लिखा है कि पल्लवों की राजसभा में शूद्रक के नाटकों का अभिनय किया जाता था। कुछ विद्वानों का मत है कि संस्कृत के प्रसिद्ध विद्वान् और किरातार्जुनीयम के रचयिता भारवि को पल्लव नरेश सिंहविष्णु का संरक्षण प्राप्त था। इस युग के संस्कृत भाषा में लिखे हुए अभिलेखों में उच्चकोटि की भाषा का प्रयोग किया गया है। अभिलेख में संस्कृत के साथ ही तमिल का भी विकास हुआ। तमिल में लिखे हुए अभिलेख भी प्राप्त हुए हैं। साथ ही तामिल-कुरल नामक प्रसिद्ध ग्रन्थ इसी काल में लिखा गया था।

8. बहमनी राज्य का अन्त कब हुआ और यह किन पाँच राज्यों में बँट गया?

उ०– बहमनी राज्य का अन्त– महमूद गवाँ की मृत्यु के पश्चात् बहमनी साम्राज्य की एकता और शक्ति का भी अन्त हो गया। उसकी मृत्यु के कुछ ही समय पश्चात् मार्च 1482 ई० में सुल्तान मुहम्मदशाह की मृत्यु हो गई। मुहम्मदशाह की मृत्यु के बाद बहमनी राज्य के जो भी सुल्तान हुए वे सब अत्यन्त निर्बल और निकम्मे थे। उनकी निर्बलता का लाभ उठाकर दक्षिणी तथा विदेशी सभी अमीरों ने राज्य के हितों की अवहेलना करके अपने स्वार्थों की ओर अधिक ध्यान देना आरम्भ कर दिया था। इस राज्य का अन्तिम सुल्तान कलीमुल्लाशाह हुआ। 1527 ई० में उसकी मृत्यु के बाद बहमनी राज्य का अन्त हो गया और वह निम्नलिखित पाँच राज्यों में विभाजित हो गया।

(i) बीजापुर का आदिलशाही राज्य,
(ii) अहमदनगर का निजामशाही
(iii) बरार का इमादशाही राज्य,
(iv) गोलकुण्डा का कुतुबशाही राज्य और
(v) बीदर का बदीरशाही राज्य।

इस प्रकार बहमनी राज्य लगभग 180 वर्ष तक चला। इसका पूरा इतिहास कुचक्रों, गृहयुद्धों और पड़ोसी राज्यों के विरुद्ध निरन्तर संघर्षों से भरना पड़ा है। बहमनी वंश के अठारह राजाओं में से पाँच की हत्या की गई। तीन पदच्युत किए गए, दो को अन्धा किया गया और दो अधिक मद्यपान के कारण मरे। 1417 ई० में अथानासियत निकीटिन नामक एक रूसी पर्यटक ने बहमनी राज्य की यात्रा की थी। उसके कथन से पता चलता है कि देश की आबादी घनी थी किन्तु अधिकांश जनता निर्धन थी।

9. तालीकोटा का युद्ध किस-किस के बीच हुआ और इसमें कौन विजयी हुआ?

उ०– तालीकोटा का युद्ध 26 जनवरी, 1565 को विजयनगर के राजा अलिया रामाराय तथा दक्षिणी सुल्तानों के मध्य हुआ जिनमें प्रमुख अली आदिलशाह प्रथम, इब्राहीम कुली कुतुबशाह वली आदि सम्मिलित थे। इसका परिणाम दक्षिण विजय के रूप में सामने आया।

10. महमूद गवाँ किस राज्य से सम्बद्ध था? वह किस पद पर नियुक्त था?

उ०– महमूद गवाँ फारस के गवाँ नामक ग्राम का निवासी था। वह एक व्यापारी के रूप में भारत आया था और बाद में बहमनी राज्य के सुल्तान हुमायूँ का कृपापात्र बन गया था। सुल्तान हुमायूँ की मृत्यु के बाद महमूद गवाँ उसके अल्पवयस्क पुत्र निजामशाह का रक्षक बन गया था। अपनी प्रतिभा के बल पर महमूद गवाँ बहमनी सुल्तान मुहम्मदशाह का प्रधानमंत्री बन गया। महमूद गवाँ ने न केवल महत्त्वपूर्ण विजयें प्राप्त कीं, अपितु उसने शासन के क्षेत्र में अनेक महत्त्वपूर्ण सुधार भी किए थे। वह विरोधी अमीरों के एक षड्यन्त्र का शिकार होकरा मारा गया। महमूद गवाँ एक योग्य प्रशासक और कला तथा साहित्य का विशेष प्रेमी था।

11. विजयनगर के सामाजिक जीवन पर प्रकाश डालिए।

उ०– वियजनगर राज्य में सामाजिक व्यवस्था सुगठित थी। समाज में ब्राह्मणों का स्थान बहुत श्रेष्ठ था। उन्हें किसी भी अपराध के लिए मृत्युदण्ड नहीं दिया जा सकता था और राज्य की सैनिक और असैनिक सेवाओं में उन्हें उच्च पद प्रदान किए जाते थे। विजयनगर में दास प्रथा प्रचलित थी और पुरुष तथा स्त्री दास खरीदे और बेचे जाते थे। स्त्रियों का समाज में सम्मान था। वे संगीत, नृत्य जैसी ललित कलाओं के अतिरिक्त शस्त्र विद्या में भी भाग लेती थीं। गणिकाओं (वेश्याओं) का भी समाज में महत्वपूर्ण स्थान था। उनको सामाजिक दृष्टि से हेय नहीं माना जाता था बल्कि धनाढ्य, सामन्त तथा शासक वर्ग के व्यक्ति नि:संकोच उनसे सम्पर्क रखते थे। बाल-विवाह, धनी व्यक्तियों में बहु-विवाह, दहेज प्रथा, सती प्रथा, देवदासी प्रथा आदि कुप्रथाएँ समाज में प्रचलित थीं, किन्तु राज्य में दहेज लेना और देना गैरकानूनी घोषित कर दिया था। यह 1424-1425 ई० के एक अभिलेख से सिद्ध होता है। राज्य द्वारा विधवा-विवाह को प्रोत्साहन देने का प्रयत्न किया गया था। राज्य सती प्रथा को भी

संरक्षण प्रदान नहीं करता था। ब्राह्मणों के अतिरिक्त अन्य जातियों और जनसाधारण में मांस खाना प्रचलित था। गौ-मांस का भक्षण निषेध था। स्त्री और पुरुष दोनों ही आभूषण पहनते थे। मन्दिर और मठ शिक्षालय का कार्य किया करते थे और राज्य उन्हें प्रचुर मात्रा में आर्थिक सहायता दिया करता था।

12. विजयनगर साम्राज्य के स्थानीय स्वशासन का उल्लेख कीजिए।

उ०– विजयनगर साम्राज्य में प्रान्तों को मण्डलों तथा मण्डलों को जिलों में बाँटा गया था। जिले को कोट्टम या वलनाडु कहते थे। जिले को परगनों या ताल्लुकों में बाँटा गया था, जिन्हें नाडु कहते थे। नाडु मेलग्रामों में विभाजित थे, जिसमें पचास गाँव होते थे। प्रशासन की सबसे छोटी इकाई उर कहलाती थी। गाँव को मोहल्लों में बाँटा गया था। गाँव के अधिकारी के पद पैतृक होते थे। ये अधिकारी थे— सेनटेयवा (गाँव की आय-व्यय के देखभाल करने वाला), तलस (चौकीदार), बेगरा (बेगार अथवा मजदूरी की देखभाल करने वाला) आदि।

13. विजयनगर साम्राज्य के पतन के दो कारणों का उल्लेख कीजिए।

उ०– विजयनगर साम्राज्य के पतन के दो कारण निम्नलिखित हैं—

(i) उत्तराधिकारियों के मध्य वैमनस्य की भावना। (ii) मुसलमान सेनाओं के संयुक्त आक्रमण।

14. महमूद गवाँ कौन था? उसकी क्या उपलब्धियाँ थीं?

उ०– उत्तर के लिए लघुउत्तरीय प्रश्न संख्या— 10 के उत्तर का अवलोकन करें।

15. ''कृष्णदेव राय अपने वंश का महानतम् सम्राट था।'' स्पष्ट कीजिए।

उ०– विजयनगर साम्राज्य के तुलुव वंश का सबसे महान् और शक्तिशाली राजा कृष्णदेव राजा था, जिसने 1509 ई० से 1529 ई० तक शासन किया था। उसके शासन काल में विजयनगर का गौरव अपनी पराकाष्ठा पर पहुँच गया था। राजा कृष्णदेव राय एक महान् विजेता, दूरदर्शी प्रशासक, प्रकाण्ड विद्वान्, कलाओं का संरक्षक और साहित्यकारों का आश्रयदाता था।

16. विजयनगर के आर्थिक जीवन पर प्रकाश डालिए।

उ०– विजयनगर की आर्थिक स्थिति– विजयनगर की गणना विश्व के इतिहास में धनी राज्यों में होती है। विजयनगर के वैभव तथा समृद्धि का विभिन्न विदेशी यात्रियों ने अपने वृत्तांतो में वर्णन किया है। इटली निवासी **निकोलो कोण्टी** के अनुसार, ''नगर का घेरा 60 मील तक था, जिसमें प्राय: 90 हजार व्यक्ति शस्त्र धारण करने के योग्य थे। राजा भारत के अन्य सभी राजाओं से शक्तिशाली है।'' बारबोसा ने नगर की प्रशंसा करते हुए लिखा था ''नगर बहुत विस्तृत और सघन बसा हुआ है तथा भारत हीरों, पेंगू के लाल, चीन और एलेक्जेण्ड्रिया की रेशम, सिन्दूर, कपूर, कस्तूरी तथा मालाबार की काली मिर्च और चन्दन के व्यापार का मुख्य केन्द्र स्थान है।'' ईरानी पर्यटक **अब्दुर्रज्जाक** लिखता है, ''देश इतना अच्छा बसा हुआ है कि संक्षेप में उसको चित्र प्रस्तुत करना असम्भव है। राजा के कोषगृह में, जिनमें गड्ढे खुदे हुए हैं, उनमें पिघला हुआ सोना भर दिया गया है, जिसकी ठोस शिलाएँ बन गई हैं।'' पुर्तगाली यात्री **डोमिंगोज पेइज** के अनुसार, ''यह विश्व का सबसे सुन्दर शहर है, जहाँ पर गेहूँ, चावल, जौ, दालों और अन्य सभी वस्तुओं की भरमार है।'' वह पुन: लिखता है, ''यहाँ के राजा के पास अथक सम्पत्ति, सैनिक और हाथी हैं, क्योंकि यहाँ ये प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हैं। इस शहर में तुम्हें सभी देशों के निवासी मिलेंगे, क्योंकि यहाँ के निवासी सभी देशों में कीमती पत्थरों, मुख्यतया हीरों का व्यापार करते थे।'' **अब्दुर्रज्जाक** ने लिखा है कि, ''विजयनगर साम्राज्य में 300 बन्दरगाह थे। वहाँ की प्रजा को सुखी और समृद्ध थी। विजयनगर साम्राज्य में सोने तथा ताँबे के सिक्के चलते थे। कुछ चाँदी के सिक्कों का भी चलन था।'' इसी प्रकार विदेशी लोगों ने एकमत होकर जो प्रशंसा की है उससे स्पष्ट है कि विजयनगर साम्राज्य अत्यधिक धनी तथा समृद्ध था।

17. कृष्णदेव राय की उपलब्धियाँ बताइए।

उ०– विजयनगर साम्राज्य के तुलुव वंश का सबसे महान् और शक्तिशाली राजा कृष्णदेव राय था, जिसने 1509 ई० से 1529 ई० तक शासन किया था। उसके शासन काल में विजयनगर का गौरव अपनी पराकाष्ठा पर पहुँच गया था। राजा कृष्णदेव राय एक महान् विजेता, दूरदर्शी प्रशासक, प्रकाण्ड विद्वान्, कलाओं का संरक्षक और साहित्यकारों का आश्रयदाता था।

18. विजयनगर के स्थानीय प्रशासन की दो महत्त्वपूर्ण विशेषताओं का उल्लेख कीजिए।

उ०– विजयनगर के स्थानीय प्रशासन की दो महत्वपूर्ण विशेषताओं का उल्लेख निम्नलिखित है—

(i) स्थानीय शासन– प्रान्तों को मण्डलों तथा मण्डलों को जिलों में बाँटा गया था। जिले को कोट्टम या वलनाडु कहते थे। जिले को परगनों या ताल्लुकों में बाँटा गया था, जिन्हें नाडु कहते थे। नाडु मेलग्रामों में विभाजित थे, जिसमें पचास गाँव होते थे। प्रशासन की सबसे छोटी इकाई उर कहलाती थी। गाँव को मोहल्लों में बाँटा गया था। गाँव के अधिकारी के पद पैतृक होते थे। ये अधिकारी थे— सेनटेयवा (गाँव की आय-व्यय के देखभाल करने वाला), तलस (चौकीदार), बेगरा (बेगार अथवा मजदूरी की देखभाल करने वाला) आदि।

(ii) नायंकार और आयगार व्यवस्था– विजयनगर साम्राज्य के शासन की एक मुख्य विशेषता उसकी भिन्न जागीरदारी व्यवस्था थी, जिसे नायंकार व्यवस्था कहा जाता है। इसके अनुसार राजा अपने जागीरदारों को एक निश्चित भूमि दे देता था।

उस भूमि को अमरम कहते थे और उनके स्वामी को अमर नायक। वे राजा को प्रतिवर्ष एक निश्चित धनराशि देते थे और युद्ध के अवसर पर उसकी सहायता के लिए अपने पास एक निश्चित संख्या में सैनिक भी रखते थे। धीरे-धीरे इन नायकों का अधिकार अपनी भूमि पर पैतृक हो गया। इनकी विशेषता यह थी कि प्रान्तपतियों की तुलना में उनका आन्तरिक शासन स्वायत्त थे। इसके अतिरिक्त शासक का सामान्यत: नायंकार प्रदेश के आन्तरिक शासन में कोई हस्तक्षेप नहीं था।

नायंकार व्यवस्था की तरह विजयनगर राज्य के शासन की अन्य विशेषता आयगार व्यवस्था थी। इस व्यवस्था के अन्तर्गत कुछ गाँवों को एक स्वतन्त्र इकाई के रूप में संगठित किया गया और इस ग्रामीण प्रशासकीय इकाई पर शासन करने के लिए बारह व्यक्तियों को नियुक्त किया गया। इन बारह अधिकारियों को सम्मिलित रूप से आयगार कहा गया। उनका मुख्य उत्तरदायित्व अपने शासन क्षेत्र में शान्ति और व्यवस्था को बनाए रखना था।

विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

1. पल्लव युग में कला एवं साहित्य की प्रगति का वर्णन कीजिए।

उ०– पल्लव-काल में हिन्दू धर्म की विशेष उन्नति हुई। विशेष रूप से शैव धर्म का प्रसार हुआ। मूर्ति-पूजा, अवतारवाद, यज्ञ और कर्मकाण्ड का प्रचलन था। दक्षिण भारत में 'शक्ति-सम्प्रदाय' पनप रहा था और दक्षिण का 'आर्यीकरण' तीव्रता से होता जा रहा था।

पल्लव-काल में विष्णु और शिव के अनेक मन्दिरों का निर्माण हुआ और वैष्णव तथा शैव दोनों ही प्रकार के साहित्य की रचना हुई। पल्लव-काल, यद्यपि हिन्दू धर्म के उत्थान का काल था, परन्तु पल्लव राजाओं ने बौद्धों और जैनियों पर अत्याचार नहीं किए। ह्वेनसांग का वर्णन इस बात का साक्षी है कि बौद्ध धर्म के अनुयायी स्वतन्त्रतापूर्वक अपने धर्म का पालन करते थे। काँची के समीप ही एक विशाल बौद्ध-विहार था और वहाँ अनेक बौद्ध भिक्षु रहते थे। ह्वेनसांग ने जैनियों के विहारों के भी दर्शन किए थे।

पल्लवों की शिक्षा एवं साहित्य– पल्लव-काल में शिक्षा और साहित्य की भी उन्नति हुई। काँची विश्वविद्यालय शिक्षा का प्रमुख केन्द्र था। न्याय-भाष्य का लेखक वात्स्यायन काँची का ही एक पण्डित था। दिङ्नाग भी काँची के निवासी थे तथा यहीं पर उन्होंने शिक्षा प्राप्त की थी। कदम्बवंशी नरेश मयूरवर्मन भी शिक्षा प्राप्त करने के लिए काँची ही गया था। काँची के समीप ही एक मण्डप बना था, वहाँ 108 परिवार वेदाध्ययन करते थे। वहाँ महाभारत के श्लोकों का गायन भी होता था।

पल्लव नरेश को विद्याप्रेमी थे और उन्होंने अनेक विद्वानों को राजकीय संरक्षण प्रदान किया था। पल्लव नरेश महेन्द्रवर्मन प्रथम स्वयं भी एक उच्चकोटि का विद्वान् था और उसने मत्तविलास प्रहसन नामक ग्रन्थ की रचना की थी, जो हास्य रस से सराबोर था। पल्लव-नरेश नरसिंहवर्मन ने आगमप्रिय की उपाधि धारण की थी। उसकी राजसभा में दण्डिन नामक एक प्रसिद्ध विद्वान् निवास करता था। गोपालन ने अपनी पुस्तक काँची के पल्लवों का इतिहास में लिखा है कि पल्लवों की राजसभा में शूद्रक के नाटकों का अभिनय किया जाता था। कुछ विद्वानों का मत है कि संस्कृत के प्रसिद्ध विद्वान् और किरातार्जुनीयम के रचयिता भारवि को पल्लव नरेश सिंहविष्णु का संरक्षण प्राप्त था। इस युग के संस्कृत भाषा में लिखे हुए प्राप्त अभिलेखों में उच्चकोटि की भाषा का प्रयोग किया गया है। अभिलेख में संस्कृत के साथ ही तमिल का भी विकास हुआ। तमिल में लिखे हुए अभिलेख भी प्राप्त हुए हैं। साथ ही तामिल-कुरल नामक प्रसिद्ध ग्रन्थ इसी काल में लिखा गया था।

पल्लवों की कला– पल्लव-काल अपनी उच्चकोटि की कला के लिए बहुत प्रसिद्ध है। स्थापत्य और शिल्प के क्षेत्र में इस युग में महान् उन्नति हुई। पल्लव-काल में वास्तुकला शनै: शनै: काष्ठकला और कन्दरा-कला के प्रभाव से मुक्त हुई। पल्लव-काल की कला का विवेचन निम्नानुसार है—

(i) महेन्द्रवर्मन प्रथम शैली– इस शैली का विकास 600 ई० से 625 ई० तक हुआ। यह पल्लव-काल की प्रारम्भिक शैली है। इस शैली में महेन्द्रवर्मन प्रथम के शासनकाल में निर्मित स्तम्भयुक्त मण्डपों का निर्माण हुआ। इस शैली में निर्मित प्रमुख मण्डपों में नुन्दवल्लि, गुण्टूर जिले का अनन्तशयन का मण्डप तथा भैरव-कोण्ड (उत्तरी अर्काट जिला) के मण्डप विशेष प्रसिद्ध हैं। सभी मण्डप पहाड़ियों को काटकर बनाए गए हैं, इसीलिए इन्हें 'गुहामन्दिर' (Rock cut Temple) कहा गया है।

(ii) मामल्ल शैली– मामल्लपुरम में इस शैली का विकास हुआ। इसका काल 625 ई० से 674 ई० तक माना जाता है। मामल्लपुरम नामक नगर की स्थापना पल्लव राजा नरसिंहवर्मन प्रथम ने की थी। यह नगर समुद्र तट पर स्थित था।

मामल्ल-शैली में या तो मण्डपों का निर्माण हुआ या रथों का, कुल 10 मण्डप प्राप्त हुए हैं, जिनकी कला महेन्द्रवर्मन के काल की कला से अधिक विकसित है। महर्षि, वाराह और पंच-पाण्डव आदि मण्डप विशेष प्रसिद्ध हैं। इनकी स्थापत्य कला भी दर्शनीय है। पहाड़ी चट्टानों पर गंगावतरण, महिषासुर-वध, शेषशायी विष्णु, वाराह-अवतार, गोवर्धन-धारण के दृश्य अत्यन्त सुन्दरता से अंकित किए गए हैं।

रथ एक प्रस्तरीय मन्दिर होते थे। इस शैली में निर्मित रथों को सप्तपैगोडा (Seven pagodas) के नाम से भी पुकारा जाता है। कुल आठ रथ प्राप्त हुए, जो सभी सातवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध के हैं। ये रथ हैं— (क) द्रौपदी रथ, (ख) अर्जुन रथ, (ग) भीम रथ, (घ) धर्मराज रथ, (ङ) पिंडारि रथ, (च) गणेश रथ और (छ) बलैयान-कुट्टई रथ, (ज) सहदेव रथ।

इन रथों के विभिन्न भागों में काष्ठ-कला का प्रभाव भी दिखाई देता है। कुछ रथों की छत पिरामिड की भाँति है और कुछ के

ऊपर शिखर बना हुआ है। ये सभी रथ स्थापत्य की दृष्टि से अत्यन्त सराहनीय हैं। इनमें देवी-देवताओं, स्त्री-पुरुषों, पशु-पक्षियों की आकृतियों का सजीव रूप से चित्रण हुआ हैं।

(iii) राजसिंह शैली– इस शैली का विकास 700 ई० से लेकर 900 ई० तक हुआ है। यह शैली काष्ठ-कला से पूर्ण रूप से मुक्त है। इससे पूर्व गुफाओं को काटकर मन्दिर बनाए जाते थे। परन्तु इस शैली में स्वतन्त्र रूप से पत्थर की शिलाओं की सहायता से मन्दिर बनाए गए हैं। मामल्लपुरम में बना हुआ शीर मन्दिर इस शैली का अत्यन्त सुन्दर नमूना है। काँची के 'कैलाश मन्दिर' में राजसिंह शैली का विकसित रूप दिखाई देता है। इसका निर्माण पल्लव राजा राजसिंह के काल में हुआ था। पल्लव राजा की सभी विशेषताएँ यथा मण्डप के सुदृढ़ स्तम्भ, शिखर, चहारदीवारी, सिंह स्तम्भ, छोटे-छोटे अलंकृत कक्ष आदि इस मन्दिर में दृष्टिगोचर होते हैं।

राजसिंह शैली का सबसे अधिक विकसित रूप काँची में बने वैकुण्ठ पेरुमल के मन्दिर में दिखाई देता है। इस मन्दिर का गर्भगृह, मण्डप, प्रवेश द्वार सभी एक-दूसरे से पूर्ण रूप से सम्बद्ध हैं। पल्लव स्थापत्य-कला में इस मन्दिर का प्रमुख स्थान है।

(iv) अपराजित शैली– इस शैली का विकास पल्लवों के काल के अन्तिम चरण में हुआ। बहुर का मन्दिर इस शैली का प्रमुख उदाहरण है। इस शैली में स्तम्भों के शीर्ष भाग का अत्यधिक विकास हुआ।

मन्दिर-कला के विकास में पल्लव काल की विभिन्न शैलियों का महान् योगदान है। कला की शैलियों का क्षेत्र केवल भारत तक ही सीमित नहीं रहा, बल्कि दक्षिण-पूर्वी एशिया और वृहत्तर भारत की कला पर भी पल्लव कला का प्रभाव पड़ा।

2. पल्ल्व कौन थे? कला एवं संस्कृति के क्षेत्र में उनके योगदान का वर्णन कीजिए।

उ०– पल्लवों की उत्पत्ति– पल्लवों की उत्पत्ति का प्रश्न अत्यन्त विवादाग्रस्त है। कुछ विद्वानों का मत है कि पल्लव लोग उत्तर-पश्चिम के पार्थियनों की शाखा थे, जो कालान्तर में दक्षिण भारत की ओर पलायन कर गए। किन्तु दक्षिण भारत में पल्लवों के संक्रमण का कोई प्रमाण नहीं मिलता; अत: इस मत पर विश्वास नहीं किया जा सकता। इसके साथ-साथ कुछ अन्य विद्वानों का यह भी मत है, ''पल्लव दक्षिण भारत के आदिवासी थे और कदम्बों, पह्लवों, भरवारों आदि जातियों से उनका सम्बन्ध था।'' पल्लवों की उत्पत्ति के विषय में **डॉ० कृष्णस्वामी आयंगर** का मत है, ''संगम साहित्य में पल्लवों को तोण्डेयर कहा गया है और उनको उन नाग राजाओं का वंशज माना जाता है, जो सातवाहन सम्राटों के सामन्त थे।'' डॉ० काशीप्रसाद जायसवाल ने इस विषय पर लिखा है, ''पल्लव न तो विदेशी थे और न द्रविड, वरन् उत्तर भारत के अभिजातुकुलीन ब्राह्मण थे जिन्होंने सैनिक वृत्ति अपना ली थी और वाकाटकों की एक शाखा थे।'' **एच० कृष्णशास्त्री** का कहना है, ''पल्लव उस जाति से उत्पन्न हुए थे जो ब्राह्मणों तथा द्रविड़ों के सम्मिश्रण से उत्पन्न हुई थी।''

पल्लव वंश के प्रमुख शासक उपलब्धियाँ अथवा कार्य– पल्लव वंश के प्रमुख शासकों और उनकी उपलब्धियों का संक्षिप्त विवरण निम्नलिखित है—

(i) महेन्द्र वर्मन (600-630 ई०)– सिंहवर्मन की मृत्यु के उपरान्त महेन्द्र वर्मन सिंहासन पर बैठा। महेन्द्र वर्मन ने लगभग 600 ई० से 630 ई० तक शासन किया। वह अत्यन्त वीर और योग्य शासक था। पुलकेशिन द्वितीय पल्लव राज्य के उत्तरी प्रदेशों पर अधिकार करते हुए काँची की ओर अग्रसर हुआ, किन्तु वह महेन्द्र वर्मन के प्रतिरोध के कारण काँची पर अधिकार न कर सका। ऐसा समझा जाता है कि प्रारम्भ में महेन्द्र वर्मन जैन धर्म का अनुयायी था, किन्तु कालान्तर में उसने शैव धर्म ग्रहण कर लिया था। वह एक उच्चकोटि का विद्वान था और उसने 'विलास प्रहसन' नामक ग्रन्थ की रचना की थी।

(ii) नरसिंह वर्मन प्रथम (630-668 ई०)– महेन्द्र वर्मन की मृत्यु के उपरान्त उसका पुत्र नरसिंह वर्मन सिंहासन पर बैठा। उसने 630 ई० से 668 ई० तक राज्य किया। नरसिंह वर्मन के शासनकाल में भी पुलकेशिन द्वितीय ने पल्लवों पर आक्रमण किया, किन्तु पल्लवों ने लंका के राजा मानवर्मा की सहायता से पुलकेशिन को हरा दिया। पुलकेशिन ने पुन: एक विशाल सेना के साथ बादामी पर आक्रमण किया। इस युद्ध में पुलकेशिन द्वितीय वीरगति को प्राप्त हुआ, किन्तु कुछ समय पश्चात् पुलकेशिन के पुत्र विक्रमादित्य ने गंगनरेश की सहायता से अपने खोए हुए प्रदेशों को पुन: प्राप्त कर लिया। नरसिंह वर्मन ने चालों, चेरों, कलभ्रों, पाण्ड्यों आदि को युद्ध में पराजित कर दिया था। उसने काँची के निकट 'मामल्लपुरम्' बन्दरगाह को अत्यन्त वैभवशाली रूप प्रदान किया और इस स्थान पर अनेक मन्दिरों का निर्माण करवाया।

(iii) परमेश्वर वर्मन प्रथम (670-695 ई०)– नरसिंह वर्मन की मृत्यु के पश्चात् उसका पुत्र महेन्द्र वर्मन द्वितीय (668-670 ई०) सिंहासन पर बैठा, किन्तु दो वर्ष बाद ही उसकी मृत्यु हो गई। उसकी मृत्यु के उपरान्त उसका पुत्र परमेश्वर वर्मन प्रथम सिंहासन पर बैठा। उसका शासनकाल 670 ई० से 695 ई० था। परमेश्वर वर्मन का पाण्ड्य तथा चालुक्यों से संघर्ष हुआ। चालुक्यों ने विक्रमादित्य प्रथम के नेतृत्व में पल्लवों को पराजित करने में सफलता प्राप्त की और उन्होनें काँची पर भी अधिकार कर लिया। परमेश्वर वर्मन प्रथम शैव-धर्म का पोषक था। उसने काँची में एक अत्यन्त सुन्दर शिव मन्दिर का निर्माण करवाया तथा मामल्लपुरम् में भी अनेक मन्दिरों का निर्माण करवाया। 695 ई० में परमेश्वर वर्मन की मृत्यु हो गई।

(iv) नरसिंह वर्मन प्रथम (695-720 ई०)– परमेश्वर वर्मन की मृत्यु के उपरान्त उसका पुत्र नरसिंह वर्मन द्वितीय सिंहासन पर

बैठा। उसका शासनकाल 695 ई० से 720 ई० था। नरसिंह वर्मन एक विद्याप्रेमी एवं शान्तिप्रिय शासक था। उसके शासनकाल से सम्बन्धित किसी भी प्रकार के युद्ध का वर्णन उपलब्ध नहीं है। वह 'शिव' का भक्त था और उसने राजसिंह की उपाधि धारण की थी। उसने अपना एक राजदूत मण्डल चीन भेजा था। 720 ई० के लगभग नरसिंह वर्मन की मृत्यु हुई।

कला एवं संस्कृति के क्षेत्र में योगदान– इसके लिए विस्तृत उत्तरीय प्रश्न संख्या– 1 के उत्तर का अवलोकन करें।

3. ''राजेन्द्र चोल व राजराज चोल चोल वंश के महान शासक थे।'' कथन की समीक्षा कीजिए।

उ०– (i) राजराज चोल (985-1014 ई०)– राजराज प्रथम के बचपन का नाम अरिमोलि वर्मन था। वह 985 ई० के लगभग सिंहासन पर आसीन हुआ तथा उसने राजराज की उपाधि धारण की। राजराज प्रथम ने अपने प्रयासों से चोल के खोए हुए प्रदेशों को वैभव को पुन: प्राप्त करने का प्रयत्न किया। जिस समय वह सिंहासन पर बैठा, उस समय चोल साम्राज्य की स्थिति डाँवाडोल थी। सबसे पहले उसने केरल के राजाओं की नौसेना को समाप्त किया। तत्पश्चात् उसने पाण्ड्य वंश के शासक अमर भुजंग को पराजित किया तथा कोल, उदंग व कुर्ग पर अधिकार कर लिया। राजराज प्रथम ने लंका पर आक्रमण करके महिन्द पंचम की राजधानी अनुराधापुर को भी नष्ट कर दिया तथा उत्तरी लंका पर अधिकार कर लिया। उसने मंगवाड़ी, नीलम्बबड़ी, तादिंगबड़ी आदि पर आक्रमण करके उन्हें भी अपने अधिकार में ले लिया। वेंगी पर भी उसने विजय प्राप्त की तथा जराबोड़भूमि को सिंहासन से उतारकर शक्ति वर्मन को वहाँ का शासक बनाया। वेंगी पर अधिकार कर लेने से चालुक्यों एवं चोलों में संघर्ष हुआ। इस संघर्ष में राजराज प्रथम की पराजय हुई। राजराज ने अपने शासन के अन्तिम दिनों में कंलिग, लक्कद्वीप, मारद्वीप आदि पर विजय प्राप्त की। इस प्रकार, उसका साम्राज्य मद्रास प्रेसीडेंसी के दुर्ग, मैसूर व सिंहलद्वीप के उत्तरी भाग तक विस्तृत हो गया। आन्ध्र प्रदेश पर भी उसका आधिपत्य था। राजराज प्रथम ने 1014 ई० तक शासन किया था।

राजराज प्रथम एक महान् शासक, प्रशासक एवं वीर था। उसने अपने शासन में स्थानीय स्वशासन को महत्त्व प्रदान किया तथा राज्य की समस्त भूमि का नपवाया। उसने अपने शासनकाल में ही अपने पुत्र राजेन्द्र को अपना उत्तराधिकारी घोषित कर दिया था। राजराज शैव धर्म का अनुयायी था तथा उसने तंजौर में राजराजेश्वर मन्दिर का निर्माण कराया था। उसने अन्य धर्मों के प्रति सहिष्णुता की नीति को अपनाया। विष्णु के कई मन्दिरों का निर्माण भी उसने कराया था।

(ii) राजेन्द्र चोल (1014-1044 ई०)– राजेन्द्र चोल प्रथम राजराज प्रथम का पुत्र था तथा वह 1014 ई० के लगभग सिंहासन पर बैठा। वह एक पराक्रमी शासक था। उसने पश्चिमी चालुक्यों की शक्ति का विनाश किया। उसने लंका पर आक्रमण किया तथा लंका के सिंहासन पर अधिकार कर लिया। चेरों तथा पाण्ड्यों के राज्य पर भी उसने विजय प्राप्त की तथा उसे अपने राज्य का अंग बना लिया। पूर्वी चालुक्यों की शाखा के उत्तराधिकारी के प्रश्न पर उसका संघर्ष चालुक्य राजा जयसिंह द्वितीय से हुआ। इस युद्ध में राजेन्द्र प्रथम की विजय हुई, किन्तु इसी युद्ध के मध्य उसकी मृत्यु हो गई। 1021 ई० से 1025 ई० के मध्य उसने पूर्वी भारत का अभियान किया तथा एक विशाल सेना के साथ उड़ीसा होता हुआ बंगाल पहुँचा। बंगाल देश को पराजित करने के पश्चात् उसका संघर्ष गंगापार बंगाल के पालवंशीय महिपाल से हुआ। इस युद्ध में उसकी विजय हुई। 1025 ई० के लगभग राजेन्द्र प्रथम ने श्रीविजय (मालया, सुमात्रा, जावा प्रायद्वीप आदि) पर विजय प्राप्त की तथा वहाँ के शासक विजयोतुंग वर्मन की बन्दी कर लिया। जब उसने चोलों की अधीनता को स्वीकार कर लिया, तो उसे मुक्त कर दिया। पाण्ड्य एवं चेर शासकों ने राजेन्द्र प्रथम के विरुद्ध विद्रोह किया। राजेन्द्र प्रथम के पुत्र ने इस विद्रोह का दमन कर दिया तथा विद्राहियों को कठोर दण्ड दिया। दिग्विजयों के साथ-साथ राजेन्द्र प्रथम निर्माण-कार्यों में भी रुचि रखता था। वह विद्याप्रेमी शासक था। उसने अनेक विद्यालयों, भवनों, मन्दिरों तथा तालाबों का निर्माण कराया तथा गंगकोड चोलपुरम में अपनी नवीन राजधानी स्थापित की। 1044 ई० में राजेन्द्र प्रथम की मृत्यु हो गई।

राजराज प्रथम व राजेन्द्र प्रथम की इन उपलब्धियों को देखते हुए ही कुछ इतिहासकारों ने यह कहा है, ''राजराज प्रथम व राजेन्द्र चोल प्रथम चोल शक्ति के प्रमुख निर्माता थे।'' अत: राजेन्द्र चोल व राजराज चोल वंश के महान् शासक थे।

4. चोल प्रशासन पर एक विस्तृत टिप्पणी लिखिए।

उ०– चोल वंश भारत का एक प्राचीनकालीन वंश है। जयगोन्डार कृत कलिंगत्तुपराणि, ओट्टक्कट्टम कृत विक्रमचोल, शेक्किलार कृत पेरियरपुरायण, बुद्धमित्र कृत वीरशालियम आदि ग्रन्थों से चोलों के इतिहास का पता चलता है। चोल राजाओं के अभिलेख भी महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक स्त्रोत हैं। महाभारत, पुराण आदि ग्रन्थों से भी चोलों का वर्णन किया गया है। फिर भी चोलों की उत्पत्ति के विषय में विद्वानों के मतों में पर्याप्त मतभेद हैं। कुछ विद्वानों ने लिखा है कि 'चोल शब्द की उत्पत्ति के विषय में विद्वानों के मतों में पर्याप्त मतभेद है। कुछ विद्वानों ने लिखा है कि 'चोल शब्द की उत्पत्ति तमिल भाषा के शब्द 'चूल' से हुई है, जिसका अर्थ होता है 'पर्यटन करना'। इससे यह अर्थ निकलता है कि चोल एक पर्यटनशील जाति थी। इसके साथ ही कुछ विद्वान चोल वंश का अर्थ तमिल भाषा के शब्द 'चोलम्' से लगाते हैं, जिसका शाब्दिक अर्थ 'बाजरा' है अर्थात् चोल किसी ऐसे प्रान्तों के निवासी थे, जहाँ बाजरा अधिक होता होगा। चोलों की उत्पत्ति के विषय में डॉ० राजबली पाण्डेय ने लिखा है, ''चोल, 'चूल' शब्द से बना है। चूल का शुद्ध रूप चूड़ अर्थात् सिर है। दक्षिण भारत के प्राचीन राजाओं में चोल शिरोमणि थे, इसलिए इनको चोल कहा गया। चोल संस्कृत भाषा एवं साहित्य के प्रेमी थे; अत: इससे यह भी प्रतीत होता है कि चोल वंश भी उत्तर भारत से ही दक्षिण को गया था। कुछ अभिलेखों में चोलों को सूर्यवंशी बताया गया है।''

चोल वंश के प्रमुख शासक एवं उनकी उपलब्धियाँ– चोल वंश के प्रमुख शासकों की उपलब्धियाँ का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है–

(i) **प्रारम्भिक शासक–** प्रारम्भ में चोल पल्लवों के अधीन थे। प्रारम्भिक चोल शासकों में नेदुयदिकिल्ल, विजयालय (871 ई०) व आदित्य प्रथम (871-907 ई०) का उल्लेख हुआ है। ये सभी शासक पल्लवों के अधीन सामन्त थे।

(ii) **आदित्य प्रथम (871-907 ई०)–** आदित्य प्रथम विजयालय का पुत्र था। उसने पाण्ड्य शासक वरगुण वर्मन द्वितीय के विरुद्ध पल्लवों का साथ दिया। जिसके फलस्वरूप उसे पल्लव शासक से अनेक प्रान्तों की प्राप्ति हुई। आदित्य प्रथम एक महत्त्वाकांक्षी शासक था। वह पल्लव शासकों से स्वतन्त्र होना चाहता था। अपने उद्देश्य की प्राप्ति हेतु उसने पल्लवों के विरुद्ध विद्रोह कर दिया था तथा पल्लव नरेश की हत्या कर, पल्लव राज्य पर अधिकार कर लिया। आदित्य प्रथम शिवभक्त था। उसने अनेक शिव मन्दिरों का निर्माण कराया था।

(iii) **परान्तक प्रथम (907-953 ई०)–** आदित्य प्रथम की मृत्यु 907 ई० में हुई थी। उसकी मृत्यु के उपरान्त उसका पुत्र **परान्तक प्रथम** 907 ई० में चोल वंश के सिंहासन पर आसीन हुआ। वह भी एक महत्त्वाकांक्षी सम्राट था। उसने पाण्ड्यों को पराजित करके लंका पर आक्रमण कर दिया, किन्तु इस आक्रमण वे वह सफल न हुआ। राष्ट्रकूटों से भी उसका संघर्ष हुआ, जिसमें उसने राष्ट्रकूट नरेश कृष्णा तृतीय को पराजित करके 'वीर चोल' की उपाधि धारण की। कुछ समय पश्चात् कृष्ण तृतीय ने उस पर पुन: आक्रमण कर किया। इस बार चोलों को काँची एवं तंजौर आदि से वंचित होना पड़ा और चोल राज्य प्रात: छिन्न-भिन्न हो गया। परान्तक प्रथम की मृत्यु 953 ई० के लगभग थी।

(iv) **अन्धकार युग–** परान्तक प्रथम की मृत्यु के उपरान्त, लगभग 30 वर्ष की आगामी इतिहास के विषय में कुछ भी ज्ञात नहीं होता। इस काल में गण्डरादित्य, अरिजय, सुन्दर आदित्य द्वितीय, करिकाल और उत्तम चोल आदि शासक हुए, किन्तु ये शासक निर्बल थे। अत: इन शासकों के शासनकाल में कोई महत्त्वपूर्ण उपलब्धि नहीं हुई।

(v) **राजराज प्रथम (985-1014 ई०)–** राजराज प्रथम के बचपन का नाम अरिमोलि वर्मन था। वह 985 ई० के लगभग सिंहासन पर आसीन हुआ तथा उसने राजराज की उपाधि धारण की। राजराज प्रथम ने अपने प्रयासों से चोलों के खोए हुए प्रदेशों एवं वैभव को पुन: प्राप्त करने का प्रयत्न किया। जिस समय वह सिंहासन पर बैठा, उस समय चोल साम्राज्य की स्थिति डाँवाडोल थी। सबसे पहले उसने केरल के राजाओं की नौसेना को समाप्त किया। तत्पश्चात् उसने पाण्ड्य वंश के शासक अमर भुजंग को पराजित किया तथा कोल, उदंग व कुर्ग पर अधिकार कर लिया। राजराज प्रथम ने लंका पर आक्रमण करके महिन्द पंचम की राजधानी अनुराधापुर को भी नष्ट कर दिया तथा उत्तरी लंका पर अधिकार कर लिया। उसने गंगवाड़ी, नीलम्बबड़ी, तादिंगबड़ी आदि पर आक्रमण करके उन्हें भी अपने अधिकार में ले लिया। वेंगी पर भी उसने विजय प्राप्त की तथा जराबोड़भूमि को सिंहासन से उतारकर शक्ति वर्मन को वहाँ का शासक बनाया। वेंगी पर अधिकार कर लेने से चालुक्यों एवं चोलों में संघर्ष हुआ। इस संघर्ष में राजराज प्रथम की पराजय हुई। राजराज ने अपने शासन के अन्तिम दिनों में कलिंग, लक्कद्वीप, मारद्वीप आदि पर विजय प्राप्त की। इस प्रकार, उसका साम्राज्य मद्रास प्रेसीडेंसी के दुर्ग, मैसूर व सिंहलद्वीप के उत्तरी भाग तक विस्तृत हो गया। आन्ध्र प्रदेश पर भी उसका आधिपत्य था। राजराज प्रथम ने 1014 ई० तक शासन किया था।

राजराज प्रथम एक महान् शासक, प्रशासक एवं वीर था। उसने अपने शासन में स्थानीय स्वशासन को महत्त्व प्रदान किया तथा राज्य की समस्त भूमि का नपवाया। उसने अपने शासनकाल में ही अपने पुत्र राजेन्द्र को अपनाव उत्तराधिकारी घोषित कर दिया था। राजराज शैव धर्म का अनुयायी था तथा उसने तंजौर में राजराजेश्वर मन्दिर का निर्माण कराया था। उसने अन्य धर्मों के प्रति सहिष्णुता की नीति को अपनाया। विष्णु के कई मन्दिरों का निर्माणा भी उसने कराया था।

(vi) **राजेन्द्र प्रथम (1014-1044 ई०)–** राजेन्द्र प्रथम राजराज का प्रथम पुत्र था तथा वह 1014 ई० के लगभग सिंहासन पर बैठा। वह एक पराक्रमी शासक था। उसने पश्चिमी चालुक्यों की शक्ति का विनाश किया। उसने लंका पर आक्रमण किया तथा लंका के सिंहासन पर अधिकार कर लिया। चेरों तथा पाण्ड्यों के राज्य पर भी उसने विजय प्राप्त की तथा उसे अपने राज्य का अंग बना लिया। पूर्वी चालुक्यों की शाखा के उत्तराधिकारी के प्रश्न पर उसका संघर्ष चालुक्य राजा जयसिंह द्वितीय से हुआ। इस युद्ध में राजेन्द्र प्रथम की विजय हुई, किन्तु इसी युद्ध के मध्य उसकी मृत्यु हो गई। 1021 ई० से 1025 ई० के मध्य उसने पूर्वी भारत का अभियान किया तथा एक विशाल सेना के साथ उड़ीसा होता हुआ बंगाल पहुँचा। बंगाल देश को पराजित करने के पश्चात् उसका संघर्ष गंगापार बंगाल के विशालकीय महिपाल से हुआ। इस युद्ध में उसकी विजय हुई। 1025 ई० के लगभग राजेन्द्र प्रथम ने श्रीविजय (मालया, सुमात्रा, जावा प्रायद्वीप आदि) पर विजय प्राप्त की तथा वहाँ के शासक विजयोतुंग वर्मन की बन्दी कर लिया। जब उसने चोलों की अधीनता को स्वीकार कर लिया, तो उसे मुक्त कर दिया। पाण्ड्य एवं चेर शासकों ने राजेन्द्र प्रथम के विरुद्ध विद्रोह किया। राजेन्द्र प्रथम के पुत्र ने इस विद्रोह का दमन कर दिया तथा विद्राहियों को कठोर दण्ड दिया। दिग्विजयों के साथ-साथ राजेन्द्र प्रथम निर्माण-कार्यों में भी रुचि रखता था। वह विद्याप्रेमी शासक था। उसने अनेक विद्यालयों, भवनों, मन्दिरों तथा तालाबों का निर्माण कराया तथा गंगकोड चोलपुरम में अपनी नवीन राजधानी स्थापित की। 1044 ई० में राजेन्द्र प्रथम की मृत्यु हो गई।

(vii) राजाधिराज प्रथम (1044-1052 ई०)– राजेन्द्र प्रथम के उपरान्त उसका पुत्र राजाधिराज प्रथम सिंहासन पर आसीन हुआ। उसने पाण्ड्य, केरल तथा सिंहल राजाओं की शक्ति का अन्त किया और चालुक्यों की राजधानी कल्याणी पर विजय प्राप्त की। कुछ समय पश्चात् वह चालुक्य शासक सोमेश्वर से युद्ध करते हुए 1052 ई० में वीरगति को प्राप्त हुआ।

(viii) राजेन्द्र द्वितीय (1052-1064 ई०)– राजाधिराज की मृत्यु के उपरान्त उसका छोटा भाई राजेन्द्र द्वितीय राजा बना। वह जीवनपर्यन्त चालुक्यों से युद्ध करता रहा। उसने लंका के अधिकांश भाग पर अपना अधिकार बनाए रखा तथा 1064 ई० में उसकी मृत्यु हो गई।

(ix) वीर राजेन्द्र (1064-1070 ई०)– राजेन्द्र द्वितीय की मृत्यु के पश्चात् उसका भाई वीर राजेन्द्र प्रथम 1064 ई० में राजा बना। उसने तुंगभद्रा नदी के तट पर चालुक्य नरेश सोमेश्वर को हरा दिया। इस विजय के उपलक्ष्य में उसने तुंगभद्रा नदी के किनारे पर विजय-स्तम्भ का निर्माण कराया। सोमेश्वर की मृत्यु के पश्चात् उसका पुत्र सोमेश्वर द्वितीय चालुक्यों का राजा हुआ तथा उसको भी वीर राजेन्द्र प्रथम के आक्रमणों का सामना करना पड़ा। इसी समय सोमेश्वर द्वितीय को अपने छोटे भाई के विद्रोह का भी सामना करना पड़ा। वीर राजेन्द्र ने कूटनीति का प्रयोग करते हुए सोमेश्वर द्वितीय के छोटे भाई विक्रमादित्य से अपनी लड़की का विवाह कर दिया तथा उसे चालुक्य साम्राज्य के दक्षिणी भाग का सम्राट घोषित कर दिया। वीर राजेन्द्र का लंका नरेश विजयबाहु से भी युद्ध हुआ। 1070 ई० में वीर राजेन्द्र की मृत्यु हो गई।

(x) कुलोतुंग प्रथम (1070-1120 ई०)– वीर राजेन्द्र की मृत्यु के बाद उसका पुत्र अधिराजेन्द्र सिंहासन पर बैठा, किन्तु उसकी हत्या कर दी गई तथा उसके राज्य पर कुलोतुंग नामक पूर्वी चालुक्य ने अधिकार कर लिया। कुलोतुंग का पश्चिमी चालुक्यों से युद्ध हुआ तथा उसने पाण्ड्य शासकों एवं मालाबार के सामन्तों को पराजित करके कलिंग पर विजय प्राप्त की। वह एक कुशल प्रशासक था। 1120 ई० के लगभग कुलोतुंग की मृत्यु हो गई।

5. पल्लव वंश की प्रमुख उपलब्धियों पर प्रकाश डालिए।

उ०– उत्तर के लिए विस्तृत उत्तरीय प्रश्न संख्या– 1 के उत्तर का अवलोकन करें।

6. चालुक्य वंश के कुछ प्रमुख शासकों का उल्लेख कीजिए।

उ०– चालुक्य वंश– छठी शताब्दी में दक्षिण भारत में विशाल चालुक्य शक्ति का अभ्युदय हुआ। चालुक्य वंश की उत्पत्ति के विषय में निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता है। कुछ विद्वान् चालुक्यों की उत्पत्ति मध्य एशिया की गुर्जर जाति से मानते हैं। अभिलेखों में चालुक्यों के कुल तीन वंश थे–

(i) बादामी (वातापी) के चालुक्य या पूर्वकालीन पश्चिमी चालुक्य,
(ii) कल्याणी के उत्तरकालीन पश्चिमी चालुक्य तथा
(iii) वेंगी के पूर्वी चालुक्य।

(i) वातापी/बादामी के चालुक्य राजा–

(क) पुलकेशिन प्रथम (544-568 ई०)– पुलकेशिन प्रथम को बादामी के चालुक्य वंश का संस्थापक माना जाता है। **रणराज्य** के पुत्र पुलकेशिन प्रथम का शासनकाल 544 से 568 ई० तक माना जाता है। वह अपने परिवार का पहला महाराजा तथा इस वंश का वास्तविक संस्थापक भी था। उसने सत्याश्रय, श्रीपृथ्वीवल्लभ और रणविक्रम आदि उपाधियाँ धारण की थीं। पुलकेशिन प्रथम ने हिरण्यगर्भ, अश्वमेध, अग्निष्टोम, अग्निचयन, वाजपेय, बाहुसुवर्ण, और पुण्डरीक यज्ञ कराए थे। पुलकेशिन प्रथम की तुलना ययाति और दिलीप जैसे पौराणिक नायकों से की जाती है। पुलकेशिन को मानव-धर्म, पुराण, रामायण और महाभारत का अच्छा ज्ञान था। उसने वातापी के किले की नींव रखी, जो बीजापुर जिले में स्थित था।

(ख) कीर्तिवर्मन प्रथम (568-598ई०)– लगभग 568 ई० में पुलकेशिन प्रथम के पश्चात् कीर्तिवर्मन प्रथम शासक बना। उसने अपने पैतृक साम्राज्य का और अधिक विस्तार किया। उसने अंग, बंग, कलिंग, मगध, मुद्रक, केरल, गंग, मूषक, पाण्ड्य, तमिल, चोलिय, वैजयन्ती, कदम्ब, नल, मौर्य, कदम्ब आदि वंशों पर विजय प्राप्त की। सम्भवत: उसने पड़ोसी राज्यों को परास्त करके दक्षिणी महाराष्ट्र तथा मैसूर और मद्रास के कुछ प्रदेशों को जीतकर अपने साम्राज्य का प्रचार किया था।

(ग) मंगलेश (598-610 ई०)– कीर्तिवर्मन की मृत्यु 598 ई० में हुई। उस समय उसका छोटा पुत्र पुलकेशिन द्वितीय अवयस्क था, अत: उसके छोटे भाई मंगलेश ने पुलकेशिन द्वितीया के संरक्षक के रूप में चालुक्य शासन की बागडोर सँभाली। वह भागवत् धर्म का अनुयायी था और विष्णु को मानने वाला था। उसने कलचुरि राजा बुद्धराज को परास्त कर कोंकण पर अधिकार किया। अपने शासनकाल में ही मंगलेश ने अपने पुत्र सत्याश्रय-ध्रुवराज इन्द्रवर्मन को उत्तराधिकारी नियुक्त किया। इससे उसका भतीजा पुलकेशिन द्वितीय असन्तुष्ट हो गया और उसने विद्रोह कर दिया। मंगलेश और पुलकेशिन द्वितीय में युद्ध हुआ। पुलकेशिन ने मंगलेश को मौत के घाट उतारकर 610 ई० में चालुक्य सिंहासन को अपने अधिकार में ले लिया।

(घ) पुलकेशिन द्वितीय (610-642 ई०)– 610 ई० में सिंहासन प्राप्त करते ही पुलकेशिन द्वितीय को अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ा। गृह-युद्ध के फलस्वरूप चालुक्य शक्ति को बहुत बड़ा धक्का लगा था और अनेक अधीन सामन्तों ने अपने को स्वतन्त्र घोषित कर दिया था। उसके पड़ोसी राज्य उस पर आक्रमण करने की योजना बना रहे थे।

पुलकेशिन द्वितीय के सबसे बड़े प्रतिद्वन्द्वी गोविन्द और आप्पायिक थे। इन्होंने चालुक्य राज्य पर आक्रमण किया और वे भीमा नदी तक पहुँच गए थे। पुलकेशिन अत्यन्त चतुर था। उसने कूटनीति का आश्रय लेकर किसी प्रकार गोविन्दों को अपनी ओर मिला लिया तथा आप्पायिक को हरा दिया। इसके बाद पुलकेशिन ने कदम्बों की राजधानी वनवासी पर आक्रमण करके उस पर अपना अधिकार कर लिया। दक्षिणी किनारे के आलुप और दक्षिणी मैसूर के गंग कदम्बों के मित्र थे। कदम्बों को पराजित करने के पश्चात् उसने इनकी ओर भी ध्यान दिया और उसने इन दोनों को भी पराजित किया। गंग राजा दुर्विनीत ने अपनी पुत्री का विवाह पुलकेशिन द्वितीय से कर दिया। मौर्यों का राज्य उत्तरी कोंकण में था। इनकी राजधानी पुरी थी। पुलकेशिन द्वितीय ने उस पर आक्रमण कर पुरी पर अपना अधिकार जमा लिया। पुलकेशिन द्वितीय के तेजी से बढ़ते हुए कदमों को देखकर लाट, मालव और गुर्जर अत्यधिक भयभीत हो गए थे और उन्होंने पुलकेशिन के सम्मुख नत-मस्तक होना स्वीकार कर लिया।

पुलकेशिन के शासनकाल में थानेश्वर का राजा हर्षवर्धन अत्यन्त पराक्रमी था। उत्तर भारत में उसका बहुत प्रभाव था। अत: पुलकेशिन और हर्षवर्धन में युद्ध होना स्वाभाविक था। रेवा (नर्मदा नदी) के तट पर हर्षवर्धन और पुलकेशिन द्वितीय में भयानक युद्ध हुआ, परिणामस्वरूप हर्ष की पराजय हुई।

पूर्वी चालुक्यों की इस शाखा में महेन्द्रवर्मन नामक अत्यन्त योग्य, विद्वान् और कला-प्रेमी राजा राज्य करता था। दक्षिण में यह पुलकेशिन का सबसे बड़ा विरोधी था। पुलकेशिन ने पल्लवराज पर आक्रमण किया और पुल्लूर तक बढ़ गया। किन्तु वह पल्लवों की राजधानी काँची पर अधिकार न कर सका। उसका राज्य बंगाल की खाड़ी से लेकर अरब सागर तक के एक विशाल भू-भाग तक विस्तृत था। पल्लवों को सदैव दबाए रखने के लिए उसने पाड्यों और चोलों से मित्रता कर ली थी।

पल्लवराज महेन्द्रवर्मन की मृत्यु 630 ई० में हो गई। उसके बाद उसका पुत्र नरसिंहवर्मन पल्लव ने सिंहासन की डोर अपने हाथ में ले ली। उसके शासनकाल में पुलकेशिन द्वितीय ने काँची पर पुन: अधिकार करना चाहा। नरसिंहवर्मन ने लंका के एक राजकुमार मानवर्मा की सहायता से पुलकेशिन को पराजित किया। तत्पश्चात् पुलकेशिन द्वितीय के राज्य पर आक्रमण करके उसकी राजधानी बादामी को अपने अधिकार में ले लिया। निरन्तर युद्ध करते हुए पुलकेशिन मारा गया और नरसिंहवर्मन ने वातापीकोंड की उपाधि धारण की।

पुलकेशिन द्वितीय अत्यन्त वीर और साहसी राजा था। एक समय उसने समस्त भारतवर्ष में अपनी विजय का डंका बजा दिया था। कहा जाता है कि ह्वेनसांग पुलकेशिन द्वितीय के राज्य में गया था। उसने पुलकेशिन और उसके राज्य के विषय में विशद् वर्णन किया है।

वातापी के चालुक्यों का अन्त– पुलकेशिन द्वितीय की मृत्यु के पश्चात् उसके राज्य में चारों ओर अव्यवस्था फैल गई तथा अनेक छोटे-छोटे राजाओं ने बहुत कम समय के लिए शासन किया। ये राजा सदैव आपस में संघर्षरत रहे। पल्लवों से निरन्तर युद्ध और सामन्तों के विद्रोहों के कारण चालुक्यों की शक्ति नष्ट हो गई और सन् 755 ई० में वातापी के चालुक्यों का पतन हो गया।

(ii) कल्याणी के चालुक्य शासक– प्राप्त अभिलेखों के अनुसार कल्याणी के चालुक्य वंश का संस्थापक तैलप द्वितीय था।

(क) तैलप द्वितीय (973-997 ई०)– तैलप आरम्भ में राष्ट्रकूटों का सामन्त-शासक था। वह बहुत महत्वाकांक्षी था तथा अपनी महत्वाकांक्षा की पूर्ति के सुअवसर की खोज में था। जब परमारों ने राष्ट्रकूटों की राजधानी मान्याखेट पर आक्रमण किया तो वह परिस्थिति का लाभ उठाने के लिए तत्पर हो उठा।

परमारों ने मान्याखेट को नष्ट-भ्रष्ट कर डाला। राष्ट्रकूट कर्क द्वितीय सँभल भी नहीं पाया था कि तैलप ने उस पर आक्रमण कर दिया और उसे परास्त कर कहीं दूर भगा दिया। इससे उसकी शक्ति की वृद्धि हुई, किन्तु अभी उसके पैर जम भी न पाए थे कि राष्ट्रकूट गद्दी के लिए उत्तराधिकार के युद्ध आरम्भ हो गए। इन्द्र चतुर्थ तथा अन्य महत्वाकांक्षी चालुक्यों को तैलप ने दबा दिया और स्वयं मान्याखेट का शासक बन बैठा।

सिंहासनारूढ़ होने पर तैलप ने सैनिक अभियान प्रारम्भ किए। उसने सबसे पहले दक्षिणी गुजरात (लाट) पर आक्रमण कर उसे जीत लिया और वहाँ बारप्पा को शासक नियुक्त किया। किन्तु मूलराज सोलंकी ने बारप्पा को वहाँ से खदेड़ दिया। इसके बाद तैलप ने कुन्तल (कनारा) प्रदेश पर अधिकार कर लिया और चेदियों तथा चोलों को पराजित किया। तैलप का परमार नरेश वाक्पति मुंज से निरन्तर युद्ध चलता रहा और एक युद्ध में उसने मुंज की हत्या कर दी। तैलप ने कुल चौबीस वर्षों तक शासन किया और लगभग 997 ई० में उसकी मृत्यु हो गई।

(ख) सत्याश्रय (997-1008 ई०)– तैलप द्वितीय के पश्चात् कल्याणी के चालुक्यों पर अधिकतर चोलों के तेजी से आक्रमण होने लगे। चोल नरेश राजराज प्रथम ने उसके राज्य पर आक्रमणों की बाढ़ सी ला दी थी। लेकिन तैलप का पुत्र सत्याश्रय किसी प्रकार से सँभल गया। सत्याश्रय ने 997 से 1008 ई० तक शासन किया।

(ग) विक्रमादित्य पंचम (1008-1015 ई०)– सत्याश्रय के बाद उसका भतीजा विक्रमादित्य पंचम राजा हुआ। इसके समय

में चालुक्य-परमार युद्ध पुन: आरम्भ हो गया। परमार नरेश भोज अपने चाचा वाक्पति मुंज की मृत्यु का बदला लेना चाहता था। विक्रमादित्य पर आक्रमण कर उसने चालुक्यों को परेशान कर दिया किन्तु अन्त में उसकी पराजय हुई।

(घ) विक्रमादित्य षष्ठ (1076-1126 ई०)– विक्रमादित्य षष्ठ ने स्वयं को 1076 ई० में कल्याणी साम्राज्य का अधिपति घोषित किया और नया सम्वत (चालुक्य सम्वत) प्रारम्भ किया।

वास्तव में विक्रमादित्य षष्ठ अपने वंश का सबसे महान शासक था। वह महान विजेता था, किन्तु शान्ति के समय वह विद्याव्यसनी तथा कला-प्रेमी भी था। उसने कश्मीर के कवि **बिल्हण** को अपनी राजसभा में बुलाया था। बिल्हण ने विक्रमादित्य षष्ठ के विषय में एक ग्रन्थ लिखा। इस ग्रन्थ का नाम **विक्रमांकदेवचरित** है। हिन्दू-विधि के व्याख्यातकार तथा **मिताक्षरा** के रचयिता **विज्ञानेश्वर** को भी उसका संरक्षण प्राप्त था।

वेंगी का चालुक्य वंश– वेंगी वातापी के चालुक्यों की ही एक शाखा थी। ये इतिहास में पूर्वी चालुक्यों के नाम से भी जाने जाते हैं। पुलकेशिन द्वितीय ने अपने भाई विष्णुवर्धन (624-641 ई०) को वेंगी का शासक नियुक्त किया था। बाद में इन्द्र भट्टारक (673 ई०) विष्णुवर्धन द्वितीय (673-682 ई०) और यंगी युवराज (682-706 ई०) ने सामन्त शासक के रूप में राज्य किया। इसके बाद विष्णुवर्धन द्वितीय के पुत्र जयसिंह द्वितीय (706-718 ई०) ने स्वतन्त्र राज्य की स्थापना की। विष्णुवर्धन तृतीय (719-755 ई०), विजयादित्य प्रथम (755-772 ई०), विष्णुवर्धन चतुर्थ (772-808 ई०) विजयादित्य द्वितीय (808-847 ई०) विष्णुवर्धन पंचम (847-849 ई०), विजयादित्य तृतीय (849-892 ई०) इस वंश के प्रतिभाशाली शासक थे। अत: इस राजवंश के शासकों ने लगभग 500 वर्ष तक शासन किया।

7. बहमनी राज्य के उद्भव व पतन पर विस्तृत टिप्पणी लिखिए।

उ०– बहमनी राज्य की स्थापना– मुहम्मद बिन तुगलक के शासनकाल में सरदार इस्माइल नामक व्यक्ति ने अमीरों का समर्थन प्राप्त कर दौलताबाद पर अधिकार कर लिया और नासिरुद्दीन शाह के नाम से वहाँ का सुल्तान बन गया। वह अयोग्य था इसलिए अमीरों ने 3 अगस्त, 1347 ई० को उसके स्थान पर हसन नामक व्यक्ति को शासक बनाया। हसन अबुल मुजफ्फर बहमनशाह के नाम से सिंहासन पर आसीन हुआ। इस सन्दर्भ में **फरिश्ता** लिखता है, ''हसन गंगू ब्राह्मण के यहाँ नौकर था। ब्राह्मण ने उससे प्रसन्न होकर सुल्तान होने की भविष्यवाणी की थी, इसलिए हसन ने बहमनी की उपाधि धारण की थी।'' कुछ विद्वानों का मत है कि यह कहानी कपोल-कल्पित है। हसन एक ईरानी वीर बहमन का वंशज था, इसलिए उसने बहमनशाह की उपाधि धारण की थी। इस प्रकार, 3 अगस्त 1347 ई० को हसन ने बहमनी वंश के शासन की नींव डाली थी।

बहमनी वंश के मुख्य शासक–

बहमनी राज्य का उत्थान– बहमनी वंश के शासकों ने 1347 ई० से 1517 ई० तक राज्य किया। इस वंश के प्रमुख शासकों का संक्षिप्त परिचय निम्नलिखित है—

(i) हसनशाह (1347-1358 ई०)– हसन बहमनी वंश का प्रथम सुल्तान था। उसने गुलबर्गा को अपनी राजधानी बनाया। उसने अपने सम्पूर्ण साम्राज्य को गुलबर्गा, दौलताबाद, बरार तथा बीदर आदि चार प्रान्तों में विभाजित किया था। प्रत्येक प्रान्त का एक सूबेदार होता था। कुछ विद्वानों का ऐसा मत है कि हसनशाह गुलबर्गा के एक सन्त गेसूदराज का भक्त था। इसी कारण उसने भी गुलबर्गा को पवित्र स्थान मानकर उसे अपनी राजधानी बनाया था। हसन ने 1358 ई० तक राज्य किया था।

(ii) मुहम्मदशाह प्रथम (1358-1373 ई०)– हसन की मृत्यु पर उसका ज्येष्ठ पुत्र मुहम्मदशाह के नाम से सुल्तान हुआ। उसने विजयनगर तथा वारंगल के राजाओं से युद्ध किया और हिन्दुओं के मन्दिरों को तुड़वाया। उसने तेलंगाना के राजा को युद्ध में हराया था। वह अत्यन्त निर्दयी शासक था तथापि उसने अपने राज्य में अनेक सुधार किए थे। 1373 ई० में उसकी मृत्यु हो गई।

(iii) मुजाहिद शाह (1373-1377 ई०)– मुहम्मदशाह की मृत्यु के बाद उसका पुत्र अलाउद्दीन मुजाहिद शाह गद्दी पर बैठा। उसके शासनकाल में विजयनगर राज्य के साथ दो बार युद्ध हुआ। इन युद्धों में उसे विजयश्री प्राप्त नहीं हुई। अन्त में उसे अयोग्य समझकर उसके चचेरे भाई दाऊद ने गद्दी से उतार दिया और उसकी हत्या कर दी।

(iv) दाऊद शाह (1377-1378 ई०)– दाऊद ने अल्पकाल तक ही राज्य किया। मई 1378 ई० में उसका वध कर दिया गया और उसके बाद हसन का एक पौत्र मुहम्मदशाह सिंहासन पर बैठा।

(v) मुहम्मदशाह द्वितीय (1378-1397 ई०)– 1378 ई० में दाऊद की मृत्यु के बाद अमीरों ने मुहम्मदशाह को गद्दी पर बैठाया। मुहम्मदशाह द्वितीय बहमनी राज्य के संस्थापक हसनशाह का पौत्र था। वह अत्यन्त शान्तिप्रिय होने के कारण युद्धों से दूर रहा। उसने अपने पड़ोसी राज्य से मित्रता स्थापित की। उसके शासनकाल में एक भंयकर अकाल पड़ा था। उसने मालवा तथा गुजरात के शासकों से अनाज मँगवाकर अपनी प्रजा की आवश्यकताओं की पूर्ति की। सुल्तान मुहम्मदशाह द्वितीय अत्यन्त उदार व्यक्ति था। उसने जन-कल्याण के लिए अनेक मस्जिदें बनवाईं और शिक्षण संस्थाएँ भी खुलवाई। 1397 ई० में उसकी मृत्यु हुई। मुहम्मदशाह द्वितीय की मृत्यु के उपरान्त उसके दो पुत्र 6-6 महीने के लिए गद्दी पर बैठे, जो अत्यन्त अयोग्य सिद्ध हुए।

(vi) **फिरोजशाह (1398-1422 ई०)–** मुहम्मदशाह के दोनों पुत्रों के शासन की समाप्ति पर 1398 ई० में फिरोजशाह गद्दी पर बैठा। वह हसन का एक अन्य गौत्र था। उसने ताजुद्दीन फिरोजशाह की उपाधि धारण की थी। उसके शासनकाल में हिन्दू राज्य विजयनगर के शासकों ने बहमनी राज्य को खूब लूटा। फिरोजशाह विजयनगर के शासकों का सामना करने के स्थान पर गद्दी छोड़कर भाग गया। उसकी कायरता देखकर उसके भाई अहमदशाह ने शासन की बागडोर अपने हाथों में सभाँल ली।

(vii) **अहमदशाह (1422-1435 ई०)–** 1422 ई० में अहमदशाह बहमनी राज्य का सुल्तान हुआ। गद्दी पर बैठते ही उसने एक विशाल सेना लेकर विजयनगर राज्य को रौंद डाला। उसने लगभग 20 हजार स्त्रियों और बच्चों को मौत के घाट उतार दिया और विजयनगर से तीन हाथियों पर बहुमूल्य रत्न लादकर लाया। 1424 ई० में उसने वारगंल पर आक्रमण करके उसका अधिकांश भाग अपने साम्राज्य में मिला लिया। 1429 ई० में अहमदशाह ने कोंकण, गुजरात तथा मालवा आदि पर आक्रमण किए। इन आक्रमणों में उसने हिन्दुओं पर बहुत अधिक अत्याचार किए। उसने अपने शासनकाल में बीदर नामक नगर की स्थापना की थी और उसी को अपनी राजधानी बनाया था। 1435 ई० में सुल्तान अहमदशाह का स्वर्गवास हो गया।

(viii) **अलाउद्दीनशाह द्वितीय (1435-1457 ई०)–** अहमदशाह की मृत्यु के उपरान्त उसका पुत्र अलाउद्दीनशाह द्वितीय के नाम से सुल्तान हुआ। वह दयालु प्रवृत्ति का था। उसके शासनकाल में अनेक युद्ध हुए। उसने विजयनगर के देवराय द्वितीय को युद्ध में हराया और उससे कर वसूल किया। उससे हिन्दू राज्य कोंकण को जीता, खान देश के आक्रमण को विफल किया तथा संगमेश्वर के राजा की पुत्री से बलपूर्वक विवाह किया। यद्यपि वह अत्यन्त विलासी सुल्तान था, फिर भी उसने बीदर में एक चिकित्सालय और अनेक विद्यालयों व मसजिदों का निर्माण करवाया था।

(ix) **हुमायूँ (1457-1461 ई०)–** अलाउद्दीनशाह के बाद हुमायूँ गद्दी पर बैठा। वह अत्यन्त क्रूर था। उसने अपने शासनकाल में महमूद गवाँ नामक एक योग्य व्यक्ति को वजीर के पद पर नियुक्त किया। उसकी क्रूरता से तंग आकर उसके किसी नौकर ने उसका वध कर दिया। उसकी मृत्यु से सभी लोग प्रसन्न हुए। उसे इतिहास में 'जालिम सुल्तान' के नाम से जाना जाता है।

(x) **निजामशाह (1461-1463 ई०)–** 1461 ई० में हुमायूँ की हत्या हो जाने पर, निजामशाह, (हुमायूँ का पुत्र) आठ वर्ष की आयु में गद्दी पर बैठा। महमूद गवाँ ने उसकी मृत्यु को संरक्षिका बनाकर शासन का कार्य-भार स्वयं सँभाला, किन्तु दुर्भाग्य से 2 वर्ष बाद ही, 1463 ई० में निजामशाह की मृत्यु हो गई।

(xi) **मुहम्मदशाह तृतीय (1463-1482 ई०)–** सुल्तान निजामशाह की मृत्यु के बाद उसका विलासप्रिय चाचा मुहम्मदशाह तृतीय के नाम से सुल्तान बना। उसके शासनकाल में शासन की समस्त शक्तियाँ प्रधान वजीर महमूद गवाँ के हाथों में चली गईं। प्रकृति ने भी मुहम्मदशाह का साथ नहीं दिया। 1470 ई० में एक भयंकर अकाल पड़ा जिससे राज्य की स्थिति अत्यन्त शोचनीय हो गई। मुहम्मदशाह स्थिर बुद्धि का सुल्तान नहीं था। उसने बहकावे में आकर मदिरा के नशे में अपने स्वामिभक्त महमूद गवाँ का वध करा दिया। इसके उपरान्त ही बहमनी सल्तनत का पतन प्रारम्भ हो गया। 1482 ई० में इस अयोग्य शासक मुहम्मदशाह की मृत्यु हो गई।

(xii) **महमूदशाह (1482-1517 ई०)–** मुहम्मदशाह तृतीय की मृत्यु के उपरान्त उसके पुत्र महमूदशाह का शासनकाल प्रारम्भ हुआ। वह इतना अयोग्य निकला कि शासन की समस्त शक्ति सुल्तान के वजीर मलिक नाइब के हाथों में आ गई। कुछ समय उपरान्त सरदारों के एक षड्यन्त्र के फलस्वरूप मलिक नाइब की हत्या हो गई। तत्पश्चात् शासन की समस्त शक्ति नए वजीर कासिम बरीद के पास आ गई। कासिम बरीद और महमूदशाह के विरुद्ध निरन्तर षड्यन्त्र चलते रहे। सुल्तान की अयोग्यता के कारण बहमनी सल्तनत पाँच भागों में विभाजित हो गई, जिन्हें निजामशाही (अहमदनगर, आदिलशाही (बीजापुर), इमामशाही (बरार), कुतुबशाही (गोलकुण्डा) और बरीदशाही (बीदर) राज्यों के नाम से पुकारा गया।

बहमनी राज्य का पतन– सुल्तान महमूदशाह की मृत्यु के पश्चात् बहमनी राज्य का अन्तिम सुल्तान कलीम उल्लाह हुआ, किन्तु महत्त्वाकांक्षी अमीर बरीद ने उससे सिंहासन छीन लिया। इस प्रकार के अयोग्य सुल्तानों की पारस्परिक वैमनस्यता के फलस्वरूप शीघ्र ही बहमनी राज्य का पतन हो गया।

बहमनी राज्य के पतन के कारण– बहमनी राज्य के पतन के लिए अनेक कारण उत्तरदायी थे, जिनमें बहमनी सुल्तानों की अयोग्यता एवं निरकुंशता, विजयनगर से उसका निरन्तर संघर्ष, विदेशी अमीरों का विश्वासघात, महमूद खाँ का शाप, अमीरों में मतभेद, हिन्दुओं का विरोध आदि कारण महत्त्वपूर्ण थे।

8. विजयनगर व बहमनी राज्य के पारस्परिक संघर्ष व उसके कारणों की विवेचना कीजिए।

उ०– विजयनगर व बहमनी राज्य के पारस्परिक संघर्ष व उसके कारण– 14वीं शताब्दी में जब तुगलक सुल्तानों की शक्ति कमजोर हुई तो दक्षिण में दो शक्तिशाली राज्यों का उदय लगभग एक ही साथ हुआ। ये राज्य थे— बहमनी और विजयनगर। इन दोनों राज्यों के मध्य रायचूर-दोआब के स्वामित्व के प्रश्न पर दीर्घ समय तक संघर्ष होता रहा। इस संघर्ष ने अन्ततः दोनों राज्यों का विनाश भी कर दिया। इस संघर्ष के मूलतः निम्नलिखित कारण थे—

(i) **भौगोलिक कारण–** ऐतिहासिक पृष्ठभूमि की दृष्टि से दक्षिण भारत का यह क्षेत्र रायचूर-दोआब पर अधिकार करने के लिए प्राचीनकाल से चालुक्य, पल्लव, राष्ट्रकूट और चोल शासकों के संघर्ष का क्षेत्र बना रहा था। पड़ोसी राज्य होने के

कारण इनमें पारस्परिक प्रतिस्पर्धा होना भी स्वाभाविक था। दोनों राज्यों के धार्मिक विभेद ने इस संघर्ष को उत्पन्न ही नहीं किया बल्कि उसे बढ़ावा दिया तथा संघर्ष को क्रूर स्वरूप प्रदान किया।

(ii) **राजनीतिक कारण–** विजयनगर–बहमनी संघर्ष का एक अन्य प्रमुख कारण राजनीतिक था। जिन परिस्थितियों में दोनों राज्यों का उदय हुआ था, उसमें राजनीतिक प्रतिद्वन्द्विता निश्चित थी। बहमनी राज्य तीन ओर से क्रमश: मालवा, गुजरात और उड़ीसा से घिरा हुआ था। अत: इसका विस्तार सिर्फ तुंगभद्रा के दक्षिण में ही सम्भव था। इसी प्रकार विजयनगर के विस्तार का मार्ग सिर्फ तुंगभद्रा के उत्तर में था, क्योंकि यह राज्य तीनों ओर से समुद्र से घिरा हुआ था। संक्षेप में दोनों राज्यों का विस्तार रायचूर–दोआब में ही सम्भव था। इसलिए रायचूर–दोआब पर आधिपत्य स्थापित करने के लिए इन दोनों राज्यों के मध्य लम्बा संघर्ष चला।

(iii) **आर्थिक कारण–** विजयनगर–बहमनी संघर्ष के लिए आर्थिक कारण भी उत्तरदायी थे। इतिहासकार फरिश्ता के विवरण से भी पता चलता है कि जब विजयनगर के शासक बहमनी राज्य को तय की गई वार्षिक कर की राशि देना बन्द कर देते थे तब दोनों राज्यों के मध्य संघर्ष आरम्भ हो जाता था। संघर्ष के मूल में रायचूर–दोआब की समस्या थी। तुंगभद्रा और कृष्णा नदी के मध्य का भाग रायूचर–दोआब कहलाता था। यह भाग कृषि की दृष्टि से बहुत उपजाऊ था। इसी क्षेत्र में दक्षिण भारत के अधिकांश महत्त्वपूर्ण बन्दरगाह थे। इसके अतिरिक्त यह क्षेत्र लोहा और हीरों की खानों के लिए प्रसिद्ध था। इस कारण यह क्षेत्र आर्थिक दृष्टि से अत्यधिक लाभदायक था। अतएव ये दोनों राज्य इस रायचूर–दोआब पर अधिकार करने के लिए संघर्षरत रहे। इसके अतिरिक्त क्योंकि यह क्षेत्र दोनों राज्यों की सीमाओं पर था, इस कारण अधिकांशत: यह इन दोनों राज्यों का युद्ध–स्थल भी बना।

(iv) **धार्मिक विद्वेष–** अनेक समकालीन एवं आधुनिक इतिहासकारों का मानना है कि दोनों राज्यों का धार्मिक विभेद संघर्ष का मुख्य कारण था। विजयनगर एक हिन्दू राज्य था, यह हिन्दू सभ्यता एवं संस्कृति का केन्द्र था, जबकि बहमनी राज्य इस्लामी संस्कृति का केन्द्र। अत: दोनों राज्यों में प्रतिद्वन्द्विता एवं प्रतिस्पर्धा होना आवश्यक था। एक समकालीन इतिहासकार अजीजउल्लाह तबतबा ने भी दोनों राज्यों के मध्य संघर्ष का मुख्य कारण धार्मिक माना है, किन्तु तबतबा का यह मत एकांगी और धार्मिक विद्वेष से पूर्ण है। आधुनिक इतिहासकार इस मत के पक्ष में नहीं है।

स्पष्टत: विजयनगर–बहमनी राज्य का संघर्ष दक्षिण भारत में हुए पहले के संघर्षों की पुनरावृत्ति थी। इस संघर्ष के लिए मुख्यत: राजनीतिक और धार्मिक कारण उत्तरदायी थे। इतिहासकार **हबीब** और **निजामी** के शब्दों में, ''बहमनी–विजयनगर युद्ध धर्मयुद्ध नहीं थे, बल्कि धर्मनिरपेक्ष संघर्ष थे, जिनका उद्देश्य सम्पत्ति और प्रदेश प्राप्त करना था।''

9. विजयनगर की शासन-व्यवस्था पर प्रकाश डालिए।

उ०– विजयनगर साम्राज्य की शासन-व्यवस्था–

(i) **केन्द्रीय व्यवस्था–** विजयनगर साम्राज्य में निरंकुश राजतन्त्रात्मक शासन–व्यवस्था थी। राज्य की सम्पूर्ण शक्ति का स्रोत राज्य ही होता था। वही साम्राज्य का सर्वोच्च सैनिक, असैनिक तथा न्यायिक अधिकारी होता था किन्तु इतना शक्तिशाली होते हुए भी वह अत्याचारी अथवा उत्तरदायित्वहीन निरंकुश शासक न था। वह धर्मानुसार शासन चलाता था और राज्य तथा प्रजा के हितों का सदैव ध्यान रखता था। कृष्णदेव राय जो कि विजयनगर का सबसे महान् शासक हुआ है, ने अपनी पुस्तक अमुक्तमाल्यद में लिखा है–''मुकुटधारी राजा को सदैव धर्म पर दृष्टि रखते हुए शासन करना चाहिए····· राजा को अपने आसपास राजनीति में दक्ष लोगों को एकत्र करके शासन करना चाहिए····· प्रजा पर हलका कर लगाना चाहिए। शत्रुओं को शक्ति द्वारा कुचलकर उनके कार्यों को रोकना चाहिए। सबके साथ मित्रतापूर्वक व्यवहार करना चाहिए।''

राजा को शासनकार्य में सहायता देने के लिए एक मन्त्रिपरिषद् होती थी, जिसमें सम्भवत: 20 सदस्य होते थे। प्रधानमन्त्री, महासेनापति तथा मुख्य कोषाध्यक्ष, मन्त्रिपरिषद् के प्रमुख सदस्य होते थे। मन्त्रियों की नियुक्ति राजा द्वारा ही की जाती थी और वे उसकी इच्छापर्यन्त ही अपने पदों पर रह सकते थे। मन्त्रियों के अतिरिक्त अन्य पदाधिकारी भी होते थे; जैसे– रत्न भण्डार का अध्यक्ष, व्यापार विभाग का अध्यक्ष, पुलिस अध्यक्ष, अश्वशाला का अध्यक्ष इत्यादि।

राजा का शासन कार्य में परामर्श देने के लिए एक बड़ी समिति भी होती थी, जिसमें मन्त्रियों के अलावा विभिन्न प्रान्तों के राज्यपाल, पुरोहित, विद्वान एवं कवि सम्मिलित होते थे। इस समिति के सभी सदस्यों की नियुक्ति भी राजा के द्वारा ही की जाती थी। विजयनगर के शासक दरबार के वैभव पर बहुत अधिक ध्यान देते थे और उस पर बहुत अधिक धन खर्च किया जाता था।

(ii) **स्थानीय शासन–** प्रान्तों को मण्डलों तथा मण्डलों को जिलों में बाँटा गया था। जिले को कोट्टम या वलनाडु कहते थे। जिले को परगनों या ताल्लुकों में बाँटा गया था, जिन्हें नाडु कहते थे। नाडु मेलग्रामों में विभाजित थे, जिसमें पचास गाँव होते थे। प्रशासन की सबसे छोटी इकाई उर कहलाती थी। गाँव को मोहल्लों में बाँटा गया था। गाँव के अधिकारी के पर पैतृक होते थे। ये अधिकारी थे— सेनटेयवा (गाँव की आय–व्यय के देखभाल करने वाला), तलस (चौकीदार), बेगरा (बेगार अथवा मजदूरी की देखभाल करने वाला) आदि।

(iii) प्रान्तीय शासन– शासन की सुविधा के लिए विजयनगर साम्राज्य 6 प्रान्तों में बँटा हुआ था। डोमिंगोस पेइज के अनुसार विजयनगर साम्राज्य 200 प्रान्तों में विभक्त था। किन्तु उसके इस कथन को अधिकांश विद्वान् स्वीकार नहीं करते। प्रत्येक प्रान्त एक सूबेदार की अधीनता में होता था, जिसे नायक कहते थे। प्रान्त की सैनिक, असैनिक तथा न्याय सम्बन्धी शक्ति सूबेदार के हाथों में होती थी, किन्तु उसे आय-व्यय का लेखा केन्द्रीय सरकार के सम्मुख प्रस्तुत करना पड़ता था। यद्यपि राजा का सूबेदारों पर पूर्ण नियन्त्रण रहता था, किन्तु फिर भी अपने प्रान्तों में वे विस्तृत शक्तियों को उपयोग करते थे।

(iv) सैन्य व्यवस्था– सेना में मुख्यतया हाथी, घुड़सवार तथा पैदल सैनिक होते थे। तत्कालीन लेखों के अनुसार तोपखाना तथा जल सेना भी सैनिक संगठन के अंग थे, किन्तु उनके संगठन के विषय में विशेष जानकारी उपलब्ध नहीं है। पुर्तगालियों से अच्छे अरबी तथा ईरानी घोड़े खरीदे जाते थे। यद्यपि वियजनगर की सेना ने अनेक अवसरों पर अद्भुत शौर्य का प्रदर्शन किया, किन्तु जिस तरह मुसलमान सेनाओं द्वारा अनेक बार स्थानीय राजाओं को करारी हार दी गई, उससे ऐसा प्रतीत होता है कि विजयनगर की सेना का संगठन तथा अनुशासन दक्षिण के मुसलमान सुल्तानों, की सेना की अपेक्षा घटिया रहा होगा।

(v) वित्त व्यवस्था– राज्य की आय का मुख्य स्रोत भूमि कर था, जो उपज का 1/6 भाग वसूल किया जाता था। भूमि कर के अतिरिक्त सरकार चरागाह कर, विवाह कर, बही-शुल्क तथा उद्योगों और दस्तकारी की वस्तुओं पर भी कर वसूल करती थी। कर व्यवस्था कितनी सुदृढ़ थी, यह बात अब्दुर्रज्जाक के इस कथन से स्पष्ट हो जाती है कि वेश्याएँ भी करों से मुक्त न थीं। कर नगर तथा उपज के रूप में, दोनों प्रकार से वसूल किया जाता था।

(vi) नायंकार और आयगार व्यवस्था– विजयनगर साम्राज्य के शासन की एक मुख्य विशेषता उसकी भिन्न जागीरदारी व्यवस्था थी, जिसे नायंकार व्यवस्था कहा जाता है। इसके अनुसार राजा अपने जागीरदारों को एक निश्चित भूमि दे देता था। उस भूमि को 'अमरम' कहते थे और उनके स्वामी को अमर नायक। वे राजा को प्रतिवर्ष एक निश्चित धनराशि देते थे और युद्ध के अवसर पर उसकी सहायता के लिए अपने पास एक निश्चित संख्या में सैनिक भी रखते थे। धीरे-धीरे इन नायकों का अधिकार अपनी भूमि पर पैतृक हो गया। इनकी विशेषता यह थी कि प्रान्तपतियों की तुलना में उनका आन्तरिक शासन स्वायत्त थे। इसके अतिरिक्त शासक का सामान्यत: 'नायंकार' प्रदेश के आन्तरिक शासन में कोई हस्तक्षेप नहीं था।

नायंकार व्यवस्था की तरह विजयनगर राज्य के शासन की अन्य विशेषता आयगार-व्यवस्था थी। इस व्यवस्था के अन्तर्गत कुछ गाँवों को एक स्वतन्त्र इकाई के रूप में संगठित किया गया और इस ग्रामीण प्रशासकीय इकाई पर शासन करने के लिए बारह व्यक्तियों को नियुक्त किया गया। इन बारह अधिकारियों को सम्मिलित रूप से आयगार कहा गया। उनका मुख्य उत्तरदायित्व अपने शासन क्षेत्र में शान्ति और व्यवस्था को बनाए रखना था।''

10. विजयनगर साम्राज्य की धार्मिक, सामाजिक व आर्थिक स्थिति तथा साहित्य एवं कला पर टिप्पणी लिखिए।

उ०– विजयनगर की सम्पूर्ण शासन-व्यवस्था विस्तृत रूप से सुसंगठित तथा न्यायपूर्ण थी, परन्तु कुछ दोष भी विद्यमान थे—

(i) प्रान्तीय सूबेदारों के हाथों में अत्यधिक शक्ति थी और यही उनके साम्राज्य के छिन्न-भिन्न होने का कारण सिद्ध हुआ।

(ii) सैनिक संगठन इतना सुयोग्य नहीं था, जितना की होना चाहिए था और विशेषकर उस स्थिति में जबकि विजयनगर को निरन्तर बहमनी सुल्तानों से युद्ध करना पड़ता था।

(iii) विजयनगर सम्राटों ने लोगों की व्यक्तिवादी प्रवृत्तियों का दमन करने का प्रयत्न नहीं किया, जो आगे चलकर उनके लिए परेशानी का कारण बने।

(i) न्याय व्यवस्था– राजा न्याय का स्रोत था और स्वयं मुकदमों का फैसला किया करता था। अन्य न्यायाधीशों की नियुक्ति स्वयं राजा करता था। गाँव के लोग ग्राम-सभाओं अथवा पंचायतों द्वारा अपने झगड़े का निपटारा कर लिया करते थे। दण्ड विधान कठोर था। चोरी, व्यभिचार और राजद्रोह के लिए अंग-भंग और मृत्यु का दण्ड दिया जाता था सम्पत्ति जब्त कर ली जाती थी।

(ii) आर्थिक स्थिति– विजयनगर की गणना विश्व के इतिहास में धनी राज्यों में होती है। विजयनगर के वैभव तथा समृद्धि का विभिन्न विदेशी यात्रियों ने अपने वृत्तांतो में वर्णन किया है। इटली निवासी **निकोलो कोण्टी** के अनुसार, ''नगर का घेरा 60 मील तक था, जिसमें प्राय: 90 हजार व्यक्ति शस्त्र धारण करने के योग्य थे। राजा भारत के अन्य सभी राजाओं से शक्तिशाली है।'' बारबोसा ने नगर की प्रशंसा करते हुए लिखा था ''नगर बहुत विस्तृत और सघन बसा हुआ है तथा भारत हीरों, पेंगू के लाल, चीन और एलेक्जेण्ड्रिया की रेशम, सिन्दूर, कपूर, कस्तूरी तथा मालाबार की काली मिर्च और चन्दन के व्यापार का मुख्य केन्द्र स्थान है।'' ईरानी पर्यटक **अब्दुर्रज्जाक** लिखता है, ''देश इतना अच्छा बसा हुआ है कि संक्षेप में उसका चित्र प्रस्तुत करना असम्भव है। राजा के कोषगृह में, जिनमें गड्ढे खुदे हुए हैं, उनमें पिघला हुआ सोना भर दिया गया है, जिसकी ठोस शिलाएँ बन गई हैं।'' पुर्तगाली यात्री **डोमिंगोज पेइज** के अनुसार, ''यह विश्व का सबसे सुन्दर शहर है, जहाँ पर गेहूँ, चावल, जौ, दालों और अन्य सभी वस्तुओं की भरमार है।'' वह पुन: लिखता है, ''यहाँ के राजा के पास अथक सम्पत्ति, सैनिक और हाथी हैं, क्योंकि यहाँ ये प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हैं। इस शहर में तुम्हें सभी देशों के निवासी मिलेंगे, क्योंकि यहाँ के निवासी सभी देशों में कीमती पत्थरों, मुख्यतया हीरों का व्यापार करते थे।'' **अब्दुर्रज्जाक** ने लिखा है कि, ''विजयनगर साम्राज्य में 300 बन्दरगाह थे। वहाँ की प्रजा सुखी और समृद्ध थी। विजयनगर साम्राज्य में सोने तथा

ताँबे के सिक्के चलते थे। कुछ चाँदी के सिक्कों का भी चलन था।'' इसी प्रकार विदेशी लोगों ने एकमत होकर जो प्रशंसा की है उससे स्पष्ट है कि विजयनगर साम्राज्य अत्यधिक धनी तथा समृद्ध था।

(iii) धार्मिक सहिष्णुता– विजयनगर के राजा गम्भीर, धार्मिक प्रवृत्ति के व्यक्ति थे। वे वैष्णव धर्मावलम्बी थे, किन्तु अन्य भारतीय तथा पूर्णतया अभारतीय धर्मों के प्रति भी उनका व्यवहार सहिष्णुतापूर्ण था। **बारबोसा** लिखता है कि ''राजा ने इतनी स्वतन्त्रता दे रखी है कि कोई भी व्यक्ति इच्छानुसार विचरण कर सकता है तथा अपने धर्म के अनुसार जीवन बिता सकता है, उसे न कोई कष्ट देगा और न कोई यह पूछेगा कि तुम ईसाई, यहूदी, मुसलमान अथवा हिन्दू हो।''

(iv) सामाजिक स्थिति– वियजनगर राज्य में सामाजिक व्यवस्था सुगठित थी। समाज में ब्राह्मणों का स्थान बहुत श्रेष्ठ था। उन्हें किसी भी अपराध के लिए मृत्युदण्ड नहीं दिया जा सकता था और राज्य की सैनिक और असैनिक सेवाओं में उन्हें उच्च पद प्रदान किए जाते थे। विजयनगर में दास प्रथा प्रचलित थी और पुरुष तथा स्त्री दास खरीदे और बेचे जाते थे। स्त्रियों का समाज में सम्मान था। वे संगीत, नृत्य जैसी ललित कलाओं के अतिरिक्त शस्त्र विद्या में भी भाग लेती थीं। गणिकाओं (वेश्याओं) का भी समाज में महत्वपूर्ण स्थान था। उनको सामाजिक दृष्टि से हेय नहीं माना जाता था बल्कि धनाढ्य, सामन्त तथा शासक वर्ग के व्यक्ति नि:संकोच उनसे सम्पर्क रखते थे। बाल-विवाह, धनी व्यक्तियों में बहु-विवाह, दहेज प्रथा, सती प्रथा, देवदासी प्रथा आदि कुप्रथाएँ समाज में प्रचलित थीं, किन्तु राज्य ने दहेज लेना और देना गैरकानूनी घोषित कर दिया था। यह 1424-1425 ई० के एक अभिलेख से सिद्ध होता है। राज्य द्वारा विधवा-विवाह को प्रोत्साहन देने का प्रयत्न किया गया था। राज्य सती प्रथा को भी संरक्षण प्रदान नहीं करता था। ब्राह्मणों के अतिरिक्त अन्य जातियों और जनसाधारण में मांस खाना प्रचलित था। गौ-मांस का भक्षण निषेध था। स्त्री और पुरुष दोनों ही आभूषण पहनते थे। मन्दिर और मठ शिक्षालय का कार्य करते थे और राज्य उन्हें प्रचुर मात्रा में आर्थिक सहायता दिया करता था।

(v) साहित्य और कला– साहित्य और कला की दृष्टि से भी विजयनगर राज्य उन्नत था। विभिन्न शासकों ने संस्कृत, तेलुगू, तमिल और कन्नड़ भाषाओं में साहित्य का निर्माण किया। इसके प्रारम्भिक काल में ही वेदों के प्रख्यात टीकाकार सायण और उनके भाई माधव विद्यारण्य हुए थे। बुक्का प्रथम के संरक्षण में तेलुगू का महान् कवि नचन सोम था। देवराय द्वितीय ने 34 कवियों को संरक्षण दिया था।

कृष्णदेव राय के दरबार में वेदन्ना सहित आठ महान कवि थे, उसने तेलुगू के अतिरिक्त तमिल और कन्नड़ भाषा के विद्वानों को भी संरक्षण प्रदान किया। स्वयं कृष्णदेव राय भी विद्वान था। उसने कई पुस्तकें लिखीं थी, जिनमें से केवल एक 'आमुक्तमाल्यद' उपलब्ध है। इस काल में संगीत, नृत्यकला, नाटक, व्याकरण, दर्शन, धर्म, आदि सभी पर अनेक ग्रन्थ लिखे गए थे। ललित-कलाओं में चित्रकला, संगीत, नृत्यकला और स्थापत्य कला की विशेष प्रगति हुई। विट्ठलस्वामी का मन्दिर तथा कृष्णदेव राय के द्वारा बनवाया गया हजार स्तम्भों वाला मन्दिर हिन्दू स्थापत्य कला के उद्भूत नमूने माने जाते हैं। स्थापत्य शिल्प में विजयनगर भारतीय कला में मील का पत्थर है। कर्नाटक राज्य के बेल्लारी जिले में हास्पेट से मात्र 12 किमी दूर तुंगभद्रा नदी के दक्षिणी किनारे पर स्थित हम्पी छोटा-सा गाँव है। यहीं पर विजयनगर साम्राज्य के अवशेष बिखरे हुए हैं। डोमिंगोज पेइज नामक पुर्तगाली यात्री के अनुसार, ''यह नगर रोम जैसा विशाल व सुन्दर था। आज किले को मौजूदा अवशेषों में प्राचीरें, विशालकाय दरवाजे, किला, महल, हम्माम, हाथीशाला व टकसाल उल्लेखनीय हैं। तोरणद्वार इतने बड़े थे कि हाथी पताका सहित आया-जाया करते थे।'' पेराज ने राजमहल के एक कमरे का वर्णन करते हुए लिखा है, ''समूचा कमरा नीचे से ऊपर हाथीदाँत का बना है, स्तम्भों में गुलाब व कमल का मुकाबला ही नहीं हो सकता।''

इस प्रकार विजयनगर राज्य का विस्तार, शक्ति, शासन, सम्पन्नता, साहित्य और ललित कला आदि की प्रगति की दृष्टि से भारतीय इतिहास में एक महत्वपूर्ण स्थान है। उसका महत्व इस दृष्टि से और भी अधिक हो जाता है कि उसने दक्षिण भारत में हिन्दू धर्म, सभ्यता और समाज को एक लम्बे समय तक सुरक्षित एवं पल्लवित होने में सफलता दिलाई। डॉ० ए० एल० श्रीवास्तव के शब्दों में ''विजयनगर साम्राज्य ने दक्षिण में मुसलमानों के आक्रमणों के विरुद्ध हिन्दू धर्म तथा संस्कृति की रक्षा करके एक महान् ऐतिहासिक उद्देश्य को पूरा किया।''

17 धार्मिक सहिष्णुता का जन्म (Rise of Religious Tolerance)

अभ्यास

निम्नलिखित तिथियों के ऐतिहासिक महत्व का उल्लेख कीजिए–

1. 1486 ई०
2. 1469 ई०
3. 1538 ई०
4. 1479 ई०
5. 1425 ई०

उ०– उत्तर के लिए पाठ्यपुस्तक के पृष्ठ संख्या– 219 पर तिथि सार का अवलोकन करें।

सत्य या असत्य बताइए–

उ०– प्रश्नोत्तर के लिए पाठ्यपुस्तक के पृष्ठ संख्या– 219 का अवलोकन करें।

बहुविकल्पीय प्रश्न

उ०– प्रश्नोत्तर के लिए पाठ्यपुस्तक के पृष्ठ संख्या– 219 का अवलोकन करें।

अतिलघु उत्तरीय प्रश्न

उ०– प्रश्नोत्तर के लिए पाठ्यपुस्तक के पृष्ठ संख्या– 220 का अवलोकन करें।

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. किन्हीं दो सूफी सम्प्रदायों का संक्षेप में वर्णन कीजिए।

उ०– (i) सुहरावर्दी सूफी सम्प्रदाय– इस सम्प्रदाय के प्रवर्तक सन्त जियाउद्दीन थे। लेकिन इसके संस्थापक शेख शिहाबुद्दीन सुहरावर्दी थे। ये बगदाद के निवासी थे। इन्होंने सिन्ध से मुल्तान तक अपने धर्म का प्रचार किया। भारत में अन्य सूफी सम्प्रदायों की अपेक्षा इस सम्प्रदाय का अच्छा प्रभाव था।

(ii) चिश्ती सूफी सम्प्रदाय– भारत में इस सम्प्रदाय के संस्थापक ख्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती थे। इनके उपदेशों के मुख्य केन्द्र अजमेर दिल्ली थे। ये जाति-पाँति में विश्वास नहीं रखते थे। इस सम्प्रदाय से सन्तों में बख्तियार काकी, बाबा फरीद, निजामुद्दीन औलिया, अमीर खुसरो व वियोग श्रृंगार रस के महाकवि मलिक मुहम्मद जायसी के नाम उल्लेखनीय हैं। हजरत निजामुद्दीन औलिया की कब्र पर आज भी हिन्दू और मुसलमान दोनों ही अपनी इच्छाओं की पूर्ति हेतु मन्नत माँगने जाते हैं। आज भी यह सम्प्रदाय भारतीयों में काफी लोकप्रिय है।

2. ''भक्ति आन्दोलन के महान् प्रवर्तक चैतन्य महाप्रभु तथा गुरुनानक थे।'' इस कथन को समझाइए।

उ०– चैतन्य महाप्रभु– चैतन्य महाप्रभु भक्ति आन्दोलन के महानतम सन्त थे। उनका जन्म 18 फरवरी, 1486 ई० को बंगाल में नदिया नामक स्थान पर एक ब्राह्मण परिवार में हुआ था।

चैतन्य महाप्रभु अति सुन्दर और लम्बे कद के थे। वे अपने भक्तों के लिए वात्सल्य की सजीव प्रतिमा थे। उन्होंने श्रीकृष्ण की उपासना सखाभाव से की। उन्होंने सबके साथ आत्मीयता का व्यवहार किया और मानव जाति के हित के लिए सदैव तत्पर रहे।

बाल्यावस्था में इनका नाम निमाई था। 24 वर्ष की आयु में इन्होंने घर त्यागकर संन्यास ग्रहण कर लिया और अपने शेष जीवन प्रेम तथा भक्ति के सन्देश देने में बिताया। उनमें बचपन से ही साहित्यिक प्रतिभा थी। उन्होंने न्याय-दर्शन तथा अलंकार शास्त्र का गहन अध्ययन किया था। 15 वर्ष की अवस्था में इन्होंने गया में ईश्वरपुरी नामक वैष्णव संन्यासी से भेंट की और उनसे दीक्षा प्राप्त की। इसके पश्चात् ये नवद्वीप लौट आए और वहाँ पर अपने शिष्यों को आध्यात्मिक ज्ञान का उपदेश दिया।

उन्होंने जनसाधारण को निष्ठापूर्वक धर्माचरण करने तथा प्रेम एवं भक्तिपूर्वक श्रीकृष्ण नाम का जप करने का उपदेश दिया। उनकी शिक्षाओं के तत्त्व सार्वभौम सिद्धान्त पर आधारित थे। उन्होंने जाँति-पाँति की अपेक्षा भगवत्-निष्ठा को अधिक महत्त्व दिया। फलस्वरूप पुरोहित, पण्डित आदि इनके कट्टर विरोधी हो गए। इन लोगों ने उनकी भक्ति प्रचार का हिंसात्मक विरोध किया। अपने विरोधियों से परेशान होकर उन्होंने बर्दवान जिले के कच्चा नामक स्थान पर रहना प्रारम्भ कर दिया और वहाँ पर केशव भारती नामक साधु से दीक्षा ग्रहण की तथा अपना नाम श्रीकृष्ण चैतन्य रख दिया। इसके बाद ये जगन्नाथपुरी की ओर रवाना हो गए। मार्ग में एक पण्डित से इन्होंने शास्त्रार्थ किया और शंकर के अद्वैतवाद का खण्डन किया। उन्होंने वहीं पर अपने तर्कों द्वारा यह सिद्ध कर दिया कि ब्रह्मवादियों के यह विचार कि ''जन्म और मृत्यु के बन्धनों से मुक्ति पाना ही जीवन का लक्ष्य है,'' उचित नहीं है। उन्होंने बताया कि आन्तरिक सुख की प्राप्ति ही मनुष्य का मुख्य लक्ष्य है और इस लक्ष्य को भक्ति द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है। उन्होंने ज्ञान के सम्बन्ध में स्पष्ट, गम्भीर एवं विशुद्ध विचार प्रस्तुत किए। उन्होंने कहा कि ज्ञान एक है, जो सब जगह उपस्थित है। उन्होंने कहा कि एक ही तत्त्व के विभिन्न रूपों को ब्रह्म तथा भगवान के नाम से पुकारा जाता है।

उन्होंने दर्शनशास्त्र को व्यर्थ के तर्कवाद से तथा धर्म को निरर्थक विधि-विधान के जाल से मुक्त कर दिया। उन्होंने एक त्यागी, संन्यासी और धर्मोपदेशक के रूप में जीवन-व्यतीत किया। सन् 1513 में 48 वर्ष की आयु में उनका देहान्त हो गया। उनके शिष्यों द्वारा उन्हें विष्णु का अवतार माना जाता है।

गुरुनानक– गुरुनानक ने भक्ति आन्दोलन के प्रसार में महत्वपूर्ण योगदान दिया। उन्होंने सिख सम्प्रदाय की स्थापना की, जिसका भारतीय इतिहास में अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। नानक का जन्म 1469 ई० में एक खत्री परिवार में तलवंडी नामक ग्राम (आधुनिक ननकाना) में हुआ था। यह गाँव लाहौर से दक्षिण-पश्चिम में 35 मील की दूरी पर आधुनिक पश्चिमी पंजाब के शेखपुरा जिले में स्थित है। उनके पिता एक पटवारी थे। गुरुनानक ने हिन्दी, संस्कृत तथा फारसी का विशेष ज्ञान प्राप्त किया था। उनकी वैरागी भावना को देखकर उनके माता-पिता ने उन्हें किसी व्यवसाय में लगाने का प्रयास किया गया, किन्तु नानक का ध्यान किसी कार्य में न लग सका। 18 वर्ष की आयु में उनका विवाह हो गया और उन्हें दो पुत्रों की प्राप्ति भी हुई। 30 वर्ष की आयु में वे घर छोड़कर वैरागी के रूप में सत्य एवं शान्ति की खोज में इधर-उधर भटकने लगे। उन्होंने सम्पूर्ण भारत का भ्रमण किया और अरब तथा फारस भी गए। भ्रमण यात्रा के दौरान उनकी भेंट अनेक साधु, सन्तों तथा फकीरों से हुई, जिनके साथ उन्होंने धर्म के विभिन्न पक्षों पर वाद-विवाद किया। साखी के अनुसार उन्होंने प्रमुख सूफी सन्तों-पानीपत के शाह अबुअली

कलन्दर, शेख इब्राहीम मियाँ हाथी आदि से भेंट की और कुछ तत्कालीन सन्तों से भी मिले। सन् 1538 ई० में 70 वर्ष की आयु में उनका देहावसान हो गया।

गुरुनानक का विचार था कि ''ईश्वर सर्वव्यापी है एवं सर्वशक्तिमान है। मानव की आत्मा का ईश्वर से मिलन प्रेम एवं भक्ति द्वारा ही सम्भव है।'' वे ईश्वर को सर्वोच्च, स्वतन्त्र, अगोचर तथा गतिहीन मानते थे। उनका कहना था कि ईश्वर अनादि और अनन्त है। वह प्रत्येक मनुष्य में निवास करता है तथा भय एवं शंका के परे है। नानक के प्रमुख उद्देश्य हिन्दुओं और मुसलमानों में एकता स्थापित करना था। उनका मत था- ''मानव मात्र का हित करो, मानव मात्र से प्रेम करो तथा प्रत्येक प्राणी से भ्रातृत्व भाव से स्नेह करो।'' उन्होंने हिन्दू और मुसलमानों के बाह्याडम्बरों का कड़ा विरोध किया तथा हृदय की पवित्रता पर विशेष बल दिया। उन्होंने मुसलमानों को उपदेश देते हुए कहा- ''दया को अपनी मस्जिद, भलाई को अपनी नमाज की दरी मानो तथा जो कुछ उचित एवं न्यायसंगत है, वही तुम्हारी कुरान है।''

नानक मानव समानता पर विशेष बल देते थे। जाति भेद में उनका कोई विश्वास नहीं था। उनका स्पष्ट मत था— ''मैं चारों में से किसी जाति का नहीं हूँ— मनुष्य के आचरण ही उसकी जाति को निर्धारित करते हैं तथा वह अपने कर्मों द्वारा ही उच्च बनता है। केवल ईश्वर की भक्ति से ही संसार से मुक्ति मिल सकती है।'' नानक के इन महत्वपूर्ण उपदेशों का संकलन 'गुरु ग्रन्थ साहिब' में मिलता है।

3. सूफीवाद से क्या तात्पर्य है?

उ०– सूफी सम्प्रदाय मुस्लिम विचारकों का वह धार्मिक संगठन है, जो भौतिक जीवन से दूर रहकर सरल और संयमित जीवन व्यतीत करने पर बल देता है। उनके जीवन का मुख्य उद्देश्य परोपकार दीन-दु:खियों की सेवा करना है। इस सम्प्रदाय का उदय इस्लाम धर्म से होना स्वीकार किया गया है। वस्तुत: यह हिन्दुओं की दार्शनिक विचारधारा पर आधारित भक्ति आन्दोलन से प्रभावित था। सूफी सन्त एक ईश्वर में विश्वास करते हैं तथा सभी पदार्थ और व्यक्ति उसके अंग है। सूफियों के अनुसार ईश्वर एक है, सभी कुछ ईश्वर में है, उसके बाहर कुछ नहीं है और सभी कुछ त्याग कर, प्रेम के द्वारा ही ईश्वर को प्राप्त किया जा सकता है।

4. एक सूफी सन्त के रूप में मुइनुद्दीन चिश्ती के महत्त्व की विवेचना कीजिए।

उ०– ख्वाजा मुइनुद्दीन चिश्ती– ख्वाजा मुइनुद्दीन चिश्ती मूलत: मध्य एशिया के निवासी थे। मुहम्मद गौरी की सेना के साथ वे 1192 ई० में भारत आए। भारत में 'चिश्ती सिलसिला' के संस्थापक यही थे। लाहौर और दिल्ली के पश्चात् उन्होंने अजमेर को अपना केन्द्र बनाया, जहाँ इनके असंख्य अनुयायी बन गए।

5. भारत में भक्ति आन्दोलन के उदय के सन्दर्भ में किन्हीं चार कारणों का उल्लेख कीजिए।
या भक्ति आन्दोलन की दो प्रमुख विशेषताएँ लिखिए।

उ०– भक्ति आन्दोलन की उत्पत्ति के मुख्य कारण निम्नलिखित थे—

(i) मुस्लिम आक्रमणकारी– मध्यकाल में मुसलमान आक्रमणकारियों ने हिन्दुओं के मन्दिरों एवं मूर्तियों का विनाश कर दिया था। ऐसी दशा में जनसाधारण स्वतन्त्रतापूर्वक मन्दिरों में जाकर मूर्तिपूजा तथा उपासना नहीं कर सकता था, अत: वे भक्ति एवं उपासना द्वारा ही मोक्ष प्राप्त करने के लिए प्रयास करने लगे।

(ii) जटिल वर्ण-व्यवस्था– धीरे-धीरे वर्ण-व्यवस्था जाति-व्यवस्था के रूप में परिवर्तित हो गई लेकिन मध्यकाल तक आते-आते जाति-व्यवस्था बहुत जटिल हो चुकी थी। भक्ति मार्ग ने अछूतों तथा निम्न वर्ग के व्यक्तियों के लिए भी मार्ग खोल दिया।

(iii) समन्वय की भावना– बहुत समय तक हिन्दू तथा मुसलमान एक साथ रहे। इन दोनों जातियों ने आपस में सद्भाव का जन्म आवश्यक समझा। अत: इसी भावना से भक्ति मार्ग के आन्दोलन को बढ़ावा मिला। डॉ० ताराचन्द और डॉ० युसूफ हुसैन इसी मत के समर्थक हैं। उनकी मानना है कि भक्ति आन्दोलन के सन्तों ने एकेश्वरवाद का समर्थन, मूर्तिपूजा का खण्डन और जाति प्रथा का बहिष्कार इस्लाम से प्रेरणा पाकर ही किया।

(iv) भक्ति मार्ग की सरलता– हिन्दू धर्म का स्वरूप अत्यन्त जटिल हो गया था। मानसिक कर्मकाण्डों एवं पूजा-पाठ की क्रियाओं को साधारण जनता सरलता से नहीं निभा सकती थी। अत: भक्ति मार्ग, जो अत्यन्त सरल तथा जटिलता से रहित था, लोकप्रिय होता चला गया।

भक्ति आन्दोलन की दो प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित थीं—

(i) भक्ति आन्दोलन के सभी प्रवर्तक समाज में व्याप्त निरर्थक आडम्बरों के घोर विरोधी थे।

(ii) इन्होंने जाति प्रथा का घोर विरोध किया।

6. भारत में सूफी मत के प्रमुख सिद्धान्तों पर प्रकाश डालिए।
या सूफी सन्तों के दो प्रमुख सिद्धान्तों का वर्णन कीजिए।

उ०– सूफी सम्प्रदायों द्वारा समय-समय पर सूफी धर्म से सम्बन्धित जो विचार व्यक्त किए गए हैं, उनमें विभिन्नता होते हुए भी काफी सभ्यता है। सूफियों के प्रमुख सिद्धान्त निम्नवत् हैं—

(i) सूफियों के अनुसार व्यक्ति को केवल एक ईश्वर में विश्वास रखना चाहिए। सूफी; ईश्वर को सत्य, निर्गुण और निराकार मानते हैं।

(ii) उनके अनुसार समस्त सृष्टि की रचना निराकार ईश्वर ने की है।
(iii) सच्चा सूफी अपवित्रता को त्यागकर पवित्रता में विश्वास करता है।
(iv) सूफियों के अनुसार, ईश्वर की सत्यता को जानना चाहिए तथा संसार में रहते हुए ही जीवन से मुक्त हो जाना चाहिए।
(v) सूफी; संगीत और गायन अर्थात् भक्ति को ईश्वर-प्राप्ति में सहायक मानते हैं।
(vi) गुरु अथवा पीर को सूफियों ने विशेष महत्त्व प्रदान किया है। सूफी सन्त गुरु-शिष्य परम्परा में विश्वास करते हैं।
(vii) सूफी मत के अनुसार मानव सृष्टि में सर्वश्रेष्ठ प्राणी है।
(viii) सूफियों के अनुसार मनुष्य को गण्डे, ताबीज तथा चमत्कार आदि में विश्वास नहीं करना चाहिए।
(ix) सूफी मत प्रेम व नैतिकता पर आधारित है।
(x) आत्मा परमात्मा का ही अंश है, यह सूफी मत का प्रमुख विश्वास है।
(xi) सूफी कर्मकाण्डों में विश्वास नहीं रखते थे। ये तो ईश्वर-प्राप्ति के लिए -तौबा, खौफ, अपरिग्रह, करुणा, शुक्रगुजार होना, आशा, सन्तोष, निर्धन रहना, रिजा (ईश्वर को आत्मसमर्पण) आदि गुणों का पालन करना उपयोगी और आवश्यक समझते थे।

7. कबीर की शिक्षाओं का संक्षिप्त वर्णन कीजिए।

उ०– कबीर से समाज में व्याप्त कुरीतियों का उन्मूलन करने का अथक प्रयास किया और हिन्दू-मुसलमानों में एकता स्थापित करने का प्रयत्न किया। इन्होंने लोगों को प्रेममार्ग का उपदेश दिया और बताया कि प्रेममार्गी द्वारा ही हिन्दू-मुस्लिम दोनों जातियों में समन्वय हो सकता है। उन्होंने हिन्दुओं तथा मुसलमानों की कटु आलोचना की और उन्हें ढोंगी तथा पाखण्डी बताया। उन्होंने ईश्वर को एक बताते हुए कहा है— ''ईश्वर एक है, लेकिन हम विभिन्न नामों से उसकी आलोचना करते हैं। राम, रहीम, हजरत, अल्लाह तथा केशव आदि एक ही ईश्वर के भिन्न नाम हैं।''

कबीर ने गुरु की महत्ता पर विशेष बल दिया और यह उपदेश दिया कि केवल गुरु के माध्यम से ही ईश्वर को प्राप्त किया जा सकता है। उन्होंने हिन्दू धर्म और मुस्लिम धर्म के अनुयायी के कर्मकाण्डों की कटु आलोचना की। इसके अतिरिक्त उन्होंने लोगों को सत्य, प्रेम, अहिंसा, सदाचार आदि का उपदेश दिया।

8. गुरु नानक की शिक्षाओं का संक्षिप्त विवेचन कीजिए।
या गुरु नानक कौन थे? उनकी शिक्षाएँ क्या थीं?

उ०– उत्तर के लिए लघु उत्तरीय प्रश्न संख्या— 2 के अन्तर्गत 'गुरुनानक' का अवलोकन करें।

9. भक्ति आन्दोलन के प्रथम प्रवर्तक कौन थे तथा किस मत को मानते थे?

उ०– भक्ति आन्दोलन के प्रथम प्रवर्तक वैष्णव आचार्य रामानुज थे। उनका जन्म 12 वीं शताब्दी के प्रथम दशक में मद्रास (चेन्नई) में तिरुपति नामक स्थान पर हुआ था। वह दक्षिण भारत के वैष्णव धर्म के महान् प्रचारक थे। इन्होंने जगतगुरु शंकराचार्य के अद्वैतवाद का खण्डन कर विशिष्टाद्वैतवाद का प्रचार किया और वैष्णव धर्म की शिक्षाओं को ठोस दार्शनिक आधार प्रदान किया। इन्होंने बताया कि ईश्वर सर्वगुणसम्पन्न है। उन्होंने सगुण ईश्वर की उपासना पर विशेष बल दिया। उनका मत था कि एकाग्रचित्त से ईश्वर की भक्ति करने से ही मोक्ष की प्राप्ति हो सकती है। उन्होंने वेदों एवं उपनिषदों का विरोध न करते हुए ईश्वर की भक्ति पर बल दिया।

10. चैतन्य महाप्रभु ने क्या उपदेश दिया?

उ०– उत्तर के लिए लघु उत्तरीय प्रश्न संख्या— 2 के अन्तर्गत ''चैतन्य महाप्रभु'' का अवलोकन करें।

11. समाज सुधारक के रूप में कबीर का मूल्यांकन कीजिए।

उ०– भक्ति आन्दोलन के एक प्रमुख व्यक्तित्व कबीर थे। यह एक महान समाज सुधारक थे। इनका जन्म लहरतारा (वाराणसी) में एक विधवा ब्राह्मणी के गर्भ से हुआ था और इनका पालन-पोषण 'नीरू-नीमा' नामक एक जुलाहे दम्पति ने किया था। इन्होनें समाज में व्याप्त कुरीतियों को उन्मूलन करने का अथक प्रयास किया और हिन्दू-मुसलमानों में एकता स्थापित करने का प्रयत्न किया। इन्होंने लोगों को प्रेममार्ग का उपदेश दिया और यह बताया कि प्रेममार्ग द्वारा ही हिन्दू-मुस्लिम दोनों जातियों में समन्वय हो सकता है। उन्होंने हिन्दुओं तथा मुसलमानों की कटु आलोचना की और उन्हें ढोंगी तथा पाखण्ड़ी बताया। उन्होंने ईश्वर को एक बताते हुए कहा है— ''ईश्वर एक है, लेकिन हम विभिन्न नामों के माध्यम से उसकी उपासना करते हैं। राम, रहीम, अल्लाह तथा केशव आदि एक ही ईश्वर के विभिन्न नाम है।''

कबीर ने गुरु की महत्ता पर विशेष बल दिया है और यह उपदेश दिया कि केवल गुरु के माध्यम से ही ईश्वर की प्राप्ति की जा सकती है। उन्होंने हिन्दू धर्म और मुस्लिम धर्म के अनुयायियों के कर्म-काण्डों की कटु आलोचना की। इसके अतिरिक्त उन्होंने लोगों को सत्य, प्रेम, अहिंसा, आदि के उपदेश दिए।

12. सूफी धर्म का समकालीन समाज पर क्या प्रभाव पड़ा?

उ०– सूफी धर्म के कारण भारतीय समाज में जाति-पाँति का भेद समाप्त हो गया। भारतीय समाज में एकता की भावना जाग्रत हुई।

13. भक्ति आन्दोलन की दो प्रमुख विशेषताएँ लिखिए।

उ०– भक्ति आन्दोलन की दो प्रमुख विशेषताएँ निम्नवत् हैं–

(i) भक्ति आन्दोलन के सभी प्रवर्तक समाज में व्याप्त निरर्थक आडम्बरों के घोर विराधी थे।

(ii) भक्ति आन्दोलन के सन्तों ने जाति प्रथा का विरोध किया।

विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

1. भक्ति आन्दोलन की मुख्य विशेषताओं पर प्रकाश डालिए तथा सामाजिक और धार्मिक जीवन पर इसके प्रभाव का वर्णन कीजिए।

उ०– भक्ति आन्दोलन की विशेषताएँ– भक्ति आन्दोलन की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित थीं–

(i) भक्ति आन्दोलन के सभी प्रवर्तक समाज में व्याप्त निरर्थक आडम्बरों के घोर विरोधी थे।

(ii) भक्ति आन्दोलन के सन्तों ने कर्मकाण्डी देवी-देवताओं की मूर्तिपूजा का खण्डन किया।

(iii) इन्होनें जाति-प्रथा का घोर विरोध किया।

(iv) इन्होंने समाज में ऊँच-नीच और भेदभाव का प्रबल विरोध किया।

(v) इस आन्दोलन के प्रवर्तकों का कहना था कि सच्चे हृदय से ही ईश्वर की भक्ति की जा सकती है और मोक्ष भी तभी प्राप्त किया जा सकता है।

(vi) इन्होंने व्यक्तिगत चरित्र की शुद्धता पर विशेष बल दिया।

(vii) इन सुधारकों ने तत्कालीन सामाजिक स्थिति में भी पर्याप्त सुधार किए।

(viii) इनके द्वारा हिन्दू नारी की हीन दशा के सुधार की ओर विशेष ध्यान दिया था।

(ix) भक्ति आन्दोलन द्वारा सामाजिक कुरीतियों को भी दूर करने का भरसक प्रयत्न किया गया था।

(x) इस आन्दोलन का जन्म दक्षिण भारत में हुआ था, परन्तु यह आन्दोलन धीरे-धीरे समस्त भारत में फैल गया था।

भक्ति आन्दोलन के प्रभाव– भक्ति आन्दोलन का जनसामान्य पर काफी गहरा प्रभाव पड़ा–

(i) पुरोहितवाद तथा ब्राह्मणवाद को ठेस– इस आन्दोलन के परिणामस्वरूप पुरोहितवाद तथा ब्राह्मणवाद को गहरी चोट पहुँची। इस आन्दोलन ने यह सिद्ध कर दिया कि प्रत्येक व्यक्ति चाहे वह चमड़े का काम करने वाला हो या अछूत हो, अपनी भक्ति से ईश्वर को प्राप्त कर सकता है। इस प्रकार ब्राह्मणों का धर्म पर एकाधिकार समाप्त हो गया।

(ii) वर्ण-व्यवस्था का पतन– भक्ति आन्दोलन में हिन्दुओं की वर्ण-व्यवस्था को छिन्न-भिन्न कर दिया। ब्राह्मण वर्ग की प्रतिष्ठा धूल में मिल गई और उनके जातीय अभियान को गहरी ठेस पहुँची। इस आन्दोलन ने स्पष्ट कर दिया कि मोक्ष का मार्ग प्रत्येक व्यक्ति के लिए चाहे वह उच्च हो या नीच, राजा हो या रंक, खुला है। इस प्रकार भक्ति आन्दोलन के परिणामस्वरूप समाज में शूद्रों को भी ब्राह्मणों के समकक्ष स्थान प्राप्त हो गया।

(iii) कर्मकाण्ड का पतन– भक्ति आन्दोलन के परिणामस्वरूप कर्मकाण्ड तथा भक्ति के बाहरी दिखावे को गहरा नुकसान पहुँचा। कुछ सन्तों ने सामाजिक बुराईयों की कटु आलोचना की और उनका जोरदार शब्दों में खण्डन किया। फलस्वरूप कर्मकाण्ड का पतन होना प्रारम्भ हो गया।

(iv) हिन्दुओं का नैतिक विकास– इस आन्दोलन से हिन्दुओं का विकास हुआ है और अब वे मुसलमान बनने के प्रति उदासीन हो गए।

(v) मूर्तिपूजा में अवरोध– यद्यपि भक्ति आन्दोलन ने मूर्तिपूजा के प्रति विरोध पैदा कर दिया था, किन्तु मूर्तिपूजा का पूरी तरह अन्त नहीं हो पाया था।

(vi) सिख सम्प्रदाय की स्थापना– इस आन्दोलन के प्रमुख सन्त गुरुनानक ने सिख सम्प्रदाय की स्थापना की। इस सम्प्रदाय ने भारतीय इतिहास में अनेक वीरतापूर्ण कार्य किए। इसी प्रकार नामदेव साहित्य ने महाराष्ट्र में भक्ति धर्म की नींव डाली और उसका विकास किया।

(vii) साहित्य का उद्धार– भक्ति आन्दोलन के परिणामस्वरूप साहित्य का काफी विकास हुआ। प्रान्तीय भाषाओं के साहित्य का तेजी से विकास हुआ। मीराबाई ने राजस्थानी भाषा में भक्तिपूर्ण पदों की रचना की। नानक ने गुरुमुखी साहित्य का विकास किया। विद्यापति ने मैथिली भाषा में रचनाएँ लिखी। नामदेव तथा तुकाराम ने मराठी, चैतन्य तथा चण्डीदास ने बंगला और नरसी मेहता ने गुजराती भाषा में साहित्य की रचना की। कुछ सन्तों ने द्रविड़ भाषाओं में रचनाएँ लिखीं। इसके अतिरिक्त रामानन्द, कबीर, जायसी, तुलसीदास आदि ने हिन्दी साहित्य को समृद्ध किया।

(viii) धार्मिक सहिष्णुता का उदय– इस आन्दोलन के कारण सभी धर्मों एवं जातियों में धार्मिक सहिष्णुता का उदय हुआ, जिससे देश में शान्ति, सम्पन्नता तथा सांस्कृतिक एकता की स्थापना हुई।

2. भक्ति आन्दोलन से आप क्या समझते हैं? मध्यकाल के प्रमुख धर्म-सुधारकों का परिचय दीजिए।
या भारतीय समाज पर भक्ति आन्दोलन के प्रभावों का निरूपण कीजिए।

उ०– भक्ति आन्दोलन– सल्तनत काल में अनेक साधु-सन्त और सुधारक हुए थे, जिन्होंने भक्ति भावना के विकास पर बल दिया और धर्म सुधार का एक ऐसा नया आन्दोलन चलाया जो इतिहास में भक्ति आन्दोलन के नाम से प्रसिद्ध हुआ। यद्यपि यह आन्दोलन कोई नया आन्दोलन नहीं था, वरन् इसका सूत्रपात आदि शंकराचार्य के समय से ही उनके द्वारा चलाए गए अद्वैतवादी दर्शन से हो चुका था। सल्तनत काल में मानव समाज का सामाजिक एवं धार्मिक स्तर बहुत गिर गया था। ऐसी विकृत दशा को देखकर अनेक समाज सुधारक सामने आए और उन्होंने समाज एवं धर्म में सुधार हेतु अनेक आन्दोलन संचालित किए। इस सम्बन्ध में **जॉर्ज ग्रियर्सन** ने लिखा है, ''हम अपने को एक ऐसे धार्मिक आन्दोलन के समक्ष पाते हैं जो उन समस्त धार्मिक आन्दोलनों से कहीं अधिक व्यापक एवं विशाल है; जिन्हें भारत ने कभी देखा है।''

मध्यकाल के प्रमुख धर्म सुधारक– मध्यकाल के प्रमुख धर्म-सुधारकों का संक्षिप्त परिचय निम्नवत् है—

भक्ति आन्दोलन के प्रमुख सन्तों का संक्षिप्त परिचय निम्नवत् है—

(i) आचार्य रामानुजाचार्य– आचार्य रामानुजाचार्य का जन्म 1016 ई० में हुआ था। भक्ति आन्दोलनों के प्रवर्तकों में इनका सर्वोच्च स्थान है। ये सगुण ब्रह्म के उपासक थे और इसी को वे मोक्ष-प्राप्ति का साधन बताते थे। इनके अनुयायियों की संख्या दक्षिण भारत में अधिक है।

(ii) रामानन्द– रामानन्द का जन्म 14 वीं शताब्दी में इलाहाबाद में हुआ था। इन्होंने उत्तर भारत में भक्ति आन्दोलन चलाया था। ये राम तथा सीता के उपासक थे। इन्होंने जनसाधारण की भाषा में लोगों को राम-भक्ति की उपासना के लिए प्रोत्साहित किया था। ये जाति-पाँति के प्रबल विरोधी थे। उनके शिष्यों में सभी जातियों के व्यक्ति थे।

(iii) वल्लभाचार्य– वल्लभाचार्य का जन्म 1479 ई० में तेलंगाना प्रदेश के एक ब्राह्मण परिवार में हुआ था। इन्होंने भारत के अनेक स्थानों का भ्रमण किया और जनता को प्रेम एवं ईश्वर-भक्ति का उपदेश दिया था। उनका कहना था कि जब मनुष्य की आत्मा सभी बन्धनों से मुक्ति पा जाती है, तो मोक्ष की प्राप्ति हो जाती है। उनके अनुसार, बन्धनों से छुटकारा पाने का साधन ईश्वर-भक्ति है। वे कहते थे कि सब कुछ ईश्वर को ही अर्पित कर देना चाहिए अर्थात संसार के मोह-माया से छूट जाने पर ही परम मुक्ति सम्भव है।

(iv) चैतन्य महाप्रभु– चैतन्य महाप्रभु का जन्म बंगाल में 1485 ई० में 'नादिया' नामक स्थान पर हुआ था। जिस समय युग-प्रवर्तक सन्त वल्लभाचार्य उत्तरी भारत में भक्ति आन्दोलन चला रहे थे, उसी समय भक्ति आन्दोलन के महान् सन्त चैतन्यदेव बंगाल में सगुण भक्ति मार्ग और कृष्ण की उपासना की शिक्षा दे रहे थे। उनके उपदेश का सार इस प्रकार था, ''जो व्यक्ति कृष्ण की उपासना तथा अपने गुरु की सेवा करता है वह माया-जाल से मुक्त होकर कृष्ण के चरण बिन्दु को प्राप्त कर लेता है।'' अन्य सन्तों की भाँति इन्होंने भी धार्मिक क्षेत्र में व्याप्त बाहरी आडम्बरों एवं जाति-प्रथा का विरोध किया। उन्होंने लोगों को आदर्श मानवीय गुणों की शिक्षा दी और ऊँच-नीच का भेदभाव समाप्त करने का उपदेश दिया। उनके कुछ अनुयायी उन्हें विष्णु का अवतार भी मानते हैं। 1533 ई० में उनकी मृत्यु हो गई थी।

चैतन्य महाप्रभु के सन्दर्भ में **डॉ० आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव** लिखते हैं, ''चैतन्य के उपदेश और उनकी विचारधारा केवल बंगाल और उड़ीसा में ही नहीं, अपितु देश के अन्य भागों में भी जनप्रिय हो उठी। उन्होंने जो उपदेश दिए, वे सीधे जनता के हृदय में उतर गए थे।''

(v) कबीर– भक्ति आन्दोलन के सन्तों में कबीरदास का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इनकी जन्म-तिथि, वंश एवं मृत्यु के विषय में विद्वानो में बड़ा मतभेद है। कुछ प्रमाणों के आधार पर कहा जाता है कि इनका जन्म एक विधवा ब्राह्मणी के गर्भ से हुआ था और इन्हें काशी के 'लहरतारा' नामक तालाब के किनारे छोड़कर चली गई थी। इनका पालन-पोषण 'नीरू-नीमा' नामक जुलाहा दम्पति के घर में हुआ था। इन्होंने ईश्वर और अल्लाह में कोई भेद नहीं किया। इनका कहना था कि भगवान एक है। कबीर जाति-पाँति, मूर्ति-पूजा और धर्म के बाहरी आडम्बरों के प्रबल विरोधी थे। इन्होंने अपने उपदेश जनसाधारण की भाषा में दिए।

(vi) गुरुनानक– इनका जन्म 1469 ई० में पंजाब के पास तलवण्डी (आधुनिक ननकाना, जिला शेखपुरा, पाकिस्तान) ग्राम में हुआ था। भारत में मुस्लिम धर्म का प्रसार और हिन्दू-मुसलमानों के मध्य उत्पन्न पारस्परिक विवादों को देखकर इन्होंने एकं सर्वहितकारी 'सिक्ख धर्म' की स्थापना की। इस धर्म को चलाने में नानक जी का प्रमुख उद्देश्य हिन्दू एवं मुस्लिम, दोनों धर्मों का समन्वय करना था। इन्होंने कहा था कि हिन्दू एवं मुसलमानों में कोई भेद नहीं है। दोनों धर्मों के भेद को मिटाने के लिए वे मुसलमानों के प्रसिद्ध धार्मिक स्थानों मक्का और मदीना भी गए थे। उन्होंने लोगों को जाति-पाँति का भेदभाव और ऊँच-नीच का विचार न करने का उपदेश दिया था और आपस में प्रेम, त्याग एवं भाईचारे के साथ रहने की शिक्षा दी थी। हिन्दू और मुसलमान दोनों ही इनके शिष्य थे।

इनके अतिरिक्त भक्ति आन्दोलन के अनेक धर्म और समाज-सुधारक सन्त हुए थे। इन्होंने हिन्दुओं तथा मुसलमानों दोनों को ही अपना शिष्य बनाया। ईश्वर से सर्वव्यापकता का उन्होंने सर्वत्र उपदेश दिया ईश्वर के प्रति पूर्ण आत्मसमर्पण की भावना को मोक्ष का साधन बताते हुए भी उन्होंने यह कभी नहीं कहा कि ईश्वर की दृष्टि में संसार का त्याग करके सन्यास लेना आवश्यक है। इनका तो यही कहना था कि धार्मिक संन्यासी तथा भक्त एवं गृहस्थ सभी समान है। गुरु नानक के उपदेश 'गुरु-ग्रन्थ साहिब' में संगृहित हैं। यह सिक्खों की पवित्र पुस्तक है।

भक्ति आन्दोलन के प्रभाव– इसके लिए विस्तृत उत्तरीय प्रश्न संख्या–1 के उत्तर का अवलोकन करे।

3. मध्यकालीन भारत में सूफी आन्दोलन के योगदान पर एक निबन्ध लिखिए।

उ०– सूफी मत का परिचय– सूफी सम्प्रदाय मुस्लिम विचारकों का वह धार्मिक संगठन है, जो भौतिक जीवन से दूर रहकर सरल और संयमित जीवन व्यतीत करने पर बल देता है। उनके जीवन का मुख्य उद्देश्य परोपकार और दीन-दु:खियों की सेवा करना है। इस सम्प्रदाय का उदय इस्लाम धर्म से होना स्वीकार किया गया है। वस्तुत: यह हिन्दुओं की दार्शनिक विचारधारा पर आधारित भक्ति आन्दोलन से प्रभावित था। सूफी शब्द के विभिन्न अर्थ बताए गए हैं–

कुछ विचारकों का मत है कि 'सूफी' शब्द का सम्बन्ध यूनानी शब्द 'सोफिया' से है, जिसका अर्थ 'ज्ञान' होता है।

एक अन्य विद्वान् के अनुसार, सूफी शब्द 'सफा' से बना है, जिसका अर्थ है 'पवित्र'।

तीसरे अर्थ के अनुसार, मुहम्मद साहब के समय मदीने की मसजिद के सम्मुख चबूतरे पर साधना करने वाले लोग 'सूफी सन्त' कहलाए।

सूफी सन्त एक ईश्वर में विश्वास करते हैं तथा सभी पदार्थ और व्यक्ति उसके अंग हैं। सूफियों के अनुसार ईश्वर एक है, सभी कुछ ईश्वर में है, उसके बाहर कुछ नहीं है और सभी कुछ त्याग कर, प्रेम के द्वारा ही ईश्वर को प्राप्त किया जा सकता है।

सूफी मत का प्रसार– बारहवीं शताब्दी के आरम्भ में भारतवर्ष में सूफियों ने पर्दापण किया था। मुख्य रूप से भारत में सूफियों के चार सम्प्रदाय सफल रहे हैं। ये निम्नलिखित हैं–

(i) सुहरावर्दी सूफी सम्प्रदाय– इन सम्प्रदाय के प्रवर्तक सन्त जियाउद्दीन थे। लेकिन इसके संस्थापक शेख शिहाबुद्दीन सुहरावर्दी थे। ये बगदाद के निवासी थे। इन्होंने सिन्ध से मुल्तान तक अपने धर्म का प्रचार किया। भारत में अन्य सूफी सम्प्रदायों की अपेक्षा इस सम्प्रदाय का अच्छा प्रभाव था।

(ii) चिश्तीसूफी सम्प्रदाय– भारत में इस सम्प्रदाय के संस्थापक ख्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती थे। इनके उपदेशों के मुख्य केन्द्र अजमेर व दिल्ली थे। ये जाति-पाँति में विश्वास नहीं रखते थे। इनके उपदेश व सिद्धान्तों से प्रभावित होकर अनेक हिन्दू व मुसलमान सम्राट इनके शिष्य बन गए थे। इन सम्प्रदाय के सन्तों में बख्तियार काकी, बाबा फरीद, निजामुद्दीन औलिया, अमीर खुसरो व वियोग श्रृंगार रस के महाकवि मलिक मुहम्मद जायसी के नाम उल्लेखनीय हैं। हजरत निजामुद्दीन औलिया की कब्र पर आज भी हिन्दू और मुसलमान दोनों ही अपनी इच्छाओं की पूर्ति हेतु मन्नत माँगने जाते हैं। आज भी यह सम्प्रदाय भारतीयों में काफी लोकप्रिय है।

(iii) कादरिया सूफी सम्प्रदाय– इस सम्प्रदाय के संस्थापक सन्त शेख अब्दुल कादिर जिलानी थे। इन्होंने कादरिया सम्प्रदाय का बहुत प्रचार एवं प्रसार किया था इस सम्प्रदाय के सन्त या अनुयायी सभी देशों में हैं। कादिर तेरहवीं सदी में हुए थे। इस सम्प्रदाय के प्रमुख सन्तों में फकीर मखदूमशाह विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। मुगल सम्राट शाहजहाँ का पुत्र दारा शिकोह भी कादरिया सूफी सम्प्रदाय से प्रभावित होकर इसका अनुयायी बन गया था।

(iv) नक्शबन्दिया सम्प्रदाय– इस सम्प्रदाय के जन्मदाता महान् सूफी सन्त ख्वाजा बहाउद्दीन नक्शबन्दिया थे। ये तुर्की के रहने वाले थे। इस सम्प्रदाय के प्रमुख सन्त अथवा अनुयायी भारत चीन, जावा आदि स्थानों में हैं। इस सम्प्रदाय के प्रमुख सन्तों में ख्वाजा वाकी बिल्लाह व शेख अहमद सरहिन्दी थे। भारत में इस सम्प्रदाय का व्यापक प्रचार न होने का मुख्य कारण यह था कि यह सम्प्रदाय अन्य सम्प्रदायों की अपेक्षा अधिक जटिल था।

सूफी मत के सिद्धान्त– सूफी सम्प्रदायों द्वारा समय-समय पर सूफी धर्म से सम्बन्धित जो विचार व्यक्त किए गए हैं, उनमें विभिन्नता होते हुए भी काफी साम्यता है। सूफियों के प्रमुख सिद्धान्त निम्नवत् हैं–

(i) सूफियों के अनुसार व्यक्ति को केवल एक ईश्वर में विश्वास रखना चाहिए। सूफी; ईश्वर को सत्य, निर्गुण और निराकार मानते हैं।

(ii) उनके अनुसार समस्त सृष्टि की रचना निराकार ईश्वर ने की है।

(iii) सच्चा सूफी अपवित्रता को त्यागकर पवित्रता में विश्वास करता है।

(iv) सूफियों के अनुसार, ईश्वर की सत्यता को जानना चाहिए तथा संसार में रहते हुए ही जीवन से मुक्त हो जाना चाहिए।

(v) सूफी; संगीत और गायन अर्थात् भक्ति को ईश्वर-प्राप्ति में सहायक मानते हैं।

(vi) गुरु अथवा पीर को सूफियों ने विशेष महत्त्व प्रदान किया है। सूफी सन्त गुरु-शिष्य परम्परा में विश्वास करते हैं।

(vii) सूफी मत के अनुसार मानव सृष्टि में सर्वश्रेष्ठ प्राणी है।

(viii) सूफियों के अनुसार मनुष्य को गण्डे, ताबीज तथा चमत्कार आदि में विश्वास नहीं करना चाहिए।

(ix) सूफी मत प्रेम व नैतिकता पर आधारित है।

(x) आत्मा परमात्मा का ही अंश है, यह सूफी मत का प्रमुख विश्वास है।

(xi) सूफी कर्मकाण्डों में विश्वास नहीं रखते थे। ये तो ईश्वर-प्राप्ति के लिए— तौबा, खौफ, अपरिग्रह, करुणा, शुक्रगुजार होना, आशा, सन्तोष, निर्धन रहना, रिजा (ईश्वर को आत्मसमर्पण) आदि गुणों का पालन करना उपयोगी और आवश्यक समझते थे।

भारतीय संस्कृति पर सूफी मत का प्रभाव– सूफी सन्तों ने इस्लाम को भारतीयों के अनुकूल बनाया था। सूफी मत का चिश्ती सम्प्रदाय, वेदान्त दर्शन से बहुत अधिक प्रभावित था। अत: सूफी मत का हिन्दुओं पर भी व्यापक प्रभाव पड़ा। सूफी सन्तों ने जो कुछ किया, वह मानवता के लिए किया। उन्होंने हिन्दुओं के सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक और नैतिकता जीवन को बहुत अधिक प्रभावित किया था। इसी कारण सूफी मत के सम्बन्ध में कहा जाता है, ''सूफी मत ने भारतवर्ष की विचारधारा को प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से एक बड़ी सीमा तक प्रभावित किया है।''

सूफी सन्तों के कारण ही भारतीय समाज में जाति-पाँति का भेदभाव समाप्त होने लगा था। सूफियों का मत था कि सब एक ही ईश्वर या अल्लाह के बन्दे हैं; अत: मानव समाज में पारस्परिक भेदभाव नहीं होना चाहिए। सूफियों के कारण ही भारतीय समाज में एकता की भावना जाग्रत हुई थी।

सूफियों ने भारतीयों के धार्मिक जीवन को भी अत्यधिक प्रभावित किया। इसने हिन्दुओं के धार्मिक जीवन में विभिन्नता के स्थान पर एकता को जन्म दिया। धार्मिक एकता के साथ-साथ सूफी मत ने व्यापक भक्ति भावना के प्रसार को भी प्रोत्साहन दिया। सूफी सन्तों ने हिन्दुओं की वेशभूषा को अपनाया था। इसके साथ ही अपने धर्म के सिद्धान्तों का सार भी सूफियों ने हिन्दू धर्म से ही लिया था। इसके फलस्वरूप भी भारतीय जनता पर इस्लाम धर्म के इन सूफी सन्तों का प्रभाव पड़ा।

सूफी सन्तों ने इस्लाम धर्म को पूर्ण रूप से नहीं अपनाया था। केवल वे ही उच्च विचार व सिद्धान्त उन्होंने इस्लाम धर्म से चुने थे, जो सभी धर्मों में श्रेष्ठ माने जाते थे फिर भी इस मत के सन्दर्भ में यह कथन उचित ही है, ''सूफी दर्शन इस्लाम का भक्ति-प्रधान विशिष्ट दर्शन था।''

4. ''कबीर हिन्दू-मुस्लिम एकता के प्रबल समर्थक थे।'' इस कथन की समीक्षा कीजिए।

उ०– कबीर का जीवन परिचय– कबीर के जीवन-वृत्त को निश्चित करने की चेष्टा बहुत समय से चली आ रही है। लेकिन इस सम्बन्ध में अभी तक कोई सर्वमान्य जानकारी प्राप्त नहीं हो पायी है। कबीरदास के जीवन के सम्बन्ध में अनेक जनश्रुतियाँ अर्थात् किंवदंतियाँ प्रचलित हैं। उनके जन्म के सम्बन्ध में एक जनश्रुति अत्यधिक प्रसिद्ध है। कहा जाता है कि विधवा ब्राह्मणी की सेवा से प्रसन्न होकर स्वामी रामानन्द ने उसको पुत्रवती होने का आशीर्वाद दिया। पुत्र उत्पन्न होने पर लोक-लज्जा के भय से वह बालक को काशी के लहरतारा नामक तालाब के किनारे फेंक आई। नीरू और नीमा नामक जुलाहा दम्पत्ति ने इस बालक को उठा लिया और इनका पालन-पोषण किया। उनके द्वारा ही इस बालक का नाम कबीर रखा गया।

विद्वानों के मत से कबीर का जन्म संवत् 1455 में ज्येष्ठ मास की पूर्णिमा को हुआ था। कबीर शिक्षित न थे। उन्होंने स्वयं स्वीकार किया है कि 'मास कागद छूयो नहीं, कलम गही नहिं हाथ'। उन्होंने सत्संग के द्वारा ही प्रत्येक धर्म की अच्छी बातें ग्रहण कर ली थीं। यही कारण है कि कबीर-पंथ में सभी धर्मों का समन्वय है।

कबीर स्वामी रामानन्द जी के शिष्य थे। लोई नामक कन्या के साथ इनका विवाह हुआ था जो अत्यधिक रूपवती और पतिपरायणता थी। उनके पुत्र का नाम कमाल और पुत्री का नाम कमाली था।

कबीर जुलाहे का काम करते थे और उसी से अपनी जीविका चलाते थे। जीवन के अन्तिम दिनों में वे लोगों के अन्धविश्वास के विरोध में मगहर चले गए। लोगों की यह धारणा थी कि काशी में मृत्यु होने पर मोक्ष प्राप्त होता है और मगहर में मरने पर नरक। मगहर में ही उन्होंने संवत् 1575 में अपने प्राण त्याग दिए।

रैदास, नामदेव, गुरुनानक आदि इनके समकालीन सन्त थे जो इनका सम्मान करते थे। निश्छल होने के कारण उन्हें अपने विरोधियों का भी विश्वास प्राप्त था। जो उनके सामने आया वही उनसे प्रभावित हुए बिना न रहा। यही कारण है कि उन्हें हिन्दू और मुसलमान दोनों ने ही अपनाया था, दोनों ने ही उन्हें 'अपना' कहा।

धर्म और समाज-सुधार की दिशा में कबीर के कार्य– कबीर के काव्य में भी समाज का वास्तविक प्रतिबिम्ब झलकता है। उनका साहित्य तात्कालिक समाज की माँग थी। वे व्यक्ति और समाज दोनों के सुधारक थे। **आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी** का विचार है, ''कबीरदास बहुत कुछ अस्वीकार करने का अपार साहस लेकर अवतीर्ण हुए थे। उन्होंने आजीवन सम्प्रदायवाद, बाह्याचार और बाहरी भेदभाव पर कठोरतम आघात किया था।''

(i) हिन्दू-मुस्लिम एकता पर बल– कबीर ने हिन्दू-मुस्लिम एकता पर विशेष बल दिया। उन्होंने देखा कि हिन्दू और मुसलमान परस्पर संघर्ष कर रहे हैं। साथ ही वे अपने ही सम्प्रदाय में भी छोटे-बड़े के नाम पर आपस में लड़ रहे थे। मुसलमान काबा, मसजिद, पीर-पैगम्बर के नाम पर आपस मे एक-दूसरे को छोटा-बड़ा समझते थे। हिन्दू भी जाति-

पाँति, ऊँच-नीच की दूषित भावनाओं से ग्रस्त थे। कबीर ने एक सच्चे समाज-सुधारक की भाँति इस परिस्थिति का अवलोकन किया और स्पष्ट किया है।

ईश्वर को प्राप्त करने का एकमात्र उपाय मन की पवित्रता है। उन्होंने सर्म्पूण शक्ति और निर्भीकता के साथ समस्त बाह्याचारों का विरोध किया और मूर्ति-पूजा, तीर्थाटन, हज, नमाज आदि की निस्सारता को बार-बार समझाया—

पूजा, सेवा, नेम, व्रत गुड़ियन का-सा खेल।
जब लग पिउ परसे नहीं, तब लग संसय मेल॥

कबीर ने हिन्दू और मुसलमानों के बीच भेदभावों की तीव्र शब्दों में निन्दा की। उन्होंने अनुभव किया कि हिन्दू और मुसलमानों की उपासना पद्धतियों ने दोनों को अलग कर रखा है। इसलिए उन्होंने दोनों की ही आडम्बरयुक्त उपासना पद्धतियों की आलोचना की।

वास्तव में कबीर इस भेदभाव को मिटाकर दोनों जातियों में मेल कराना चाहते थे। समाज-सुधार की बलवती आकांक्षा, उन्हें सदैव झकझोरती रही।

(ii) बाह्य आडम्बरों का विरोध– कबीर ने बाह्य आडम्बरों और मिथ्या विश्वासों का कड़ा विरोध किया। साधु-संन्यासियों द्वारा बाल मुँड़ाने, बाल बढ़ाने, गेरुआ वस्त्र पहनने, नग्न रहने आदि क्रियाओं पर कबीर ने तीव्र व्यंग्य किए हैं। बार-बार बाल मुँड़ाने वालों के सन्दर्भ में कबीर का कथन है—

केसन कहा बिगाड़िया जो मूड़े सौ बार।
मन को कहा न मूँडिए जा में विषै विकार॥

माला फेरते समय मन को एकाग्र न करने वाले प्राणियों के सम्बन्ध में कबीर के ये व्यंग्यपूर्ण शब्द बहुत मर्मस्पर्शी हैं—

माला फेरत जुग भया, गया न मन का फेर।
कर का मनका डारि दे, मन का मनका फेर॥

कबीर ने हिन्दू तथा मुसलमान दोनों के द्वारा की जाने वाली तीर्थ-यात्रा को व्यर्थ बताया और मन की शुद्धता तथा विचारों की पवित्रता पर जोर दिया।

(iii) कथनी और करनी में अन्तर न रखने पर बल– कबीर का विश्वास था कि जो कहो उसे पूरा करो और जितना कार्य करो उसे अधिक का वर्णन न करो। कथनी और करनी में भेद रखने वालों के वे घोर विरोधी थे—

कथनी मीठी खांड-सी, करनी बिस की लोय।
कथनी तजि करनी करे, विष तै अमृत होय॥

(4) सन्त और असन्त का भेद– कबीर का विचार था कि इस संसार में सन्त और असन्त की पहचान बहुत कठिन हो गई है। उनके विचार से सन्त वही है, जिसकी कोई जाति नहीं है, किन्तु उसके हृदय में ज्ञान का प्रकाश है। सन्त अपनी सज्जनता कभी नहीं छोड़ता—

सन्त न छोड़े सन्तई कोटिक मिले असन्त।
मलय भुवंगहि बेधिया सरलता न तजन्त॥

वास्तव में, सन्त वही है जो दूसरों की विपत्तियों में काम आता है—

कबीर संगत साधु की, हरै और की व्याधि।
संगत बुरी असाधु की, आठी पहर उपाधि॥

इस प्रकार, कबीर ने जीवनपर्यन्त अपनी अटपटी और सधुक्कड़ी भाषा में उत्तर भारत की जनता को समाजोपयोगी शिक्षा दी। वे सुकरात के समान कड़वी बातें कहते थे, उनका विद्रोही स्वर तत्कालीन शासन-व्यवस्था और सामाजिक व्यवस्था पर तीव्रतम आघात करता था।

एक बात विशेष रूप से द्रष्टव्य है कि कबीर का दृष्टिकोण 'पर उपदेश कुशल बहुतेरे' के आदर्श पर आधारित था। वे समाज को सुधारने से पहले व्यक्ति का सुधारना चाहते थे, क्योंकि व्यक्ति से ही समाज का निर्माण होता है। इस कारण कबीर ने समाज की अपेक्षा व्यक्ति के सुधार पर अधिक बल दिया।

5. ''राष्ट्रीय संगठन की भावना को जाग्रत करने में सूफी सन्तों का महत्वपूर्ण योगदान है।'' इस कथन की विवेचना कीजिए।

उ०– उत्तर के लिए विस्तृत उत्तरीय प्रश्न संख्या– 3 के उत्तर का अवलोकन करें।

6. मध्यकालीन भारत में भक्ति आन्दोलन के विशिष्ट तथ्यों का निरूपण कीजिए।

उ०– उत्तर के लिए विस्तृत उत्तरीय प्रश्न संख्या– 1 के उत्तर का अवलोकन करें।

7. भक्ति आन्दोलन के उदय के क्या कारण थे? इस आन्दोलन के परिणामों का भी उल्लेख कीजिए।

उ०– उत्तर के लिए विस्तृत उत्तरीय प्रश्न संख्या– 1 के उत्तर का अवलोकन करें।

8. नानक और कबीर के उपदेशों तथा उनके प्रभाव पर एक टिप्पणी लिखिए।

उ०– गुरुनानक– इसके लिए लघु उत्तरीय प्रश्न संख्या– 2 के अन्तर्गत ''गुरुनानक'' का अवलोकन करें।

कबीर– ये भक्ति आन्दोलन के एक प्रमुख सन्त और एक महान् समाज सुधारक थे। इनका जन्म लहरतारा (वाराणसी) में एक विधवा ब्राह्मणी के गर्भ से हुआ था। इनका पालन-पोषण 'नीरू-नीमा' नामक एक जुलाहा दम्पत्ति ने किया था। इन्होंने समाज में व्याप्त कुरीतियों का उन्मूलन करने का अथक प्रयास किया और हिन्दू-मुसलमानों में एकता स्थापित करने का प्रयत्न किया। इन्होंने लोगों को प्रेममार्ग का उपदेश दिया और बताया कि प्रेममार्ग द्वारा ही हिन्दू-मुस्लिम दोनों जातियों में समन्वय हो सकता है। उन्होंने हिन्दुओं तथा मुसलमानों की कटु आलोचना की और उन्हें ढोंगी तथा पाखण्डी बताया। उन्होंने ईश्वर को एक बताते हुए कहा है– ''ईश्वर एक है, लेकिन हम विभिन्न नामों से उसकी उपासना करते हैं। राम, रहीम, हजरत, अल्लाह तथा केशव आदि एक ही ईश्वर के भिन्न नाम है।''

कबीर ने गुरु की महत्ता पर विशेष बल दिया और यह उपदेश दिया कि गुरु के माध्यम से ही ईश्वर को प्राप्त किया जा सकता है। उन्होंने हिन्दू धर्म और मुस्लिम धर्म के अनुयायियों के कर्मकाण्डों की कटु आलोचना की। इसके अतिरिक्त उन्होंने लोगों को सत्य, प्रेम, अहिंसा, सदाचार आदि का उपदेश दिया।